गो-धन ।

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतं ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥
यस्मै क्वापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ।
मङ्गलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमः क्षयं ॥
यन्न वेदध्वनि ध्वान्तं यन्न गोभिरलंकृतं ।
यन्न बालैः परिवृतं श्मशानमेवतत् गृहं ॥

लेखक

श्रीगिरिशचन्द्र चक्रवर्त्ती

वकील लोकलबोर्ड और म्यूनिसिपैलिटीके चेयरमैन,
वाईस प्रेसिडेण्ट, वेद विद्यालय

प्रकाशक—

श्रीवाणीनाथ चक्रवर्त्ती, बी० ए०

किशोरगञ्ज (मैमनसिंह)

परमाराध्य देवप्रतिम—

ज्येष्ठ सहोदर

श्रीयुक्त द्वारकानाथ चक्रवर्त्ती,

एम० ए० बी० एल० वकील

के श्रीचरणोंमें

यह भेंट भक्ति-पूर्वक

समर्पित है।

-श्रीगिरिशचन्द्र देव शर्म्मा।

निवेदन ।

प्रकृतिका नियम है, कि घात होनेसे ही उसका प्रतिघात भो होता है। मैंने एक आघात पाया था, उसीका प्रतिघात स्वरूप यह ग्रन्थ लिखा गया है। जिस समय मैं कार्यक्षेत्रमें उपस्थित हुआ था; उस समय स्वर्गीय पितृव्य ईशानचन्द्र चक्रवर्त्ती महाशयने मुझे एक दुधारू गाय दी थी।

इस गायको एक दिवस सर्दी और ज्वर हुआ। एक कृषक द्वितीय कृतान्तकी भाँति उसकी चिकित्साके लिये आया। उसको एक दिवसकी चिकित्सामें ही गाय कष्टसे छटपटाकर मर गई। बड़ा ही आघात पाया।

मैंने देखा, कि देशमें गो-चिकित्सक नहीं है, गो-चिकित्साके ग्रन्थ भी नहीं है। इस तरहकी कुचिकित्सा और अचिकित्सासे देशकी हजारों गायें मर रही हैं। परमाराध्य बड़े भाई श्रीद्वारकानाथ चक्रवर्त्ती महोदयसे देशकी इस गो-हानिके सम्बन्धमें बहुत सी बातें हुईं, उनके ही उपदेश और उत्साहका फलस्वरूप और देशके इस अभावको दूर करनेके उपाय-स्वरूपमें यह ग्रन्थ लिखा गया है। इसके द्वारा यदि देशकी एक गायको भी रक्षा हुई तो अपना यत्न और श्रम सार्थक समझूँगा।

इस ग्रन्थ रचनाके सम्बन्धमें अपने बन्धुओंका बहुत कुछ उपदेश और सहानुभूति मिली है। इस सम्बन्धमें बहुतसे संस्कृत और कितने ही अँगरेजी और बङ्गला ग्रन्थ, मासिक और साप्ताहिक पत्रिकाओंका साहाय्य ग्रहण किया है। इन बन्धु और लेखकोंका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। किशोरगञ्जके कई विद्योत्साही, देशके शिक्षित महात्माओंने इस ग्रन्थकी पाण्डु-लिपि देखकर इसे प्रकाशित करनेके लिये मुझे विशेष उत्साहित किया है, अतः उनके निकट भी मैं अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। नाना प्रकारके भिन्न कार्योंमें लगे रहनेके कारण इस ग्रन्थमें स्थान स्थानपर छपाईकी भूलें रह सकती हैं। प्रार्थना है, कि पाठकगण अपने औदार्य गुणसे इन सब भूलोंका संशोधन कर लेंगे।

किशोरगञ्ज
३१ जून १९२१

श्रीगिरिशचन्द्र शर्म्मणः।

पूर्व्वाभास ।

भाई गिरिश

आज तुम्हारा "गो-धन" हिन्दी भाषामें भी प्रकाशित देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। प्राचीन कालसे हिन्दू शास्त्र और समाजमें गो-जातिकी उपकारिताके सम्बन्धमें भूयसी प्रशंसा और वर्त्तमान समयमें भारतमें गो-जातिकी अवनति और उनके उन्नति-साधनके उपाय प्रभृतिके सम्बन्धमें तुम्हारे साथ मेरी जो बातें हुई हैं,—यह "गो-धन" उसीका फल है। तुम सदा ही गो-जातिके विषयमें विशेष चिन्तित रहे हो और तुम्हारा आग्रह सदा ही इस बातपर दिखाई दिया है, कि गो-जातिकी उन्नति हो। तुम्हारा प्रकाशित "गो-धन" बङ्ग साहित्यमें एक नयी चीज़ है। गो-जातिके सम्बन्धमें जो जाननेको बातें हैं और उनकी रक्षा और उन्नतिके लिये जो ज्ञातव्य है—गो-धनमें वे सभी बातें लिखी हैं। अपने व्यवसायमें सदा रत रहनेपर भी तुम्हें जो कुछ अवसर मिला है, उसे इस मूल्यवान कार्यमें व्ययित देखकर मैं बड़ा ही आल्हादित हुआ हूँ।

बङ्गाल देश क्या, समस्त भारतवर्ष ही कृषि-प्रधान स्थान है। हमलोग इस देशके अधिवासी, जन्मसे आमरण कालतक गो-दुग्ध द्वारा ही परि-पुष्ट रहते हैं। हमलोगोंके लिये गो-जातिकी अपेक्षा मूल्यवान् धन और दूसरा नहीं है, परन्तु धीरे धीरे इस जातिकी इतनी अवनति हुई है, कि उसे देखकर सभी चिन्ताशील व्यक्ति व्यथित और आतङ्कित हुए हैं।

मैं आशा करता हूँ, कि गोधन इस देशके अधिवासियोंकी दृष्टि आकर्षित करेगा। वे गो-रक्षा और गो-पालनके निमित्त विशेष यत्न-वान् होंगे।

गो-धन बङ्गालके, यहाँतक कि भारतवासियोंके घर घर दिन पञ्चा-ङ्गकी भाँति यदि रक्खा जाये और उसका व्यवहार किया जाये तो इसमें सन्देह नहीं है कि ध्वंसप्राय गो जातिकी रक्षा और पालनमें सहायत करेगा।

नं० ७२ रसारोड,
भवानीपुर, कलकत्ता।
४थी आषाढ़ १३२८ साल

आशीर्वादक,
श्रीद्वारकानाथ शर्म्मा (चक्रवर्त्ती)

हिन्दी संस्करण ।

बङ्गीय शिक्षित समाजमें नाटक उपन्यासोंकी जैसी भरमार दिखाई देती है, उस अवस्थामें "गो-धन" का परम सौभाग्य ही समझना चाहिये, कि उसका आशातीत आदर हुआ और बङ्ग-भाषामें उसके प्रकाशित होते ही समस्त गण्यमान्य विद्वान सज्जन और प्रायः समस्त पत्र पत्रिकाओंने एक स्वरसे उसकी प्रशंसा की। "प्रवाहिनी" पत्रिकाके सुयोग्य सम्पादकने लिखा :—"गो-धनका एक वर्षमें तीन संस्करण होना चाहिये, क्योंकि यह हीराका टुकड़ा है।" और हुआ भी वैसा ही, उसका प्रथम संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया ।

इतना ही नहीं, ग्रन्थ प्रकाशित होते ही बङ्ग साहित्यके चिरपृष्ठ-पोषक महाराज सर मनीन्द्रचन्द्र नन्दी के० सी० आई० ई० महाशयने इसकी ५०० प्रतियाँ, आनरेब्ल महाराज शशिकान्त आचार्य बहादुरने इसकी २०० प्रतियाँ और आनरेब्ल राय ब्रजेन्द्र किशोर चौधरीने २०० प्रतियाँ खरीदकर अपनी अपनी जमीन्दारीमें प्रजाकी शिक्षाके लिये बँटवा दीं। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही जमीन्दारोंने इसी तरह गो-धनके प्रचारमें बड़ी सहायता पहुँचायी है।

बङ्गालकी टेक्स्ट बुक कमिटीने "गो-धन" को लाइब्रेरी और प्राइज बुकके स्वरूपमें ग्रहण किया है।

अखिल भारतवर्षीय गो-महासभा (All India Cow Conference) के सभापति माननीय जस्टिस सर जान उडरफने अपने व्याख्यानमें इसे (Unique publication) अर्थात् अपूर्व ग्रन्थ कहकर

बड़ी प्रशंसा की है। बंगाल एग्रिकल्चरल विभागके सुपरिण्टेण्डेण्टने इसे गो-तत्वके सम्बन्धकी Encyclopaedia कहा है।

इसी प्रकारसे अनेकानेक महानुभावोंने इस पुस्तककी प्रशंसा की है और वास्तवमें पुस्तक कितनी उपयोगिनी, आवश्यक और देशोन्नतिकी सहायका है, यह इसे देखनेवाले सभी विचारशील समझ सकते हैं। हिन्दी संसारसे, इसीलिये, मेरा अनुरोध है, कि वह इस पुस्तकको अच्छी तरह अपनाकर इस कार्यमें लेखकका उत्साह बढ़ानेके साथ ही गो-जातिकी उन्नति और भारतवासियोंके जीवनके एकमात्र साधन गो-जातिके उपकारमें सहायक हो।

विनीत—

चन्द्रशेखर पाठक।

विषय-सूची ।

प्रथम खण्ड ।

उपक्रमणिका ।

विषय— पृष्ठ

प्रथम परिच्छेद ।

द्वितीय परिच्छेद ।

तृतीय परिच्छेद ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

द्वितीय खण्ड.

—:-:—

प्रथम परिच्छेद ।

तृतीय खण्ड

—:—:—

प्रथम परिच्छेद ।

द्वितीय परिच्छेद ।

तृतीय परिच्छेद ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

पंचम परिच्छेद ।

षष्ठ परिच्छेद ।

अष्टम परिच्छेद ।

नवम् परिच्छेद ।

दशम परिच्छेद ।

एकादश परिच्छेद ।

द्वादश परिच्छेद ।

त्रयोदश परिच्छेद ।

चतुर्दश परिच्छेद ।

पञ्चदश परिच्छेद ।

षोडश परिच्छेद ।

सप्तदश परिच्छेद ।

अष्टादश परिच्छेद ।

उनविंश परिच्छेद ।

विंश परिच्छेद ।

एकविंश परिच्छेद ।

द्वाविंश परिच्छेद ।

त्रयोविंश परिच्छेद ।

चतुर्विंश परिच्छेद ।

पंचविंश परिच्छेद ।

षड्विंश परिच्छेद ।

सप्तविंश परिच्छेद ।

चतुर्थ खण्ड

—:—

प्रथम परिच्छेद ।

द्वितीय परिच्छेद ।

तृतीय परिच्छेद ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

पंचम परिच्छेद ।

षष्ठ परिच्छेद ।

सप्तम परिच्छेद ।

अष्टम परिच्छेद ।

नवम् परिच्छेद ।

दशम परिच्छेद ।

एकादश परिच्छेद ।

द्वादश परिच्छेद ।

त्रयोदश परिच्छेद ।

चतुर्दश परिच्छेद।

पञ्चदश परिच्छेद।

षोडश परिच्छेद।

सप्तदश परिच्छेद।

अष्टादश परिच्छेद।

उनविंश परिच्छेद।

विंश परिच्छेद।

एकविंश परिच्छेद।

द्वाविंश परिच्छेद।

त्रयोविंश परिच्छेद।

चतुर्विंश परिच्छेद।

पांचवां खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

द्वितीय परिच्छेद ।

तृतीय परिच्छेद ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

पञ्चम परिच्छेद ।

षष्ठ परिच्छेद ।

सप्तम परिच्छेद ।

अष्टम परिच्छेद ।

नवम परिच्छेद ।

दशम परिच्छेद ।

एकादश परिच्छेद ।

द्वादश परिच्छेद ।

त्रयोदश परिच्छेद ।

षष्ठ खण्ड ।

गव्ययी ।

प्रथम परिच्छेद ।

द्वितीय परिच्छेद ।

तृतीय परिच्छेद ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

पञ्चम परिच्छेद ।

षष्ठ परिच्छेद ।

सप्तम परिच्छेद ।

अष्टम परिच्छेद ।

नवम परिच्छेद ।

दशम परिच्छेद ।

सप्तम खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

द्वितीय परिच्छेद ।

तृतीय परिच्छेद ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

पञ्चम परिच्छेद ।

षष्ठ परिच्छेद ।

सप्तम परिच्छेद ।

गो-दोहन ।

Balkrishna Press, Calcutta.

गो-धन ।

प्रथम खण्ड

प्रथम परिच्छेद ।

गोजातिसे लाभ ।

धनं च गोधनं धान्यं स्वर्णादयो वृथैवहि ।

खेतीके अनुपयुक्त सदा बरफसे ढके हुए लैपलेण्ड देशमें बल्गा-हरिन, पहाड़ी देशोंमें भेंड़ और बकरे तथा ऊसर मरुभूमिमें ऊँटके द्वारा वहाँके अधिवासी, अपने कठोर जीवन-संग्रामकी कितनी ही उपयोगिनी सामग्रियाँ जुटा लेते हैं; परन्तु खेतीके योग्य चौरस भूमिमें गो-जातिकी उपकारिता अतुलनीय है ।

मनुष्य जीवनकी पहली भूख मिटानेके लिये गायका दूध ही पहला उपादान है । शिशु भूमिपर गिरते ही, माताका दूध पीनेके पहले, सूत्रमयी दशा (फाहा) द्वारा गायका दूध पीकर मनुष्य जीवनकी पहली भूख मिटाकर तृप्त हो, जीवन यात्रा आरम्भ करता है ।

उधर फिर बुढ़ापेसे जीर्ण, स्थविर, रोगी, मनुष्य जो मृत्यु

शय्यापर पड़े रहते हैं, वे भी थोड़ा थोड़ा गायका दूध पीकर ही अपना प्राण बचाये रहते हैं और मृत्युके समय भी गायका दूध मुँहमें डालते हुए ही मनुष्यकी मानव लीलाका भी अवसान होता है।

रोगी और दुर्बलोंके लिये गो-दुग्ध श्रेष्ठ पथ्य है। गायका दूध और उससे बने दही, छेना, मक्खन, खीर, रबड़ी, मलाई, बरफ़ी, पेड़ा, गुलाबजामुन, खीर, इत्यादि पदार्थों की नाईं बालक, बृद्ध, युवक, और भोगियोंको रसनाको तृप्ति करनेवाला पदार्थ इस पृथ्वीमें दूसरा नहीं है। श्राद्ध, विवाह, तथा अन्य उत्सवोंमें पूरी, कचौरी, खस्ता, पकौड़ी, पापड़, हलवा, बालूशाही, मोहनभोग, पोलाव, खुरमा, प्रभृति घी से बने हुए पदार्थों का नाम सुनकर किसके मुँहमें पानी न भर आता होगा। जो चाय, आज समस्त सभ्य जगतमें सवेरेसे सन्ध्या-तक पानीकी भाँति पी जाती है ; उसमें भी गायके दूधकी आवश्यकता पड़ती है।

मनुष्य जीवनको धारण करनेके उपयोगी चीनी, नमक, पानी, चर्बी, आदि सभी पदार्थ गायके दूधमें विद्यमान हैं। मछली, मांस चावल, दाल, आँटा, तरकारी आदि किसी एक पदार्थको खाकर मनु-ष्यका शरीर पुष्ट और वर्द्धित नहीं हो सकता; परन्तु केवल दूध पीकर मनुष्यका शरीर सुपुष्ट और सुगठित हो सकता है ; इसीलिये हमारे नीति-वेत्ताओंने कहा है, कि "गव्य हीनम् कुभोजनम्" गोरससे हीन भोजन कदाहार है। तार्किक श्रेष्ठ चार्वाकने स्थिर किया है :—"यावत् जीवेत् सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतम् पिवेत्। भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः।" अर्थात् ऋण करके भी घी पीना चाहिये। 'आयु-र्मूलम् हविः' आयु घी खानेपर निर्भर करती है अर्थात् जीवको जीवन प्राप्त करनेके लिये बराबर घी खाना आवश्यक है। 'सर्व रोग हरं तक्रम्" मठा सब रोगोंको नाश करता है। 'न तक्र सेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धा प्रभवन्ति रोगाः।" यथा "सुराणाममृतम् सुखाय तथा नरा-

णाम् भुवि तक्र माहुः।" जिस तरह देवताओंको अमृतका पीना सुख देनेवाला है, उसी तरह मठा पीना मनुष्योंके लिये सुखदायक है।

वर्त्तमान पाश्चात्य चिकित्सकोंका भी यही मत है, कि छेनाका जल और दहीके वीजाणु सब रोगोंको नाशकर मनुष्य जीवनको बढ़ा सकते हैं। इसीलिये वे दही और छेनेका जल सब रोगोंमें पथ्यस्वरूप देते हैं।

घर और घरके आँगनकी दुर्गन्ध नाश करनेके लिये गोबरकी भांति अपर्य्याप्त, सहजमें मिलनेवाला पदार्थ दूसरा नहीं है। फेनाइल इत्यादि दूसरे दूसरे दुर्गन्धको नष्ट करनेवाले पदार्थोंमें अर्थ व्यय होता है और वे जल्दी मिलते भी नहीं। गो-रोचन और गोमूत्रकी भाँति जरा पलितादिको नाश करनेवाली दूसरी दवा नहीं है।

ब्रह्मचर्य्य सब धर्म्मोंका मेरुदण्ड है। यह ब्रह्मचर्य्य भी हविष्यान्न पर ही निर्भर करता है। हविष्यान्नका प्रधान उपकरण (१) गायका दूध और घी है। मनुष्यका सात्विक भाव बढ़ाकर प्रकृत मनुष्यत्व प्राप्त करनेके उपयुक्त बनानेमें हविष्यान्नकी उपयोगिता अतुलनीय है।

वैदिक कालसे ही हिन्दुओंका सबसे प्रधान धर्म्मानुष्ठान यज्ञ है। यज्ञ भी घृतमूलक है। बिना घीके यज्ञ हो नहीं सकता। हवि-विहीन यज्ञ असम्भव है। हवि गायके दूधसे ही बनती है। हिन्दुओंके शुद्धिकार्य्यके लिये भी पंचगव्यका प्रयोजन है। पञ्चगव्य भी गो सम्भूत है। पञ्चगव्य और गो रोचन (२) ये छः पदार्थ बड़े ही हितकारक हैं। पाश्चात्य पण्डित सहृदय विचारवान भावुक कवि गेटे (Goethe of Germany) अपने जीवनके शेष भागमें एक टुकड़ा रोटी और थोड़ा दूध पीकर ही जीवन धारण करते थे।

कृषि प्रधान भारतमें गो कृषिका जीवन स्वरुप है। भारतमें सैकड़ा

(१) गोक्षीरं गो-घृतञ्चैव धान्यमुद्गास्तिला यवाः।

(२) षडंगं परमं पाने दुःस्वप्नाद्यादि वारणम्।—अग्निपुराणम्।

पीछे नब्बे मनुष्य (१), मुख्य और गौण भावसे कृषिके ऊपर निर्भर कर जीवन धारण करते हैं। भारतवर्षमें उसी कृषिके लिये सबसे प्रधान और एकमात्र अवलम्ब गो-जाति है। भारतमें गो जातिके अतिरिक्त और किसी तरह खेतीका काम चल ही नहीं सकता। गाय ही कृषिका प्राण और आत्मा है।

गो द्वारा भूमिका जोतना, शस्यका बोना, दवाँई करना, अन्न निकालना, खेतमें जल सींचना, शस्यकी दलई करना, फिर उस शस्यको घर पहुँचाना, फिर उसे बाजारमें बेचनेके लिये ले जाना या स्थानान्तरित करना, बीज संग्रह करना प्रभृति कृषि सम्बन्धी सब काम होते हैं। भारतके लिये बैल ही कृषिकार्य्यके एक मात्र सहारा हैं। वस्तुतः भारतीय गृहस्थका आय-व्यय, वित्त, क्षमता, शक्ति, सामर्थ्य सभी गो संख्याके द्वारा ही जाना जाता है। इस देशमें विशेषकर यही प्रश्न होता है, कि अमुकके पास कितने हल और कितने बैल हैं। भारतकी भूमिको भाफके यंत्र (Engine power) या घोड़ोंके द्वारा जोतनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। भारतीय भूमि बैल और और साँढ़की शक्तिसे ही जोती जाती है। भारतीय मानव जीवनके साथ गायका सैकड़ों हज़ारों भावसे सम्बन्ध है। विवाहके समय वरको थोड़ी भूमि और गो दान करनेकी प्रथा अब भी कहीं कहीं दिखाई देती हैं। गो और भूमि दानको व्यवस्था सब जगह दिखाई देती है। श्राद्धमें भी साँढ़ और अन्य गोदान श्राद्धके परिमापक हैं।

देशके नाना प्रकारके भार वहन करनेके लिये साँढ़ और बैल व्यवहृत होते हैं। युद्ध क्षेत्रके लिये तोप और रसद तथा सैन्यकी अन्यान्य

(१) In a country in which 90 percent of the population subsist by agriculture and in which cattle play a most important part, a demand for them is never wanting. Cattle of Southern India by W. D. Gunn superintendent. I. C. V. D. page 2.

नित्यके व्यवहारकी आवश्यकीय सामग्रियाँ ले जानेके लिये तेज़ जाने-वाले कष्टसहिष्णु बलवान बैल या साँढ़ ही व्यवहृत होते हैं। इन श्रेणि-योंके बैल या साँढ़ बड़े ही मूल्यवान और आवश्यकीय हैं। घोड़े थोड़े ही परिश्रममें थक जाते हैं; परन्तु गो जाति दीर्घ और टेढ़ी मेढ़ी राह बहुत सामान्य आहार और थोड़े ही विश्रामसे धीरे धीरे तय कर सकती है। पूर्णिया, रङ्गपूर, राजशाही, बिहार, उत्तर पश्चिमाञ्चल और दक्षिणमें बैलगाड़ी द्वारा सवारीका काम लिया जाता है। पूर्नियाकी शैम्पनी नामक बैलगाड़ी बहुतही उत्तम और आराम देनेवाली होती है, तथा वहाँ घोड़ागाड़ीकी अपेक्षा इस श्रेणीकी बैलगाड़ीका विशेष सम्मान भी होता है। वहाँके रहनेवाले युरोपीयगण इस बैलगाड़ीको बड़े शौकसे काममें लाते हैं। भारतवर्षके कितने ही स्थानोंमें जुलूस और बारातमें तथा स्वयं वर भी इसी बैलगाड़ीमें ही ससुराल जाता है। शौक़ीन धनी पुरुष इन बैलगाड़ियोंके बैलोंको अपनी अपनी हैसियतके अनुसार सोने चांदीके बने जेवरोंसे विभूषित किये रहते हैं और कितने ही कौड़ियोंके बने ज़ेवर उन्हें पहनाते हैं तथा मखमल आदि रङ्गबिरङ्गी वस्त्रोंसे उन्हें सजाकर गलेमें घण्टी और पैरोंमें घुँघरू पहनाकर उन्हें रथमें जोतते हैं। गो-जातिकी पाकस्थलीकी गठन ऐसी होती है, कि एकबार भोजन मिलनेसे ही वे दिन भरकी खुराक अपनी पाकस्थलीमें संग्रह करले सकते हैं और सर्दी गर्मीके रोग भी गोजातिको बहुत कम होते हैं। इसीलिये भयानक गर्मीके समय जब कलकत्ता, काशी, प्रयाग, दिल्ली आदि बड़े बड़े शहरोंमें दोपहरके समय एक घोड़ागाड़ी या भैंसागाड़ी सड़कपर नहीं निकल सकती, उस समय बैलगाड़ीसे बराबर ही काम चलता रहता है। जिस श्रावण और भादो मासमें गर्मीका उत्ताप बहुत ही बढ़ जाता है, उस समय भी बैल घुटने भर कीचड़में सूर्य्यकी प्रखर किरणोंका ताप सहते हुए खेत जोतने और धानके रोपनेमें सहायता पहुंचाते हैं। गोजातिके

अतिरिक्त और किसी श्रेणीके जीव इस कार्य्यके करनेमें समथ नहीं हैं।

इस देशकी भूमिमें शस्य उत्पादनके लिये गोबर और गोमूत्र बहुत ही उत्तम खाद हैं। गाय तथा बैल भूमिमें घूमघूमकर मल मूत्र त्याग करते हैं, उससे भूमिका उपकार होता है और भूमि उपजाऊ होती है। गोबरका गोइठा इस देशके मनुष्य जलावनके कार्य्यमें लाते हैं।

इधर गो-रक्त और गाय बैलकी हड्डियाँ भी मिट्टीमें मिलकर भूमिको उत्कृष्ठ खाद प्रदान करती हैं। गाय मरकर भूमिमें गिरती है और मिट्टीमें मिल जाती है। इस अवस्थामें मरकर भी वह भूमिका असीम उपकार साधन करती है।

गायके चमड़ेसे जूते, बेग, ट्रङ्क, जीन, गद्दी, तोशक, बाजे इत्यादि नाना प्रकारकी नित्य व्यवहारमें आनेवाली कितनी ही आवश्यकीय मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत होती है।

गायके सींग और हड्डीसे छाते और लाठीका हैण्डेल, छुरीका कांटा, कङ्घियाँ, कागज़ काटनेके स्लाइस, बटन आदि नित्यके व्यवहारके बहुतसे द्रव्य बनते हैं। गोक्षुर और गोश्टङ्गसे सरेसकी लेई तय्यार होती है। उससे काठ जोड़ा जाता है। शिरिश कागजसे काठपर पालिश होता है। गायके रोयें जमाकर गद्दीके नीचेका गदेला बनाया जाता है।

उनके रक्त और हाड़से जो चारकोल निकलता है; उससे चीनी और शोरा साफ़ किया जाता है। गायके रक्तसे प्रशियन ब्लू नामक स्याही तय्यार की जाती है।

गो-हाड़के बीचके पतले अंशसे अमोनिमा लिकर, वोनटर, ग्लिसरिन आदि दवायें तय्यार होती हैं।

चमरी गायकी पूँछसे चँवर बनता है। गोमांस कितनी ही

जातियां खाद्य रूपमें काममें लाती हैं। गोमांस खाद्के काममें भी आता है।

गायके सम्बन्धमें किसी अँगरेज़ने लिखा है:—

यदि कोई सुसभ्य जाति पशु-पूजामें प्रवृत्त हो तो निश्चय ही गो-जाति ही सर्व प्रधान देवी रूपसे उपासना करने योग्य है! गाय कैसे सुखकी वस्तु है। गायसे जूतेका हार्न, गायसे माथेका ब्रश, गायसे जूतेके ऊपरी भागका चमड़ा तो होता ही है, यदि इन सबको छोड़ भी दें तो गायसे ही मक्खन और गायसे ही पनीरकी उत्पत्ति होती है। यह शान्त, धीर पशु चिरदानशील है। इस जातिका ऐसा कोई पारिवारिक आनन्द नहीं है, जो वह मनुष्यके साथ सम्भोग न करती हो। हमलोग उसके बछेड़ोंका हरण कर लेते हैं, उसका दूध ले लेते हैं और उसे हरण करनेके लिये ही उसका यत्न करते हैं। (१) इसीलिये, चाहे जिस ओरसे देखिये, भारतवर्षमें भारतवासियोंके लिये गोधनकी भाँति महोपकारी धन, दूसरा नहीं है।

---

(1) If any civilized people were ever to lapse into the worship of animals, the cow would certainly be their chief Goddess. What a fountain of blessing is the cow! She is the mother of beef, the source of butter, the original cause of cheese, to say nothing of Shoe horns, hair combs and upper leather. A gentle, amiable, ever yielding creature, who has no joy in her family affairs which she does not share with man. We rob her of children, that we may rob of her milk and we only care for her when the robbing may be perpetrated.

Encylopædia Britannica
11th edition Vol. VII. Page 738B

दूसरा परिच्छेद ।

प्राचीन काल और साहित्यमें गो-जातिका स्थान ।

"गावः सुरभयो नित्यं गावः स्वस्त्ययनं महत् ।
अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ॥
पावनं सर्व भूतानां क्षरन्तिच हवींषिच ।
हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्य मरान् दिवि ॥
ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होम प्रयोजिकाः ।
सर्व्वेषामेव भूतानाम् गावः शरणमुत्तमम् ॥
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः मांगल्यमुत्तमम् ।
गावः पवित्रं परमं गावो धन्याः सनातनाः ॥
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
नमो ब्रह्म सुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥"

अग्निपुराण ।

जिस ऋ धातुसे आर्य्य शब्द उत्पन्न हुआ है, उसका अर्थ कर्षण करना, हल चलाना है। प्राचीनतम कालसे ही हल चलाना गोजातिके द्वारा ही होता आया है। इसीलिये मालूम होता है, कि गोजाति आर्य जातिके नामके साथ अन्वित और संश्लिष्ट है।

आर्य परिवारमें आर्यबालिकायें गो-दोहनका काम करती थीं ; इसीलिये शब्दविद् गणके मतसे आर्यबालिका दुहिता कहलाई हैं। इससे भी मालूम होता है, कि गोजाति प्राचीन कालसे आर्य परिवारका एक अंग हो रही है।

अनार्यगण मृगया और व्याध-वृत्तिके द्वारा और आर्यगण गौ

आदि पशुपालन और बैलोंके द्वारा हल चलाकर अपना जीवन निर्व्वाह करती थीं।

गोरा और त्रिपुरा आदि पार्वत्य अनार्य जातियाँ अब भी हल चलाकर खेतीका काम नहीं करती हैं, मिट्टीमें धानका बीज बोकर ही शस्य उत्पन्न करती हैं। इस तरह शस्य उत्पादनका नाम जुम् है। जहाँ आर्यजाति है, वहीं हल जोतना प्रचलित है।

पृथिवीके आदि ज्ञान आदि श्रुति ऋग्वेदमें लिखा है :—

"गोर्मे माता ऋषभः पिता मे दिवम् शर्म्म जगती मे प्रतिष्ठा" इति श्रुतिः।

गाय मेरी माता, साँढ़ मेरा पिता ये दोनों मुझे स्वर्ग और ऐहिक सुख प्रदान करें। गायोंमें मेरी प्रतिष्ठा हो।

पृथिवीके आदि ग्रन्थ ऋग्वेदने घी देवताओंका, पितृगणका और मनुष्यका यहाँ तक कि गर्भस्थ बालकका भी रुचिकर बताया है (१) सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्में दही और मक्खनका उल्लेख पाया जाता है। अथर्व्ववेदमें भी गोरक्षाकी बहुतसी प्रार्थनायें हैं। गोभिल गृह्य-सूत्रसे भी गायके सम्बन्धमें बहुतसी बातें जानी जा सकती हैं।

संहिताकारगण विशेषकर मनु (२) विष्णु (३) याज्ञवल्क्य (४) पराशर (५) वशिष्ठ (६) संवर्त्त (७) प्रभृति संहिताकारगणने गाय, गोदान, गोमय, गोमूत्र, दही, दूध, हवि आदि गायसे उत्पन्न पदार्थोंकी भूरि भूरि प्रशंसा की है।

---

(१) आज्यं वै देवानां सुरभिघातं मनुष्याणां आयुतं पितृणां नवनीतं गर्भाणाम्। आयुत शब्दसे ईषत् द्रव घी समझना चाहिये।—ऋग्वेद ऐतरेय ब्राह्मण।

(२) मनु ४ थे अध्याय २३१ श्लोक, ५म अध्याय, ९६ श्लोक ११वां अध्याय ६० श्लोक।

(३) २१ वां अध्याय ५१—६१ वां श्लोक।

(४) आचार गो भू तिल—२०१ श्लोक।

(५) गोमूत्रं गोमयं क्षीरम् ११ वां अध्याय २७ वां श्लोक।

(६) ३९ वां श्लोक।

(७) १० वां श्लोक।

एष्टव्या वहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजेत् वा अश्वमेधंच नीलं ❀ वा वृष मुत्सृजेत् ॥

लोग बहुतसे पुत्रोंकी आकाँक्षा इसीलिये करते हैं, कि शायद उनमें कोई भी गया श्राद्ध करे, कोई अश्वमेध यज्ञ करे अथवा कोई नीला साँढ़ छोड़ सके। इससे मालूम होता है, कि नीले साँढ़का छोड़ना भी अश्वमेधकी भाँति उत्तम फल देनेवाला और वांछनीय है।

ऋग्वेदकी व्याख्यामें सायनाचार्य्यने कहा है, कि गो-जातिसे ही हमलोगोंको बोलनेकी शक्ति मिली है। गोमाताके हम्बा रवके अतिरिक्त और कोई शब्द श्रुति गोचर नहीं होता। उसीसे क्या अम्बा शब्दकी उत्पत्ति हुई है? गाय हमलोगोंकी माता और देवी स्वरूपा है। यह अल्प बुद्धि मनुष्य उसी गायको परिवर्ज्जन किया करते हैं। [१]

ब्रह्मवैवर्त्त, अग्नि [२] गरुड़ और भविष्य, पद्म, मत्स्य, आदि

❀ नीले सांढ़का लक्षणः—
लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाराडवः
श्वेत क्षुरः विषाणाभ्याम् सनील वृष उच्यते।

(१) वचोविदम् वाचोमुदीरयन्तीम्, विश्वाभिर्षी भिरुपतिष्ठमानाम् ।
देवीं देवेभ्यः पर्य्यैयुर्षी गाम् अमा वृक्त मर्त्यो दभ्र चेताः।
ऋग्वेद १६-९० सू ८ वां।

(२) गोविप्र-पालनं कार्यं राज्ञा गो शान्ति मा वदे।
गावः पवित्रा मांगल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।(१)
शकृन्मूलपरम् तासामलक्ष्मी नाशनं परम्।
गवां कराडुयनं वारि श्रृंगस्या घौघ मर्दनम् ॥(२)
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च रोचना।
षड़ंगं परमं पाने दुःस्वप्नाद्यादि वारणम् ॥ (३)
रोचना विषरक्षोघ्नी ग्रासदः स्वर्ग गो गवाम्।
यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नरः ॥ (४)
परः ग्रोग्रासदः स्वर्गी गोहितो ब्रह्मलोकभाक्।
गोदानात् कीर्त्तनाद्रक्षात् कृत्वा चोद्धरते कुलम् ॥ (५)
गवां श्वासात् पवित्राभूः स्पर्शनात् किल्विषक्षयः।

पुराण बनाने वालोंने और महाभारतमें व्यासदेवने तथा कितने ही तन्त्र-कारगण और दत्तात्रेय संहिताकारने गव्यका, गोरोचनका, गोदान और गोसेवाका माहात्म्य ज्वलन्त भाषामें वर्णन किया है। हिन्दुओंके पितृ श्राद्धका पात्रान्न गायको खिलाना लिखा है। जैसे "गो-विप्रजलेऽथवा" गो-ब्राह्मणको प्रदान करे अथवा जलमें विसर्ज्जन करे।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥ ६
एकरात्रो पवासश्च श्वपाक मपि शोधयेत्।
सर्व्वाशुभ विनाशाय पुरा चरितमीश्वरैः॥ ७
प्रत्येकंच त्र्यहाभ्यस्तं महासान्तपनं स्मृतम्।
सर्वं काम प्रदंचैतत् सर्वाशुभविमर्द्दनम्॥ ८
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम्।
निर्म्मलाः सर्व्वकामाप्त्या स्वर्गगाः स्युर्नरोत्तमाः॥९
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यह मूष्णं घृत पिबेत्।
त्र्यह मूष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम्॥ १०
तप्त कृच्छ्रव्रतं सर्व्वं पापघ्नं ब्रह्मलोकदम्।
शीतेतु शीत कृच्छ्रं स्याद् ब्रह्मोक्तं ब्रह्मलोकदम्॥ ११
गोमूत्रेणाचरेत् स्नानं वृत्तिं कूर्य्याच्च गोरसैः।
गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती॥ १२
मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी स्वर्गगो भवेत्।
विद्याञ्च गोमतीं जप्त्वा गोलोकं परमं व्रजेत्॥ १३
गीते नृत्यैरप्सरोभिर्विमाने तत्र मोदिते। २९२ अः, अग्निपुराण।

अर्थात् गो-विप्रका प्रतिपालन करना राजाका प्रधान कर्त्तव्य है। अब गो-शान्ति कीर्त्तन करता हूं, सुनो। गायें सभी पवित्र और मंगलदायक हैं। जितने लोक हैं, वे गो-गणमें ही प्रतिष्ठित हैं। गो-गणकी विष्ठा और मूत्र उत्कृष्ट पदार्थ हैं। उनसे अलक्ष्मीका नाश हो जाता है। गायोंके सींगके कण्डुयन वारिसे पाप नाश होता है। गोमूत्र, गोवर, दूध, दही, घी, और गोरोचन, ये षड़ंग पीनेमें उत्तम हैं, उनसे दुःस्वप्नादि दोष नष्ट होते हैं। गायोंको खिलानेवाला स्वर्ग जाता है। जिनके घरमें गाय दुःखी रहती है वह नरकमें जाता है। जो मनुष्य दूसरोंकी गायोंको ग्रास देता है, वह सदा स्वर्ग भोग करता है। जो गायोंके हितमें सदा रत रहते हैं वे ब्रह्मलोग भोग करते हैं। गोदानकर, गो-महात्म्यका कीर्त्तनकर और गायोंकी रक्षाकर, मनुष्य अपने अपने कुलका उद्धार कर सकते हैं। गायोंके श्वाससे भूमि पवित्र और स्पर्शसे पाप क्षय होता है। एक रात उपवास रहकर गो-मूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत और कुशोदक पीनेसे चाण्डाल भी पवित्र होता है, पूर्वकालके ऋषिगणने सब प्रकारके अशुभोंका विनाश करनेके लिये गोमूत्र त्र्यव-

प्राचीन भारतमें हिन्दुओंके लिये देव-पितृ-यज्ञ ही उनके जीवनका सार कर्म्म था। यह देव और पितृ यज्ञ भी घृत-मूलक है। इन सब यज्ञोंका स्वस्तिवाचन (आरम्भ) से पूर्णाहुति (अन्त) तककी सब क्रियायें ही दही और दूध द्वारा सम्पादित होती हैं। (१) बच्चे सहित गाय, बैल, घी, दही प्रभृति यात्राके समय देखने अथवा उनका नाम सुननेसे ही शुभ फल होता है। (२) हिन्दूगण प्रत्येक मङ्गलजनक और आभ्युदयिक बृद्धि श्राद्धमें गौर्यादि षोड़श मातृकाकी पूजा किया करते हैं, उनके नैवेद्यमें दही दूध आदि अवश्य होना चाहिये। विवाहादिमें भी गो-मोचनका मन्त्र और गो-बचन बोलनेकी प्रथा है। प्राजापत्य विवाह गो-विनिमयसे ही होता है।

मधुवाता नामक प्रार्थनामें "माध्वीर्गावोभवन्तु नः।" हमारी गायें मधुमती हों—यही प्रार्थनाकी जाती है। (३)

हार करनेकी आज्ञा दी थी। गोमूत्र आदि किसी एकको तीन रात व्यवहार करनेसे महाशान्ति प्राप्त होती है। यह सर्व कामप्रद और सब प्रकारके अशुभोंका नाश करनेवाला है। इक्कीस दिवसतक केवल दूध पीकर रहनेसे कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत होता है और उसके द्वारा नरोत्तमगण निर्म्मल और सब कामोंको प्राप्तकर स्वर्गगामी हो सकते हैं। तीन दिनोंतक गर्म गोमूत्र, तीन दिवस गर्म घी और तीन दिवस गर्म दूध और तीन दिन वायु भक्षणकर तप्तकृच्छ्र व्रताचरण करनेसे सब पापोंका नाश और ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। ये ही पदार्थ शीतल सेवन करनेसे शीतकृच्छ्र व्रत होता है। ब्रह्माने कहा है, कि इस व्रतके प्रभावसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। गोमूत्रसे स्नान, गोरससे जीविका निर्व्वाह, गोगणके साथ गमन और गोगणके भोजन करने बाद भोजन करनेसे गोव्रत होता है। इस तरह एकमास गोव्रताचरण करनेपर निष्पाप होकर गोलोक स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता है। गोमती विद्या जपकर परमलोक गोलोकमें गमन होता है और वहां विमानारोहण कर अप्सराओंके साथ नृत्य गीत आदिमें समय बिताया जा सकता है।

(१) दधिना जुहुयादग्निं दधिना स्वस्ति वाचयेत्॥ दधि दद्याच्च प्राप्नूयात् गवां व्युष्टिं समश्नुते।—घृतेन जुहुयात्—इत्यादि।

(२) धेनुर्वत्सा प्रयुक्ता वृष......दधि मधु रजतम्—इत्यादि।

(३) मः १ अ० १४, ६ ठां अध्याय ९० सु ऋक् वेद।

गो-पालन और कृषि कार्य्यके पूरे पूरे प्रबन्ध पर राज्यके राजाका प्रधान और पूरा लक्ष्य था। महाकवि बाल्मीकिने अपने पृथिवीके आदि इतिहास रामायणमें लिखा है—चित्रकूट पर्वतपर बनवासी रामके साथ जिस समय भरत मिले हैं; उस समय रामने पूछा था—"भाई! कृषक और गोपगणकी तुमपर प्रीति तो है? वत्स! जनसाधारणका सुख-समृद्धि कृषि कार्य्यपर निर्भर करता है। (१) नारदने महाराज युधिष्ठिरसे पूछा था, कि सच्चरित्र मनुष्य द्वारा कृषि और गोपालन होता तो है? पृथिवी कृषि और गो-पालनके ऊपर स्थापित होकर स्वच्छन्द चल तो रही है? (२)

महाराजगण ग्वालोंसे घी उपहार स्वरूपमें ग्रहण करते थे और ग्वालोंसे नाना प्रकारकी बातें कर उन्हें सन्तुष्ट कर देते थे। (३)

राजसूय यज्ञके समय राजाधिराज गो-चर्म्मपर बैठते थे।

हिन्दुओंके श्राद्धमें ४ बच्चेवाली गायोंके साथ साँढ़ छोड़ा जाता है। उस समय साँढ़की धर्म्मरूपमें स्तुति की जाती है।

"वृषोऽहि भगवान् धर्म्मश्चतुष्पादः प्रकीर्त्तितः।
वृणोमि त्वामहं भक्त्या, स मां रक्षतु सर्व्वदा॥"

वृषही भगवान चतुष्पाद पूर्ण धर्म स्वरूप हैं। तुम्हें वरण किया। तुम मेरी सदा रक्षा करो। वृषकी प्रदक्षिणाकर नीचे लिखे अनुसार उसकी स्तुति की जाती है।

---

(१) कच्चित् ते दयिताः सर्व्वे कृषि गो-रक्षजीविनः। वार्त्तायां साम्प्रतं तात लोकोयं सुख मेधते॥४१ श्लोक १०० अध्याय, अयोध्याकाण्ड रामायण।

(२) कच्चित् अनुष्ठिता तात वार्त्तांते साधुभिर्जनैः वार्त्तायां संश्रितस्तात लोकोयं सुखमेधते।—महाभारत।

(३) हैयंगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्। नाम धेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्।—रघुवंश।

ॐ धर्म्मोसित्वं चतुष्पादश्चतस्रस्ते प्रियास्त्विमाः ।
यत् किंचित् दुष्कृतं कर्म्म लोभ मोहात् कृतं भवेत् ॥
तस्मादुद्धृत्य देवेश पितुः स्वर्गं प्रयच्छ मे ॥
यावन्ति तव रोमाणि शरीरे सम्भवन्ति च ।
तावत् वर्ष सहस्राणि स्वर्गे वासोऽस्तु मे पितुः ॥

वृषको स्वयं धर्म्म-स्वरूप जानकर उसके शरीरमें जितने रोयें हैं, उतनेही हज़ार वर्षतक पिताके स्वर्गवासकी प्रार्थना की जाती है।

गायकी स्तुति—

या लक्ष्मी सर्व्व भूतानां या च देवेश्ववस्थिता ।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्ति प्रयच्छतु ॥
विष्णोर्वक्षसि सा लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्यच ।
या लक्ष्मीः लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तुमे ॥
ॐ देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्यच या प्रिया ।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्ति प्रयच्छतु ॥
चतुर्म्मुखस्य या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।
चन्द्रार्क ऋक्ष शक्तिर्या सा धेनुर्वरदास्तुमे ॥
सर्वदेव मयीं दोग्ध्रीं सर्व्वदेव मयीं तथा ।
सर्वलोक निमित्ताय सर्वलोकमपि स्थिरम् ।
प्रयच्छामि महाभागामक्षयाय शुभाय ताम् ॥

जो सर्वभूत लक्ष्मी स्वरूपमें वर्त्तमान हैं, जो सब देवताओंमें अवस्थित हैं, धेन रूपमें वही देवी मुझे शान्ति प्रदान करे। विष्णुके हृदयमें और कुवेरके हृदयमें जो लक्ष्मी रूपसे वर्त्तमान है। देह स्थित जो रुद्राणी है, जो शङ्कर प्रिया है, वही देवी मुझे शान्ति दे। जो ब्रह्माकी लक्ष्मी और अग्निकी स्वाहास्वरूपा हैं, जो चन्द्र, सूर्य्य, नक्षत्रकी शक्ति स्वरूपा है, जो सर्व्व देवमयी है, जो दुग्ध प्रदात्री हैं, उसे सर्वलोकके निमित्त, सब लोककी मङ्गल कामनासे तुम्हें दान करता हूँ। पूर्व्वोक्त श्रुति, प्रणति, स्तुति और प्रार्थनामें प्राचीन भारतमें गो-जातिने कैसा उच्च स्थान प्राप्त किया था; यह सभी बुद्धिमान समझ सकते हैं।

"सौरभेय्यः सर्व्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः ।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्य मातरः ॥

पंचभूते शिवे पुराये पवित्रे सूर्य-सम्भवे ।
प्रतीच्छेदं मया दत्तं सौरभेयि नमोस्तुते ॥"

इसी तरह मन्त्र पढ़कर नित्य गायको गो-ग्रास देनेका विधान है और यह भी कहा ही जा चुका है, कि एक दिनका सम्पूर्ण गो-ग्रास देनेसे विशेष फल प्राप्त किया जा सकता है।

"घासमुष्टिं परगवे सान्नं दद्यात्तु यः सदा ।
अकृत्वां स्वयमाहारं स्वर्गलोकं स गच्छति ।"

स्वयं भूखे रहकर जो घास भूसा गायको देते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं।

सूर्य्यवंशी नृपपि इक्ष्वाकुके पोते वृषभके ककुदपर चढ़कर लड़े थे। इसीलिये उनके वंशधरोंका नाम काकुत्स्थ पड़ा है। (१)

ब्राह्मणगणने भारतीय आर्य्यगणमें सर्व्वोच्च स्थान प्राप्त किया था। ब्राह्मण ब्रह्मदर्शी थे। क्षत्रिय तेजने ब्राह्मण तेजके आगे पराजय स्वीकार की थी। गर्व्वित राजा विश्वामित्रने ब्रह्मतेजके निकट पराभूत होकर कहा था—"धिक् क्षत्र बलम् बलं बलं ब्रह्मबलं।" ब्राह्मण देवताओंके भय और भक्तिके पात्र थे। इन्द्रादि देवगण ब्राह्मणके तेजसे पराभूत थे। स्वयं भगवानने जिस ब्राह्मणका चरण धारण किया था; उस ब्राह्मण जाति और गायकी एकसाथ तुलना की गई है।

"ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकम् मन्त्रार स्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र स्तिष्ठति ।"

अर्थात एक कुल दो भागोंमें विभक्त होकर ब्राह्मण और गायकी उत्पत्ति हुई है। एकमें मन्त्र दूसरेमें हवि विद्यमान है। सृष्टिकी रक्षा-के लिये यज्ञका प्रयोजन है। वह यज्ञ हवि—मूलक है। गायके सींग पूँछ इत्यादि प्रत्येक अङ्गमें और प्रत्येक रोमकूपमें देवताओंका वास है और पृथिवीके यावत् तीर्थ गो-शरीरमें विद्यमान हैं। हिन्दुओंका यही विश्वास है (२)।

(१) काकुत्स्थं कल्याणमयं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्म्मिकम् ।
राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्त्तिं ॥ रामायण ।

(२) पृष्टे ब्रह्म गले विष्णुः ।—भविष्यपुराण ।

एक बार महाराज नहुष भृगुवंशीय महर्षि च्यवनका मूल्य निर्द्धारित करने लगे और उन्हें उनके मूल्यस्वरूपमें धीरे-धीरे हज़ार, लाख और करोड़ रूपये तक देने लगे; परन्तु जब महर्षि च्यवनने यह कहा, कि यह भी उनका उपयुक्त मूल्य नहीं है तब महाराज आधा राज्य और अन्तमें समूचा राज्य देनेको तय्यार हो गये; परन्तु महर्षिने कहा कि यह भी उपयुक्त मूल्य नहीं हुआ। अन्तमें महाराजने जब महर्षिका मूल्य एक गाय निर्द्धारित किया तब प्रसन्नतासे महर्षिने भी वह स्वीकार कर लिया। हा! वर्त्तमान भारतमें वह गो-प्रीति, वह गो-सम्मान कहाँ है? (१)

एक बार विष्णु-प्रिया लक्ष्मीने गायके शरीरमें वास करनेकी प्रार्थना की। तव गो-गणने उन्हें गायके मूत्र और पुरीषमें वास करनेकी आज्ञा दी। लक्ष्मी तथास्तु कहकर वहीं रहने लगीं। वास्तवमें गो-मूत्र और गोबर लक्ष्मीकी नियतावास भूमि है। जिस भूमिमें गोबर और गो-मूत्र गिरता है, वही भूमि लक्ष्मी और श्री धारण करती है। वही शस्य-श्यामला और फल-पुष्प-शोभिता दिखाई देती है। (२)

एक वार इन्द्रने ब्रह्मासे पूछा था—गोलोक सब लोकोंके ऊपर क्यों स्थापित हुआ? ब्रह्माने उत्तरमें कहा—"हे वासव! गो सब यज्ञोंका अङ्ग और यज्ञरूप कही गई है। गायको छोड़कर कोई यज्ञ अथवा अनुष्ठान हो नहीं सकता। गायें घी और दूध द्वारा सब प्रजाको धारण किये रहती हैं। इनके तनय खेतीमें सहायता देकर धान्य और अन्यान्य बीज उत्पन्न करते हैं। उनसे यज्ञ, हव्य और कव्यकी उत्पत्ति होती है।

हे पुराधिप! ये तथा इनके दूध दही बड़े ही पवित्र हैं ये क्षुधा और तृष्णासे पीड़ित रहने पर भी अनेक प्रकारके भार वहन किया करते हैं।

---

(१) महाभारत अनुशासनपर्व।

(२) महाभारत अनुशासन पर्व्व।

ये अपने कामसे सुरगण और प्रजागणको धारण किये रहती हैं। गायें उस समय यज्ञ और पितृ-कृत्य तथा आतिथ्य क्रियाका साधनभूत समझी जाती थीं। (१)

दक्षकन्या सुरभिने एकबार एक स्थानपर अवस्थित होकर कई सौ वर्ष तक तपस्या की। इससे प्रजापतिने सन्तुष्ट होकर वर माँगनेके लिये कहा। सुरभिने किसी तरह भी कोई वर न माँगा। उसके इस निष्काम तपोबलसे प्रसन्न होकर प्रजापतिने सब लोकोंके ऊपर गोलोकको स्थान दे दिया और सुरभिको प्रजाके हितार्थ नियुक्त किया। वास्तवमें गो-जातिका निष्काम धर्म्म है, गायें मनुष्य-खाद्यका परित्यक्त अंश भोजन कर मनुष्यको नित्य अमृत प्रदान किया करती हैं।

गो-जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें महाभारतमें लिखा है, कि प्रजा-सृष्टिके बाद प्रजागण अपनी वृत्तिके लिये प्रजापतिके शरणमें जा पहुँचे। प्रजापति स्वयं अमृत पानकर परम तृप्त थे। इस कारणसे उनके मुँहसे सुगन्धि निकली और उसीके प्रभावसे सुरभि उत्पन्न हुई। इसके बाद सुरभिने प्रजागणकी मातृतुल्या कपिला सृष्टि की। इसी कारणसे उनका वर्ण सुवर्णकी भाँति हुआ। वे ही प्रजाके जीवन धारण की एकमात्र अवलम्बन हैं।

कपिलागणके वत्सोंके मुखसे निकला हुआ फेन देवादिदेव महादेवके मस्तकपर गिरा। महादेवने उनकी ओर कोपभरी दृष्टिसे देखा और इसीसे गो-गणका नाना प्रकारका रङ्ग हुआ।

प्रजापतिने महादेवसे कहा,—वत्सके मुँहसे निकला हुआ फेन जूठन नहीं है। वे घी और दुग्ध द्वारा सब मनुष्योंका भरण और पुष्टि साधन करेंगे। सभी इनके अमृत तुल्य ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा करेंगे।

---

(१) महाभारत अनुशासन पर्व्व।

प्रजापतिने महादेवको कई धेनु-समन्वित गायें दीं। उसी समयसे महादेवने वृषभध्वज और पशुपति नाम धारण किया। कपिला गायें इसीसे अच्छी समझी जाती हैं। (१)

महाभारतके अनुशासन पर्व्वके अनेक स्थानोंमें गो-जातिपर भक्ति प्रदर्शित की गई है।

जिस स्थानसे लक्ष्मी, जिस स्थानसे कौस्तुभमणि, जिस स्थानसे पारिजात तरु, जिस स्थानसे उच्चैःश्रवा अश्व और जिस स्थानसे ऐरावत हाथी प्रभृति उत्पन्न हुए हैं, जिस स्थानसे पृथिवीके समस्त ललामभूत श्रेष्ठ रत्न उत्पन्न हुए हैं; सुरभि भी उसी स्थानसे उत्पन्न हुई हैं। देवासुरने बड़ा झमेलाकर जो अमृत निकाला था, अमृतप्रसविनी सुरभी गायें भी उसी अमृतके साथ निकली थीं। (२)

अमृत नामका कोई पदार्थ हमलोग नरलोकमें नहीं देखते, परन्तु सुरभि जो अमृत प्रदान करती हैं, वही अमृतरूपमें दिखाई देता है। सुरभि और धन्वन्तरीका वास एकत्र है; सर्वलोक भयापहारिणी अमृतक्षरिणी सुरभि जहाँ रहती है, उसी स्थानपर लोक-पीड़ाको हटाकर धन्वन्तरी रहेंगे और लक्ष्मी आप ही वहाँ आ जायँगी। वहाँ हाथी, अश्व, रत्न, मन्दार, पारिजात और कौस्तुभमणि दिखाई देंगे।

दूध ही अमृत है—

अमृतं वै गवां क्षीरं इत्याहुस्त्रिदशाधिप। (३)

क्षीरोद नामक समुद्र भी इसी सुरभिके दूधसे उत्पन्न हुआ है।

---

(१) महाभारत अनुशासन पर्व्व ८३ अध्याय।

(२) मथ्यमाने पुनस्तस्मिन् जलधौ समदृश्यत।
धन्वन्तरिः स भगवानायुर्व्वेद प्रजापतिः। १

❀ ❀ ❀ ❀

ततोऽमृतंच सुरभिः सर्व्वभूतभयापहा। (२)
२५१ अध्याय मत्स्यपुराण।

(३) शान्तिपर्व्व महाभारत।

इसी सुरभिको आश्रयकर और इसका फेन पीकर सब महर्षिगण जीवित थे। अमृत और सुधा भी वहींसे उत्पन्न हुई हैं। (१)

ब्रह्मवैवर्त पुराणसे मालूम होता है, कि जमदग्नि ऋषि कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनको अपनी गाय देनेमें सम्मत न हुए, बल्कि अपना प्राण देनेको तय्यार हो गये। वसिष्ठ, विश्वामित्रको समस्त पृथ्वीका राज-भाण्डार और राज-सम्पदाके बदले भी अपनी गाय देनेको तय्यार न हुए।

ब्राह्मणोंकी प्राथमिक शिक्षा गोपालनसे ही आरम्भ होती थी। ब्रह्मचारी ब्राह्मण बालक जब गो-पालनकी कठोर परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाता था, तब गुरु प्रसन्न होकर उसे दूसरी शिक्षा देते थे। ब्राह्मण बालक उपमन्यु अपने गुरुके गोपालनकी कठोर परीक्षामें उत्तीर्ण होकर मुनि और गुणी जनोंमें स्मरणीय हो गये। उपमन्यु अयोद्धौम्य नामक ऋषिके शिष्य थे। गुरुने उन्हें गो-पालनमें नियुक्त किया। शिष्यने गोपालनमें नियुक्त होकर भिक्षा-वृत्ति द्वारा अपनी जीविका चलाना आरम्भ किया। यह देख उन्होंने भिक्षा मागनेके लिये उपमन्युको मना कर दिया। शिष्य उनकी आज्ञासे भीख मांगना त्यागकर केवल गायके मुँहसे निकला हुआ फेन पीकर जीवन धारण करने लगा; परन्तु उन्होंने इसके लिये भी निषेधकर दिया। अन्तमें शिष्य आकका पत्ता खाकर अन्धा हो कूएमें जा गिरा। इसपर गुरुने प्रसन्न हो उसे अश्विनी कुमारके दोनो स्तव सिखाये। शिष्यकी आँखें ज्यों की त्यों हो गईं। अब गुरुने प्रसन्न हो, उसे सब वेद, धर्म्मशास्त्र और सभी नीतिशास्त्र बता दिये। ब्राह्मण

---

(१) क्षरन्तीञ्च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम्।
यस्याः पयोभिर्निष्यन्दात् क्षीरोदो नाम सागरः॥
ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्र वरारणिं।
यस्याश्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिर्निशाकरः॥ २२
यत्समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः।
अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधा च स्वधाभोजिनाम॥ २३

देव, पितृ और आतिथ्य क्रियाके सारभूत इस गोपालनके लिये जीवन उत्सर्ग कर दिया करते थे ।

विराट प्रभृति नृपतिगण लाखों गायें पालते थे । प्राचीन कालमें धनमें गायने प्राधान्य प्राप्त किया था । उस समय वर्षके नियत समयपर राजा स्वयं उपस्थित रहकर गायोंकी गणना और उनकी अवस्थाकी संख्या बतानेवाले अङ्क प्रदान करते थे । (१) भारतीय आर्यगणका विश्वास था, कि गो-तेज ब्रह्म-तेजके समान ही है । (२)

महाकवि कालिदासके रघुवंश नामक महाकाव्यमें दिलीपके वर्णनमें सुरभि और उनकी नन्दिनीका माहात्म्य और गो-जातिकी ओर हिन्दू समाजके शीर्ष स्थानीय रघुवंशीय एकच्छत्र महीपतिकी अद्भुत भक्ति दिखाई गई है । स्वर्गाधिपति इन्द्रदेव भी दैत्योंके विनाशके लिये जिस सूर्य्यवंशी नृपतिकी सहायता ग्रहण किया करते थे, वे सूर्य्यवंशी महाराज दिलीप, जो अपने पुण्यबलसे स्वयं सशरीर स्वर्ग जा सकते थे, जो वीरत्वमें विपन्न देवताओंके भी आश्रयस्थल थे, वे ही रघुकुल-तिलक एकातपत्र महीपति नन्दिनीके चलनेपर चलकर, नन्दिनीके खड़े होनेपर खड़े होकर और उसके बैठनेपर बैठकर तथा नन्दिनीके जल-पान करनेके बाद जलपान कर, यही वृत्ति अवलम्बन करते हुए जङ्गली कन्द मूलादि भक्षणकर नन्दिनीका प्रसाद प्राप्त करनेकी चेष्टा करते थे ।

नन्दिनीका प्रसाद प्राप्त करनेके लिये समुद्रतक फैले हुए राज्यके अधीश्वरकी सर्वसुख पालिता रानी सुदक्षिणा देवी व्रतधारिणी

याः ब्रुवन्ति नरलोके सुरभिं नाम नामतः ।

प्रदक्षिणान्तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुता ।२१ रामायण उत्तरकाण्ड २३ वां सर्ग

[१] वनपर्व २३१ अध्याय ।

[२] यद्वा वर्च्चः हिरण्यस्य यद्वा वर्च्चः गवामृतः ।

सत्यस्य ब्रह्मणो वर्च्चस्तेन मासं सृजामसि । सामवेद

मुनिपत्नीकी भाँति फल मूल भोजनकर और मुनियोंकी कुटिमें वासकर तपोवनकी सीमातक नन्दिनीके पीछे पीछे जाती थीं। महाराज दिलीपने आसमुद्र पृथिवी पालनके बदले गो-पालनमें अपना जीवन बिताया था। रानी भी नन्दिनीको विधिपूर्वक प्रणाम और उसकी पूजा करती थीं और गायके खुरमें लगी हुई मिट्टीको शरीरसे स्पर्श करा, अपनी आत्माको तीर्थ-स्नानके समान शुद्ध समझती थीं। येही एकातपत्र महीपतिने गो जातिके सामने गोशरीरकी रक्षाके लिये अपना शरीर उत्सर्ग कर दिया था। कहा थाः—"स त्वं मदीयेन शरीर वृत्तिं, देहेन निवर्त्तयितुं प्रसीद......विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः—मेरा शरीर भोजनकर जीविका निर्व्वाह कीजिये। महर्षिकी गायको छोड़ दीजिये।" साधु महात्मा दिलीप प्राण देकर भी गोरक्षाके लिये व्यग्र थे।

दार्शनिक महाकवि श्रीमद्भागवतकारने श्रीमद्भागवतके दसवें स्कन्धमें गोलोक बिहारी हरिकी ग्वाल-बृत्तिका जो अपूर्व सुशोभन जीवत चित्र अङ्कित किया है; उसे देखकर समस्त भारतवासी मुग्ध हैं। उसी ग्वाल बालक "बीन बजावत धेनु चरावत, यमुना-तट उद्यान" को बन्सी-ध्वनि सुनकर सब चराचर स्थावर, जङ्गम, उन्मत्त होकर उसी ग्वाल-बालके अनुगामी होते थे। अर्फिलयिसके सङ्गीत बृक्ष सबभी नाचने लगते थे। हजारों गायें, स्थावर, जङ्गम, यहाँतक कि नद-नदीमें भी उन्मादिनी शक्ति उत्पन्न हो जाती थी। कोई स्थिर नहीं रह सकता था। (१)

इसी ग्वाल-बालके गो-चारणके इतिहाससे ही श्रीमद्भागवतका दसवाँ स्कन्ध भरा है। यही व्रज-लीला है। इसी ग्वाल-बालकी प्रीति प्रेम, विच्छेद और मिलनको लेकर ही बंगालके कवियोंमें कविरत्नकी उत्पति हुई है। बङ्गालके कवि चूड़ामणि जयदेवकी मधुर पदावली

---

(१) श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध २१ अध्याय।

विद्यापति, चण्डी दास, गोविन्ददास प्रभृतिकी मधुमय गीतलहरी इसी उपादानसे बनी है।

उसी कृष्णके सख्यादि भावको लेकर एक दिन चैतन्य देवने समस्त बङ्गदेश और वृन्दाबनसे मद्रास तककी सब भूमि हिला दी थी।

इसी ग्वाल-बालकी कहानी समस्त भारतवासियोंके हृदयमें एक अमृतभरी धारा बहा देती थी। बहुत दिन हो गये, अब वह ग्वाल-बाल भी नहीं हैं, वे धेनु भी नहीं है, वह बीन भी नहीं है; परन्तु उसी बीनकी दूरसे दूरतर अतिदूरतर स्मृतिकी मोहनी शक्तिके कारण आज भी समस्त भारतके अबाल वृद्धि बनिता उसी गोप कहानीको सुननेके लिये उत्कण्ठित हो उठते हैं।

बङ्गालके माइकेल, गिरीश बाबू नवीन बाबू, बङ्किमचन्द्र प्रभृतिसे लेकर ऐसा कोई कवि या लेखक नहीं है जिसने कृष्ण चरित्रकी अपूर्व कहानीका एक दो अंश न लिखा हो। बङ्गालमें दाशरथिराय प्रभृति कविगणकीरची हुई कृष्णको ग्वाल-भावकी गो-पालनकी कहामी गली गली, मैदान मैदान और घाट बाटमें गायक अगायक, आबाल वृद्ध बनिता सबके मुँहसे सुनी जाती है। उसकी उन्मादिनी शक्ति अब भी वर्तमान है। वह हृदयमें घुसकर सुननेवालोंके प्राण अब भी आकुल कर देती है। (१)

---

(১) আয়রে কানাই আয়রে গোষ্ঠে, রজনী পোহাইল
ডাকিছে সঘনে ধেনু, গগনে ভানু উদিল
বেরো রে রাখালের রাজা শ্রীনন্দের নন্দন
করেতে কর মুরলী কটিতে ধটীবন্ধন
রাখাল মণ্ডলী মাঝে নেচে নেচে চল
আকুল রাখাল ভ্রময়ে গোপাল।
সে নন্দের গোপাল, এস রে এস রে এস রে কানু
সে ব্রজের রাখাল বারেক দেখে যাই

इस गोपालनकी, ग्वाल वृत्तिके त्यागकी शोक गाथा भी बङ्गसाहित्यमें अपूर्व शोकोद्दीपक है। उसके सुननेसे कठोर हृदय भी विचलित हो जाता है। (२)

वास्तवमें गोपाल-जीवन भारतवासियोंके लिये बड़ा ही मधुमय भावोद्दीपक है।

आर्योंका वन्शपरिचय उनके गोत्रसे ही मालूम होता है, जैसे :—काश्यप, भरद्वाज, शाण्डिल्य, वसिष्ठ, पराशर, गौतम इत्यादि। गो-त्राणकारी ही एक एक गोत्र चलानेवाले ऋषि हैं। एक एक ऋषि लाखों गायें पालते और उनकी रक्षा करते थे। इस एक एक गोत्रके अन्तर्गत भिन्न भिन्न दल या गो-समवय था। इन समवयोंके अन्तर्गत सभी एकदलके माने जाते थे।

इसी दलसे एक साम्प्रदायिक समाज या सभाका नाम गोष्ठी पड़ा है। इन समाजपतियोंका नाम गोष्ठीपति था और इनके क्रिया कर्म्म, आचार व्यवहार, रीति-नीति सब एक ही थे। गौतम वा गो-तम इत्यादि नाम द्वारा पुङ्गव शब्द नर,-मुनि प्रभृति शब्दोंसे मिलकर इन सब शब्दोंकी श्रेष्ठता बताते थे और इससे मालूम होता है कि गायोंने पूर्व कालमें कैसा स्थान अधिकार किया था।

बहुत दिनोंसे आर्यगण ज्योतिर्वेदकी आलोचना कर रहे हैं।

গোপাল বেড়াত সাথে হের গোধন তোমার তরে
সে যে বেণু বাজাইত ঝর ঝর আঁখি ঝরে
গোঠে মাঠে নাচিয়া বেড়াত আছে পথ চেয়ে হাম্বারবে ডাকে তাই
নযন জুড়াতো হেরে
আরত ব্রজে যাব না ভাই। ইত্যাদি॥

গিরিশ চন্দ্র ঘোষ—প্রভাস যজ্ঞ।

(২) আর কি বাজেলো মনোহর বাঁশি নিকুঞ্জ বনে
ব্রজ সুধানিধি শোভে দিশিহাসি ব্রজ গগনে

মাইকেল মধুসূদন দত্ত

पृथ्वीका कक्ष बारह भागोंमें विभक्त है। उसका प्रत्येक भाग एक एक राशि है, उसकी दूसरी राशिका नाम वृष है। इससे मालूम होता है, कि ज्योतिर्वेदमें राशिचक्र बननेके पहले गो जाति आर्यगणमें विशेष परिचित थीं।

प्राचीन कालमें गोरक्षाके सम्बन्धमें बड़े कठोर नियम प्रचलित थे और गोरक्षाका कार्य काण्डाकाण्ड ज्ञानशून्य मूर्ख जड़ बुद्धिवालोंपर ही निर्भर न रखा जाता था।

" पितुरन्तःपुरं दद्याद् मातुर्दद्यात् महानसं,
गोषु मात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत्।" (१)

अपने ही समान मनुष्यपर गोरक्षाका भार देनेकी चाल थी।

गायको मोटी रस्सीसे रातको न बाँधना, यदि बाँधना ही पड़े तो गोरक्षकको हाथमें कुठार लेकर गोशालेमें खड़ा रहना चाहिये।

गायको जिस लकड़ीसे फिराना और चलाना पड़ता है, वह गोली और पत्तेभरी होनी चाहिए, जिसमें गायको किसी प्रकारकी चोट न लगे। (२)

गो-जातिके नाना प्रकारके महोपकार स्मरणकर शाहं शाह अकबरने अपने राज्यमें गो हत्या बन्द्कर दी थी। उस समय गोजातिका विशेष सम्मान था। (३)

---

[१] महाभारत उद्योग पर्व्व ३८ वां अध्याय १२ वां श्लोक।

[२] सार्द्रश्च सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते।

(3) Throughout the happy regions of Hindustan, the cow is considered auspicious, and held in *great veneration*; for by means of this animal, tillage is carried on, the sustenance of life rendered possible, and table of the inhabitant is filled with milk, butter milk and butter. It is capable of carrying burdens and drawing wheeled carriages, and thus becomes an excellent assistant for the three branches of the government.

Ain 66, Ain-i-Akbari.

दो सौ वर्ष पहले भारतमें गोजातिकी ओर हिन्दुओंकी कैसी भक्ति थी और वे उसे किस तरह देवताके समान समझते थे, यह नीचे लिखी घटनासे स्पष्ट मालूम जायेगा। बम्बई हाईकोर्टके जज महामान्य महादेव गोविन्द रानाडेके दादाको बहुतसे लड़के हो होकर छोटी अवस्थामें ही परलोक सिधार जाते थे। यह दशा देख, वे तथा उनकी स्त्री दोनों ही बड़े शोकाकुलित हुए। अन्तमें एक सिद्ध पुरुषने उन्हें यह उपदेश दिया कि गायको गेहूँ खिलाया करो और गोबरके साथ जो गेहूँ गायके पेटसे निकले उसीको धोकर उसीका आँटा खाओ। उन्होंने उसी तरह एक वर्षतक ब्रह्मचर्य्य पालन किया। इस ब्रह्मचर्यके उद्यापनके बाद रानाडेजीके दादाको पुत्र हुआ और इसी पुत्रने दीर्घजीवी होकर उनके वंशके गौरवकी वृद्धिकर उनका कुल उज्वल किया। हिन्दुओंके गोसम्मान और गोप्रीतिका परिचय गाय मारनेके लिये जो कठोर प्रायश्चित्त बताया गया है, उसीपर ध्यान देनेसे मालूम हो जाता है (१) अब भी बङ्गदेशकी बालिकायें स्वर्ग-कामनासे गो-काल व्रत किया करती हैं। गायका पैर धो उसके ललाटमें सिन्दूर लगा, चन्दन हल्दी चढ़ाई जाती हैं और गायके पैर पूजकर उसे प्रणाम किया जाता है। (२)

---

[१] चर्म्मणा तेन संवृतः चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितं।
गोमूत्रेण चरेत् स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः।
दिवानु गच्छेत्तास्तु गान्तु तिष्ठ नुर्द्धरजः पिबेत्।
शुश्रुषयित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत्॥
तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्।
आसीनाथ तथासीनो नियतो वीतमत्सरः॥ मनुः नारदश्च।

[२] गो-पूजाका मन्त्रः—गोकल गोकुलेवास, गोरुर मुखे दिया घास आमार होक स्वर्गे वास।

पृथिवीके आदि इतिहासमें गो-जाति गृहपालित पशुके रूपमें दिखाई देती है। हिन्दू-जातिके आदि ग्रन्थोंके समान हिब्रूगणके आदि इतिहासमें भी गो-जातिका उल्लेख है। ईशू खीष्टके जन्मसे तीन हज़ार वर्ष पूर्व ईजिप्टके पिरामिडमें गोजातिका चित्र दिखाई देता है। स्विट्ज़रलैण्ड देशके भूगर्भमें Lakedwelling गृह-पालित गायका हाड़ प्राप्त हुआ है। प्राचीन कालमें गो-संख्या द्वारा ही मनुष्यका वित्त जाना जाता था। इस समयकी असभ्य और अर्द्धसभ्य समाजमें गायें ही विनिमयके समय रूपयेका काम करती हैं। ग्रीसमें जब पहले पहल मुद्राका प्रचलन हुआ, उस समय धनके ज्ञानस्वरूपमें उसपर वृषकी मूर्त्ति बनी थी। लैटिन पेकस (pecus) शब्दका अर्थ Cattle कैटल है। Pecus शब्दसे लैटिन पिकिउनिया, अँगरेजी Pecuniary (पिक्यूनियरी) शब्द उत्पन्न हुआ है। कैटल शब्द भी लैटिनमें धन (अर्थ) वाच्य Capital (कैपिटल) शब्दसे उत्पन्न हुआ है। एक गायसे थोड़े ही दिनोंमें जिस तरह गो-वंशकी वृद्धि होती है, उससे मालूम होता है, कि गायके समान दूसरा धन नहीं है।

प्राचीन कालमें मिश्र देशमें गो-जातिकी पूजा होती थी। केल्टिक जातिके मनुष्य पृथिवीके जिन जिन स्थानोंमें हैं; वहीं गायोंका सम्मान हुआ है। (१)

---

(1) Profane History, too, confirm, the account of the early domestication of this animal. It was worshipped by the Egyptians and venerated among the Indians. Moreover the traditions of every Celtic nation enrol the cow among the earliest productions and represent it as a kind of divinity.

Cattle, sheep and deer—By MacDonald page 3.

खीष्ट सम्प्रदायके धर्म्मग्रन्थोंमें भी गो–जातिका उल्लेख है। आदमकी स्वर्ग-च्युतिके बादसे ही मेष मनुष्यके नौकरका काम करते थे। बाइबिलमें इसका उल्लेख है और पूरातत्वविद् विद्वान इवाटने बड़ी गवेषणासे प्रमाणित कर दिया है, कि बैल भी उसी समयसे मनुष्यके कार्यके लिये व्यवहृत होते थे। सम्भवतः आदमके जीवन-में ही लेमेचर पुत्र जुवालने जन्मग्रहण किया था। उस समय फेरोयाने उन्हें मेष और गाय उपहारमें दी थी।

जलप्लावन (प्रलय) के समयसेही मालूम होता है, कि अरारट पर्व्वतके पासकी समतल भूमिपर साढ़ोंका आवास था। नोवाके आर्क (नाव) पर चढ़कर नोआ सन्तानगण जहाँ गये हैं, वहीं गो-जाति भी गई है। अभीतक देखा जाता है, कि मनुष्यजाति जहाँ कहीं है, वहीं गायें भी पालतू अथवा जंगली रूपमें वर्त्तमान हैं। (१)

---

(1) Reckoning for the time of the Flood, the native country of the ox was of the plain of Ararat.

Having issued from the ark, he was founded whereever the sons of Noah imigrated: and to the present day he is found, in domesticated or wild state whereever man has trodden. Even in the antediluvian age and soon after the expulsion from Eden, the sheep, has become the servant of man; and Youatt draws the not improbable inference that the no less useful ox was subjugated at the same time. It is recorded that Jubal the sun of Loamech and who was likely born during the life time of Adam, was the father of such as dwell in tents, and of such as have cattle. When Abraham was in Egypt, one hundred and eighty years before there any mention of the horse Pharroys presented him with sheep and oxen. Thus the earliest record we have of cattle is in the sacred volume.

युरोपीय साहित्यमें दूध और शहद (Milk and honey) शारीरिक और नैतिक सौन्दर्यके परिज्ञापक हैं। गोपाल-जीवन ही आदर्श शान्तिमय जीवन है। प्राचीन कवियोंने गो-पाल जीवनकी भूरि भूरि प्रशंसाकी है। उससे भी युरोपीय जातिकी गो-प्रीति और गो-सम्मानका पता लगता है। (१)

नार्वे देशमें गायें पूज्य समझी जाती थीं। प्राचीन कालमें ग्रीसदेशवासियोंके देवता प्लुटोरकी बहन हीरादेवी गायका रूप धारण करती थीं। इसीसे प्राचीन ग्रीसमें गो-जातिकी पूजा होती थी। रोमन सम्प्रदायवालोंमें भी कोई अनर्थक गो-वध करता तो उसे यावज्जीवन निर्व्वासन दण्ड होता था। यहूदियोंमें भी गायका मुँह मरोड़ देना दूषणीय समझा जाता था। मिश्र देशमें भी देव-पूजाके अतिरिक्त कोई गोरक्तपात न कर सकता था। प्राचीन ग्रीक और रोमन धर्म्मग्रन्थोंमें गायने उच्चस्थान अधिकार किया था *

---

(1) "Thrice oh, Thrice happy, shepherds life and states.
When courts of happiness, unhappy pawed's.
No fear treason breaks his quiet sleep,
Singing all day his flock he learns to keep.
Himself as innocent as are his simple sheep.

Cattle, sheep and Deer.

MACDONALD.

* The important part is played in Greek and Roman mythololgy *** The Egyptions could only shed the bloods of the ox in sacrificing to their gods. Both Hindoos and Jews were forbidden to muzzel it when treading out the corn. To destroy it wantonly was a crime among the Romans punishable with exile. Vide p.p. 339 B. Vol V. Encyoclopaedia Britannica 11th edition.

आर्यशब्दकी उत्पत्ति, वेद, संहिता, पुराण, रामायण, महाभारत काव्य, कर्म्मकाण्ड, प्रभृतिसे यह दरसानेकी चेष्टाकी है, कि आदिम-कालसे ही जीवन, मरण, सुख, भोग—सबमें गोजाति आर्यजातिके जीवनसे जड़ित, अन्वित, तथा ग्रथित हो रही हैं। इस समय भी यदि गो-जाति न हो तो आर्यजातिका काम एक दिन भी न चले। ऐसे स्थानमें गो-जाति दुर्दशाकी जिस चरम सीमा पर जा पहुँची हैं, उससे समाज और देशका भयंकर दुर्दिन आ पहुँचा है। यदि इस शोचनीय अधःपतनको देखकर एक भी हृदय पसीजे, एक भी पैर गो-जातिका अधःपतन रोकनेके लियेअग्रसर हो, तो अपना यत्न और परिश्रम सार्थक समझूँगा और अपनेको कृतकृतार्थ जानूँगा।

———

तीसरा परिच्छेद ।

भारतकी गोजातिकी अवनतिके कारण ।

Hides are exported in very large quantities. During the ten years ending in 1900 the average annual value was more than 2 Crores. In the famine year 1900—1 when mortality among cattle was terrible, the export increased to 53000090. The value in 1903-4 was 3,20000000.

Imperial Gazetteer III P.63.

भारतके उत्तर गो-गृह, दक्षिण गो-गृह, मुनिजनसेवित नैमिषारण्य, गोकुल, वृन्दावन प्रभृति स्थानोंमें लाखों गायें रहती थीं—"गोकोटि दाने ग्रहणे च काशी" इत्यादि श्लोकों द्वारा भी मालूम होता है, कि भारतमें किसी समय असंख्य गाये रहती थीं। महावीर सिकन्दर अपने देशको लौटते समय भारतवर्षसे २००००० दो लाख गाये, स्वदेश-को ले गया था—इत्यादि ऐतिहासिक तत्वों द्वारा भी मालूम होता है, कि एक समय भारतभूमि गायोंसे भर रही थी।

अब वही श्रीकृष्णके लीलाक्षेत्र, गोविन्दके गोचारण क्षेत्र, तथा शस्य श्यामला भारतभूमि गोहीना हो रही है। आईने अकबरीसे मालूम होता है, कि अकबरके समयमें एक आना सेर घी और दश आने मन दूध बिकता था। (१) उसी स्थानपर एक सेर घीका दाम अढ़ाई रूपये अब देना पड़ता है और रूपयेमें ३ या ४ सेर भी अच्छा शुद्ध दूध नहीं मिलता। २०—२५ वर्ष पहले रूपयेका आठसेर छेना बिकता था; परन्तु अब रुपये सेर भी छेना कभी कभी नहीं मिलता। ४०-४२

(1) Ain 27. P. 63. Ain-i-Akbari (T. P. by Blockman.)

वर्ष पूर्व दो पैसे सेर दूध मिलता था। थोड़ा नमक और सुपारीके बदले सेर दो सेर दूध मिल जाता था; परन्तु "तेहिनो दिवसा गताः" हमलोगोंका वह दिन अब नहीं है। भारतमें अब दही, दूध, घी नहीं है। स्विट्जरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजिलैण्डसे जमा हुआ दूध, (condensed milk) मक्खन या पनीर जब भारतमें आता है तब यहाँका काम चलता है। इसी जमे हुए दूधको पीकर बच्चे जीते हैं, और हम लोग दुग्ध पान-की तृष्णा निवारण करते हैं। घीके इस अभावसे देशके यज्ञ तथा दैव पितृक्रिया लोप हो रही हैं। घीकी जगह महुएका तेल, सांपकी चर्बी और कितने ही ऐसे घृणित पदार्थोंने स्थान जमा लिया है--जिनका नाम लेनेसे ही शरीर रोमाञ्चित हो जाता हैं। गव्य-पूर्ण भारतमें गली गली गोरस लेकर अब कोई नहीं फिरता। अब भारत गोहीन, गव्यहीन-हो गया है। केवल देशसे करोड़ों रूपयोंके गोचर्म्म प्रतिवर्ष विदेशको भेजे जाते हैं। हमलोग बड़ी श्रद्धाका मकान तोड़कर ईंट और चूने बेच रहे हैं। भारतसे गायका चमड़ा भेजनेका व्यवसाय दिनोदिन उन्नति प्राप्तकर रहा है। १८६१ ई० से १६०० ई० तक प्रति वर्ष दो करोड़ रूपयेका गोचर्म्म विदेश भेजा गया है। १६०१ ई० में ५ करोड़ ३० लाख रूपयोंका गोचर्म्म भारतसे विदेश भेजा गया था। १८६६-१६०० ई० और १६००—१—इन दो वर्षोंमें ३,२०,००,००० तीन करोड़ बीस लाख गोचर्म्म विदेश भेजे गये हैं!!! (१) और गायकी हड्डियाँ तक भी झाड़कर इस देशसे विदेशमें पहुँचा दी जाती है। इस समय जैसे भीषण जुलाबकी प्रक्रिया चल रही है, उससे धीरे धीरे पचास वर्षके भीतर ही जमे हुए दूधों द्वारा दूध और तस्वीर द्वारा गायका परिचय प्राप्त करनेका समय आ पहुँचेगा।

---

(1) That 32,000000 hides were exported in the two years.

Imperial Gazetteer of India Vol. III P. 189.

गवर्नमेण्ट, देशी राजामहाराजा, जमींदार, विद्वान और धन कुवेरगण इस भयानक गोहानिको रोकनेका कोई उपाय यदि न करेंगे तो देशका नाश हो जायगा।

इस भीषण गोहानिके कितने ही कारणोंमेंसे कुछ नीचे लिखे जाते हैं

(१) अवाध गो हत्या।

(२) देशमें गो-ग्रास और गोखाद्यका अभाव।

(३) गायोंके पीनेके जलका अभाव

(४) गोचर भूमिका अभाव।

(५) गो जननोपयोगी उत्तम साँढ़का अभाव।

(६) इस देशके कसाई चमड़ेके व्यवसाइयोंसे निर्दिष्ट समयके भीतर निर्द्धारित संख्यामें गायका चमड़ा देनेके लिये अग्रिम रूपये ले लिया करते हैं। भारतवर्षके किसी स्थानमें भी कोई मृत गायका चमड़ा नहीं बेचता था। चमड़ेके सहितही गायका प्रवाह कर देते थे, अथवा गड़वा देते थे। कसाई घासके साथ विष मिलाकर अथवा मयदे और घीके साथ विष मिलाकर किसी पत्तेमें लगा गायको खिला देते हैं अथवा गायें जहाँ चरती हैं वहीं डाल देते हैं। कभी कभी गायके शरीरमें फोड़ा देखकर वहीं विष लगा देते हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी तीक्ष्ण धार शस्त्रमें विष लगाकर गायके शरीरके रक्तमें वह विष प्रवेश करा देते हैं। कभी गोशालेसे गायें चुरा ले जाते हैं और उनका मुँह बाँधकर जीवित अवस्थामें ही उनका चमड़ा उतार लेते हैं अथवा जब किसी गाँवके गायोंमें कोई संक्रामक बीमारी फैलती है तो उसी रोगसे मरे हुए पशुकी अँतड़ी मांस इत्यादि दूसरे गांवके उस स्थानमें डाल आते हैं, जहाँ गायें चरती हैं। इस तरह वहाँ भी वह रोग उत्पन्न करा गो-वध कराते हैं।

(७) भारतमें गोपालन अथवा गो-चिकित्साकी शिक्षाके लिये विद्यालयोंका अभाव।

(८) गो-चिकित्सालय और औषधालयका अभाव।

(६) गो-चिकित्सकोंका अभाव।

(१०) भारतमें गो-पालन शिक्षा, गो-पीड़ा या चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थोंका अभाव।

(११) गर्भधारण करने योग्य गाय या बच्चोंके द्वारा हल और बैलगाड़ी चलानेसे भी गो-जातिका ह्रास हो रहा है।

(१२) गर्भिणी गाय या बच्चे तथा गर्भ धारण करने योग्य गायोंके बधसे भी क्रमशः गो-वंश ध्वंस हो रहा है।

(१३) दूधके व्यवसायी बच्चे पालना हानिकारक समझकर कृत्रिम उपायोंसे गाय दूहकर बच्चे मांस बेचनेवालोंके हाथ बेच देते हैं। इससे भी गो-जाति क्षीण और निर्मूल हो रही है।

(१४) दूधके व्यवसायी अधिक लाभकी आशासे गाय खूब दूह लेते हैं। इससे बच्चे कम भोजन मिलनेके कारण क्रमशः रोगी, पीड़ित और जीर्ण शीर्ण होकर मर जाते हैं।

(१५) किसी किसी स्थानके दुग्ध-व्यवसायी अधिक दूध प्राप्त करनेकी इच्छासे फूका देकर गाय दूहते हैं, इससे गायोंकी गर्भधारण करनेकी शक्ति क्रमशः लोप होती जाती है और अन्तमें ये सब गायें कसाइयोंके हाथों बेची और मारी जाती हैं।

(१६) भारतमें गो-ग्रास और गो-खाद्यके पदार्थोंकी ठीक ठीक खेती और उनका व्यवसाय न होनेके कारण कभी कभी गो खाद्यकी कमी हो जाती है और इससे इन जानवरोंमें मरी फैल जाती है।

(१७) उपयुक्त गोशालाओंमें गो आदि पशुओंकी ठीक ठीक रक्षा न होनेके कारण बहुतसी गायें शीत, ताप तथा वर्षाका कष्ट सहन न कर सकनेके कारण ज्वर, शीतला, आमाशय और उदरामय आदि रोगोंसे अकालमें ही प्राण त्याग देती हैं।

(१८) इस देशके गाय रखनेके स्थानोंमें संक्रामक रोग फैलनेपर

उन्हें (Sigrigate) अर्थात् अलग अलग स्थानोंमें रखनेकी व्यवस्था न रहनेके कारण बहुतसी गायें [illegible] ही मर जाती हैं।

(१६) सड़ी हुई नालियां तथा वर्षाके बँधे हुए जलसे उत्पन्न हुए खाद्यको खाकर वर्षाके अन्तमें कितनी ही गायें मर जाती हैं।

(२०) धनी और शिक्षित मनुष्योंमें गोपालनकी उपेक्षा, घृणा और अमनोयोग रहनेके कारण और ग्वालोंको उपयुक्त धनका अभाव रहनेके कारण तथा उपयुक्त ज्ञानके अभावसे गायें नाना प्रकारसे नाश होती हैं।

(२१) बचपनमें या असमयमें ही उत्कृष्ट बैलोंको साढ़ोंमें परिणत करनेके कारण क्रमशः गो-वंशका अधःपतन हो रहा है।

(२२) धनवान ग्वाले दही दूध और घीका काम त्याग बैठे हैं। इस कारणसे भी गो-जाति लोप होती जा रही है।

(२३) पहाड़ी प्रदेश, सुन्दरबन, बैरीसाल, खुलना और मैमनसिंह आदि ज़िलोंके जङ्गली स्थानोंमें व्याघ्रादि जङ्गली पशुओंद्वारा भी बहुतसी गायें मारी जाती हैं।

चौथा परिच्छेद ।

भारतमें गो-जातिकी उन्नतिका उपाय

अवाध्र गो-हत्या निवारण ।

"नमो ब्रह्मण्य देवाय गो-ब्राह्मण हिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।"

कहकर, जिस भगवान जगदाधारके चरणोंको प्रणाम करते हैं । वे क्या अब गोविन्द होकर और गो-पालक बनकर इस भारतके गोकुल और गोपकुलमें वास न करेंगे ? अब क्या वे कभी ग्वाल बालोंको साथ ले, वीन बजाकर, गाय न चरायेंगे । गो-पालनमें मनोनिवेशकर भारतवासियोंको—समग्र ब्रह्माण्डवासियोंको गो-पालन, गो-सेवा और गो-परिचर्य्याकी शिक्षा न देंगे ।

भगवान गोविन्दको स्मरण करके भी क्या भारतवासी गोप-गण अपनी वैश्य वृत्ति परित्याग, घृण्य दासत्वको श्रेयः समझकर उसे ही अवलम्बन करते रहेंगे ?

जिस देशमें जनकादि राजर्षि, विराट राज, गर्व्वित कुरु कुलाधिपति दुर्योधनकी नाईं एक छत्राधिपति राजाधिराज, तथा वशिष्ठ और भृगुकी भाँति महर्षिगण गो-पालन करते थे—उसी देशके अधिवासी इस समय गो-पालनसे विमुख हो रहे हैं । उसी देशके अधिवासी यदि फिर अपने धर्म्म और फिर अपनी अपनी वृत्तिको धारण करनेकी चेष्टा करें, तो हमारी परम दयावान वर्त्तमान अंगरेज़ सरकार देशसे गो-हत्या रहित कर दे सकती है ।

हमारे राजा कभी किसी धर्म्मपर आघात नहीं पहुँचाते और न किसीको आघात पहुँचाने ही देते हैं ।

उदार हृदय महानुभाव प्रजारञ्जक शाहंशाह अकबर बादशाहने जिस उदारभावसे भारतका शासन किया था, अंगरेज़ सरकार उससे भी अधिक उदार नीतिसे राज्य-शासन और प्रजा-पालन कर रही है । अकबरने भारतमें गो-वध बन्द कर दिया था । (१) हम लोग यदि अपने धर्म्मपर आस्थावान हों; यदि हिन्दू, जैन, बौद्ध, सब जातियाँ एकत्र होकर भारत सरकारको इस देशमें गो-जातिकी प्रयोजनीयता समझा दें, हमलोग सिख, हिन्दू, जैन, बौद्ध, प्रभृति जातियोंको यदि प्रकृत पक्षमें गो-वध देखकर कष्ट होता हो, प्रकृत पक्षमें यदि गो-जातिकी अवनतिसे, गो-वधसे, हृदयपर आघात पहुँचाता हो, तो हम-लोगोंके उदार हृदय राजपुरुषगण अवश्यही इस देशसे गो-वध बन्द करा देंगे । परन्तु हमलोग प्राणहीन जड़पुतलेके समान हो रहे हैं । हमलोग स्वयं ही अब गो-जातिको उस तरह देवता समझकर पूजा नहीं करते । हमलोग उस तरह गायको माता समझकर हृदयके गूढ़तम प्रदेशमें यह भाव अनुभव नहीं करते । हमलोग स्वयं ही थोड़ा भोजन देकर, खराब भोजन देकर, बिना दवा दिये या बुरी तरहसे चिकित्साकर नित्य प्रति गो-पालनके नामसे गो-वध कर रहे हैं । थोड़े लाभकी आशासे कसाइयोंके हाथों गाय बेचकर गौणभावसे गो-वधको प्रश्रय दे रहे हैं । हमलोग यदि हृदयके अन्तस्तल प्रदेशमें गो-बधसे दुःख पायें, यदि हमलोग प्रकृत पक्षमें गो-वधको देखकर हृद

(1) Beef was interdicted and to touch beef was considered defiling.

Aini-Akbari- p. 183.

H. Blockman (Translated and printed by Asiatic Society).

यमें ज्वालाका अनुभव करें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे मुसल्मान भाई भी हिन्दुओंकी मर्म्म-वेदना दूर करनेके लिये गो-वध त्याग देंगे। हज़ारों काममें हमारे मुसल्मान भाई हिन्दुओंसे सहानुभूति दिखाते हैं। अतः यह बात हम कभी मनमें भी नहीं ला सकते, कि इस विषयमें वे भारतीय आर्य जातियोंके हृदयमें कष्ट पहुँचायेंगे।

सन् १९११ ई०में अफगानिस्थानके अधिपति महानुभाव अमीर हबीबुल्ला खाँ इस देशमें आये थे। वे ठीक ईदके अवसरपर देहली गये थे और हिन्दुओंके हृदयका कष्ट समझकर उन्होंने वहाँ गोवध बन्द कर, समस्त भारतवासियोंकी कृतज्ञता और भक्ति अपनी ओर आकर्षित की थी। काबुलमें भी अमीर महानुभावने यह नियम कर दिया है, कि हिन्दुओंके मुहल्लेके पास गो-वध न किया जाये।

गत सन् १९१३ ईस्वीमें मुसलमान भाइयोंके यत्नसे अयोध्या और कलकत्तेमें भी ईदके उपलक्षमें गो-वध न हुआ था। फिर हमलोग क्यों इस बातका भरोसा नहीं कर सकते, कि क्रमशः भारतसे गो-वध बन्द हो सकता है। जड़ समाज कुम्भकरणकी भाँति सो रहा है। समाज जागे, प्रत्येक हिन्दू गो-रक्षामें सचेत हो, गोकुलकी रक्षा होगी, हिन्दू गो-लोकमें स्थान पायेंगे। हिन्दूगण! आप लोग एकत्र होकर गवर्नमेण्टके पास कातर प्रार्थना करें, मुसलमान भाइयोंसे भी विनीत सानुनय सहानुभूति भिक्षा चाहें। भारतसे गो-वध बन्द होगा। फिर गो-जाति भारतमें स्थान पायेगी।

खाद्य और गो-शरीर।

वासुदेव जरा कष्टं, कष्टं निर्धन जीवितम्।
पुत्रशोको महाकष्टं कष्टात् कष्टतरम् क्षुधा॥ —महाभारत।

कुन्तीने कृष्णसे कहा थाः—बुढ़ापा, धन हीनता और पुत्र शोक तो क्लेशदायक हैं ही; परन्तु भूखका कष्ट सब कष्टोंसे बड़ा है। भारत-

वासी गायें खाद्यकी कमीसे उसी तरह भूखसे दिन रात पीड़ित रहती हैं। भारतमें गायके समान प्रयोजनीय पदार्थ दूसरा नहीं है । यह सर्ववादि सम्मत है । परन्तु भारतमें गो-जातिके खाद्यका कोई उपाय नहीं है । घास अथवा गो-खाद्य शस्यकी खेतीका भी कोई प्रबन्ध नहीं है ।

अब भारतवासी नहीं जानते, कि गो-जातिको किस रीतिसे भोजन देना चाहिये । हमलोगोंके लिये जिस तरह नित्य चावल, दाल, आँटा, तेल, नमक और तरकारीकी आवश्यकता है । गो-शरीरकी रक्षाके लिये भी उसी तरह कुछ पदार्थोंकी आवश्यकता है । जिस बच्चेका वजन आध मन है,-वही बच्चा कुछ समय बाद दस पन्द्रह मन वज़नका एक साँढ़ अथवा गाय हो जा सकता है । गायका यह शरीर कहाँसे बढ़ता है ? यह भोजनकी परिणतिके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। भोजन बन्द करदेनेपर यह शरीर क्रमशः सूखता जाता है और थोड़े ही दिन बाद विनष्ट हो जाता है ।

घास या बीज जलानेपर उसेमेंसे आग निकलती है; परन्तु वही खाद्य रूपमें प्राणि शरीरमें जब जाता है, तो उससे पशु शरीर बढ़ता है और वह इसी प्राणि शरीरमें उत्ताप प्रदान करता है। जाड़ेके दिनोंमें भी, यदि बाहर ही कोई गाय खड़ी रहे तो उसके शरीरमें थर्मामेटर लगानेसे मालूम होगा, कि उसके शरीरकी गर्म्मी १०१ डिग्री है। यह गर्मी कहाँसे आती है ? खोज करनेपर मालूम होगा, कि यह गर्मी खानेके पदार्थोंसे ही उत्पन्न होती है। खाद्य ही पशुको गति प्रदान करता है ।

घास और शस्यमें निम्नलिखित रूपमें पदार्थ विद्यमान हैं:—

कार्ब्बन	...	...	...	४५
आक्सिजेन	...	...	...	४२
हाईड्रोजेन	...	...	...	६.४

नाईट्रोजेन	...	...	...	१.४
धातव पदार्थ	...	...	...	५

एक स्थूलकार्य वृषमें निम्नलिखित रूपमें ये सभी पदार्थ हैं:—

कार्ब्बन	...	...	...	६३
आक्सिजेन	...	...	...	१३.८
हाईड्रोजेन	...	...	...	६.४
नाइट्रोजेन	...	...	...	५
धातव पदार्थ	...	...	...	४.८

स्थूल उद्भिद पदार्थ और पशु शरीरमें जल, धातव पदार्थ, प्रोटेरन, नाइट्रोजेनस पदार्थ, कार्ब्बोहाईड्रेड, चर्बी (तैल भाग) विद्यमान हैं।

इससे मालूम होता है कि उद्भिद शरीरसे प्रतिदेहमें ये सब पदार्थ जाते हैं। फिर मल मूत्रके रूपमें ये पदार्थ बाहर निकलकर उद्भिद पदार्थमें परिणत होते हैं।

खाद्य पदार्थ मुँहके द्वारा जब पेटमें जाता है, तब मुँहमें लार उत्पन्न होती है। स्वादिष्ट भोजनका पदार्थ सामने आनेपर भी मुँहमें लार भर आती है। इसी लारके संयोगसे पेटमें भोजन किये हुए पदार्थकी पाचन क्रिया आरम्भ होती है।

पाकस्थलीमें भुक्तद्रव्य पचकर रक्त रूपमें परिणत होता है और फिर नाड़ी और नसोंद्वारा यह रक्त समूचे शरीरमें फैल जाता है। इससे मालूम होता है, कि खाद्य पदार्थ विशेषकर जिन खाद्य पदार्थोंमें उक्त शरीरके पोषणोपयोगी सामान हैं, उनसे ही पशु शरीर बनता, बढ़ता, उत्तापयुक्त, गति और क्रियाशील हुआ करता हे। भोजनके अभावसे या इन सब द्रव्योंसे हीन खाद्यके अभावसे पशु शरीर अच्छी तरह बढ़ नहीं सकता।

गो-खाद्य घास और बीजका उत्पादन ।

भारतमें गो-जातिको किसी प्रकारका खाद्य देनेका विधान नहीं है। गाय बैल अपनी चेष्टासे जो दो चार ग्रास भोजन कर लेते हैं, वही उनका आहार है। हमलोग अपने खाद्य शस्य उत्पन्न करते हैं; उसका परित्यक्त अंश भी यदि गो-जातिको मिले तो वह उनके लिये यथेष्ट हैं; परन्तु अब उतनेसे ही काम नहीं चल सकता। अब गो-खाद्यकी ठीक ठीक खेती करना बहुत ही आवश्यक है। ग्रेटब्रिटेनकी तृतीयांश भूमि स्थायी गोचारण अथवा मैदानके रूपमें रहनेपर भी वहाँ गो-खाद्य घास और बीजकी ठीक ठीक खेती होती है। क्लोवर, लूसर्ण, मेडिक प्रभृति घास उत्पन्न किये जाते हैं और घास जातीय शस्यका बीज तथा यव, गेहूं, मूँग, जई इत्यादि शस्य गो-गणके भोजनार्थ उत्पन्न किये जाते हैं; परन्तु इस देशमें वह प्रथा नहीं है। हमारे देशमें उससे भी अधिक चेष्टाकर गो-खाद्य उत्पन्न करना चाहिये; क्यों कि इङ्गलैण्डमें यदि गायें न भी रहें तो वहाँके मनुष्योंकी विशेष हानि नहीं हो सकती; परन्तु भारतमें गाय न रहनेपर भारतकी खेती बन्द होकर यहाँके सब मनुष्य ही ध्वंस हो जायेंगे। इसी लिये इस देशके कृषकोंको समझना पड़ेगा, कि गो-खाद्यकी खेती ठीक ठीक करना परमावश्यक है।

गो-ग्रासकी ज़मीनमें खाद देनेके सम्बन्धमें मिस्टर सिम्सन साहबने जो उत्कृष्ट मन्तव्य प्रकाशित किया है; उसका भाव उद्धृत किया जाता है। कितनेही न जानते होंगे, कि गो-खाद्य घासकी भूमिमें भी खाद देना परमाश्यक है। कितनोंही की धारणा ह, कि गो-खाद्य घास वाली ज़मीनमें स्वभावतः उत्कृष्ट गो-खाद्य उत्पन्न हो सकता है। उसमें खाद या गोबर देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उनका विश्वास है, कि प्रकृति जादू विद्याके प्रभावसे अनन्तकाल तक गो-चारण भूमिमें उत्कृष्ट गो-खाद्य उत्पन्न किया करती है। परन्तु यह बिलकुल ही

भ्रम पूर्ण धारणा है। गो-खाद्य रूपो शस्य उत्पन्न करनेके लिये वैज्ञानिक प्रणालीका कोई प्रत्यय नहीं हो सकता। गो-खाद्य पैदा करनेवाली भूमिमें नियमानुसार खाद देना कर्तव्य है। अंगरेजी पढ़े लिखे मनुष्योंके लिये सिम्सन साहबका मत नीचे लिखा जाता है (१) खाद देनेपर उत्तम घास उत्पन्न होगी। इसी लिए गो-ग्रासकी ज़मीनमें नियमानुसार गोबर, हड्डीका चूर, शूगर फ़ास्फ़ेट और जिप्सम् नामक खाद डालनेपर अधिक और खूब पुष्ट घास उत्पन्न होती है। घासकी ज़मीनमें हाड़के चूरका खाद हो अधिक उपयोगी है। क्योंकि हाड़के चूरकी खादमें पशु-शरीरको पोषण करने योग्य समस्त पदार्थ ही विद्यमान हैं। जलपूर्ण, नीची और कमजोर भूमिमें गोवानो नामक खाद डालनेपर उससे उस ज़मीनको बड़ी उन्नति होती है।

गङ्गा, पद्मा, ब्रह्मपुत्र, यमुना, तिस्ता प्रभृति बड़ो बड़ी नदियोंके किनारे नल जातीय थालिया नामक घास और काजा नामक एक प्रकारकी इक्षु जातीय घास और चालिया नाम एक प्रकारकी दुर्व्वा जातीय घास उत्पन्न होतो है। यह गो-खाद्यके लिये बड़ी ही उत्तम है। यह जितना ही दूध बढ़ाती है, उतना ही पुष्टिकर भी हैं। यह घास संग्रह कर बेचनेसे गो-खाद्यको कमी बहुत कुछ पूरी हो सकती है। मटर, सेम, रहड़, प्रभृति दाल जातीय बोज और वृक्ष, गाय भैंस विशेषकर गायोंके लिये विशेष उपयोगी हैं। मटर जातीय घासमें

(1)...that some such idea was common amongst agricul turist as that grass-lands possess a mysterious property of perpetual fertility, The treatment pursued in these cases is often so contrary to all scientific principles and economic practice, as to have become a notoriously weak point in—agriculture. It needs hardly be said that any such idea as the above is entirely erroneous. The circumstances effecting the fertility of grass-land being much the same in principle as those effecting the arable land.

मांस और रक्त बढ़ानेवाले पदार्थ विद्यमान हैं। जई, जिनोरा, भुट्टा बाजरा, धान, सामा, भरा, दूर्व्वा आदि घास चीना, काउन, भराबीज, प्रभृति बीज जातीय गो-खाद्य और विलायती गिनी, क्लोवर्न, लूसर्न, सेईनफारन, मेडिक, इटैलियन राई ग्रास और अफ्रिकाका सूदन घास और एग्रेटीस (१) ऐरेनथेरम (२) और फोष्टोकारुब्रा (३) प्रभृति विलायती बीजके घास, मूली, गाजर, टर्निप, कसात्रा प्रभृति मूल-जातीय खाद्यकी खेतीकर गो-जातिके खाद्य रूपमें व्यवहार करना चाहिये। ये सब विलायती गो-खाद्य और घास तथा बीज यदि सरकार बिना मूल्य प्रजामें वितरण करे तथा इस कार्यमें उन्हें उत्साहित करे तो गो-खाद्य घास उत्पन्न होकर गोवंशकी वृद्धि हो सकती है। खाद्य-परिच्छेदमें इस विषयका पूरा पूरा हाल लिखा गया है।

गो-ग्रासका व्यवसाय।

पहले ही कह चुके हैं, कि इस देशमें खासकर बङ्गदेशमें गो-ग्रासकी अत्यन्त कमी हो गई है। जबतक यह कमी दूर न होगी तबतक गायें खराब आहार, अर्द्ध अहार तथा अनाहारसे कष्ट पाकर मरती ही रहेंगी। बङ्गालमें तो गो-चर भूमि बिल्कुल ही नहीं है। खेत बराबर अन्नकी खेतीके काममें लाये जाते हैं। पाटकी फसलके अत्यन्त विस्तारके कारण बिचाली तथा भूसा तकका अभाव हो गया है। अतः गायोंको मानव भोग्य-शस्यके डण्ठे तक अब मुयस्सर नहीं होते। इस अभावको दूर करनेके लिये बङ्गालके अन्यान्य स्थानमें साइलो गोखाद्यागार बनानेकी अत्यन्त आवश्यकता है।

अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा विशेषतः पहाड़ी प्रदेशोंमें, जङ्गल भरे स्थानोंमें और उन स्थानोंमें जो आबाद नहीं है गो-खाद्य अधिक उत्पन्न

(1) Agrotis vulgaris. (2) Arrhenatherum. (1) Fostucarubra.

होता है। इन्हीं स्थानोंसे घास संग्रहकर उसे वैज्ञानिक उपायोंसे रखना उचित है। साथही ज़मीनमें खाद देकर तथा खेतीको प्रणालीसे खेतीकर उसमें घास और बीज उत्पन्नकर मनुष्यके खाद्य-द्रव्यके समान ही उन्हें बाज़ारमें क्रय विक्रय करनेकी प्रथा चलाना भी उचित है। इससे देशमें धनागमको राह भी खुल जायेगी और गो-जातिके भोजनकी कमी भी न रह जायेगी इस व्यवसायका प्रचार होनेपर लोग गो-पालनकर सकेंगे। गो-खाद्य घास और बीजकी कमीके कारण लोगोंमें इच्छा रहनेपर भी वे गो-पालन नहीं कर सकते। पाश्चात्य देशोंमें करोड़ों रूपयेकी गो-खाद्य घास और कैटल फूडका कारबार होता है। आस्ट्रेलियासे लाखों रूपयेकी घास हमारे इस देशमें आया करती है। इन सभी घास व्यवसाइयोंके यहाँ हमलोगोंके कितने ही मनुष्य २५। ३० रुपये महीनेकी नौकरी किया करते हैं, परन्तु इस व्यवसायको चलानेकी किसीकी भी इच्छा नहीं होती।

गो-चारण भूमिकी आवश्यकता।

The total acreage of the United Kingdom amounts to 77,500,000 and of these we have 46000,000 under all kinds of crops, bare fallow and grass; and out of these 46,000,000 there are 23,000,000 acres of permanent pasture, meadow, or grass, exclusive of heath or mountain land.

Cattle, sheep and deer. page 13. by Macdonald

समस्त ग्रेट ब्रिटेनकी ७,७५०००००० एकड़ भूमिमें ४६०००००० भूमिमें नाना प्रकारकी फसलें और खेती होती है। इनमें पहाड़ और आबादीको छोड़कर २३०००००० अर्थात् आधी भूमि स्थायी गो-चारण क्षेत्र या घासकी ज़मीन है। इङ्गलैण्डकी भूमिका मूल्य बहुत अधिक रहनेपर भी आबादीके योग्य भूमिका भी आधा भाग स्थायी गो-चर भूमिके रूपमें छोड़ा हुआ है; परन्तु इस देशमें गोचर भूमि

बिलकुल ही नहीं है। यह गोचर भूमिकी कमी भी गो-जातिकी अवनतिका एक विशेष और प्रधान कारण है। गायें इन गोचर भूमियोंमें जाकर खुली हवाका सेवन करती हैं और यथेष्ट घास तथा नाना प्रकारके औषध, लता, गुल्म, तृण तथा जड़ियाँ खाती हैं। इससे उनकी भोजनकी इच्छा भी बढ़ती है और नाना प्रकारकी घासमें शरीरके पोषणके उपयोगी नाना प्रकारके पदार्थ मिलनेके कारण उनका शरीर यथोचित बढ़ता और बलिष्ट होता है। गायें एक जगह खड़ी होकर एकही प्रकारका पदार्थ भोजन करना पसन्द नहीं करतीं, इसीसे कहा है, कि घरकी गायें घरकी घास नहीं खातीं।

"गावस्तृण मिवारण्ये प्रार्थयन्ते नवं नवम्" गायें जङ्गलमें नई और भिन्न भिन्न प्रकारकी घास खानेकी इच्छा करती हैं। पहले भारतवर्षमें असंख्य और अपर्य्याप्त गोचर भूमि थी, इसीसे भारतमें लाखों गायें रहती थीं। गोबर्द्धन (जहाँ गायें बढ़ती हैं) वृन्दावन, महाबन, काम्यवन, अप्सरोवन, सुरभिवन, स्वर्गवन, माण्डीरबन, तपोबन, कोकिलबन, तालवन, कुसुमबन, खदिरवन, लोहवन, कदम्बबन, भद्रवन प्रभृति नामोंसे ही मालूम होता है, कि भारतमें किसी समय असंख्य वन और उपवन गोचारण भूमिके स्वरूपमें और गोकुल एक प्रधान गोचरण भूमि थी। गोकुलकी गायें और कहीं जाना नहीं चाहतीं। वहाँ एक कहावत प्रचलित है, कि मथुराकी बेटी और गोकुलकी गाय, कर्म्म फूटे तो अन्यत्र जाय। अर्थात् मथुराकी बेटी और गोकुलकी गायें अत्यन्त दुष्कर्म्मा हुए बिना कहीं नहीं जातीं।

उत्तर गो-गृह वर्त्तमान पुरनिया, मालदह, रङ्गपुर आदि जिले और दक्षिण गो-गृह मेदिनीपुर, बालेश्वर, आदि जिलोंमें उत्कृष्ट और विस्तृत गो-चारण भूमि थी।

श्रीकृष्णकी राजधानी द्वारकापुरी गुजरात प्रदेशमें विद्यमान है। इस प्रदेशमें कच्छ एक गो-चारण क्षेत्र है। वहाँ किसी अवस्थामें भी

गोग्रासका अभाव नहीं होता। इसलिये वहाँ की गायें भारतकी उत्कृष्ट गायोंमें दूसरा स्थान अधिकार किये हैं। वहांके अधिवासियोंका विश्वास है, कि यहाँ कभी दुर्भिक्ष अथवा अन्य कारणोंसे गायोंमें मरी नहीं फैल सकती। जङ्गल भरो भूमिमें गायोंको घूमने देना अच्छा है; इससे गायें यथेष्ट आहार विहार द्वारा पुष्ट होतीं और बढ़ती हैं।

गौतमने अपने शिष्य सत्यकामको जब दीक्षा दी, तब वह बड़ा ही दुर्ब्बल और कृष दिखाई दिया। यह देख गौतमने अपनी गायों-मेंसे चुनकर चार सौ गायोंको रक्षाका भार सत्यकामको दिया। सत्यकाम उन गायोंको लेकर भारतको गोचर भूमिमें चरानेके लिये निकले और उन्होंने प्रतिज्ञा की जबतक ये चारसौ गायें हज़ार गायोंमें परिणत नहीं होंगी, तबतक गुरुके पास न जायेंगे। शीघ्र ही वे चारसौ गायें हज़ार गायोंमें परिणत हुईं (१) हा! प्रचीन कालमें भारतमें कितनी गोचर भूमि थी! भारतीय उपद्वीपोंमें भी अबतक उत्कृष्ट गोचर भूमि है। वहाँ घास भी अधिकतासे उत्पन्न होती है और वहाँ वृष्टिका परिमाण भी वार्षिक ३०।४० इञ्चसे अधिक नहीं है। इन स्थानोंको गायोंकी संख्या और शक्ति भी अत्यन्त वृद्धि पाप्त करती है। महीशूरके शिक्षा देवराज ओदियरने २१० स्थायी और बारह मासके उपयुक्त "कवल" अर्थात् गोचर भूमि छोड़ी थी (२) इन कवलोंमें जो गायें चरती थीं, वे उत्तर देशकी गायोंसे बड़ी होती थीं। (३) तराइयोंमें जो कवल हैं, उनका खाद्य बड़ा ही पुष्टिकर है।

---

(१) सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद।

(2) The Amret Mohal Cattle are kept in the grazing grounds which are called Kavals about 210 in number and these are distributed over the greater portion of the western and central portion of Mysore.

3 The cattle reared in Kavals or reserved pasture are much larger in size than those found in the North.

Cattle of Southern India page/4.

महीशूरकी अमृत महाल गायें, नेलोर गायें काठियावाड़की गायें सोनपुरा, सहयाद्रि प्रान्तकी खिलाड़ी गायें, मालावी गायें, हान्सी गायें और कच्छ देशकी गुजराती गायोंके इतने उत्तम होनेका सबसे बड़ा और प्रधान कारण यही है, कि इन प्रदेशोंकी गोचर भूमिमें सम्भवतः बहुत ही उत्तम गोखाद्य घास उत्पन्न होती है और वहाँ गायें स्वच्छन्दतासे चर सकती हैं।

आस्ट्रेलिया, न्यूज़िलैण्ड, हालैण्ड, स्विट्ज़रलैण्ड, इङ्गलैण्ड और अमेरिकाकी गायोंने जो इतना प्राधान्य प्राप्त कर लिया है, उसका प्रधान कारण यह है, कि इन देशोंमें उत्कृष्ट गोचर भूमि अपर्य्याप्त परिमाणमें वर्त्तमान है।

ग्रेटब्रिटेनमें खेतीके योग्य जितनी भूमि है; ठीक उसकी आधी गोचर भूमि है। इङ्गलैण्डकी एक एक इञ्च भूमि बहुमूल्य है इतनेपर भी वहाँके शिक्षित मनुष्योंने स्थिर किया है, कि गोचर भूमिकी रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है। इसका फल यह हुआ है, कि इंगलैण्डकी गायें पृथ्वीके सब स्थानोंकी गायोंसे अधिक दूध देती हैं।

युक्तप्रदेश, मध्यप्रदेश और दाक्षिणात्यमें गोखाद्य घास बहुतायतसे उत्पन्न होती है। यदि किसी बर्ष गोखाद्य नहीं भी उत्पन्न होता तो जव, गेहूँ, भुट्टाके डण्ठे काटकर खिलाते हैं। उसके अतिरिक्त इन सब देशोंमें रब्बीकी फसल जब उत्पन्न होती है, तब वह और जब ज़मीन पड़ती पड़ी रहती है तब उसमें गायें चरा करती हैं।

बंगालकी जलाभूमिका जल जब कार्तिक महीनेमें सूखने लगता है, तब उसके पहले ही उसे जोतकर पूसके महीनेमें उसमें धान बोया जाता है। वैशाखके आरम्भमें ही फिर यह भूमि जलसे डूबने लगती है। उस समय कृषक फसल काट लेते हैं। इसके बाद कार्तिक महीनेतक वह भूमि जलमें डूबी रहती है, ऐसी अवस्थामें गोचर भूमि कहाँ मिल सकती है? गायें मैदानमें चर नहीं सकतीं। निम्न बङ्गमें खेतोंकी मेढ

राह या गृहस्थोंके मकानका आँगन ही एकमात्र गोचर भूमि हो रही है। इसके अतिरिक्त, गायोंके लिये वाहर निकलकर खुली हवामें घूमनेका और कोई स्थान नहीं है। अतः गायोंकी उन्नति और वृद्धि असम्भव है।

निम्न बङ्गमें पाटकी फसलका मूल्य बहुत ही अधिक है। और यह मूल्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। इसीलिये वहांके कृषक अन्यान्य चीजोंकी खेती छोड़कर केवल पाटही बोते हैं और उत्पन्न करते हैं। इससे गायोंको जो धानका भूसा या बिचाली भी प्राप्त होती थी वह भी अब नहीं मिलती। अब केवल घरके आँगनकी भूमि ही बङ्गालकी गायोंका एकमात्र अवलम्ब है। इसे ही बार बार चाटकर गायें अनाहार क्लिष्ट जीवन व्यतीतकर अकालमें ही गो-जातिके जन्मसे मुक्ति प्राप्त करती हैं। जीवमात्रकी जीनेकी आकाँक्षा रहती है; उसी आकांक्षासे गायें गृहस्थके घरका बन्धन तोड़ यदि कदाचित किसीके खेतमें जा पहुँचती है, तो उस खेतका मालिक उसे बांध रखता है। वहां गायें खेत चरनेके अपराधमें एक दो दिन प्रायश्चित्त स्वरूपमें बिना भोजन प्राप्त किये ही बँधी पड़ी रहती हैं। घुटनेतक कीचड़, मूत्र और पुरीषपूर्ण स्थान तथा टीनसे छाये हुए मकानमें लोकलबोर्ड या म्युनिसिपालिटीके मकानमें बन्द रहकर भूख प्याससे व्याकुल अवस्थामें वे अपने बेमेयादी कारागारके दिन बिताती हैं और रात्रिके समय दीवार हीन गृहमें जाड़ेके दिनोंमें शीत उपभोग करती हैं। इसी पापसे और गायोंके अभिशापसे बङ्गदेशका अधःपतन हुआ है।

निम्न-बङ्गके कृषक यदि प्रत्येक दस बीघा जमीनमें एक बीघा गो-चारणके लिये छोड़कर खेती करें यदि प्रत्येक कृषक गो ग्रासके लिये प्रति १० बीघा पीछे १ बीघा जमीनमें गोखाद्य घास उत्पादन करे, यदि जमींदार और तालुकदारगण प्रति ग्राममें कमसे कम ४०

बाघा जमीनका एक एक गोचर मैदान छोड़कर अन्य स्थानमें खेती करें तो इस अधः पतित गो-हीन देशमें फिर गोवंशकी सृष्टि हो सकती है।

पहले इसी देशके जमीन्दार और तालुकेदारगण गोचारणके भूमिका कर ग्रहण करना पापजनक समझते थे वर्त्तमान समयमें अब उन जमीन्दारोंके वंशधरोंका इस बातपर ध्यान नहीं है। विशेष कर वे कृषकोंके आग्रहसे ग्रामकी कुछ कुछ भूमि ठीका दे दिया करते हैं और इसी कारणसे गायें गोशालेमें बन्द रहकर अपना जीवन व्यतीत करती हैं। जिन स्थानोंमें गोचर मैदानका एकदम ही अभाव है, वहाँ व्यवसायीगण गोचर मैदान रखकर उसमें जितनी गायें चरती हैं, उनमें गाय पीछे कुछ कर लेकर भी यदि गोचर भूमि छोड़ें तो देशका बहुत कुछ उपकार हो सकता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, लोकल बोर्ड, और म्युनिसिपैलटी राह अथवा अन्य किसी कारणसे जब जमीन ले लेती है, उस समय उस रास्तेकी ज़मीनके दोनों ओर तीस तीस फुट जमीन यदि अधिक कर लेकर गोचारणके लिये छोड़ दे तो देशका बड़ा उपकार हो सकता है। यदि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपने प्रकाण्ड खजानेका अर्द्ध अंश इसके लिये व्यय करे, तो उसके अन्यान्य सत्कार्योंकी अपेक्षा इस सत्कार्यसे प्रजा और देशका अधिक उपकार होगा। प्रत्येक शहरकी म्युनिसिपैलटियाँ यदि इसी तरह एक एक गोचर भूमिकी रक्षा करें और प्रत्येक गाय पीछे कर ग्रहण करें तो म्युनिसिपैलटीको भी लाभ हो सकता है और गायें ठीक ठीक घूमफिर कर व्यायाम और मुक्तवायु सेवनकर स्वच्छन्द भोजनका कार्य निर्व्वाह कर सकती हैं।

बंगालके प्रत्येक जिलेमें विशेषकर पूर्णियां, मालदह, रंगपुर दिनाजपुर, पबना, ढाका, मैमनसिंह, कुमिल्ला, बरीसाल, फरीदपुर और श्रीहट्ट प्रभृति जिलोंमें यदि भारत सरकार एक एक आदर्श कृषि

क्षेत्र स्थापन कर दे और उसके साथ ही साथ यदि एक आदर्श गोचारण क्षेत्र और डेयरी अर्थात् दूधका कारबार स्थापित करदे तो सर्वसाधारण, विशेषकर कृषक प्रजागण गोपालन-शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इस कार्यसे गवर्नमेण्टको लाभके सिवा हानि न होगी।

मैमनसिंहके भूतपूर्व मैजिस्ट्रेट श्रीयुक्त एच० डी० फिलिप्स आई० सी० एस साहबने मैमनसिंके वाजितपुर स्टेशनके पासके पेनाकोला नामक स्थानमें एक डेयरी खोलनेकी चेष्टा की थी; किन्तु उनकी बदली हो जानेके कारण यह कार्य बन्द हो गया। यदि यह कार्य हो जाता तो मैमनसिंहमें इतने हो दिनोंमें गायोंकी विशेष उन्नति हो जाती।

गोचारण भूमिके सम्बन्धमें गोष्ठ अध्यायमें अच्छी तरह आलोचना की गई है।

जनन-कार्यके लिये सांढ़का पालना।

जनन-कार्यके लिये उत्कृष्ट साँढ़ (stud Bull) का देशमें संग्रह करना गो-जातिकी उन्नतिका एक प्रधान उपाय है। वस्तुतः उत्कृष्ट गाय खरीदनेकी अपेक्षा उत्तम साँढ़का प्रबन्ध करनेसे देशकी उन्नति अधिक हो सकती है। उत्तम गाय खरीदने पर वह गाय तथा उससे उत्पन्न हुई बाछीसे अधिक दूध प्राप्त हो सकता है; परन्तु एक उत्तम साँढ़ रहने पर देशमें बहुतसी उत्तम गायें पैदा हो सकती हैं। एक बात और भी है। उत्तम अधिक दूध देनेवाली गायका जनन-कार्य निकृष्ट जातिके साँढ़ द्वारा होनेसे उत्तम गायका बच्चा भी निकृष्ट जातिका होगा और उस उत्तम गायका दूध भी क्रमशः कम होता जायेगा।

यूरोपके सभी स्थानोंमें, आस्ट्रेलिया, न्यूज़िलेण्ड और अमेरिका प्रभृति उन्नत देशके अधिवासी अपने देशके प्रत्येक शहरमें, प्रत्येक

गाँवमें और प्रत्येक मुहल्लेमें जनन-कार्यके लिये उत्तम साँढ़ पालते हैं इस तरह जनन-कार्यके लिये उत्तम साँढ़ देनेकी फ़ीस १५ से २५० रुपये तक लेते हैं। यह बड़ा ही लाभदायक व्यवसाय है।

कलकत्तेके कुक साहबके कार्यालयमें ऐसे साँढ़ हैं। कुक कम्पनी १० से १५ तक फीस लेकर ये साँढ़ गायको गाभिन करानेके लिये देती है।

इङ्गलण्डमें किसी गाय पालनेवालेको गायके ऋतुमती होनेके पहले ही वह दो तीन साँढ़के व्यावसाइयोंके पास खबर भेज देता है और कब साँढ़की आवश्यकता होगी, अनुमानसे वह समय भी कह देता है। इसके बाद समय आनेपर गाय साँढ़के पास पहुँचाई जाती है। साँढ़का व्यवसायी स्वयं उपस्थित रहकर एक डाक्टर द्वारा गाय या साँढ़को कोई दूषित रोग तो नहीं है इसबातकी परीक्षा करा लेता है। एक साँढ़के रोगी रहनेपर दूसरे साँढ़को परीक्षा होती है। जब स्वस्थ्य साँढ़ मिलता है,तब उसी साँढ़के द्वारा जनन कार्य लिया जाता है। वृष नियोगके समय आधी और गर्भ हो जानेपर पूरी फीस देदी जाती है।

उत्कृष्ट बीजके ऊपर उत्कृष्ट फल निर्भर करता है। यही शिक्षित विज्ञानवेत्ता, इङ्गलैण्ड, जर्म्मन, होलैण्ड, डेनमार्क, अमेरिका, आस्ट्रेलिया न्यूज़िलैण्ड प्रभृति देशवासियोंने अतिसूक्ष्म भावसे खोजकर जाना है। इस लिये वे लाखों रुपये देकर एक साँढ़ खरीदते हैं।

हमारे देशमें जनन-कार्यके लिये सांढ़ देकर उसकी फ़ीस लेनेकी चाल न थी। बड़ा ही पुण्यजनक कार्य समझकर हिन्दू अपने माता पिता भ्राता और बन्धुओंकी स्वर्ग-कामनासे एक साँढ़ और चार बाछियाँ छोड़ दिया करते थे। साँढ़पर एक विशेष चिन्ह कर दिया जाता था। इस सांढ़को गृहस्थ मात्र ही पूजा और रक्षा करते थे;। वह सर्व साधारणके व्ययसे पलता था। उसके प्रति बड़ा सम्मान दिखाया जाता था और उसे बराबर आहार विहारकी व्यवस्था की जाती थी।

वेही देशकी गायोंका पितृस्थान अधिकार करते थे। वे सब देशवासियोंके यत्नसे लगातार स्वच्छन्द आहार विहार प्राप्तकर अत्यन्त बलिष्ठ और पुष्ट होते थे। वृषोत्सर्गका वृष जिस समय चुना जाता था; उस समय इस बातपर ध्यान रखा जाता था, कि वह साँढ़ अच्छा और शुभ लक्षणोंवाला हो। अविकलाङ्ग जीवित-वत्सा और दुग्धवतीका पुत्र बलवान, एकवर्ण या द्विवर्ण और अष्टमी तिथिको उत्पन्न हुआ ऊँचा या सम वृष ही प्रशस्त माना जाता है। ऐसे साँढ़के उत्सर्गसे ऊपरके सात और नीचेके सात इस तरह चौदह पुरुषोंका उद्धार होता है (१)

यह साँढ़ केवल जनन-कार्यके काममें ही लाया जाता था। इसका नष्ट करना तो दूरकी बात है। इन्हें हल या दूसरे काममें भी नहीं लगाया जाता था। यदि कोई इस नियमको उल्लंघन कर डालता तो उसे दो चान्द्रायण व्रत करने पड़ते थे। (२)

इस देशके मुसलमानोंमें भी यह चाल थी, कि साँढ़के गलेमें एक काठकी तख्ती बाँधकर धर्म्मके उद्देश्यसे उसे छोड़ देते थे। इस साँढ़को "खोदाई साँढ़" कहते थे। वह भी वृषोत्सर्ग साँढ़की भाँति बिना किसी रुकावटके स्वच्छन्द इधर उधर घूमा करता था और केवल जनन-कार्यके काममें लाया जाता था। यह साँढ़ जिसके दरवाज़ेपर जाता, वही उसे खानेके लिये कुछ न कुछ देता था। यह साँढ़ जिसका द्रव्य खाता वही अपनेको श्लाघ्य और पवित्र समझता था; परन्तु अब

---

(१) अव्यंगजीवसुवत्सायाः पयस्विन्याः सुतो बली
एकवर्णो द्वि वर्णो वा यो वा स्यादष्टकासुतः ॥
यूथादुच्चतरो यस्तु समो वा नीच एव वा।
सप्तावरान् सप्तवराणुत्कृष्ट स्तारयेद् वृषः ॥ इति कात्यायनः।

(२) वृषभन्तु समुत्सृष्टं कपिलां वापि कामतः।
योजयित्वा हलं कूर्यात् व्रतं चान्द्रायणं द्वयम् ॥ गोभिलः।

वह दिन भी नहीं है। अब इस देशमें साँढ़ इस तरह स्वच्छन्द आहार विहार नहीं कर सकते। अब लोगोंमें धर्म्म-भाव नहीं है। इसीसे ऐसे साढ़ोंकी भी कमी हो गई है।

अब इसी बातपर लोगोंका लक्ष्य है, कि ऐसे साँढ़ शस्यको नष्ट करते हैं; किन्तु उनसे कौनसा उद्देश्य सिद्ध होता था उस ओर हमलोगोंकी दृष्टि नहीं है। ये सब साँढ़ खेतको नष्ट करते हैं; इसलिये म्यूनिसिपैलिटी इन्हें पकड़ कर कूड़ा गाड़ीमें जोत देती है। काशीमें ऐसे ऐसे बहुतसे बड़े बड़े साँढ़ थे। उस समय साँढ़ और सीढ़ी काशीके पथिकोंकी बैरी समझी जाती थी। अब काशीमें भी वैसे बड़े बड़े साँढ़ अधिक नहीं दिखाई देते। तथापि अब भी काशीमें जितने साँढ़ हैं; उतने बङ्गालमें कहीं दिखाई नहीं देते।

इन सब साँढ़ोंके अदृश्य होनेका एक कारण और है। इन साँढ़ोंको अस्वामिक समझकर इन्हें चुरालेने अथवा बाँध रखनेसे बाँधने या चुरानेवाला अपराधी नहीं समझा जाता। ऐसी कितनी ही नज़ीरें दिखाई दी हैं; इस कारणसे भी ये साँढ़ नहीं दिखाई देते। बृष-उत्सर्ग करनेवाले हिन्दू धर्म्मके उद्देश्यसे उत्सर्ग किये हुए इन साँढ़ोंकी यह दुर्दशा देखकर अग्रदानी ब्राह्मण अथवा कहीं कहीं ग्वालोंको ही इसकी रक्षाका भार देने लगे। इस तरह बृषोत्सर्गका साँढ़ या ब्राह्मणी धर्म्मके साँढ़ इस देशसे नष्ट होने लगे। साथ ही वर्त्तमान शिक्षाके कारण भी ऐसे साँढ़ोंका छोड़ना कम होने लगा है।

जिस भावसे भारतमें गो-जननका कार्य होता था, उसका प्रधान अङ्ग नष्ट हुआ। साँढ़ तो लोप हुए; परन्तु साथ ही इंगलैण्ड प्रभृति देशोंमें जिस तरह ऋतुमती गायोंकी ऋतुरक्षाके लिये फीस देकर साँढ़ लिये जाते हैं, वह प्रथा भी प्रचलित न हुई। जो साँढ़ मिलते हैं उससे गायोंकी गर्भ-रक्षा होती है, पर इसका फल यह होता है, कि गायके बच्चे

उत्कृष्ट वीर्य द्वारा उत्पन्न न होनेके कारण अच्छी जातिके नहीं होते। साँढ़ दुर्ब्बल, रोगी और अपकृष्ट होते हैं। यह निश्चित है, कि पितृ-प्रदत्त गुण सन्तानमें आता है। माताका गुण बच्चोंमें और पिताका गुण पुत्रियोंमें अधिक होता देखा जाता है। देशमें साँढ़ोंकी कमीके कारण और एकाएक जैसा मिलगया, उसीसे जननकार्य लेनेके कारण साँढ़ोंकी शक्ति भी दिनोंदिन क्षीण होती जाती है। एक ही साँढ़ बार बार या नित्य प्रति जनन कार्यकर एकदम शक्तिहीन हो जाता है और उससे उत्पन्न बच्चे थोड़े ही दिनोंमें प्राण त्याग देते हैं अथवा यदि जीते भी हैं तो मृतकल्प अवस्था या रोगी अवस्थाके और कुछ दिन जीवित रहकर इस गो-जन्मसे मुक्ति प्राप्त करते हैं और उनसे उत्पन्न बाछियाँ अवस्था पाकर जब गायोंमें परिणत होती हैं, तब उनमें दूध देनेकी शक्ति नहीं रहती। इस साँढ़की कमीको दूर करनेके लिये भारतमें फिर पहलेकी नाईं साँढ़ छोड़ना (ब्राह्मणी साँढ़) आवश्यक है अथवा सरकारकी सहायतासे जनन-कार्यके प्रिये साँढ़ (Stud Bulls) की रक्षा करना आवश्यक है। देशीय कृषकोंको साँढ़ पालनेके लिये उत्साहित करना गवर्नमेण्टका काम है। गवर्नमेण्ट बिना मूल्य कृषकोंको साँढ़ देकर बदलेमें उनसे कुछ दिन बाद २।३ साँढ़ ले सकती है। इस तरह कृषकोंको उत्साहित करनेपर यह साँढ़की कमी जल्द ही दूर हो जायगी। जगह जगहपर अवस्थापन्न तालुकेदार, जमीन्दार और धनियोंको भी गोपालनमें उत्साहित करना सरकारका कर्त्तव्य है।

"नित्य सबेरे जिसका मुँह देखते हैं उसे ही कन्या देंगे।"—हेमचन्द्र राजाने यही प्रतिज्ञा की थी। हमारे देशी ग्वाले अपनी कन्यारूपिणी ऋतुमती गायें, जिस तिस साँढ़के पास गर्भ रक्षाके लिये भेज दिया करते हैं—यह कैसे परितापका विषय है !!!

उत्कृष्ट साँढ़ोंके द्वारा यह जनन कार्य होना उचित है। जबतक

इस देशके ग्वाले जनन कार्यके लिये बढिया साँढ़ोंकी आवश्यकता है, यह न समझ लेंगे तबतक सरकारको यह भार लेना चाहिये ।

इस पुस्तकके ग्रन्थकारसे वर्त्तमान डिरेक्टर जेनरल आफ एग्रिकलचर मिष्टर जे० आर० ब्लैकउड एम० ए० सी० आई० सी० एस० महाशयसे इस विषयमें बहुतसी बातें हुई थीं । उन्होंने कहा है कि सरकार प्रत्येक गावमें ऐसा साँढ़ रखेगी और उसकी रक्षाका भार पञ्चायतपर देगी इसी विचारसे इसका भार डिमान्ष्ट्रेटरोंपर देनेके लिये वह कैटल सेन्सस रिपोर्ट लिख रही है । (१)

पीनेका पानी ।

इस समय गावोंमें मनुष्यके पीनेके जलकी इतनी कमी हो गई है, कि गाय बैलोंके पीनेकी जलकी बात उठाना ही उपहासास्पद समझा जाता है । जो हो गो-खाद्यकी भाँति ही गायोंके पीनेके जलका भी प्रबन्ध होना चाहिये । खराब जल बहुतसे रोग उत्पन्न होनेका कारण है । जल ही जीवन है । इसलिये गोचर भूमिके पास जलाशय खुदवाना परमावश्यक है और बड़े बड़े शहरोंमें गायके पीनेके जलकी कमी दूर करनेके लिये सड़कके किनारे बड़े बड़े हौजोंका बनवाना आवश्यक है ।

ग्राण्डट्रंक रोड और डिरेक्टर बोर्ड प्रभृतिके समान बड़ी बड़ी सड़कोंके किनारे भी गाय बलोंके लिये बड़े बड़े हौज़ बनवाने चाहिये ।

विशुद्ध वायु ।

गो-ग्रास और पीनेके जलके समान ही गायके लिये उत्तम वायुकी आवश्यकता है । गाय घास और पानीके बिना तो एक दिन जी भी सकती हैं । परन्तु शुद्ध वायुकी कमीसे कोई भी जीव दो चार घण्टेसे

---

(१) यह रिपोर्ट अभी प्रकाशित नहीं हुई है ।

अधिक नहीं जीवित रह सकता। प्रत्येत गायके लिये १९५६ घनफुट वायुकी आवश्यकता है।

एक छोटेसे स्थानमें बहुतसी गायें बाँध रखनेसे उनका स्वास्थ खराब होता है। इंलैण्डमें तथा युरोपके और भी कितने ही देशोंमें यहांतक की बर्फीले नौरवे देशमें भी इस विषयपर गोपालकगण बहुत ध्यान रखते हैं।

गो-चिकित्सा, पालन और ग्रन्थ-प्रचार

आकांक्षा रहनेपर भी बहुतसे मनुष्य गायोंके बीमार होनेपर या किसी दूसरे ही समय उन्हें कौनसी दवा अथवा पथ्य देना चाहिये, क्या काम करनेसे गायें मरो या अन्य रोगसे बच सकती हैं और स्वस्थ रह सकती हैं—यह नहीं जान सकते। स्वस्थ गायके लिये कैसे आहार विहारकी आवश्यकता है, इस सम्बन्धकी पुस्तकें भारतकी भिन्न भिन्न भाषाओंमें लिखकर इस देशमें कम मूल्यपर या बिना मूल्य प्रत्येक ज़िला, प्रत्येक सब डिवीजन और प्रत्येक गाँव, मुहल्ले और प्रत्येक गृहस्थके घरमें नित्यके व्यवहार पञ्चांगकी भाँति रहनी चाहियें। यहाँतक कि इनका प्रचार पञ्चाँगोंसे भी अधिक होना चाहिये। इस विषयपर सदाशय सरकार तथा इस देशके मेरुदण्डस्वरूप राजे, महाराजे, धनो तथा सदाशय धर्म्मपरायण समाज और देशहितैषी महोदयोंको सुदृष्टि होनो चाहिये। यदि इस ओर उनकी दृष्टि पड़ेगो तो देशमें एक दूसरा हो युग उपस्थित हो जायेगा और देशमें शीघ्र ही लाखों अच्छी गायें दिखाई देने लगेंगी।

यह भारतभूमि दूध और मधुपूर्ण थी। फिर भी यह दूध तथा मधुसे पूर्ण हो सकती है। गायें रोगी होनेपर चुपचाप प्राण त्याग देती हैं। गोस्वामो, गोप, कृषक और बैलगाड़ी रखनेवाले, चुपचाप आँसू भरी आंखोंसे उनके एकमात्र जोवनके उपाय, और भरोसाके

स्थलको बिना किसी चिकित्साके मरते देख म्रियमान हो जाते हैं देशके धनीगण ! देशके सहृदयगण ! और स्वदेश प्रेमिकगण ! उठिये जागिये, मुक्तहस्तसे गोचिकित्साके ग्रन्थोंका प्रचार कीजिये । देशकी हज़ारों गायोंकी रक्षा कीजिये, आपलोगोंके उद्योगसे ही देशकी हज़ारों गायोंकी रक्षा होगी और उनकी अकाल मृत्यु बन्द होगी ।

गो लोकसे गोष्ठविहारी हरि आपलोगोंके मस्तकपर पुष्पवृष्टि करेंगे । देशके धनकुबेरगण ! देशके विद्योत्साही शिक्षितगण ! आपलोग अपने देशमें गोपालन शास्त्र तथा गो-चिकित्साका प्रचार कीजिये गो-लोकसे गोविन्द महिला सरस्वती देवी आपलोगोंको सुपुत्र समझ कर ग्रहण करेंगी, गोकुलकी रक्षाके साथ ही साथ देशमें कृषिकी वृद्धि होगी, गो-लोकसे लक्ष्मी आपके लिये अपने धनागारका द्वार खोल देंगी ।

बङ्गके प्रायः समस्त शिक्षित सम्प्रदायको लेकर यह बङ्गीय साहित्य परिषत् समिति बनी है । मातृभाषामें दर्शन, विज्ञान, इतिहास और काव्य प्रभृति सब प्रकारके साहित्यकी आलोचना करना और उन विशयोंके उत्कृष्ट ग्रन्थोंको प्रचार करना इस समितिका उद्देश्य है । जिस तरह यह समिति काम कर रही है, उससे मालूम होता है कि केवल बङ्गालकी ही नहीं; बल्कि यह साहित्य परिषत् समस्त भारतकी एक उज्वल रत्न हो जायगी । इसकी ज्योति अन्यान्य सभ्य देशोंमें विकीर्ण हो रही है और होगी । यह साहित्य परिषत् बङ्गालके राजा महाराजाओं द्वारा प्रतिपालित हो रही है ।

यदि यह साहित्यपरिषत् गो-पालन और गो-चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थोंके प्रकाशनका उद्योग करे तो शीघ्रही भारतमें यह लुप्त विद्या फिरसे अपना स्थान प्राप्तकर लेगी । साथही गो-कुलकी रक्षा होगी और वह फिर जीवित हो उठेगा । गोमती विद्या केवल बङ्गालमें ही नहीं; बल्कि समस्त भारतमें फिर प्रतिष्ठित होगी ।

१६२० ईस्वीके कार्त्तिक मासमें इस समितिमें विद्योत्साही गोरक्षाकारी महाराज सुसुङ्गाधिपति श्रीयुक्त कुमुदचन्द्र सिंह बी० ए० महोदयने "प्राचीन भारतकी पशु-चिकित्सा" नामका एक प्रबन्ध पढ़ा था। उसमें उन्होंने दिखाया था, कि भारतमें किसी समय ऋषि प्रणीत वृषायुर्वेद था; परन्तु दुःखका विषय है, कि अब उसका चिन्ह भी नहीं है। सहदेवने विराटराजके भवनमें जाकर कहा था:—

"ऋषभानपि जानामि राजन् पूजित लक्षणान्
येषां मूत्र मुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते।"

जिस विद्या द्वारा सहदेवने यह आश्चर्य्य जनक ज्ञान प्राप्त किया था, वह विद्या अब कहाँ है? उस विद्याका ग्रन्थ कहाँ है? आशा है कि साहित्य परिषत् यदि इन ग्रन्थोंके प्राप्त करनेकी चेष्टा करेगी तो वे मिल जायेंगे। आनरेबुल सर महाराज मणीन्द्रचन्द्र नन्दी (K. C. S. I.) बहादुरने कहा है, कि उनकी एक बढ़िया गाय रोगी होकर धीरे धीरे दुर्बल हो गई। उन्होंने सिविल सार्ज्जनको बुलाकर उस गायकी परीक्षा कराई, परन्तु सिविल सार्ज्जन उसका रोग न पहचान सके, इसके बाद एक ग्वालेने उस गायके सब अङ्गोंकी परीक्षाकर उसका रोग पहचान औषध दे, उसकी जान बचाई। इन सब प्राचीन ग्वालोंको बहुतसी उत्तमोत्तम दवायें मालूम थीं; परन्तु उत्साहके अभावसे यह चिकित्सा-विद्या लुप्त हो गई। अभी भी चेष्टा करनेसे इस लुप्तरत्नका उद्धार हो सकता है।

आशा है, कि कोई हितकामी मनुष्य इन सब औषधोंको संग्रहकर ग्रन्थ रचना करे तो देशका विशेष उपकार हो सकता है। यदि प्राचीन काव्य ग्रन्थोंका उद्धार करनेके साथहीसाथ साहित्यपरिषद् इस महोपकारिणी विद्याके ग्रन्थ संग्रह करनेकी चेष्टा करे तो इस महोपकारिणी विद्याके ग्रन्थ भारतके प्राचीन राज्योंमें विशेषकर नैपाल, काश्मीर प्रभृति और दाक्षिणात्यमें प्राप्त हो सकते हैं। इस देशके प्रत्येक मुहल्ले

अथवा ग्राममें गो-चिकित्सालय अथवा गो-चिकित्सक मिलनेका दिन अभी बहुत दूर है। हाँ; गो-चिकित्साका ग्रन्थ आसानीसे घरघरमें दिखाई दे सकता है। उससे आसन्न मृत्युके पंजेसे बहुतसी गायें बच सकती हैं।

गो-पालन विद्यालय स्थापन।

हमारे देशमें गो-पालन शिक्षाका कोई विद्यालय नहीं है। वर्त्तमान अवस्थामें इस देशका गोपालन निरक्षर और मूर्ख मनुष्योंके सङ्गोंमें है, यशोहर प्रभृति जिलोंमें अहीरी गोवाल नामक एक प्रकारके गो-चिकित्सक थे। वे सदासे गो-पालन और गो-चिकित्सा ही करते आते हैं; परन्तु इस सम्बन्धमें वे जो कुछ जानते हैं, वह न तो कभी किसीको सिखाते और न कभी बताते ही हैं। इन्हीं कारणोंसे गोजातिकी चिकित्सा-विद्या इस देशसे दूर हुई जाती है, जगह जगह गोपालन सीखनेवालोंके विद्यालयका स्थापित होना आवश्यक है। और गोपालनकी शिक्षा देनेके लिये अभिज्ञ बहुदर्शी शिक्षककी भी आवश्यकता है। गोपालन शिक्षाके लिये हमारे भारतवर्षसे इङ्गलैंड, स्विट्जेरलैण्ड, आस्ट्रेलिया; न्यूज़िलैण्ड प्रभृति स्थानोंमें छात्र भेजना आवश्यक है। इस विषयमें गवर्नमेण्टको भी सहायता करना उचित है। विदेशसे लौटे हुए गोपालन शिक्षित मनुष्योंको इन सब विद्यालयोंका शिक्षक नियुक्त कर देना चाहिये। उनके और उनके सिखाये हुए छात्रोंके तत्वावधानमें आदर्श डेयरी खोल देना उचित है। और इस देशके देशी चिकित्सकोंको उत्साहित कर उनसे दवायें संग्रह कर विद्यालयमें पाठ्य रूपमें प्रचार करना चाहिये।

जबतक धनी और शिक्षित मनुष्योंकी दृष्टि गोपालनपर न पड़ेगी, तबतक इस देशकी अधःपतित गो जातिकी उन्नति न होगी। इसी लिये हमारा हाथ जोड़कर निवेदन है, कि देशके धनी और शिक्षित

मनुष्य कमसे कम गोपालनको लाभजनक व्यवसाय समझकर और गो-धनको एक धनागम और धन वृद्धिका उपाय जानकर गो-रक्षा, गोपालनमें मनोनिवेश करें तो देशका बड़ा उपकार हो।

धनी मनुष्य धनकी सहायता देकर, उत्कृष्ट गायके साथ बढ़िया साँढ़का संयोग करा, गायको उत्कृष्ट दुग्ध-वृद्धि और रक्त-वृद्धिकारक खाद्य देकर और उत्तम साफ़ घरमें रख, विदेश अवलंबित नाना प्रकारके नवीन और वैज्ञानिक उपायोंसे गोजातिकी उन्नति करें तो सहजमें ही गो-जातिकी उन्नति होगी। तीन वर्षकी एक गाय बच्चा देती है। इस लिये उत्तमोत्तमका योगकर पन्द्रह वर्षकी चेष्टासे अति आश्चर्य्यजनक फल प्राप्त हो सकता है।

गो-चिकित्सक।

राजाओंमें महाराज ऋतुपर्ण, माहिष्मतीके अधिपति महाराज नल और महाराज युधिष्ठिरके भ्राता नकुल अश्वतत्व और अश्वचिकित्सा विद्याओंमें पारदर्शी थे। महर्षि पालकाप्यने हस्ति चिकित्साके एक वृहत् ग्रन्थकी रचना की थी। नकुलके भाई सहदेव गो-विद्यामें पारदर्शी और गो चिकित्सक थे। अग्नि और गरुड़ पुराण, बृहत्संहिता, एवं सुश्रुतके चिकित्सा ग्रन्थमें गो चिकित्सा लिखा है। परन्तु इस समय गो-चिकित्सा इतनी घृण्य हो रही हैं, कि गो वैद्य कहनेसे चिकित्सकको ग्लानि होती है। इसका कारण खोजनेसे मालूम होता है, कि धर्म्मान्ध मनुष्योंकी यह धारणा हो गई है, कि देव-तुल्य गोजातिके शरीरमें अस्त्र प्रयोग करनेसे पाप होता है। दूसरी भ्रान्त धारणा यह है, कि यथायोग्य औषध न पड़नेसे, कुचिकित्साके कारण यदि कोई गाय मर गई तो वह चिकित्सक ही गोबधका दायी है। साथ ही गोचिकित्सा द्वारा अर्थ उपार्जन करना भी पाप है। इन्हीं धारणाओंके कारण कोई भला आदमी गो-चिकित्सामें हस्तक्षेप नहीं करता और गो-चिकि-

त्साका भार मूर्खोंके हाथमें जा पड़ा है। इसीलिये मूर्ख वैद्य और गो-वैद्य एक ही बात है, इन सब विषयोंका तत्वानुसंधान करनेपर मालूम होगा, कि यह धारणा बड़ी ही भ्रमपूर्ण है। महोपकारी गो-जातिके रोगी होनेपर या आहत होनेपर उसकी चिकित्सा अवश्य ही होनी चाहिये। वरन चिकित्सा, सेवा अथवा सुश्रूषा न करनेसे ही पाप होता है। संवर्त्त, याज्ञवल्क्य, प्रभृति संहिताकारगणकी बनाई हुई स्मृतियोंके बचनों द्वारा यही प्रमाणित होता है।

यत्न पूर्वक गो-चिकित्सा अथवा गर्भसे मरा हुआ बच्चा निकालनेमें यदि विपत्पात हो तो प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। (१)

कोई औषध तेल आदि और आहार आदि यदि गो और ब्राह्मणकी प्राण वृत्ति रक्षाके निमित्त दे और उससे अनिष्ट हो तो भी प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है। (२)

यदि कोई भक्तिपूर्वक द्विज अथवा गो-हितार्थ देहच्छेद, या शिरोभेद, करे तो उसको प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है। (३)

यदि उपकार करनेकी इच्छासे कोई काम करनेपर कोई ब्राह्मण मर जाये, अथवा औषध देनेपर या औषधार्थ अग्निक्रियामें गो वृष नष्ट हों तो प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है। (४)

---

(१) संवर्त्तः— यन्त्रेण गो-चिकित्सायां मूढ़गर्भविमोचने।
यत्ने कृते विपत्तिः स्यात् प्रायश्चित्तं न विद्यते॥

(२) औषधं स्नेहमाहारं ददेद् गो-ब्राह्मणेषुच।
प्राणिनां प्राणवृत्त्यार्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते॥

(३) देहच्छेदं शिरोभेदम् प्रयत्नेरुप कुर्वताम्।
द्विजानाम् गो-हितार्थं वा प्रायश्चित्तं न विद्यते॥

(४) क्रिया मानोपकारेतु मृते विप्रेन पातकम्।
विपाके गो-वृषानाञ्च भेषजाग्नि क्रियासुच॥

याज्ञवल्क्यः।

यह बात सहजमें ही मालूम हो जाती है, कि रोगी और आहतके उपकारकी इच्छासे काम करते हुए यदि उसकी कुछ हानि हो जाये तो उसमें काम करनेवालेका कोई अपराध नहीं है। बल्कि यदि दो एक गौ चिकित्सा द्वारा प्राण लाभ करें अथवा रोग और कष्टसे छुटकारा पायें, तो बिना चिकित्साके मरनेकी अपेक्षा लाखगुना अच्छा है। मनुष्यकी डाक्टरी चिकित्सामें भी काटना चीरना आवश्यक होता है, इसीलिये किसी समयमें डाक्टरी चिकित्सा घृण्य और न करने योग्य समझी जाती थी। किसी उच्च वर्णका मनुष्य यह व्यवसाय न करता था। इसके बाद जिस दिनसे एक उच्चवर्णके मनुष्यने कलकत्तेके मेडिकेल कालेजमें छात्र रूपमें प्रवेशकर शवच्छेदन किया; उस दिन कलकत्तेमें तोप दागी गई थी। अब इस समय डाक्टरी चिकित्साके सम्बन्धका मनुष्यका भ्रमान्धकार अच्छी तरह दूर हो गया है इस समय चिकित्सामें प्राण रक्षाके लिये ब्राह्मणोंके शरीरमें भी अस्त्र प्रयोगकरनेसे कोई नहीं हिचकता, अब यह विचार भी किसीके मनमें नहीं उठता कि किस तरह ब्राह्मणके अङ्गमें विष या अस्त्र प्रयोग कर उसे आसन्न मृत्युसे बचानेको चेष्टा की जाय, इसी तरह गो चिकित्साके लिये भी यदि कुछ शिक्षित मनुष्य अग्रसर हों तो थोड़े ही दिनोंमें इस गो-चिकित्सामें भी बहुतसे शिक्षित मनुष्य दिखाई देने लगेंगे।

इस समय भी वेटरनरी स्कूलमें पशु चिकित्सामें ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य प्रभृति उच्च वर्णनके छात्र प्रवेश करते हैं। और वे चिकित्साके लिये गायके शरीरमें अस्त्र प्रयोग करते हैं। सदाशया अङ्गरेज गवर्नमेण्टकी इस ओर दृष्टि पड़नेके कारण इस विभागमें अब उच्च वर्णके मनुष्य प्रवेश करने लगे हैं, यदि उदार हृदय गवर्नमेण्टका इस ओर और भी मनोयोग आकर्षित हुआ तो इस गो-धन पूर्ण देशमें गो-चिकित्सकोंकी कमी न रहेगी। परन्तु गाँव गाँवमें गो-चिकित्सक मिलनेके

लिये यदि गवर्नमेण्ट वेटरनरी स्कूलसे पास किये हुए मनुष्य नियुक्त कर दें तो शीघ्रही इस ओर सर्व साधारणकी दृष्टि आकर्षित होगी और इस देशके अधिवासी स्वाधीनभावसे स्वावलम्बन द्वारा गो-चिकित्सा विद्याके सीखनेमें अग्रसर होंगे, तथा इस भारतमें गोलोकको रक्षा होगी। इस देशवासियोंके महोपकारी मूल्यवान गो-धनकी चिकित्साके विषयमें उनके ज्ञानचक्षु खुल जायेंगे। उस समय सुयोग और सुविचार होनेपर भी अपनी गायकी चिकित्सा न करानेसे वह समाजमें ग्लानिजनक और दूषणीय समझा जायेगा।

गो-चिकित्सा विद्यालयका स्थापन।

विद्यालयोंकी कमीकी ओर हमारी सरकारकी जिस तरह दृष्टि आकर्षित हुई है; उसीसे इस देशवासियोंकी आँखें खुलना आरम्भ हो गया है। यह विद्यालय प्रत्येक ज़िला, प्रत्येक सबडिवीज़न और प्रत्येक बड़े बड़े ग्रामोंमें जिस समय स्थापित हो जायगा उसी समय निद्रित भारतवासी फिर जाग उठेंगे। इस समय महानुभाव परदुःख कातर जैन सम्प्रदाय गो-रक्षाके लिये बहुत धन व्यय कर रहा हैं; परन्तु वे देशका प्रकृत उपकार नहीं कर सकते। कसाईके हाथसे हम गाय बैल बहुत दाम देकर खरीद लेते हैं इससे गाय बैलको रक्षा तो अवश्य होती है; परन्तु गो-मरीके कराल हाथोंसे हजारों गायोंकी रक्षा करनेपर प्रकृति पक्षमें गो-जाति और गो-वंशकी उन्नति होगी। यदि गो-जातिका हितकारी समाज इस ओर ध्यान दे, इस काममें धन व्यय करे तो शीघ्रही भारतमें गो-वंश फिर प्रतिष्ठित हो। जिस तरह गाँव गाँवमें अंगरेज़ी विद्यालय या प्राइमरी स्कूल स्थापित हुए हैं; उसी तरह गो-चिकित्सालय भी स्थापित होने चाहिये। इस स्कूलके विद्यार्थी ८ वर्षके बालकसे लेकर ५० वर्षके वृद्ध तक सभी होंगे। इन्ट्रेंस या मैट्रिक्युलेशन पास कर देशके असंख्य मनुष्य नौकरीकी पुकार मचा-

कर, इधर उधर दौड़ रहे हैं; परन्तु जब मनुष्य देखेंगे, कि गो-चिकित्सा पढ़नेसे कार्य्यकरी शिक्षा प्राप्त होती है, देशकी गायोंकी रक्षा होती है और साथही साथ धन भो प्राप्त होता है, तब बहुतसे मनुष्य पशु-चिकित्सा विद्यालयमें पढ़नेको तय्यार हो जायेंगे।

हमारे बोर्डके लोअर और अपर प्राइमरी स्कूलोंमें गो-पालन और गो-चिकित्सा विद्याके ग्रन्थोंको पढ़ाना आवश्यक है। उसोसे इस देशकी इस कुम्भकर्ण जातिको गाढ़ निद्रा भङ्ग होगी।

गो-रक्षाके कुछ उपाय।

गर्भवती गाय, गर्भधारणोपयोगी बाछीकी हत्या अथवा इस श्रेणीके गाय द्वारा हल जोतना अथवा उन्हें गाड़ीमें जोतना और उत्कृष्ट साँढ़ोंको बैल बना देना आईन द्वारा रोकना चाहिये। इस विषयमें हमारे देशके नेता आनरेबुल श्रीयुक्त सुरेन्द्रनाथ बन्दोपध्याय, आनरेबल श्रीयुत सीतानाथ राय, आनरेबुल आनन्दचन्द्र राय, आनरेबुल श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ राय, आनरेबल श्रीयुत राधाचरण पाल, आनरेबल श्रीयुत ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरी, आनरेबुल पण्डित मदनमोहन माल-बीय, आनरेबुल श्रीयुत मोतीलाल नेहरू प्रभृति महोदयगण यदि लेजिस्लेटिव काउन्सिलमें प्रस्ताव और निर्द्धारण करें तो देशका बड़ा उपकार होगा।

गायोंको फूका देना आईन द्वारा निषिद्ध हुआ है। इस आईनका उल्लङ्घनकर दुग्ध व्यवसायी गण यह अन्याय कार्य न कर सकें, उस ओर भी सरकारको तीव्र दृष्टि रखनी चाहिये। इस श्रेणीके कुछ अपराधियोंको यदि कठोर दण्ड दे दिया जायेगा तो सहजमें ही यह निष्ठुर प्रथा दूर हो जायगी।

गोहत्या बन्द होनेपर साथही साथ गोशिशुको हत्या भी बन्द हो जायेगी, यदि लोगोंको धर्म्म-बुद्धि स्फुरित हो तो वे गायोंको बहुत

दूहकर बछड़ोंके मारनेका कारण न बनेंगे। अथवा कसाईके हाथ गायें बेचकर गो-जातिका ध्वंस न करायेंगे ।

पहाड़ी और जङ्गली प्रदेशोंमें, प्रजा एवं गृहपालित पशुओंको श्वापदोंसे रक्षा करनेके लिये अस्त्र आईनको और भी शिथिलकर देना चाहिये । जिसमें वहाँके अधिवासी सहजमें ही बन्दूक और प्राण रक्षार्थ अस्त्र-शस्त्र प्राप्त कर सकें, उसका प्रबन्ध होना आवश्यक है। इस विषयमें भी कोन्सिलके मेम्बरोंको विशेष ध्यान देना चाहिये ।

चमड़ेके व्यवसाई और कसाई कितने ही अवैध और नृशंस उपायोंसे गोवध करते हैं, इन्हें आईन द्वारा कठोर दण्ड मिलना चाहिये। कठोर दण्ड प्राप्त होनेपर यह व्यापार बहुत कुछ घट जायेगा ।

१९१० ई० में किशोरगञ्ज स्टेशनसे १॥ मीलकी दूरीपर चमड़ेके दो व्यवसायी एक दूध देनेवाली गायको गोशालेसे चुराकर निर्जन स्थानमें ले गये और उन्होंने गायकी जीवित अवस्थामें ही बड़े नृशंस भावसे उसका चमड़ा उतार लिया । स्थानीय पुलिसकी विशेष चेष्टासे वे अपराधी पकड़े गये और उन्हें डेढ़ वर्षका कठोर कारादण्ड हुआ । उसके बादसे उस प्रान्तमें यह नृशंस कार्य बहुत कुछ कम हो गया है ।

गो-प्रदर्शनी स्थापन ।

१८७६ ई० तक इङ्गलैण्डमें गो-जातिकी कोई विशेषता न थी; परन्तु इसी सनमें वहाँ एक गो-प्रदर्शनी हुई । इस प्रदर्शनीसे ही गो-जातिकी उन्नतिकी ऐसी धारा वहाँ बह चली कि इसी थोड़े समयमें इङ्गलैण्डकी गायें उन्नतिकी चरम सीमापर जा पहुँची । इस समय वहाँकी गायें चौबीस घण्टेमें एकमन पाँच सेर तक दूध देती हैं, गो-प्रदर्शनीमें उत्कृष्ट गायें और साँढ़ सोने चाँदी तथा अन्यान्य धातुके बने पदक प्राप्त करती हैं । उनका एक एक विशेष नाम रहता है ।

ये गायें और उनके बच्चे बहुत ही ऊंची दरमें बिकते हैं। उत्कृष्ट गायके साथ कोई निकृष्ट बृषका संयोग नहीं करा सकता, अनुलोम प्रतिलोम विधिके दोष गुणपर वहां विशेष ध्यान रखा जाता है। हमारे इस देशमें भी स्थानस्थानपर यह प्रदर्शनी होनी चाहिये।

दुग्ध प्रदर्शनी—Milk show.

दुग्ध प्रदर्शनीके द्वारा भी इङ्गलैण्ड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया प्रभृतिकी गो-जातिकी बड़ी उन्नति हुई है। इन प्रदर्शनियोंमें गाय नित्य और एक वर्षमें कितना दूध देती है; उसकी परीक्षा की जाती है। गायें अपने मालिकके व्ययसे प्रदर्शनीमें रहती हैं, उनका दूध बेचा जाता है और उनके मालिकको दाम दे दिया जाता है। जो गाय २४ घण्टेमें अधिक दूध देती है अथवा जो वर्षमें सबसे अधिक दूध देती है, वह स्थिरकर उसके मालिकको इनाम दिया जाता है। इस देशमें भी यदि सरकार अथवा गो-हितेच्छुक धनीगण ऐसी प्रदर्शनी बनायें तो अवश्यही गो-जातिकी उन्नति होगी।

मक्खनकी परीक्षा Butter Trial.

इस प्रदर्शनीमें किस गायके दूधसे कितना मक्खन निकलता है उसका निर्णय किया जाता है, ऐसा भी होता है, कि किसी किसी गायने दूध देनेमें तो प्रदर्शनीमें प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है; परन्तु मक्खनकी प्रदर्शनीमें वह पुरस्कार नहीं प्राप्त कर सकी है। जिसके दूधसे अधिक मक्खन निकलता है वही प्रथम पुरस्कार प्राप्त करती है। ऐसा भी होता है, कि अधिक दूध देनेवालीके दूधमें जलका भाग अधिक रहता है परन्तु जो दूध थोड़ा देती हैं, उसके दूधमें मक्खन अधिक निकलता है। गाय रखनेवाले गायोंको ऐसा भोजन दिया करते हैं, जिससे मक्खन अधिक निकले, ऐसी गायें शीघ्रही उन्नतिको

चरम सीमापर जा पहुंचती है। यह प्रथा भी देशमें प्रचलित होना आवश्यक है।

समवाय समितिकी स्थापना।

इङ्गलैण्डमें एक जातिकी गायकी उन्नतिके लिये बहुतसी समितियाँ स्थापित हुई हैं, प्रत्येक समिति विशेष विशेष जातिकी गायकी उन्नतिके लिये प्राणप्रण और अक्लान्त चेष्टा कर बहुतही आश्चर्य्यजनक और असम्भावित उन्नति करनेमें समर्थ हुई है। लाल लिङ्कलन जातीय गायोंकी उन्नतिके लिये १८६५ ई० में एक समवाय समिति गठित हुई थी। १६०६ इ० में उसी स्थानपर ३२० समितियाँ स्थापित होकर अदम्य उत्साहसे गो-जातिकी असीम उन्नति हुई है। १८६६ ई० में इङ्गलैण्डमें लाल-लिङ्कलन जातिकी गायका नाम कोई न जानता था; परन्तु इस थोड़ेही समयमें इङ्गलैण्ड क्या, समस्त युरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रिकामें इसकी बड़ीही सुख्याति हुई है। इस जातिकी असंख्य गायें ऊँचे दाममें विदेश भेजी जाती हैं। साथ ही उस देशमें प्रभूत अर्थागम भी होता है, सरकारकी सहायतासे ऐसी समवाय समितियाँ स्थापित होनेपर बड़े सहजमें ही भारतकी गो-जातिकी उन्नति होगी।

गो-जातिका वंशावलि-ग्रन्थ।

Heard Book.

एक एक समितिके अधीनस्थ गो-स्वामी गणका और एक एक जातिकी गायका नाम उनके वंशावलि ग्रन्थमें लिखा रहता है।

हमलोगोंको सुरभि, नन्दिनीको भाँति उनके देशमें लेडी, लोरा, डचेज़, ब्यूटी प्रभृति गायोंका देशविश्रुत नाम है। साँढ़ोंमें हर्क्यू-लिस, फेवारिट, कमेट, स्पिरिट प्रभृति साँढ़ भी इसी तरह बड़े ही प्रसिद्ध हैं। उनकी सन्तान किस गायसे उत्पन्न हैं, यह भी लिखा

रहता है। उत्कृष्ट गोसे उत्कृष्ट वृषका सम्मिलन होनेके कारण एक आश्चर्य उत्कृष्ट जातिकी गायें उत्पन्न हुई हैं। दूध मक्खन आदि देनेमें इन्होंने अपने पूर्व पुरुषोंको अतिक्रमण किया है, इसीलिये इङ्ग्लैण्डमें एक अद्भुत नवीन जाति—दुग्धदातृ पशु उत्पन्न हुए हैं। वर्तमान समयमें इङ्गलैण्डकी गो-जातिपर दृष्टि डालनेसे यह नहीं मालूम होता कि वे वसुरस जातिके जङ्गली हिंसक पशु या इलैण्ड नामक मृग जातीय पशु हैं। ये एक नवीन जीव ही हो गये हैं; इस देशमें उत्कृष्ट गायोंके वंश-विवरण युक्त ग्रन्थका प्रकाशन होनेसे देशकी गो-जातिकी उन्नति होगी।

कन्ट्रोलिं एसोसियेशन स्थापन

Controling Association.

इङ्गलैण्डके दस बारह गोपालक सम्मिलित होकर एक गोष्ठी स्थापन करते हैं और किसी एक गोतत्वविद विद्वानको नियुक्तकर अपनी गायोंके दूधको परीक्षा करवाते हैं। वह गोतत्वविद् एक एक दिन एक एक गोपालकी गायोंके दूधको परीक्षा द्वारा यह निश्चय करता है कि उस दूधमें मक्खनका कितना अंश है। और उसीके अनुकूल उन गायोंके खाने पीने तथा निवास-स्थानके सम्बन्धमें परामर्श दिया करता है। वह गोतत्वविद् दो सप्ताहके बाद एकबार प्रत्येक गोपालककी गायोंकी परीक्षा किया करता है और गोपगण उसके परामर्शके अनुसार गायोंके खाद्य आदिमें परिवर्त्तन करते हैं। उसी गो-तत्वविद् की सहायतासे गो-पालकगण यह भी निश्चय कर सकते हैं, कि चेष्टा-यत्न द्वारा उनकी किस गायका दूध बढ़ाया जा सकता है और जिस गऊका दूध बढ़नेकी सम्भावना नहीं रहती उसे बेचकर दूसरी उत्तम गाय खरीद सकते हैं। इस प्रकार इङ्गलैण्डके गो-पालनेवाले अपनी उन्नति साधनमें समर्थ होते हैं। इस प्रकारका

एसोसियेशन स्थापितकर कार्य करनेसे बहुतही थोड़े समयमें अत्याश्चर्य उन्नति साधन की जा सकती है ।

इस देशके शिक्षित अथवा अर्द्ध शिक्षित गो-पालकोंको शिक्षा तथा उत्साह दानके अभिप्रायसे गो-गोष्ठ, गो-खाद्य, वत्स-पालन दही, दूध, घी, मक्खन, आदि आदि विषयोंके उत्तमोत्तम लेखोंसे पूर्ण पत्र-पत्रिकाओंका प्रकाशित करना गो-वंशकी हितकामना करने वालोंका अवश्य कर्तव्य है । विलायतकी डेयरी स्टूडेंटस् युनियन समिति एवं कतिपय विलायती गो-तत्वविद् पण्डितोंने इस देशमें भी डेयरि एवं डेयरीफारमिं इन इण्डिया नामक पत्रिका प्रकाशित की है । किन्तु दुर्भाग्य एवं दुःखकी बात है कि हमारे देश वासियोंमेंसे कोई इस समितिका सदस्य अथवा इस पत्रिकाका ग्राहक नहीं । इस प्रकारकी पत्रिका हमारी जातीय भाषामें, प्रकाशित कर इस देशके गो-पालकोंको शिक्षा देना चाहिए ।

पिंजरा पोल और गो-हस्पताल स्थापन ।

दूध न देनेवाली रोगी गायोंके पालन करनेका सामर्थ्य इस देशके धनहीन ग्वालोंमें नहीं, सुतरां इस प्रकारकी गायोंकी रक्षाका समुचित प्रबन्ध इस देशकी गो-जातकी रक्षा तथा वृद्धिसे सम्बन्ध रखनेवाली एक प्रधान एवं गुरूतर समस्या है । इस देशके दरिद्र गोपगण जो अर्थाभावके कारण स्वयं ही दोनों समय भरपेट भोजन नहीं पाते, कोरे धर्म्म भयके कारण चर्म्म व्यवसायीके, उपस्थित प्रलोभनोंका परित्यागकर दूध न देनेवाली गायोंका रक्षण वा पालन करनेमें अर्थ-व्यय करेंगे इस प्रकारकी आशा करना भी अयुक्ति सङ्गत है । हाँ, यदि गोजातिकृत महोपकारका प्रत्युपकार करनेके विचारसे इस देशके हिन्दू, जैन, सिक्ख, मुसलमान--सब जाति और सब धर्मके धनकुबेर गण सम्मिलित होकर स्थान-स्थानपर बन्ध्या, दुग्धहीना, पीड़िता, गायों तथा

साँढ़ोंके पालनके लिए गो-रक्षिणी सभा तथा उनके अधीनस्थ पिञ्जरा-पोल अथवा गो-हस्पताल स्थापित करदें तो गो-रक्षा होना सम्भव है। इस गो-रक्षिणी सभाके तत्वावधानमें गो-चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ और औषध रखना भी उचित है।

उक्त गोरक्षिणी सभाको देख रेखमें यदि प्रत्येक गृहमें एक थैली रख दी जाय जिसमें गृहस्थ गोग्रास रूपसे प्रति दिन एक मुठ्ठी अन्न डाल दिया करें और सप्ताहके अन्तमें इन थैलियोंका अन्न संग्रहकर लिया जाय तथा वृषोत्सर्ग श्राद्ध, विवाह एवं अन्य उत्सवादिके कर्त्तासे सामयिक दान ग्रहण करनेका प्रबन्ध किया जाय तो उस संगृहीत अर्थसे गो-रक्षिणी सभा और पिञ्जरापोलका व्यय निर्वाह हो सकता है।

इस प्रकारके कार्य्यमें एतद्देशीय हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिख आदि प्रत्येक सम्प्रदाय की सहानुभूति लाभ की जा सकेगी। जब लोग देखेंगे कि उक्त गो-रक्षिणी सभा उनकी मूल्यवान पीड़ित गऊकी चिकित्सा और पथ्यका यथोचित प्रबन्ध करती है तब वे प्रसन्नता पूर्वक उस गोरक्षिणी सभाकी सहायता आवश्यक धन दान द्वारा करेंगे। इस प्रकार ३२ करोड़ मनुष्योंको सहानुभूति प्राप्त करनेपर क्या दुःख रह जायगा?

यदि आदमी पोछे सालमें दो पैसा भी प्राप्त हो तो एक करोड़ रुपये सालकी आय हो सकती है।

इन बातोंको कार्य्यमें परिणत करनेके लिए देश-सेवक समाज और हितचिन्तक साधु पुरुषोंकी आवश्यकता होगी।

दस वर्षमें, इस प्रकार संग्रह करनेसे, दस करोड़ रुपये एकत्र किये जा सकेंगे और यह कार्य जब साधु पुरुषोंद्वारा होगा तो केवल भारत ही क्यों विदेशोंसे भी अर्थ संग्रह किया जा सकेगा। इस प्रकार भारतव्यापी ही नहीं विश्वव्यापी गो-रक्षाका प्रबन्ध हो सकेगा।

क्या भारतमें ऐसे १० मनुष्य नहीं जिनका प्राण परोपकारी वाक्शक्तिहीन गोजातिकी दुर्द्दशाको देखकर व्याकुल हो। यदि गो-जातिके दुःखसे दुःखी होनेवाले दस मनुष्य भी हों तो इस देशमें निश्चय ही गोजाति की पुनः प्रतिष्ठा होगी। गोधनसे भारतवर्ष पूर्ण होगा। वे दस मनुष्य उत्साहित होकर समग्र भारतको प्रबोधित करें। समग्र भारतव्यापी सुश्रृङ्खलित संगठन करके अपना जीवन उत्सर्ग करके स्थान स्थानमें गोरक्षिणी सभा और गोहस्पताल स्थापन करके गोवंशकी रक्षा करें। भारतवर्ष गोधनसे परिपूर्ण हो और गोजातिका दुःख दैन्य दूर हो।
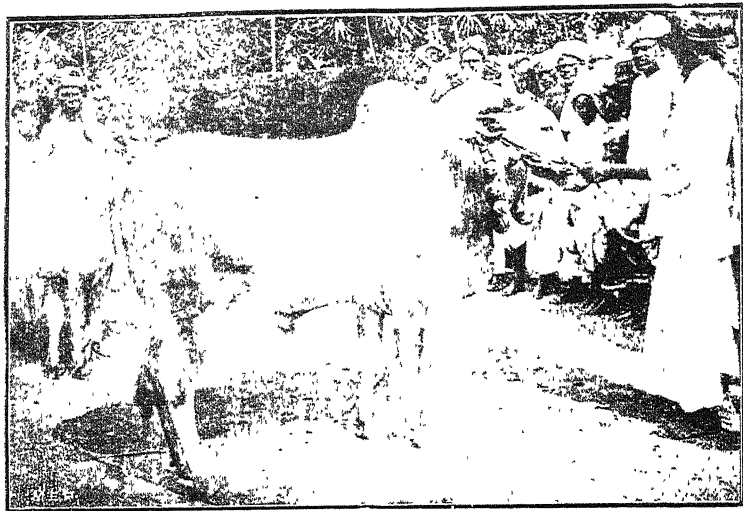
पलिकलम षांढ़ ।
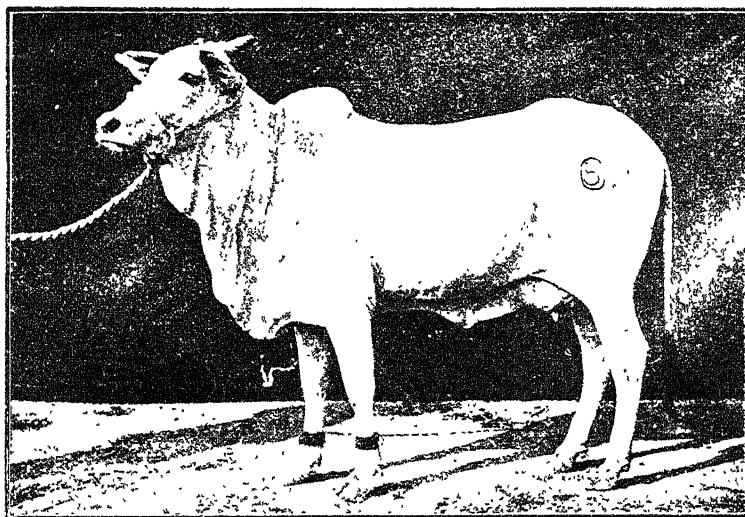
नेलोर बत्सतरी

(ब्रेजिल देशमें लाई गई) ।

दूसरा खण्ड ।

पहला परिच्छेद ।

गो ।

गावोह जज्ञिरे तस्मात् तस्मात् जाताः अजावयः । (१)

गम् धातुसे गमन करना अर्थमें कर्तृवाच्यमें या इसके द्वारा जाया जाता है अर्थात् वृष (वाहन) द्वारा चला जाता है अथवा गो-दान द्वारा स्वर्ग गमन किया जाता है, इस अर्थमें करणवाच्यमें गो शब्द निष्पन्न हुआ है (२) ये स्वनामख्यात गलकम्बल (Dewlap) विशिष्ट (३) चतुष्पद स्तनपायी जन्तु हैं। इनका खुर दो भागोंमें विभक्त होता है। इनके कन्धेमें ककुद या स्थूल मांसपिण्ड रहता है। इनके माथेमें दो सींगें और पिछे दीर्घ पूंछ रहती है। इनका समूचा शरीर सफेद, काले, पीले भूरे, अनेक रङ्गके अथवा एक रंगके सूक्ष्म बालोंसे ढका रहता है। इनकी पूंछका बाल अपेक्षाकृत स्थूल और लम्बा होता है। इन्हें ३२ दांत होते हैं। इनके नीचेके दोनों चौघड़ोंमें छः छः करके १२ चबानेके दांत और बीचमें ८ छेदनेके दांत होते हैं।

---

(१) ब्रह्ममय यज्ञसे गो प्रादुर्भूत हुई और उसीसे बकरी और भेड़ पैदा हुई। ऋग्वेद पुरुषसूक्त।

(२) गच्छति इति गम् धातोः कर्त्तरि ड-प्रत्ययेन सिद्धः (रूढ़ शब्द) गच्छति अनेन वृषस्य यानसाधनत्वात् स्त्रीगव्याश्च दानादिभिः स्वर्गसाधनत्वात् तथात्वं, करणवाच्ये ड ; योगरूढ़ शब्द ।

(३) गलकम्बलवत्त्वं गोत्वम् ।

ऊपरके दोनो चौघड़ोंमें भी इसी तरह बारह चबानेके दांत होते हैं। ऊपरकी पंक्तिमें छेदनदन्त नहीं होते। उसी स्थानमें दृढ़ स्थूल दाढ़ मात्र होता है। ये नीचेकी पंक्तिके ८ छेदन दांत और ऊपरकी पंक्तिके उसी दाढ़के सहारे खाद्यद्रव्य छेदन करके चौघड़के चर्ब्बनदन्तकी सहायतासे खाया हुआ पदार्थ निगलते हैं एवं आवश्यकतानुसार उस भुक्त पदार्थको उगलकर धीरे धीरे चबाकर खाते हैं। इसीको पागुर करना कहते हैं।

गाय, भैंस, ऊंट हरिन, भेड़, बकरी, जन्तुओंका खुर द्विखण्डित होता है। उन्हें चार पाकस्थली होती है – १ वृहदाकार पाकस्थली, दूसरी मौचाक सदृश छोटी पाकस्थली तीसरी वहुतसे पर्दों वाली पाकस्थली, चौथी जीणकरी पाकस्थली। जिन जन्तुओंको इस तरहकी चार पाकस्थली रहती है वे सभी पागुर करते हैं। इनके भुक्त द्रव्यका कठिन भाग प्रथम पाकस्थलीमें जमा होता है पीछे आवश्यकतानुसार वे उसे उगलकर चबाया करते हैं। इस तरह कड़े पदार्थ भी लारके संयोगसे मुलायम हो जाते हैं, और फिर चबानेसे पतले हो जाते हैं, इसके बाद दूसरी और तीसरी पाकस्थलीके भीतरसे चौथीमें जाकर परिपाकका कार्य्य पूराकर देहको पुष्ट करते हैं। इनमें यह विशेषता है कि ये एक दिनका भोजन एकबार निगल जा सकते हैं, इस लिये दिनमें एकबार उपयुक्त आहार मिलनेसे ये दीर्घपथ अनाहार तै कर सकते हैं।

मेष, बकरे, हरिन, ऊँट, भैंस, गवय; और गो प्रभृति पशुओंके खुर तथा पाकस्थलीके गठनमें जिस तरह समानता होती है उसी तरह इनमें विशेष सादृश्य भी दिखाई देता है,। हरिणी और भेड़ीको सींग नहीं होती; परन्तु गाय, भैंस, गवय और छाग इनके नर और मादा दोनों ही के सींगें होती हैं। परन्तु नरका सींग अपेक्षाकृत बड़ा होता है, बैलका ककुद गायके ककुदसे बड़ा

रहता है। इनमें भी कितनी ही जातिके हरिन, भैंस, गवय और गाय, बैलोंमें आकृतिगत इतना सादृश्य हैं; कि एक जातिको देखकर दूसरी जातिका भ्रम होता है। इलाण्ड (Eland) हरिन, नू (Gnu) कुडू (Koondo) गायके साथ एवं चिलिङ्घहाम कैटल (Chilling-ham cattle) गायके साथ बड़ा ही सौसादृश्य है। स्काटलैण्डके हाइलैण्ड कैटल और भैंसकी बाहरी आकृति प्रायः एक समान है। एनो (Anoa) नामक हरिन (Antilope) और भैंसमें बहुत थोड़ा फर्क है।

जावा, बालीद्वीप, मलक्का प्रभृतिसे बोर्निओ तक टापूओंमें वेण्टेङ्ग, (१) नामक एक प्रकारके पशु हैं। गोजातिके अन्य पशुओंकी अपेक्षा गो-से इनका विशेष सादृश्य देखा जाता है। इनके पीठका अंश विलायती गायके समान रहता है और कांधेसे पूंछतक एक सीधी रेखा होती है।

ब्रह्मदेशमें भी वेण्टेङ्ग जातीय पशु हैं, वहां उन्हे (Tsine) सिन कहते हैं।

भारतवर्षमें नील गाय नामक पशु हैं। यद्यपि यह देखनेमें गायकी भांति दिखाई देते हैं; परन्तु वह गाय नहीं, बल्कि हरिन हैं। उनमें मादाको भी सींग नहीं होती, हिन्दू इसे भी गाय कहकर सम्मान किया करते हैं (२) यह सम्मान केवल उनके नामके कारण है।

---

(1) The benting is more like some domestic cattle than any of the preceeding, being nearly straight backed; it is short coated and white stockinged like the Gour

(P. 28 wild beasts of the world)

(2) The Nilghai...is the largest of the few antelopes of Asia. With Hindoo section of these it is secred animal,

भारतवर्षसे लेकर मलक्का द्वीप तक (Bibos Gourus) नामक एक प्रकारके जङ्गली गायकी तरहका बृहदाकार पशु दिखाई देता है, ये आठ फुट तक ऊँचे होते है, कोइ कोई उन्हें आसाम प्रदेशके गोवाल नामक पशुके पूर्व पुरुष कहते हैं (१)

भैंस, तथा गायमें विशेष सादृश्य है, ये दूध देने और हल चलानेमें गो-जातिकी भाँति हो विना किसी भेदके व्यवहार किये जाते हैं; परन्तु इनके शरीरके रोयें गो-जातिके रोयेंके समान नहीं होते, उन्हें ककुद और गल-कम्बल भो नहीं होता। उन्हें जलचर जन्तु भी कह सकते हैं, क्योंकि भैंस जल या कीचड़में सब शरीर डुबाकर जलीय घास खाते हैं। (२)

बाइसन (Bison) नामक एक जातीय बोस (Bos) श्रेणीके

---

simply because its name means "Blue cow" so that sanctity of the bovine race has been absurdly transferred to it.

Page 57

(1) He......seems to be the ancestor of the wild beast of the world, semi domesticated cattle called Goyals kept by the native hill tribes in Assam.

Page 28 the wild beast etc.

(2) It is naturally, however, an ease loving creature, delighting to wellow in water or mud in which it immerses itself to the eyes and ears. It swims well and walking as when swimming, carries the nose high. So that it is on a level with the back. Its food is the course vegetation of the marshes.

Page 30 wild beast of the world.

जङ्गली गो हैं। इनमें यही विशेषता है, कि इनके शरीर गले और मस्त-कमें बड़े बड़े रोये होते हैं।

अमेरिकाके बाइसन वहांके गायोंसे जोड़ खा सङ्कर वत्स उत्पन्न करते हैं। इस सङ्कर जातिका नाम केटालूस (Cattaloos) है। इनसे विलायती गायोंका बहुत कुछ सादृश्य हैं।

तिब्बत और चीन देशके केन्सू प्रदेशमें चमरी गाय नामक एक जातीय पशु है। ये युरापीय वस्टरस जातिके गो और बाइसन इन दोनों श्रेणीके मध्यवर्त्ती (Intermidiate) पशु हैं। (१)

गेइनी नामक एक गो-जातीय पशु हैं। ये बड़े बकरेकी भाँति होते हैं। इनमें गायोंके समान दूध देनेका उतना सामर्थ्य नहीं है। इन्हें शौकीन मनुष्य खिलौनेकी तरह पालते पोसते हैं, अकबरशाहके समयमें इस जातिके गाय और बैल थे। (२)

गो-के सदृश्य गवय, गयाल या मिथुन नामक एक जङ्गली पशु कूचबिहार, मैमनसिंह, त्रिपुरा, श्रीहट्ट, आसाम, और चटगाँवके पहाड़ी प्रदेशोंमें जङ्गली और गृहपालित अवस्थामें दिखाई देते हैं। वहांके अधिवासी इनसे हल जोतनेका काम लेते हैं और उनका दूध भी पोते हैं। कभी कभी इन गवयोंसे गो-जातिका सम्मिश्रण होते भी देखा जाता है। गयाल बड़े ही दृढ़काय और बलिष्ठ होते हैं। इनकी उच्चता साधारण गाय बैलोंसे अधिक रहती है, परन्तु गो-जातिका विशेष चिह्न गलकम्बल उन्हें नहीं रहता और इनका ककुद भी उतना ऊँचा नहीं होता। विलायती वस्टरस जातीय गौओंकी आकृतिसे इनकी प्रकृति बहुत कुछ मिलती है।

---

(१) विस्तृत विवरण पीछे दिया जायेगा।

(२) There is also a species of oxen called gaini, small like gut horses, but very beautiful.

Ain i-Akbari P. 649.

यूरास् (जर्मन यूरच्) नामक यूरोपके जङ्गलोंमें घूमनेवाला वृहद्-काय सिंह, व्याघ्र, भालू, गैंड़ा प्रभृतिकी भाँति एक जङ्गली जानवर थे। वे सात फुटसे अधिक ऊँचे होते थे। उनकी सींगे भी तीन फुट लम्बी होती थीं। जूलियस सीज़ियरने इनका उल्लेख किया है और इन्हें हाथीसे कुछ छोटा बताया है। (१) इनके शरीरके रोयें काले या भूरे थे, अब इङ्गलैण्डके किसी किसी रक्षित बागकी जङ्गली गायें इसी आकृतिके काले बच्चे उत्पन्न करती हैं।

विलायती गाय ।

पूर्वोक्त यूरास नामक जङ्गली हिंस्र पशुसे इङ्गलैण्ड यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, और न्यूज़िलैण्ड प्रभृतिके गवयोंका शारीरिक गठन भारतीय गो-से बिलकुल ही भिन्न है।

भारतीय और विलायती गायका पार्थक्य ।

पहले ही कह चुके हैं, कि भारतीय गायोंका लक्षण "गलकम्बल-त्वम्" है। जिन पशुओंमें ये लक्षण नहीं होते वे अन्य लक्षणोंमें गोके सदृश्य होनेपर भी गो नहीं बल्कि गवय हैं; विलायती गोमें भी यह लक्षण नहीं दिखाई देता। इसलिये इस जातिके पशु गो नहीं—गवय हैं (२)

भारतीय गोमें एक विशेषता होती है, वह यह है, कि इनको पीठपर ककुद् गज (hump) रहता है। सिंहकी अयाल केशर मयूरके पंखोंकी नाईं साँढ़की ककुद् भी एक सुशोभन और दर्शनीय

---

(1) Jnlius Cæsar says it (urus) was little smaller than an elepnant. Page 28. The wild beast of the world.

(२) "गोसदृयः गवयः।"

अङ्गोल षांढ़ ।
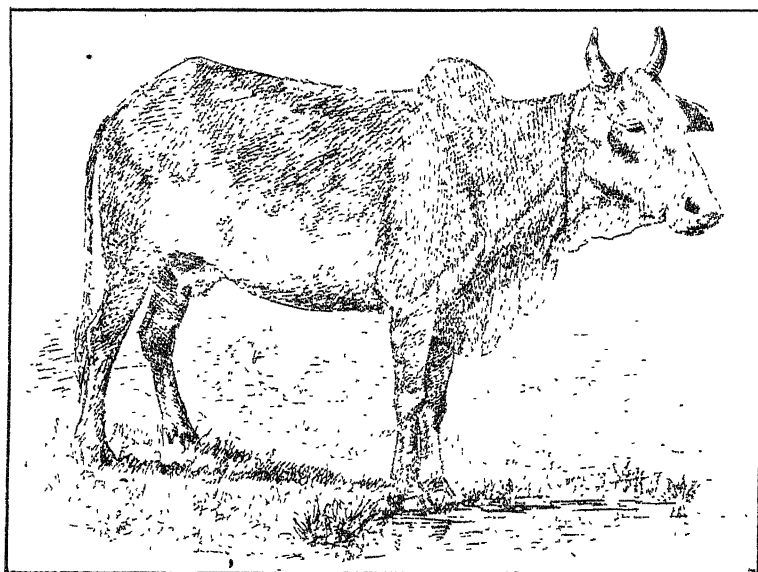
बङ्गालकी गो ।

अंग हैं। प्राणितत्वविदोंके मतसे यह ककुद युक्त गो जेबू (Zebu) श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

विलायती बस्टरस गायको यह कूंटी नहीं होती। पूर्व्व लिखित नाना प्रकारके गो-सदृश पशुओंकी भाँति विलायती गाय भी एक प्रकारका गवय है। ये हमारे शास्त्रके मतानुसार गो-की श्रेणीमें परिणत नहीं किये जा सकते, पूर्वोक्त यूरोपीय यूरस नामक मृग-जातीय नरहिंसक पशुसे उत्पन्न हुए हैं और वहाँके विज्ञानविद् चिर अध्यवसायी अधिवासियोंके विशेष यत्न और चेष्टासे ऐसे दूध देनेवाले पशुके रूपमें परिणत हो गये हैं।

भारतीय गायें मनुष्योंकी नित्य सहचर हैं। विलायती गायें भिन्न भिन्न देशोंमें जाकर भिन्न भिन्न स्थानोंका जल-वायु और घासके परिवर्त्तनके साथ ही साथ बहुत कुछ बदल गई हैं। युरोप और इङ्गलैण्डके बहुतसे स्थानोंमें इस वृहतकाय गो-जातिके पूर्व-वंशका कङ्काल दिखाई देता है। गृहपालित गो-वृषकी उत्पत्तिका स्थान एशिया देश है। इस देशकी जंगली गायें और गृहपालित गायें किसी कारणसे घरसे बाहर निकल जंगलोंमें वास करती हैं। विलायती सभी गायें जंगली हैं। केवल मनुष्यके असाधारण यत्न और चेष्टासे वर्त्तमान आकारके पशुरूपमें परिणत हो गई हैं। भारतीय गो-पशु विलायतके अधिकांश साँढ़ोंसे अधिक शान्त और बुद्धिमान होते हैं। मालूम होता है, कि अपने मालिकके साथ बहुत दिनों तक एकत्र रहनेके कारण उनमें इतना गुण आगया है। (१)

---

(1) The parent race of the ox is said to have been much larger than any of the present varieties. Urus in his wild

भारतीय जेबू गो अफगानिस्थान, फारिस और अफरिकाके भिन्न देशके किसी किसी स्थानमें दिखाई देती हैं, इसके अतिरिक्त और कहीं भी गायें नहीं हैं ।

गवय, महिष, वाइसन; चमरी, नीलगाय, गौर, वेण्टेङ्ग, इलाण्ड, नू, कूडू और युरोपीय बोस्टोरस जातीय पशु दूध देते और कृषिकार्यमें गाय बैलकी भाँति व्यवहृत तो होते हैं ; परन्तु वे भारतीय गो-पशु नहीं हैं । यूरोपीय काउ (cow) को गाय समझना एक भ्रमपूर्ण

---

state at least, was an enormous and fierce animal ; and ancient legends have thrown around him an air of mystery. In almost every part of the continent, and in every district of Great Britain, Skulls, evidently belonging to cattle have been found, far exceeding in bulk any now known.

The domestic bull and cow are probably of Asiatic origin. In those countries where they are found in a wild state, they are evidenly descended from domestic animals which have been let loose, or have strayed from the habitation of man.

The urus which ranged wild in the Hereyrian forest, and was a dangerous enemy to those who encountered him, appears to have differed little from the common bull. If he was an indigenous wild animal, he was perhaps the original stock from which our different European varieties sprung, modified by climate and difference of pasture.

The small hindoo ox···is more nearly allied to the buffalo. They are tame, and more intelligent than the generality of our oxen, owing probably to their being more associated with their masters.—*Cattle Sheep and Deer by Macdonald.*

विश्वास हैं ; परन्तु युरोपीय उक्त काउ (cow) नामक गवय और भारतीय गो-जातिमें वाह्यिक और आभ्यन्तरिक आकृति, और उत्पत्तिका वंश परम्परागत बहुत पार्थक्य दिखाई देता हैं। युरोपीय उक्त काउ इस देशमें विलायती गायके नामसे प्रसिद्ध है। युरोपीय क्रम-विकाशकारी पण्डितोंके मतसे पांच अंगुलि-युक्त पद-विशिष्ट पशुके क्रम-किाशसे इन गायोंकी उत्पति हुई है। सृष्टिके तृतीय स्तरमें पैरकी पांच उंगलीवाले एक प्रकारके पशु विद्यमान थे। उनके मुँहकी दोनों दाढ़ोंमें दांत भी बिद्यमान थे। समय पाकर उनके पैरोंकी मध्यमांगुलि बढ़कर अंगूठे और दूसरी उँगलोसे मिल गये और चौथी तथा पांचवीं उँगली मिलकर दो खुरमें परिणत हुए और दाँतोंमें सब दाँत गिर गए और ऊपरकी दाढ़के बीचके दाँत गिरकर क्रमशः वर्त्तमान गो-रूपमें परिणत हुए हैं। यह परिवर्त्तन मायोसीनी (miocene) युगके शेष और प्लायोसिनी युगके पहले ही संघटित हुए हैं। यूरोपमें दीर्घश्रृङ्गी ककुदविहीन (Bos Taurus) बोस्टोरस जातीय गायकी उत्पत्ति हुई है। इङ्गलैण्डमें (ice age) बरफ युगमें जङ्गली सिंह, व्याघ्र, भालू गैंड़ और इस जङ्गली गोजातिके पूर्वपुरुषगण, मनुष्यके शत्रुरूपमें विचरण करते थे। ऐतिहासिक समयके पहले ही लौहयुगमें (Iron age) सात फुट ऊँचे और तीन फुट लम्बे सींगवाली इस जातिका कङ्काल भूगर्भमें पाया गया है। ब्रोञ्ज युगमें (Bronze age) पहले स्विट्जलैण्डमें इस जातिके गाय बैल मनुष्यके कार्य्यमें गृहपालित पशुरूपमें परिणत होनेका चिन्ह है। भूगर्भ खननसे इस बातका प्रमाण मिलता है, कि यूरस जातीय पशु इङ्गलैण्ड और नेओलिथगणके गृहपालित हुए हैं। इङ्गलैण्डके वार्हिल, न्यूस्टेड प्रभृति रोमन स्टेशनोंमें इन सब गायोंका कङ्काल दिखाई देता है। इन प्रमाणोंको देखनेसे मालूम होता है, विलायती गाय, जङ्गली, हिंस्र, मनुष्योंके भीषण शत्रु पशु से उत्पन्न होकर

केवल मनुष्योंकी यत्न और चेष्टासे वर्त्तमान पालतू पशु हो गए हैं। यूरोपीय गायोंके कन्धेसे लेकर पीठ पर्य्यन्त एक सरल रेखा दिखाई देती है। और इनके दोनों पार्श्वमें १३ तेरह करके २६ पंजरास्थि होती है। ये गायें ३०० दिन गर्भ धारण करती हैं। इनके बछेड़े मातृ-गर्भसे दन्त सहित भूमिष्ठ होते हैं। विलायती गायोंके कान छोटे और बादामी रङ्गके होते हैं और उनके माथे पर घने लम्बे और चिकने बाल होते हैं। विलायती गायोंका स्वर Bellow मृदु होता है।

भारतीय तथा एशियाके अन्य स्थानोंकी गायें मनुष्यकी नित्य और चिर सहचर हैं। जिस समय तकका भारतवासियोंका इतिहास पाया जाता है उसी समय तक भारतीय गोगणका इतिहास पाया जाता है। पहले कह चुके हैं कि गोजाति भारतीय आर्यों के नामसे सम्बद्ध है। ककुद (कूबड़) के नीचेसे पूंछ पर्यन्त भारतीय गोकी पीठ धनुषाकार टेढ़ी होती है। भारतीय गायके दोनों पार्श्वमें चौदह चौदह करके २८ पंजरास्थि होती है। इस सम्बन्धमें मनुष्य और बनमानुषमें जितना पार्थक्य है उतना ही भारतीय जेबू और विलायती टोरस (Torus) जातीय गायोंमें भी है।

भारतीय जेबू जातीय गायों के भार्टिवी की संख्या विलायती गायके भार्टिवी से अधिक होती है। भारतीय गायें २७० से २८० दिन के बीच वत्स प्रसव करती है। और भूमिष्ठ होने के बाद बछड़ों को दांत निकलते हैं। भारतीय गायोंके कान अपेक्षा कृत बड़े और उनका अग्रभाग तीक्ष्ण होता है। किसी किसी भारतीय गाय के कान खरगोश के कानकी तरह लटकते रहते हैं। विलायती गाय के मृदु स्वर की अपेक्षा भारतीय गायों का उच्च हम्बारव भारतीयों के कानों को श्रुति मधुर प्रतीत होता है।

भारतीय निम्न दल दल की गायों के सिवाय अन्य गाय जल में उतरकर घांस चरना पसन्द नहीं करतीं किन्तु विलायती गोगन भैंस

की तरह पानी में डूब कर घास चरना खूब पसन्द करती हैं। भारतीय गायोंके माथेपर विलायती गायों की भाँति बाल नहीं होते। भारतीय गायें प्रकृति और वंश परम्परासे शान्त और बुद्धिमान होती हैं। किन्तु विलायती गायें हिंस्र और बुद्धिहीन होती हैं। भारतीय गायें मनुष्य की चिरसहचर और आदर करने से वशी भूत हो जाती है। विलायती गायें मोम के पुतले की तरह सुकुमार होती हैं और परिश्रम नहीं करसकतीं। भारतीय गायें जैसी परिश्रमी होती हैं वैसीही कष्टसहिष्णु भी होती हैं। भारतीय बैल घोड़ेका काम देते हैं। जिस समय रेल-पथ नहीं था उस समय बङ्गालके अवस्थापन्न पुरुष काशी, मथुरा, द्वारिका, काश्मीर और सेतुबन्ध पर्य्यन्त बैल-गाड़ी द्वारा ही यातायात किया करते थे।

३२४ वर्ष पूर्व १८६० ई० में अबुल फ़ज़लने अपनी आईने-अकबरी नामक पुस्तकमें लिखा था, कि ये बैल २४ घण्टेमें १२० मील चल सकते थे; और चलनेमें द्रुतगामी घोड़ों को भी मात करते थे। ये चलने के समय मलत्याग पर्यन्त नहीं करते थे। (१)

दीर्घ पथ चलनेमें भारतीय बैलों की समानता दूसरे जीव नहीं कर सकते। पृथिवी के अन्य घोड़ों की अपेक्षा अरबी घोड़े श्रेष्ठ होते हैं उसी आकार आकृति, प्रकृति और सहिष्णुता प्रभृति सद्गुणों में प्रथ्वी के सर्वदेशीय सर्वश्रेणीके बैलों में भारतीय बैल श्रेष्ठ होते हैं। इस सम्बन्ध में कैटल आफ सदर्न इण्डिया नामक ग्रन्थ और अङ्गरेज

---

(1) They will travel 80 kos (120 miles) in 24 and surpass even swift horses, nor do they dung whilst running.

Ain-I-Akbari p. 149 (P. T. by Blockman, M. A.)

वालेस साहब का अभिमत अङ्गरेजी जाननेवाले पाठकों के लिए नीचे उद्धृत किया जाता है। (१)

ग्रीष्मकालकी कड़ी धूपमें, गाड़ी खींचना, हल जोतना, कमान खींचना और रसद पहुँचाना, आदि भारतीय बैलों द्वारा जिस सुचारूपसे निर्व्वाहित होता है, वैसा पृथिवीके किसी दूसरे देशके बैल द्वारा नहीं होता। विलायती गायें दूध देनेवाली कलोंके सिवा और कुछ नहीं हैं। विलायती बैल जननकार्य्य और खानेके सिवा और किसी कार्य्यमें व्यवहार होने योग्य नहीं होते। स्नान, आहार, तथा शय्या आदिमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम होते ही इन लाड़-प्यारसे पाले हुए जीवोंको यक्ष्मा आदि कठिन रोग हो सकते हैं। परन्तु भारतीय गो-जाति तीव्र शीतातप बरदाश्त कर हमारे मंगलके लिये सदैव खड़ी रहती है। विलायती गायोंके दूधमें इन कठिन रोगोंके जीवाणु भी सहज ही प्रवेश कर जाते हैं, इसीसे जमे हुए विलायती दूधकी आमदनीके साथ ही साथ हमारे देशमें यक्ष्मा आदि कठिन रोगोंकी आमदनी भी बढ़ रही है।

विलायती गायोंके दूधमें मक्खनका जितना अंश होता है, हमारे देशकी गायोंके दूधमें इससे दूनासे भी अधिक होता है। (२)

---

(1) They are active, and fieree and walk faster than troops; in a word they Constitute a distinct species, and are said to possess the same onperiority ove other bullocks in every valuable qnality that Arabs do over other horses. Propessor Wallac remarked in 1899 that the breed as a whole occupies among cattle a position for form, temper and enduranec strongly analogous to that of the thorough-bred among horses. Cattle of Southern India p. 1;

(2) In England it takes twenty-five, to forty pound of milk to make one pound of butter. In India it taks twelve to 24 pounds of milk to make one pound of butter. Vide Cow-

'द्रोण दुग्धा' आदि नामोंसे प्रगट होता है कि भारतीय गायें अन्ततः आधमन दूध दिया करती थीं। और आईने-अकबरी पढ़नेसे भी मालूम होता है, कि ३२४ वर्ष पहले भारतीय गायें प्रतिदिन आध मनसे भी अधिक दूध दिया करती थीं। (१) आज भी गुजरात और काठियावाड़की गायें विलायतके ही समान थोड़ा भोजन पानेपर भी वीस पचीस सेर दूध देती हैं। विलायती गायोंको असाधारण यत्न और वैज्ञानिक प्रणालीसे भोजन और जल दिया जाता है तथापि वे प्रायः २६ सेर दूध दिया करती हैं। भारतीय गायें भैंसों के साथही रहती हैं; परन्तु उनके द्वारा संकर वत्स नहीं उत्पादन करतीं। (२) किन्तु विलायती गायें भैंस तथा वाइसनसे सन्तान पैदा करती हैं।

पाश्चात्य देशीय गो-जातिकी उन्नतिका कारण

भारतीय जेबू जातिकी गायें पाश्चात्य देशोंकी वसूटरास जातिकी गायोंसे सब अंशोंमें श्रेष्ठ होनेपर (३) भी क्यों भारतीय गोजातिका इतना अधःपतन हो रहा है और पाश्चात्य गो-जातिकी उन्नति चरम सीमापर पहुंची है (४) उसकी पर्य्यालोचना करनेपर मालूम होता है कि हमारे देशमें पहले वशिष्ठ, भृगु आदि ब्राह्मण और विराट, कुरु आदि राजे, नन्दराज आदि वैश्यगण गोपालन करते थे। आजकल अशिक्षित मूढ़ जड़पिण्डवत् मनुषत्वहीन लोग गोपालन करते हैं।

आजकल विलायतमें गोपालन का भार अशिक्षितोंके हाथोंसे निकलकर शिक्षित वैज्ञानिकोंके हाथोंमें आगया है। हमारी स्वर्गीया

---

(1) The cows give upward of a half maund of milk.

P. 199 Ain-i-Akbari (English trans. by Blochman).

(2) The wild Beast of the World.

(3) 4—C. S. D.—Macdonald.

महारानी विक्टोरियाकी गायोंको गो-प्रदर्शनी द्वारा सर्वोत्कृष्ट पदक प्राप्त हुआ था। राजाधिराज सातवें एडवर्ड और हमारे वर्त्तमान सम्राट अर्ध ससागरा पृथिवीके अधिपति महाराज पञ्चम जार्ज की गायोंने भी गो-प्रदर्शनी द्वारा सर्वोत्तम पुरस्कार प्राप्त किया है। राजाधिराज पञ्चम जार्ज ने जिस समय इस देशमें पदार्पण किया, था उस समय हमारे एक मित्र बक्सरमें थे। उनका कहना है, कि महाराजने बक्सरमें चा और दूध पिया था। जिस गायका दूध उन्होंने पिया था, वह एक मास पहले इङ्गलैण्डसे आयी थी और उसे खूब उत्तम पुष्टिकर भोजन खिलाया जाता था तथा उसका खुर आदि काट कर उसे सर्वदा साफ और स्वच्छ रखा जाता था। किसी दूसरे मित्रसे सुना था, कि डिस्ट्रिक्ट जज Drake Brackman अपनी गायके सिवा दूसरी किसी गायका दूध नहीं पीते थे और जब गाय गर्भवती हो जाती थी, फिर तो उसका दूध नहीं पीते थे। हमलोग स्वयं गो-पालन कर सकते हैं, परन्तु करते नहीं। दूधके नामसे बाज़ारमें जो चीज बिकती है, वही व्यवहार करते हैं; सुतरां गो-जाति की ओर हमलोग दृष्टि बिल्कुल नहीं है।

इङ्गलैण्डके शिक्षित वैज्ञानिक गायके शरीरके उपादानों और दूधके उपादानोंको जांचकर उन्हीं उपादानोंके उपयुक्त भोजन भी नियमितरूपसे गायोंके खिलाते हैं। अपने देशमें वे जिस तरह अपनी खाद्य-सामग्रीपर नजर रखते हैं उसी तरह अपने पालित जानवरोंके खाद्य-पदार्थोंपर भी नजर रखते हैं। गायोंकी खाद्य-सामग्री तथा उनकी चिकित्साके सम्बन्धमें वहाँ कितनी ही पुस्तकें हैं। गो-जातिकी उन्नति सम्बन्धीय कितने ही मासिक तथा पाक्षिक पत्र भी प्रकाशित हुआ करते हैं। प्रत्येक ग्राममें गो-चिकित्सालय और गो-चिकित्सक हैं और कितने ही खैराती डाक्टरखाने हैं। गोवंशकी वृद्धिके लिये विभिन्न जातिके उत्तम उत्तम साँड़ मौजूद हैं। गो-जनन सम्बन्धीय

उत्कृष्ट वैज्ञानिक तत्वोंका प्रचारकर विलायतवालोंने समस्त संसारका विषेष उपकार किया है। गोपालन करनेकी शिक्षाके लिये वहां कितने ही स्कूल हैं।

अधुना ईङ्गलैण्डको गोजाति तथा भैंसोंपर दृष्टि डालनेसे मालूम हो जाता हैं, कि वे उन्नतिको चरम सीमापर पहुँच गयी हैं। भैंस और गायोंके पालनेवाले अपने पशुओंमें जिन गुणोंका होना पसन्द करते हैं, वे गुण सबसे अधिक इङ्गलैण्डकी गायोंमें मौजूद हैं। गायों तथा भैंसोंके पालन के लिये इतना अर्थ और इतनी निपुणतासे और कहीं भी काम नहीं लिया जाता। स्मिथफोल्ड प्रदर्शनी तथा अन्यान्य प्रादेशिक पशु-प्रदर्शनियों द्वारा यह बात यथार्थ रूपसे प्रमाणित होती है। (१)

यदि हमलोग विलायतवालोंकी तरह आहारादि देकर गौ-जातिकी परिचर्य्या किया करें तो हमारे देशकी गायें विलायती पशुओंकी अपेक्षा अधिक दूध दे सकती हैं। भगवान श्रीकृष्णने गोविन्दत्व (२) प्राप्त किया था यदि हमलोग उनका अनुसरण करें तो हमारे देशकी गायें सब विषयोंमें अतुलनीय हो सकती है।

---

(1) Looking at the cattle and sheep of this country, we may justly regard them as unequalled in any of their territory. For all the qualities that the grazier and dairyman can most desire, tae animal of our island stand pre-eminent, and in no part of the world indeed has so much skill and capital been expended in the improvement of the cattle and sheep as in Great Britain. To the truth of this, our Smith field club show and provincial shows amply testify.

C. S. D—Macdonald p 8

(२) हरिवंश।

भारतीय गो-जाति कष्टसहिष्णु, कठोर शीतातप सहनेवाली और परिश्रमी होती है। इनके फेफड़े आदि मजबूत और पुष्ट होते हैं। इन्हीं गायोंका दूध पान करनेके कारण भारतवासी भी अन्यान्य जातियोंकी अपेक्षा अधिक कष्टसहिष्णु और परिश्रमी हो सकते हैं। यूरप जातीय गायोंका दूध पान करनेसे कुछ हठीलापन और हिंस्रता आती है और भारतीय गायोंका दूध पीनेसे शान्त होना सम्भवपर होता है।

गुजराती गायें

बम्बई हातेके अन्तर्गत गुजरात प्रदेशके उत्तरांशकी (भगवान श्रीकृष्णकी राजधानी द्वारका और उसके निकटवर्त्ती प्रदेश) गायें भारतीय गायोंमें सर्वोत्कृष्ट हैं। ये देखनेमें जेसी सुन्दर होती हैं, वैसी ही दुग्धवती भी होती हैं। ये गायें प्रतिदिन दस सेर लेकर सोलह सेर तक दूध देती हैं। खेतीके कामोंके लिये भी यह गो-जाति सबसे अच्छी होती हैं। इनमें कांकेली और उदियाल श्रेणीकी गायें और बैल सबसे अच्छे होते हैं। इन श्रेणियोंके बैल साधारणतः तेज चलनेवाले और मैदानके उपयुक्त होते है। भारी बोझ लादकर रेतीले रास्तोंमें ये आश्चर्य्यजनक तेजीसे चल सकते है। गायें जल्दी जल्दी बच्चे देती हैं। बछियाएँ तीन ही वर्षमें गर्भधारण कर लेती हैं। और बैल चार पाँच बर्षकी उमरमें हल जातने लायक हो जाते हैं। इनका दाम इनकी आकृति और गुणोंपर ही निर्भर रहता है। बैलोंकी एक सुन्दर जोड़ीका दाम अढ़ाई सौ या तीन सौ रूपये होते हैं। अकबर शाहके समयमें गुजारी गायोंकी बड़ी ख्याति थी। (१)

---

(1) Though every part of the empire produces cattle of various kinds, those Guzrat are the best; sometimes a pair of them are sold at one hundred Mohurs.

आयरशायर गाय ।
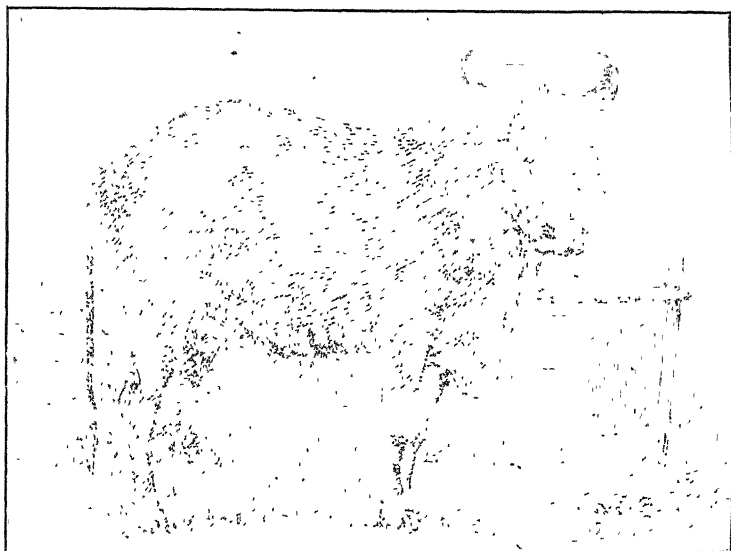
गुजराती गाय ।

हांसीकी गायें

हांसी हिसार वा हरियानाकी गायोंकी जन्मभूमि पञ्जाबका पूर्व्वीय प्रदेश है। दूधदेनेके हकमें ये भारतीय गो श्रेणीमें सबसे अच्छी होती हैं। गुजराती गायों का उल्लेख इनके बाद ही होना उचित हैं। इनमेंसे अधिकांशके शरीरका रंग सफेद और भूरा होता है। कभी कभी लाल, काली और विचित्र रंगकी हांसी गायें भी देखनेमें आती हैं। इनका आकार बहुत बड़ा होता है और ऊँचाई तीन साढ़े तीन हाथ तक होती हैं। शरीर लम्बा और भारी होता है। किसी किसी अंशमें ये हालेण्ड देशकी लेकेन सिल्ड ज़ातिकी गायोंकी तरह होती हैं। इनका मस्तक ऊँचा और चौड़ा, गला और गर्दन छोटी शरीरका पिछला हिस्सा ऊँचा और विस्तृत, सींग लम्बी और पीछेके ओर झुकी हुई, दुम लम्बी और पतली, छाती चौड़ी, पैर दोहरे और गर्दन मोटी और मजबूत होती है। परन्तु ये तेज चलनेवाली नहीं होतीं। इनमें जो सादे रंगकी गायें होती हैं, वे प्रतिदिन चौबीस सेर तक दूध देती हैं।

यद्यपि इस श्रेणीकी गायें अब पहलेकी तरह नहीं होतीं तथापि कभी कभी दोचार अच्छी गायें दिखाई पड़ जाती है।

हिसारमें वृहत सरकारी पशुशाला है। सरकार कभी कभी इस पशुशालाके सांढ़ अपनी कृषिजीवी प्रजाको वितरण किया करती हैं। और लड़ाईमें रसद ढोनेके काममें भी लाती है। यहाँकी गायें विशेष दूध देनेवाली होती हैं, और अधिकांश भारतके अन्यान्य प्रदेशोंमें चली जाती हैं, इसलिये मूल हिसार प्रदेशमें, इस श्रेणीकी गायोंका मिलना कठिन हो गया है। परन्तु जब इस विषयकी ओर सरकारकी नजर गई है तब आशा है, कि यह प्रदेश पुनः सुख्याति लाभ करेगा।

हाँसी, पञ्जाबके हिसार जिलेमें हैं। इस ज़िलेकी गायें हिसार या हरियाना कही जाती हैं, इनका मस्तक उन्नत और प्रशस्त होता है, गर्दन छोटी, कूबड़ ऊँचा, सामनेवाला भाग चौड़ा और पीछला हिस्सा तिस्तृत चतुष्कोणकी भांति होता है। लम्बी सींगे पीछेकी ओर झुकी हुई तथा दुम लम्बी और पतली होती है। ये बड़ी बलवान होती हैं। इनका शरीर लम्बा होता है। छाती चौड़ी और भारी होती हैं। पैर अपेक्षाकृत छोटे और एक दूसरेसे अलग होते हैं। बैल देखनेमें खूब बड़े और बलवान होते है और भारीसे भारी हल खींच सकते हैं। परन्तु इसी तरहके अन्यान्य जातिकी बैलोंकी तरह तेज चलनेवाले नहीं होते। इस जातिकी गायें देखनेमें बड़ी ही सुन्दर होती हैं। विदेशमें आनेपर ये अपेक्षाकृत कम दूध देती हैं। इसका प्रधान कारण यही हैं, कि भारतके पश्चिमोत्तर प्रदेशोंकी भांति, गोचर भूमि अन्यान्य प्रदेशोंमें नहीं है। इनका दूध खूब सुस्वादु होता है। इस तरहकी एक गाय का मूल्य इस प्रदेशमें ६०) से लेकर ९०) तक होता है। और बैलोंका दाम ७५) से लेकर २००) तक होता है। कलकत्तेके बाजारमें ये दुगुने तिगुने दामोंपर बिकती है। ये प्रतिदिन दससे लेकर सोलह सेर तक दूध देती हैं।

कठियावाड़ी गायें

सिन्धुप्रदेश तथा काठियावाड़के दक्षिणवर्त्ती जंगलोंमें एक जातिकी गायोंका दल देखा जाता है। ये गायें बड़ी दुग्धवती होती हैं। इस जातिकी गायोंमें अन्यान्य साधारण लक्षण मौजूद होते हैं।

कितने ही विषयोंमें वे भारतकी अन्यान्य गायोंसे सम्पूर्ण अलग होती हैं। उनके शरीरमें साधारणतः दो रंग होते हैं और दोनों रंग मिलकर एक हो जाते हैं। पुरो भागकी हड्डियोंकी बढ़तीके

कारण कपाल सुगोल और दर्शनीय हो जाता है। इनके कान खर-गोशके कानकी तरह बड़े और बीचसे झुके होते हैं। सींगें छोटी और पीछेकी ओर झुकी हुई होती हैं। मस्तक छोटा और गठीला होता है। कपाल चौड़ा होता है। गलकम्बल दीर्घ होता है। दुम लम्बी और बड़े बड़े रोयेंसे अच्छादित होती है। इस जातिकी गायें मझोले कद्की होती हैं और अनियमितरूपसे सन्तान प्रसव करती हैं। गोशालामें बँधी रहनेपर इनका स्वभाव कुछ क्रोधयुक्त हो जाता है। इसलिये शीघ्र ही दूध देना भी बन्दकर देती हैं। ये प्रतिदिन बारह सेर दूध देती हैं। इस तरहकी गायें काठियावाड़में ६०) में बिकती हैं, किन्तु जब वे कुछ शिथिल या पुरानी हो जाती हैं तो आलसी हो जाती हैं। इनका बड़ा तलवा बहुत ही कोमल होता है। इसलिये इनसे काम लेनेके लिये इनके पैरमें सावधानीसे नाल मढ़नेकी जरूरत होती है। इनमें उडियाल नामकी भी एक श्रेणी होती है।

जिर-गो।

सिन्धुदेशके निम्नभागोंमें एक तरहकी दुग्धवती गायें होती हैं। इस देशके मुसलमान इन गायोंको पालते हैं। ये लोग खेतीका काम करते हैं। गायोंको चरानेके लिये एक जगहसे दूसरी जगह चले जाते हैं। एक दलमें ५० गायें होती हैं। आकृति और रंगमें ये गायें बड़ी खूबसूरत होती हैं। इनमें अधिकांशका रंग घोर लाल हो है। और बीच बीचमें दो एक जगहका रंग सफेद भी होता है। इनकी आकृति मझोली और पैर नाटे, स्थूल और विस्तृत होते हैं। मस्तक बड़ा होता है, सींग चिकनी नहीं होती। गर्दन छोटी और मोटी होती है। गलकम्बल खूब बड़ा होता है। इस जातिकी गायोंमें दूध देनेकी क्षमता खूब बढ़ीचढ़ी है। कारण यह है, कि इनका जोड़ अच्छी

जातिके साढ़ोंसे लगाया जाता है। ये गायें पन्द्रह महीनेपर बच्चे जनती हैं। ये प्रतिदिन १५ सेर तक दूध दे सकती हैं। इनका मूल्य ४५) से लेकर ६०) तक होता है। इस देशकी गायें बड़ी शान्त होती हैं। साढ़ोंको बधिया करनेकी जरूरत नहीं पड़ती है। कृषिकार्य्य बैलों द्वारा ही सम्पादित होता है। बैलोंकी एक बलिष्ठ जोड़ीका दाम ८०) होता है। परन्तु कृषिकार्य्यमें ये शिथिल होते हैं। बोझ ढोनेमें भी अच्छे नहीं होते। इन गायोंकी आकृति और गठन गुरगारिया गायोंकी तरह होती है। इनकी सींगें छोटी और बढ़ी तथा मुलायम होती हैं।

गुरगारिया या मुलतानी गायें।

मुलतान जिला एक अति उत्तम गोजातिका आवासस्थान है। यहाँकी गोजाति हिसारकी गोजातिकी भाँति सर्वगुण सम्पन्न होती हैं। किन्तु आकृतिमें उतनी बड़ी नहीं होतीं और प्रकृति भी उनकी उतनी सुन्दर नहीं होती। इनकी आकृति मझोली सुगठित-शरीर स्थूल, रंग काला या लाल होता है। कुछ अच्छी गायें काले दागकी भी होती हैं। इनका शरीर नीरोग और शक्तिशाली होता है। इस जातिकी गायें खूब दूध देती हैं। इनकी सींगें लम्बी नहीं होतीं। ये प्रतिदिन ८।१० सेर दूध देती हैं। मुलतान जिलेमें ये गायें ३०,से ६०) तकको बिकती हैं। कलकत्तेके चितपुर हाटमें इनका मूल्य २००) से भी अधिक होजाता है।

मौण्टगोमरीकी गायें।

पञ्जाब प्रदेशमें मौण्टगोमरी नामका एक जिला है। यह मुलतानके पूर्व्व और उत्तरकी ओर है। यहां हांसीकी गायोंकी भाँति एक जातिकी गायें होतीं हैं। इनकी आकृति छोटी और गठीली होती है। पैर छोटे होते हैं। मस्तक सुन्दर, सींग छोटी, गर्दन पतली

और पैर सुडौल होते हैं। दुम लम्बी और पतली, शरीरका रंग विभिन्न प्रकारका होता है। अधिकांश घोर लाल होता है। कुछ सफेद और भूरे रंगकी भी होती हैं और कुछ चितकबरी भी दिखाई पड़ती है। मौण्ट-गोमरी जिलेमें वर्षा कम होती हैं और वहां घासके बड़े-बड़े मैदान दिखाई पड़ते हैं। हमारी मेहरबान सरकारने इस जिलेमें बहुतसी नहरें खुदवा दी हैं। गोपालक लोग अपनी गायोंको लेकर इन्हों नहरोंके किनारोंपर वास करते हैं। ये गायें प्रतिदिन आठ सेर दूध देती हैं। इस जातिको एक गायका दाम ५०) से ६०) तक होता है। अच्छी गायोंका दाम १००) तथा उससे ऊपर भी होता है।

अयोध्याप्रदेशीय गोजाति

अयोध्या प्रदेशमें गोबधा या पगोधा नामकी एक जातिकी गायें होती हैं। इनकी सींग छोटी, मस्तक प्रशस्त, ऊंचाई साढ़े तीन हाथ, शरीर स्थूल और हृष्टपुष्ट होता है। ये ५।६ सेर दूध देती हैं। इस जातिके बैल हल खींचनेमें, गाड़ी खींचनेमें, कुएंसे जल खींचनेमें और बारातोंमें रथ खींचनेमें बड़े पटु होते हैं। ये बड़े परिश्रमी और कर्मठ होते हैं। यह गोजाति अयोध्या प्रान्तके श्रमशील किसा-नोंकी प्रधान सम्बल है।

इसके अतिरिक्त अयोध्या प्रान्तके जलाकीर्ण तथा पहाड़ी प्रान्तोंमें एक प्रकारकी जंगली गोजाति भी दिखाई पड़ती है। इनको पकड़ कर पालनेसे ये भी खेतोंके सब कामोंमें आती हैं। बैलोंसे गाड़ी खींचने, हल जोतने आदिका काम लिया जा सकता है। इस जातिको गायें विशेष दूध देनेवाली नहीं होतीं।

आलमबादी बैल

मथुरा तथा वृन्दावनमें देशी तथा कोरो नामकी दो श्रेणीकी गो-

जाति होती है। इन दोनों श्रेणियोंकी गायें खूब दूध देती हैं। ये स्थूलकाय और खूबसूरत होती हैं।

बुन्देलखण्डी गोजाति

यहां मझोले कद्की एक श्रेणीकी गायें होती हैं। इनकी सींगें लम्बी और परस्पर अलग होती हैं। सींगोंका अगला अंश नुकीला और काला होता है। दुम लम्बी और गावदुम होती है। सिरेपर बालोंका एक गुच्छा लटकता रहता है। जो छोटे चामरकी भाँति दिखाई देता हैं। इनका खुर कठिन और साफ होता है। गर्दन नाटी, स्थूल और मांससे भरी होती हैं। शरीरका रंग सफेद और घोर धूसर होता हैं। भारतीय गोजातिमें यह गोजाति अत्यन्त परिश्रमी और कर्म्मठ होती है।

बांदा जिलेकी गायें

बांदा जिलेकी गायोंका रंग सफेद और धूसर मिश्रित सादा होता है। इनमें किसी किसीका शरीर चक्रयुक्त भी होता है। ये गायें धीर प्रकृतिकी, परिश्रमी और देखनेमें खूबसूरत होती हैं। इनका शरीर गठीला और मजबूत होता है।

पहाड़ी गोजाति

पहाड़ी गोजातियोंमें सिक्किम और दार्जिलिङ्गकी गोजाति विशेष उल्लेखनीय हैं। पहाड़ी गायें देखनेमें सुन्दर, स्थूल शरीरवाली होती है, परन्तु जंगली गायोंकी तरह दूध नहीं देती।

दार्जिलिङ्ग शहरमें ठीक विलायती गायोंकी भांति बहुतसी गायें दिखाई देती हैं। ये ५।६ सेर तक दूध देती हैं। ये इसी स्थानकी गायें हैं। ये खूबसूरत और सुगठित होती हैं। इनकी गर्दनपर कूबड़ होता है और इनका सारा शरीर लम्बे तथा घने रोमोंसे आच्छादित

होता है। इनकी देहका रंग लाल, काला और कई रंगोंका होता है।

वहां कूबड़हीन छोटे क़द्की एक प्रकार की गायें होती हैं। ये अधिक दूध नहीं देतीं।

सिकिम-वंशीय गायें खूब दूधदेनेवाली होती हैं। इनके रोंए मोटे होते हैं। और इन्हें कूबड़ नहीं होता। नेपाल तथा शिमला पहाड़ पर एक प्रकार की छोटी गायें होती है और जलपाईगुड़ी जिलेमें डाङ्गी नामकी एक प्रकारकी गाय होती है। यह विशेष दूध नहीं देती।

भूटान देशमें वन्य. मिथुन और खसिया जातिकी गायोंके संमिश्रण से भूटिया जातिकी गायें उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त वहां सिरी जातिकी एक प्रकारकी गाय होती हैं। इनमें कोई विशेष दूध देनेवाली नहीं होतीं।

खसिया पहाड़ पर एक प्रकारकी खूबसूरत गायें होती हैं। ये भी विशेष दूध नहीं देती।

चटगाँव, त्रिपुरा, मैनसिंहके पहाड़ोंमें मिथुन गाय, गवय, या गयला नामक श्रेणीकी वनैली गायें होती हैं। इनकी आकृति भैंसकी तरह की होती है पर ये भी उतनी दुग्धवती नहीं होतीं। इस जातिके बैल बड़े शक्तिशाली और कृषिकार्य्यके उपयुक्त होते हैं।

काश्मीर तथा काश्मीरके निकटवर्त्ती तिब्बत देशमें मोटे और घने रोए वाली एक प्रकारकी गायें होती हैं। ये भी विशेष दुग्धवती नहीं होतीं।

कमायूंकी गायें

कमायूं की गायोंका शरीर सुगठित, और नाटा होता है। इनका पैर छोटा, मस्तक उन्नत और सुडौल होता है। इनके शरीरका रंग काला लाल और चितकबरा होता है। रोंगटे घने, बड़े और मुलायम

होते हैं। जंगली गायोंकी भांति इनका स्वभाव क्रोधी और चञ्चल होता है। ये नानाप्रकारके पदार्थ खाकर पुष्ट हुई रहती हैं। इनके दूधमें मक्खनका भाग अधिक होता है। और दूध स्वादिष्ट होता है। ये साधारणतः चार पांच सेर दूध देती हैं। ये अत्यन्त शीतप्रधान देशोंमें रहनेके कारण कई विषयोंमें बिलायती गायोंकी तरह होती हैं।

बंगालकी गायें

बंगालके पुर्णियाँ, मालदह और दिनाजपुर आदि जिलोंका प्राचीन नाम उत्तर गो-गृह हैं; मेदिनीपुर शहरके दो मीलके बीच एक और बालेश्वर जिले के जलेश्वर नामक स्थानमें लक्ष्मणनाथके निकट दूसरा गोप नामक स्थान है। इसी स्थानपर विराट्-राजकी गायें और गोप प्रतिपालित होते थे। बालेश्वर जिलेके फतेहाबाद परगनेमें राय वनियारका गढ़ है। यह गढ़ विराट् राजके सेनापति कीचकका गढ़ कहलाता है। इसी गढ़से उपर्युक्त दोनों गोपोंकी रक्षा हुआ करती थी। रंगपुर जिलेके विराट्पुर नामक स्थानमें राजा विराट्की राजधानी थी। मेदिनीपुर आदि कई जिलोंका नाम दक्षिण गो-गृह कहलाता है। यही समस्त भारत वरं समस्त पृथिवीके गो-गृह थे। हजारों उत्तम गायें इन गोगृहोंमें रहा करती थीं। केवल एक महाराज विराटके पासही साठ हज़ार गायें थी। इन्हीं गायोंके कारण महाभारतके विराट् पर्वका घोषयात्रा नामक तुमुल व्यापार संघटित हुआ था और वहीं कुरूक्षेत्रके भीषण संग्रामका बीजारोपण हुआ था।

अकबर शाहके जमानेमें भी बंगालमें अच्छी गायें थी (१)

अब बंगालमें गो-गृह नहीं हैं। बंगालके किसी भी गृहमें प्राचीन कालकी भांति गायें नहीं हैं। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसामें अब

---

(1) The good cattle are also found in Bengal.

"Ain" 66 Ain-I-Akbari.
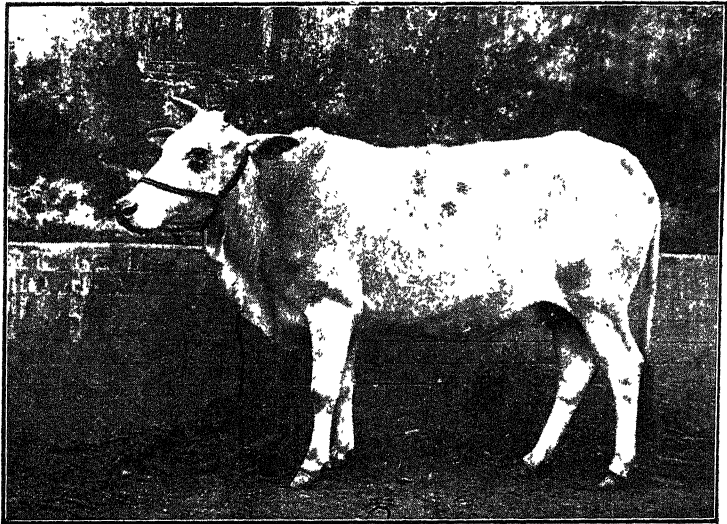
बंगाली गाय।
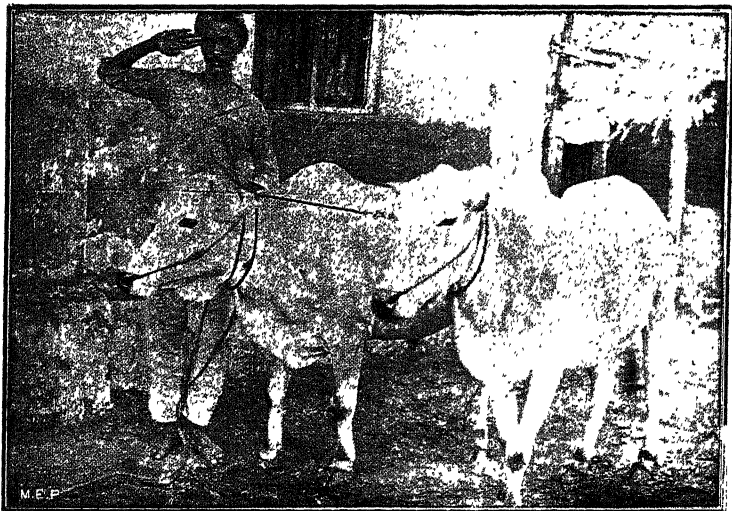
ताञ्जोरी गायें।

वैसी गायें नहीं मिलती। खास बंगालकी तथा अन्य स्थानोंसे आई हुई गोजतिके संमिश्रणसे जो दोचार श्रेणियां आजकल मौजूद हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

पटनिया गायें

पटनाके कमिश्नर टेलरसाहबने, बाँकीपुर म्यूनिसिपाल्टीके लिये आष्ट्रेलियासे सुलतान और नवाब नामके दो उत्तम सांढ़ (Stud bull) ८००) और ५००) को खरीदकर मंगाया था। ये दोनों ही सांढ़ दो तीन वर्षोंमें ही मर गये। परन्तु उनके वंशकी बहुतसी गायें पटनेमें मौजूद हैं। पटनेकी ये दोगली गायें आठ सेरसे बारह सेर तक दूध देती हैं। इस श्रेणीके बैल बड़े मजबूत और सवातीन हाथ ऊँचे होते हैं।

पटनाके निकट गंगाके उस पार कार्तिककी पुर्णिमासे लेकर प्रायः आठदश रोज तक 'हरिहरक्षेत्र' या 'छत्तरका' मेला नामका एक बड़ाभारी मेला होता है। इस मेंलेमें बहुतसे पशुओंकी खरीद बिक्री होतो है। इसी मेलेके कारण पटनेके संकरवर्ण बलवान बैल बंगालके सब स्थानोंमें फैल गये हैं। किन्तु अभी तक गोस्वामियोंने उत्कृष्ट बैलोंकी आवश्यकताकी ओर ध्यान नहीं दिया है। यही कारण है, कि ये उत्तम गाये बंगालमें आकर उत्तम सांढ़ोंके अभावसे क्रमशः दुर्वल और रोगी बच्चे प्रसव करती हैं। किसी समय मिथिला, मुजफ्फरपुर, जनकपुर तथा दरभंगा भी उत्कृष्ट गोजातिके लिये विख्यात थे। परन्तु अब वहां भी अच्छी गाये नहीं होतीं।

भागलपुरी गायें

भागलपुरी गोजातिके पैर लम्बे होते हैं और रंग शुभ्र होता है। यह कर्मठ और परिश्रमी होती है। गायें ५ सेर दूध देती हैं।

हिसारी सांढ़ोंके संयोगसे वर्द्धवानमें बहुतसी गायें उत्पन्न हुई हैं। ये दैनिक सात आठ सेर दूध देती हैं।

कलकतिया गायें

कलकत्तेमें इङ्गलिश, मुलतानी और हिसारी सांढ़ोंकी सहायतासे हिसार और मुलतान आदि स्थानोंसे लाई हुई गायें तथा उनके संयोगसे उत्पन्न बहुत गायें देखी जाती हैं। काशीपुर और चितपुर की हाटोंमें प्रतिदिन बहुतसी मुलतानी गायें बिकती हैं। ये गायें चार सेरसे लेकर छः सेर तक दूध देती हैं। इनके अतिरिक्त अंगरेजों तथा अन्यान्य बड़े आदमियोंके पास, नाना देशोंसे आई हुई गायें और बैल भी यहाँ दिखाई पड़ते हैं।

यशोहरी गायें

यशोहर, खुलना और बरीसाल जिलोंमें धानकी खेती अधिकतासे होती है। इन जिलोंके ग्वालोंकी गोशालाओंमें बहुतसी गायें रहती हैं। किन्तु उत्कृष्ट गायोंकी तादाद बहुत कम होती हैं।

ढाका और फरीदपुर

ढाका और फरीदपुर—ढाकेमें देशाल नामकी एक प्रकारकी गायें होती हैं। इनका आकार दीर्घ ऊंचाई ५० इञ्च तक होती हैं। ये बड़ी शान्त होती हैं और प्रतिदिन आठ या नौ सेर दूध देती हैं। इनका रंग सफेद होता है। पद्मा नदीके किनारोंपर गायोंके खाने लायक घास बहुत होती हैं। विक्रमपुरमें चार पाँच सेर दूध देनेवाली बहुतसी गायें हैं।

मैमनासिंह, कुमिल्ला और सिलहटकी गायें

मैमनसिंह जिलेके जमालपुर नामक स्थानमें हरिहर क्षेत्रके मेलेके बाद एक बड़ा मेला होता है। यहां गायोंकी खरीद बिक्री खूब होती

है। इस मेलेमें हरिहर क्षेत्र तथा अयोध्या प्रान्तकी गोबोधा जातिकी बहुतसी गायें बिकने आती हैं। चार पांच सेर दूध देनेवाली गायें मेमनसिंहमें बहुतसी है। सुसुङ्ग नरेश श्रीयुत कुमुदचन्द्र सिंह आदि राजाओंका ध्यान गायोंपर बिशेष है। इनलोगोंने अपनी राजधानी दुर्गापुरमें बहुतसी मूलतानी गायें और सांढ़ मंगाये हैं। इससे इस प्रदेशकी गो-जातिका बड़ी उन्नति हुई है।

गफ़रगाँ स्टेशनके निकटवर्त्ती साल्टियारके हाटमें भी गायोंकी खरीद बिक्री खूब होती है। किन्तु अधिक दूध देनेवाली गायें वहाँ नहीं मिलती। भैरव बाजार तथा उसके निकटके स्थानोंमें काशी-पुरी और हरिहरक्षत्री गायें बहुत मिलती हैं। किन्तु यथारीति यत्न न होनेके कारण वे बहुत दिनोंतक अपने पूर्व्व सम्मानकी रक्षा नहीं कर सकतीं।

कुमिल्ला और सिलहटमें उतनी अच्छी गायें नहीं मिलतीं। पहाड़ी देशोंसे जो छोटी बलिष्ठ और हृष्टपुष्ट शरीरवाली गायें कुमिल्ला और सिलहटमें आती हैं वे थोड़े ही दिनोंमें कमजोर हो जाती हैं।

बाजितपुर चौकीके अधीनस्थ पेनाकोना और किशोरगंजके इलाकेके आँगन नामक स्थानकी गायें शीतकालमें बथानोंमें रहती हैं। यहां गाय और भैंसके दूधसे पनीर तैयार होता है। यहां पनीरका कारोबार खूब होता है।

किशोरगंजकी गायोंके दूधमें घीका भाग अधिक होता है। इसीसे किशोरगंजका दूध विशेष स्वादिष्ट होता है।

मध्य-भारतकी नागोरी या नागपुरी गायें

नागोरी गायें नागपुरमें होती हैं।

पहले ये गायें दिल्लीसे मंगाकर पाली जाती थीं। आजकल पश्चिमोत्तर प्रदेश और मध्य भारतमें यही गायें दिखाई पड़ती हैं। ये

बड़ी शान्त होती हैं और प्रत्यह दस सेर से सोलह सेर तक दूध देती हैं। किन्तु दूध उतना अच्छा नहीं होता। इस जातिके बैल बड़े चलनेवाले होते हैं। उन देशोंके अधिवासी इन बैलोंको गाड़ीमें जोता करते हैंऔर उनकी बड़ी सेवा करते हैं।

आजसे पचास वर्ष पहले इन देशोंके धनवान बड़े बड़े बैलोंका व्यवहार खूब करते थे और उस समय इन गायोंकी वंश-बृद्धिकी भी बड़ी चेष्टा की जाती थी ; परन्तु आजकल उतनी चेष्टा नहीं की जाती। इसीलिये अब इस जातिकी गायोंका अभाव होता जाता है। इस जातिकी गायें लम्बी और पतली होती हैं। इनमें कोई कोई साढ़े तीन हाथ तक ऊँची होती हैं। इनको सींगें चार फीट तक ऊँची होती हैं। मस्तक लम्बा और अप्रशस्त, कूबड़ ऊंचा और पतला तथा दुम लम्बी और पतली होता है। दुमका अग्रभाग काले रेशमकी भांति चमकीले बालोंके गुच्छसे आवृत्त रहता है। इनका आकार बड़ा होता है। वे खूब तेज चल सकती हैं। इनका शरीर मांसल नहीं होता।

इस विषयमें हिसारी गायोंमें और इनमें बड़ी विभिन्नता होती है। इनकी चाल प्रायः अच्छे घोड़ेकी चालकी तरह होती है। किन्तु इनमें भारी बोझ सहन करनेकी शक्ति नहीं होती। जिस गाड़ीमें इस जातिके बैल जोते जाते हैं वे इक्केकी तरह दो पहियोंकी होती हैं और इस तरहको बनी होती हैं। जिससे बैलकी पीठपर अधिक भार नहीं पड़ता। इनके शरीरका रंग नीलाभ शुभ्र (सोकन) होता है। भारतीय गायोंमें ये अत्यन्त मृदु (delicate) होती हैं। इस जातिकी गायोंका दाम ६०) से १००) तक और बैलोंका दाम २००) से ४००) तक हुआ करता है। किन्तु हाँसीकी गायोंकी तरह ये अधिक बच्चे नहीं देतीं। एक प्रसव करनेपर बहुत दिनोंतक दूध देती हैं। इनमें मालवीय, खैरी, जेतपुरी और पारशरानी नामकी चार उत्तम श्रेणियाँ होती हैं।

दक्षिणी गायें

मद्रास प्रान्तमें गायें बहुत होती हैं। इस प्रान्तके मैसोर, नेलोर या ओंगोलकी गायें सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। किसी किसी विषयमें ये पृथिवीकी समस्त गोजातिसे अच्छी कही जा सकती हैं।

त्रिचिनपल्ली, मदुरा, तिन्निवेली, अनन्तपुर, और बेनाट आदि जिलेके बड़े बड़े मेंलों और पशु-प्रदर्शनियोंमें ये सर्वश्रेष्ठ मानी जा चुकी हैं।

मद्रास प्रान्त

दाक्षिणात्यके मद्रास प्रेसिडेन्सीकी गायें छः भागोंमें विभक्त हैं:—(१) महीशूर, (२) नेलोर या अङ्गोल, (३) कांगायाम, (४) पलिकोलाम, (५) कप्पिलियन, और (६) गमसूर। इस प्रेसिडेन्सीको गायोंका प्रधान दो विभाग होता है। (१) नादूदाना, वा नाथूदाना, और (२) दादूदाना। उपर्युक्त छः विभागोंकी उत्तम गायोंका एक नाम दादूदाना या वृहत्काय है। महीशूर, नेलोर, काँगायाम, पल्लिकोलम आदि स्थानोंकी उच्च श्रेणीको गायोंका साधारण नाम दादूदाना और निम्न श्रेणीका गायोंका नाम नादूदाना वा क्षुद्रकाय है। साधारण ग्राम्य गौवोंको नादूदाना ही कहते हैं। दादूदाना श्रेणीकी गायें खूब बड़ी और मोटी होती हैं। इनकी तादाद बहुत कम होती है। किन्तु ये बड़ी कीमती और बलवान होती हैं। वे प्रायः एक ही आकारकी होती हैं।

माइसूरी गायें

समस्त महीशूर तथा पूर्व्वीय उपकूलमें छोटी बड़ी दो जातिकी गायें होती हैं। महीशूर देशमें छोटी जातिकी ग्राम्य गायोंकी संख्याही अधिक है। इस देशके किसान दूधके लिये इस जातिकी गायोंका पालन करते हैं। बैलोंको खेतीके काममें लाते हैं।

धनवान लोग तथा अच्छे किसान दादूदाना बैल और गायें पालते हैं इनकी संख्या बहुत थोड़ी होती है। दादूदाना बैल बड़े बलवान; डीलडौलवाले और शक्तिशाली होते हैं। ये कठोर परिश्रम कर सकते हैं, इसीलिये गाड़ी खींचना आदि काम इनसे लिया जाता है।

हालिकर, चित्रलदुर्ग और आलमबादी गायें अमृतमहाल नामक श्रेणीके अन्तर्गत होती हैं। जिस तरह साधारण घोड़ोंमें और घोड़-दौड़के घोड़ोंमें फरक होता है, उसी तरह पृथिवीकी अन्य जातिकी गायोंमें तथा मद्रासी गायोंमें भी फरक होता है।

अमृतमहाल गायें

'अमृत' शब्दका अर्थ है, सुधा या दूध ; उसीका महल अर्थात् अमृतमहल। महीशूर राज चिक्का देवराज उदियारने अमृतमहल श्रेणीकी गौवोंकी प्रतिष्ठा की थी। हैदरअलीने उनका पुनर्गठन किया और टीपू सुलतानने इनकी उन्नति की। सन् १५७२ से लेकर १६०० ईस्वीके अन्दर विजयनगरके राजप्रतिनिधिने विजयनगरसे हालिकर जातीय गायें मंगाकर श्रीरङ्गपट्टनमें रखा। यही अमृतमहल नाम्नी श्रेणीकी पूर्व्वज थीं। इसके बाद ये गायें महीशूरके राजाओंके कब्जेमें आईं।

ये गायें सन् १६१७ ईस्वीसे १६६७ तक महीशूरके राजा श्यामराज उदियारके अधिकारमें, १६३८ से १६५८ ईस्वीतक कान्तिवर नरेश राम उदियारके अधिकारमें और उसके बाद सन् १६७२ से १७०४ ईस्वी तक चिक्का देवराज उदियारके अधिकारमें रहीं। चिक्का देवराजने इस गो-जातिकी विशेष उन्नति की। उन्होंने नाना स्थानोंसे उत्तमोत्तम गायें और बैल मंगाकर उनकी तादाद बढ़ा दी।

गायोंके चरनेके लिये उन्होंने बड़े बड़े मैदान छोड़वा दिये। उन्होंने अपने राज्यके विभिन्न स्थानों २१० कवल अर्थात् गोष्ठ स्थापित

किये थे। ये कवल महीशूर राज्यमें आजतक मौजूद हैं। उन्होंने बारहों महीने सुखपूर्व्वक चरनेके लिये उपर्युक्त कवलोंको शीत, वर्षा और ग्रीष्मकालके उपयुक्त बनानेकी व्यवस्था कर दी है। इन कवलोंमें गाये बड़े आरामसे रहती हैं और नाना प्रकारकी घास चरा करती हैं। इसीलिये इस जातिकी गाये और बैल कद्दावर और मजबूत होते हैं। सिक्का देवराज उदियारके समयसे गो-विभाग राज्यका एक विभाग समझे जाने लगा। वे सालके अन्तमें गायोंकी गणना कराया करते थे और अपने नामके एकांश द्वारा गायोंको चिन्हित करा देते थे। इसी विभागसे राजसरकारके लिये दूध और मक्खन जाता था। सिक्का देवराजने इस विभागका नाम बेणीचावादी रखा था। हैदरअलीके सिंहासन अधिकार प्राप्त करने पर ये गाये उसके हाथ लगीं। उसने नागोरराज तथा अन्यान्य राजोंको हरा उनकी गायों द्वारा अपनी गायोंकी तादाद बढ़ा ली। राज्यके विभिन्न स्थानोमें, उसके साठ हजार बलवान बैल थे। वह इन बैलोंको युद्ध-यात्राके समय रसदकी गाड़ी तथा तोप आदि खींचनेके कामों लाता था। हैदरअलीके पुत्र टीपू सुलतानने सिंहासनारोहण करनेपर इस विभागको और भी समुन्नत कर दिया और सिक्का देवराजका रखा नाम "बेणोचावादी" बदलकर "अमृतमहल" रखा। इसके अतिरिक्त उसने हागलवादी और गोलीगा जातिकी गाये मंगाकर, उनकी संख्या वृद्धि की। उस विभागके लिये उसने अपने राज्यमें कितने ही आदेश-पत्रोंका प्रचार कराया था। उन्हीं आदेशपत्रोंके अनुसार गायोंके आहार-विहारकी व्यवस्था की जाती थी।

उसने इस विभागमें बहुतसे कर्म्मचारी नियुक्त किये थे। अमलदार लोग बैलोंको पहले, गाड़ी खींचने, हलखींचने तथा कमान खींचनेका ढंग सिखाया करते थे। वर्षके अन्तमें उनकी गणना होती थी, उस समय टीपू सुलतान स्वयं उपस्थित होकर अपने हाथसे इनाम

बाँटता था। उसके बाद अङ्गरेज कर्म्मचारीगण इन सबका कार्य्य चलाया करते थे।

चेलाम ब्रूमको मदद पहुँचानेके समय टीपू सुलतानने अपने बली बैलोंकी सहायतासे ढाई दिनोंमें सौ मीलकी यात्रा की थी। इसके सिवा युद्धोंमें बार बार हारनेके समय इन बैलोंकी सहायतासे इतना शीघ्र भाग सकता था कि उसके शत्रुके हाथ उसकी एक कमान भी न लगने पाती थी। ये बैल सैनिकोंकी अपेक्षा अधिक तेज चलनेवाले होते हैं। इन्हीं बलवान् बैलोंकी सहायतासे टीपू सुलतान, जनरल मेडोरसे युद्ध छिड़नेके समय बेदुनोर नगरका उद्धार करनेके लिये दो दिनमें ६३ मील रास्ता तय कर, एक ही महीनेमें दाक्षिणात्य पर आक्रमण कर सका था।

ड्यूक आफ वेलिंगटनने इन्हीं बैलोंकी सहायतासे आश्चर्य्यजनक युद्धयात्रा कर सामरिक कर्मचारियोंको विस्मयमें डाल दिया था और लड़ाईके समय इन बैलोंकी सहायता न पानेके कारण उसने बारबार अफसोस किया था। इन बलवान बैलोंकी तेज चाल परिश्रम और कष्टसहिष्णुतासे वह मुग्ध होगया था। उसने भारतीय सेनाके प्रधान अध्यक्षका ध्यान भी इन बैलोंकी ओर आकर्षित किया था।

सन १८४२ ईस्वीमें कप्तान डेविडसन सेनासहित काबुलमें भाग गया। उस समय उसके साथ २३० अमृतमहाल जातिके बैल थे। इन्ही बैलोंके सहारे वह युद्धका सामान लेकर बड़ी तेजीसे दुर्गम पहाड़ी रास्तोंको काटनेमें समर्थ हुआ था। उसने अपनी रिपोर्टमें उन बैलोंकी बड़ी तारीफ़ की थी। इन बलवान बैलोंने लगातार १६ घण्टेसे भी अधिक समय तक गाड़ी खींचा था।

सन १८०८ ईस्वीमें महीशूरके कमिश्नरने भी अपनी रिपोर्टमें इन बलवान बैलोंकी कष्टसहिष्णुता और सेनासे भी तेज चालकी तारीफ की और उन्हें संसारके सभी बैलोंमें श्रेष्ठ स्वीकार किया था। सन्

१८६६ में प्रोफेसर वालेसने भी इस जातिके बैलोंकी कष्ट-सहिष्णुता, उनकी गठन और प्रकृतिके सम्बन्धमें इस मतका समर्थन किया था।

टीपू सुलतानके बाद, यह गोजाति अङ्गरेजोंके हाथ लगी और उन्होंने उनके पालन-पोषणका भार महीशूर राजको सौंप दिया। टीपू सुलतान अपने सैनिकोंकी कार्य्यकारिता इन्हीं बैलों पर निर्भर समझता था। परन्तु महीशूर राजका वैसा कोई अभिप्राय न था, इसलिये तेरह वर्षमें यह गोवंश प्रायः नष्ट होने लगा तो सरकारने पुनः यह कार्य्यभार अपने हाथ लेकर मद्रासके कमिश्नर हार्डी साहबको सौंप दिया। इसके बाद दस वर्षोंमें फिर इन गायोंकी असाधारण उन्नति हो गई। सन् १८४० ईस्वीमें मैसोरराज्यकी तथा सरकारकी अमृतमहाल गायें एकत्र की गईं। १८६० इस्वीमें सरकारने तमाम गायें बेचकर इस विभागको ही ? उठा दिया है। १८६६ इस्वीमें सरकारने फिर इन गायोंको पालन करना आवश्यक समझ मैसोर राज्यकी सहायतासे फिर इस विभागका संगठन किया। उस समय इन गायोंको पुनः संग्रह करना बड़ा मुशकिल हो गया था। कारण यह था, मिश्रदेशका पाशा इस जातिकी बहुतसी गायें खरीदकर अपने देशमें ले गया था। मैसोरके राजा साहबने भी बहुतसी गायें खरीद ली थी। अस्तु, बड़ी ढूंढ़-खोजके बाद १८७० ईस्वीमें चार हजार गायें १०० सौ सांढ़ संग्रह कर इस विभागकी फिर प्रतिष्ठा की गई। इसके बाद सन १८८३ में, मैसोर सरकारसे सवा दो लाख रुपये लेकर अङ्गरेजी सरकारने इस विभागको छोड़ दिया। मैसोर सरकार प्रति वर्ष २०० बैल दिया करती है। और उसके बदले सरकारसे कुछ रुपये वार्षिक प्राप्त करती है। उसी समयसे ये गायें मैसोर-राज्यके अधीन हैं। मैसोर सरकारने इस विभागके लिये बहुतसे कर्म्मचारी नियुक्त कर रखे हैं। ये कर्म्मचारी प्रति मास

गायोंके जनने और मरनेकी रजिस्ट्री करते हैं और मैसोर-सरकारको उसकी रिपोर्ट दिया करते हैं।

मैसोरराज्यके सामरिक कर्म्मचारीको पत्र लिखकर इस जातिकी गायें मंगाइ जा सकती हैं। एक बैलका दाम १००) होता है। बैलोंकी अच्छी और बलवान जोड़ीका दाम ५००) तक होता है। इस जातिके बैलोंकी एक जोड़ी रेतीली भूमिपर भारी गाडी खींचनेके कारण ८००) पर बिकी थी। हालिकार, हागलवादी और चित्रलदुर्ग जातीय गायें सन १८६० ईस्वी तक अमिश्रित अवस्थामें थीं। इसके बाद अङ्गरेज सरकारने इस विभागको उठा दिया था। फिर सन १८६६ ईस्वीमें जब इस विभागका पुनसंगठन हुआ तब उक्त तीन जातिकी गायोंका संमिश्रण हुआ। इन तीनों प्रकारकी गायोंकी आकृति प्रकृति प्रायः एक ही प्रकारकी होती है। परस्पर बहुत थोड़ासा प्रभेद दिखाई देता है। इस जातिकी गायें कम दूध देती हैं। प्रतिदिन दो सेर दूध देती हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि इस जातिकी गायें प्रायः जंगली अवस्थामें रहती हैं।

मैसोरराज्यमें ये गायें कई पालोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक पालोंमें साधारणतः २०० गायें, १०० बकेनायें और १२ साँढ़ तथा बछड़े आदि रहते हैं। इसके सिवा हरएक पालमें एक पालरक्षक और दो मंडल हुआ करते हैं। गायोंकी संख्याके अनुसार प्रति पालके लिये तीनसे नौ तक गोष्ठ या कवल निर्दिष्ट हैं। ये पाल चौदह विभागोंमें विभक्त हैं और प्रत्येक पालके अन्तर्गत दो तीन और पाल भी होते हैं। हरएक पालके तत्वावधानके लिये एक एक दारोगा नियुक्त हैं। सावन और भादोंमें प्रत्येककी अलग अलग गणना होती हैं। अपकृष्ट गायें निकाल दी जाती हैं और उनके स्थानपर उत्तम नयी गायें चिन्हित कर भर्ती कर ली जाती हैं।

बछड़े जब देढ़ वर्षके हो जाते हैं तो बधिया कर दिये

जाते हैं और चार वर्षके बाद पालसे अलग रख कर उन्हें सालभर तक शिक्षा दी जाती है। ये बैल सात वर्षकी अवस्थामें पूरी जवानी प्राप्त कर बारह वर्षकी अवस्थातक पूर्ण सबल रहते हैं। इसके बाद क्रमशः निस्तेज होते हुए १८ वर्षकी उमरमें मर जाते हैं।

नादूदाना और दादूदानाके संमिश्रणसे एक जातिकी गायें पैदा हुई हैं। इन्हें दूगोसू या शान्तगोसू कहते हैं।

इस जातिके सांढ़ और बैल शक्ति सामर्थ्य और सहिष्णुताके लिये बहुत मशहूर हैं। ये ४८ से ५० इञ्च तक ऊंचे होते हैं। शरीरकी उच्चताके अनुसार इनकी छाती असाधारण चौड़ी और गहरी होती है। इनकी पीठ लम्बी और विस्तृत होती है। कन्धा तथा पैर सुगठित और दृढ़ होते हैं। ये बड़े कर्मठ और उग्र होते हैं। सैनिकोंकी चालकी अपेक्षा इनकी चाल तेज़ होती है। इनकी सींगें क्रमशः २।३ फीट लम्बी और पतली होती हैं, अगला हिस्सा अत्यन्त पतला होता है और सामनेकी ओर झुकी होकर परस्पर मिली हुई होती हैं। इनकी आंखें बड़ी और काली होती हैं। शिर ऊंचा, गर्दन सुन्दर, गलकम्बल और कूबड़ उपयुक्त आकारके होते हैं। गायोंका रंग साधारणतः सफेद होता है और बैलोंका रंग भूरा या काला होता है। ये बड़े कर्मठ और कष्टसहिष्णु होते हैं। भारी बोझ लादकर ये बड़ी तेज़ीसे बड़ी दूरतक जा सकते हैं। इनके पैरका काला खुर और गठीले पैरोंको देखनेसे ही मालूम हो जाता है, कि ये शक्तिशाली हैं। इस जातिके बैलोंका साधारण गुण यह है, कि वे थोड़ा भोजन पाकर भी बड़ी देरतक परिश्रम कर सकते हैं।

हालिकर-जातीय गायें

अमृत महल श्रेणीकी गो-जातिमें यह एक उत्कृष्ट जाति होती है। इनके सम्बन्धमें यह किंवदन्ती सुननेमें आती है, कि हैदरअलीने

दक्षिणसे २०० गायें लाकर मैसोरके कवलोंमें छोड़ दिया था। इन्हीं गायों तथा कृष्ण साँढ़ोंके संयोगसे हालिकर जातीय गोवंशको उत्पत्ति हुई। इस किंवदन्तीका मूल कारण यह है, कि कृष्णसारकी भांति इन गायों की आंखों के निकट एक प्रकारका काला चिन्ह होता है। इनके पैर लम्बे और पतले होते हैं और चलनेमें बड़ी तेज हैं। इस जातिके बैलों और गायों की आकृति प्रायः एक ही प्रकारकी होतो है। ये एक प्रकारकी जंगली गाय हैं। थोड़ा दूध दिया करती हैं।

इस जातिमें गोजमातृभू नामकी एक अति उत्तम श्रेणी होती है।

चित्रल द्रुग

ये हालिकर जातीय गायों की तरह होती हैं, किन्तु आकारमें छोटी होती हैं। इनके मस्तक छोटे तथा गलकम्बल पतले होते हैं।

कप्पिलियन गायें

मदुरा जिलेके कम्बाम नामक अंचलमें एक जातिके मनुष्य होते हैं। उन्हें कप्पिलियन कहते हैं। ये केनारीके आदिम बाशिन्दे हैं। इन लोगोंके पास सुगोल, कर्मठ और छोटे आकारकी एक गो-जाति हैं। ये गायें उनके छातक दौड़के लिये मशहूर हैं। पहले पहले जिस समय इस जातिके मनुष्य इस प्रान्तमें आये थे, उसी समय अपने साथही इन गायों को भी लेते आये थे। वहाँ भी उनको यह दौड़ थी। इन्हें कनारी भाषामें देभारू आभू जौर तमिल भाषामें ताम्बिरान मदु कहते हैं। इन दोनों वाक्योंका अर्थ है "स्वर्गीयदल"। इनका दूध दूहा नहीं जाता। ये केवल बच्चा जननेके काममें लाई जाती हैं। मरनेपर इस जातिकी गायों की कबरें दी जाती हैं। मरने पर इनके शरीरमें चमारों द्वारा अस्त्र-प्रयोग अनुचित समझा जाता है। इन गायों में जो सर्वप्रधान होती हैं उसे "पल्लादू आभू" कहते हैं। इनकी मृत्यु

डाच् बेल्ट गो ।

हो जानेपर दूसरी गायोंमें "पल्लादू आभू" चुन लिया जाता है। यह एक बड़ी अद्भुत बात है। "पल्लादू आभू" के निर्व्वाचनके दिन समस्त गायें एकत्र की जाती हैं। पान, सुपारी, केला और कपूर आदि मांगल्य द्रव्य मंगाकर उत्सर्ग किया जाता हैं। उसके उपरान्त ऊख की आंटी या गट्ठा बैलोंके आगे रख दिया जाता है और सब लोग बड़ी उत्सुकता पूर्व्वक यह देखते हैं, कि कौन बैल सबसे पहले उसे स्पर्श करता है। जो बैल सबसे पहले ऊखका गट्ठा स्पर्श करता वही भविष्यके लिये "पल्लादू आभू" वा "बृषभराज" मान लिया जाता है। उस समय उसके गलेमें बरमाल दिया जाता है तथा केसर और कुंकुम आदिसे वह इस पदपर अभिषिक्त किया जाता है। उस समय उसे लोग ईश्वरका अवतार समझते हैं और "नन्दगोपाल स्वामी" कहकर उसे सन्मानित करते हैं।

अलमबादी गो-जाति

आलमबादी गो-जातिको महादेवेश्वरवेत्ता कहते हैं। क्योंकि महादेवेश्वर नामक हाटमें वे बिकती हैं और वहींसे नाना स्थानोंमें जाती हैं। कावेरी नदीके तीरवर्त्ती आलमबादी स्थानके नामानुसार उन्हें आलमबादी कहते हैं। कावेरी नदीके दोनों किनारोंके स्थानोंमें इनका नियत वासस्थान है। इस लिये इन्हें "कावेरी" वा बेढ़शाल भी कहते हैं।

इस जातिकी गायें भारतसे बाहर, सिंगापुर, पिनाङ्ग, जावा और कोलम्बा आदि स्थानोंमें भी जाती हैं। विगत कई वर्षोंमें इस जातिकी नौ हजार गायें नागापट्टन से पिनाङ्ग भेजी गई हैं। मैसूरी गोजातियोंमें यह गोजाति बलिष्ठ और बड़ी होती है।

नेलोर वा अंगल गो-जाति

नेलोर, मद्रास प्रेसिडेन्सीका एक जिला है। नेलोरकी गायोंको

अंगोल जातीय गाय भी कहते हैं। यह गोजाति समस्त भारतके अतिरिक्त दक्षिण अमेरिका आदि संसारके अन्यान्य स्थानोंमें भी परिचित हैं। नेलोरकी गोजाति मैसूरी गायोंसे कई विषयोंमें सम्पूर्ण रूपसे पृथक हैं। यह खूब बड़ी और शान्त होती हैं। अच्छे रास्तेपर इस जातिके बैल खूब तेजीसे चल सकते हैं। परन्तु मैसूरके बैल सड़क तथा पगदण्डी सब रास्तोंपर चलनेमें पटु और बड़े तेजस्वी होते हैं। चलनेके समय इनके पैरोंका खूब उच्च शब्द होता है। ये दादूदाना अर्थात् बड़ी होती हैं। इस जातिकी गायें प्रतिदिन छः सात सेर दूध देती हैं। इस जातिके बैल खूब बड़े और मजबूत होते है। इनका मस्तक लम्बा, ललाट चौड़ा, आंखें बड़ी और चारों ओर आध ईंच काली होती हैं। नाभी और गलकम्बल बडा और वृहत् होता है और झूलता रहता है। इनकी सींगे छोटी और मोटी होती हैं। गर्दन भी छोटी और मोटी होती है। शरीर भी मोटा होता है। इनमें सबसे बड़े बैलकी उंचाई ३६ ईंच और कूबड़के पीछेका बेड़ ८४ ईंच तक लम्बा होता है। इनके गलकम्बल और पिधान बड़े और लटकते हुए होते हैं। इनका रंग साधारणतः सफेद और काला होता है तथा स्वभाव शान्त होता है। इस जातिके बैल मैसूरी बैलोंके समान कष्टसहिष्णु न होने पर खूब भारी बोझ ढो सकते हैं। इनकी एक जोड़ी १०० मन भारी गाड़ी खींचती देखी गई है। इस प्रदेशकी गायें बड़ी, साधारणतः धूसर अथवा शुभ्र वर्णोंकी होती हैं। इसके सिवा आजकल वहां नानाप्रकारके रंगोकी गायें देखनेमें आती हैं। बम्बई प्रान्तके कृष्णा नदीके तीरवर्त्ती स्थानोंमें इसी श्रेणीकी गोजाति होती है। इस जातिके कोई कोई बैल मध्यम आकृतके भी होते हैं। ये बैलगाड़ी खींचने और हलजोतनेके कामोंमें लिये जाते हैं। मद्रास प्रान्तके उत्तरी प्रदेशमें इस जातिके बलवान बैल पहुतायतसे व्यवहृत होते हैं। इनकी पीठ बराबर और छोटी होती है। छाती

चौड़ी होती है। पैर साफ, मोटे, सीधे और अलग अलग होते है। इनके शरीरका चमड़ा नरम, पतला और छोटे छोटे रोंगटों से आच्छादित होता है। इस श्रेणीकी अच्छी गायोंकी एक जोड़ीका दाम १००) से ३००) तक होता है। और बैलोंकी एक जोड़ीका दाम २००) से लेकर ३५०) तक होता है।

१६०६ ईस्वीमें इस जातिकी २०० अच्छी गायें अमेरिकाके ब्रेजिल प्रदेशमें लाई गई थीं। वहां उनका बड़ा आदर होता है।

कंगायम जातिकी गायें

इनमें बड़ी और छोटी दो श्रेणियां होती हैं। कंगायम, गोथम्बाटूर, मदुरा और त्रिचनापल्ली आदि स्थानोंमें इस जातिकी बहुतसी गायें होती हैं। इस जातिकी गायें प्रतिदिन ८।६ सेर दूध देती हैं। इनका रंग साधारणतः सफेद होता है। परन्तु बहुतसी काले तथा लाल रंगकी भी होती हैं।

जेलीकट जातिकी गायें

मदूरा जिला और उसके निकटवर्त्ती स्थानों और पेरिया नदीके तीरवर्त्ती प्रदेशमें इस जातिकी गायें होती हैं। इन्हें "किलाकात" भी कहते हैं। इस जातिकी गायें दुग्धवती नहीं होतीं। किन्तु बैल एक गाड़ी लेकर ५।६ माइल तक दौड़ सकते हैं।

"जेलिकट" शब्दका अर्थ है "पत्रालङ्कार" मदुरा जिलेमें एक खेल प्रचलित है। एक बैलकी सींगमें एक लाल कपड़ा बांध दिया जाता है और जो आदमी उस कपड़ेको खोल लेता है। वह ईनाम पाता है। इस खेलमें कितने हो आदमी घायल हो जाते हैं और कितने ही मर जाते हैं। इस खेलमें जो सांढ़ व्यवहृत होता हैं, उसे 'जेलीकाट' कहते हैं। इसीलिये इस जातिकी गायोंका नाम जेलीकेट हो गया है।

तांजोर देशकी मैंना गायें

तांज़ोर जिलेमें इस जातिकी गायें होती हैं। ये गायें कांगायाल ज्ञातीय गायोंकी तरह होतीं हैं। किन्तु इनके सींगे नहीं होती और कानोंका कुछ अंश कटा होता है। सींग निकलनेके समय तांजोर वाले उसे गरम लोहेसे दाग देते हैं और कानका कुछ हिस्सा भी काट देते हैं। इसीसे ये गायें भिन्न जातिकी मालूम होती हैं।

गञ्जाम जिलेके गमूशुर नामक ताल्लुकेमें एक प्रकारकी छोटी जातिको गायें होती हैं। उन्हें गमशूर जातीय गायें कहते हैं।

बम्बई और पश्चिम घाटकी गायें

दाक्षिणात्यके बम्बई और पश्चिम घाट नामक पर्वतके निकटवर्त्ती स्थानोंमें मालाबारी, कृष्णावेली, खिलारी, कङ्कण और आरवी, कुल पांच श्रेणियोंकी गोजाति होती है। इस जातिकी गायें छोटी और बनैली गायोंकी भांति होती हैं और दूध भी कम देती हैं। इनकी गठन वलिष्ठ, हड्डी मोटी और सुगठित होती हैं। खेतोंके कामोंमें ये विशेष पटु होती हैं। इनके कूबड़ अत्यन्त छोटे और कान मझोले होते हैं।

कङ्कण गो

ये भी एक तरहकी जंगली गायें हैं। इनके रंग नानाप्रकारके होते हैं। सींग मोटी और टेढ़ी होती हैं। इस जातिके बैल गाड़ी खूब खींच सकते हैं। ये गाड़ी लेकर ६।७ माईलतक जा सकते हैं।

मरहट्टी गायें

इनमें तीन चार भिन्न भिन्न विभाग होते हैं। इनमें प्रधानतः एक जातिकी गायें होतीं हैं, जिनके मुंह और पैर काले रंगके होते हैं।

मुंहके नीचे आगेके पैरोंतक एक बादामी रंगका डोरा दिखाई पड़ता है। इस जातिके बैल खेती तथा बोझ ले जानेके काममें विशेष पटु होते हैं।

अरबी गोजाति

अरब देशीय गोजातिकी एक श्रेणी पश्चिमघाट प्रदेशमें देखी जाती है। ये अनेक अंशोंमें नेलोरकी गायोंकी तरह होती हैं। परन्तु वैसी कष्टसहिष्णु परिश्रमी, कर्म्मठ, या बलवान नहीं होतीं। इनका आकार छोटा होता है . और शरीर भी सुगठित नहीं होता।

अफगानिस्थान और पारसदेशीय गो-जाति

काबुल और फारसकी गायें हिन्दुस्थानी गायोंसी कूबड़ और गल-कम्बल युक्त होती है। इस गोजातिकी उन्नतिके लिये कोई विशेष चेष्टा नहीं की जाती। परन्तु काबुलकी गोजाति पहाड़ी प्रदेशोंमें चरती है। काबुली मेवोंके पेड़ोंकी पत्तियां खाती है और नाना प्रकार की पुष्टिकर चीजें खाती हैं। काबुलकी कोई कोई गाय, भारती मुलतानी गायोंकी तरह होती है।

सिंगापुर, पिनांग, मालय, चीन और जापानकी गायें

समस्त मंगोलियन जातियाँ पहले दूध नहीं व्यवहार करती थीं; परन्तु आजकल अंगरेजोंकी देखादेखी, मक्खन, पनीर और दूध आदि व्यवहार करने लगी हैं। इन स्थानोंकी गायें यथा रीति घास पाती हैं। बैल बलिष्ठ और हल खींचनेमें दक्ष होते हैं। पिनांग और सिंगापुरमें दक्षिण भारतकी मद्रास प्रदेशी, मैसूरी, आलमवादी गायें लाई गई हैं।

इङ्गलैण्डकी गो-जाति

इंगलैण्डकी गायें प्रधानतः चार भागोंमें विभक्त की जा सकती हैं।

प्रथम—इङ्गलैण्ड और बेल्स की गायें।

द्वितीय—स्काटलैण्डकी गायें।

तृतीय—आइरिश गो-जाति।

चतुर्थ—इङ्गलैण्डके अन्यान्य द्वीपपुंजोंकी गायें। ये इङ्गलैण्ड और फ्रान्स देशके मध्यवर्त्ती इङ्गलिश चैनेलकी अधिवासिनी हैं। प्रथमोक्त विभागमें दश विभाग हैं।

१—शार्ट हर्न वा छोटी सींगवाली।

२—लिंकन शायर।

३—हेरीफोर्ड शायर।

४—नार्थ डिवन।

५—साउथ डिवन।

६—लौंग हॉर्न वा बड़ी सींगवाली

७—लाल रंगका सींगहीना।

८—डरहम।

९—ससेक्स।

१०—वेक्स।

स्कौटलैण्डकी गो-जाति

१—एवार्डिन एङ्गास।

२—गालवे।

३—वेस्टहाईलैण्ड।

४—आयार शायर।

आयरिश गो-जाति

१—केरी डिक्सटार।

२—डिक्सटार।

इङ्गलिश द्वीपपुञ्जकी गो-जाति

१—जर्सी। २—गार्नसी।

इंगलैण्डकी गायें नीचे लिखी श्रेणियोंमें दूधके लिये विभक्त हैं।

१—जारसी } अल्डार्नी
२—गार्नसी }
३—आयरशायर।
४—केरी।

मांस और दूधके लिये।

१—छोटी सींगवाली
२—निकुलन लाल छोटी सींगकी
३—लाल सींग हीना
४—डिक्सटार

मांसके लिये।

१—हेरीफोर्ड।
२—दिवन।
३—सासेक्स।
४—दीर्घ सिंगी।
५—पेनब्रुक और मर्टिन।
६—एवर्डिन एंगास।
७—गालवे।
८—वेस्ट हाइलैण्डर।
९—डिक्सटार।

शार्ट हार्न वा छोटी सींगवाली गायें

पहलेही कहा जा चुका है कि इङ्गलैण्डमें पहले अच्छी गायें नहीं थीं। लम्बी सींगवाली शुभ्रवर्णकी जंगली गायें इङ्गलैण्डके कई वनोंमें देखी जाती थीं। इन्हींमें एक श्रेणी नाना वर्णोंकी सींग-

हीना गायोंको होती थी। इसके अतिरिक्त रोमनोंकी लाई हुई एक प्रकारकी सींगहीना गायें थीं। परन्तु यह किस जातिकी हैं इस बातका निर्णय करना कठिन है। असल बात यह है कि ईसाकी पहली शताब्दीमें इङ्गलैण्डमें एक जातिकी सींगहीना गायें होती थीं। परन्तु मालूम नहीं ये गायें उन्ही दो जातियोंमेंसे हैं या इनकी कोई अलग तीसरी जाति है। इसका कोई इतिहास नहीं है; परन्तु अधिकांश लोगोंका मत है कि वर्त्तमान छोटी सींगवाली गायें संकरवर्णकी हैं। इनके बारेमें सत्रहवीं शताब्दीसे पहले कुछ भी मालूम न था।

सिन क्लेयर नामके एक विद्वानने स्थिर किया है, कि ये गायें सैक्सनोंकी लाई हुई बस्टरास जातिकी हैं। इनके पूर्व्वपुरुष सन १६९५ इस्वीमें, मार्कहम * और सन १७४४ इस्वीमें † इलिस द्वारा लिखे हुए ग्रन्थोंमें इस जातिकी गायोंके सम्बन्धमें बहुतसी बातें लिखी हैं। इन गायोंके सम्बन्धमें सिनक्लेयरके ग्रन्थ हो प्रमाण माने जाते हैं। होलडरनेस नामक जिलेमें उसकी प्रथम उत्कर्षता मालूम हुई थी।

यार्कशायर, डरहम, और टिजवाटरके निकटवर्त्ती स्थानोंमें उसकी विशेषता परिलक्षित हुई थी। मि० केलीके उद्योगसे, चार्लस और कलिंग नामक दो व्यक्तियोंके उद्योगसे, इस गोजातिकी उन्नति आरम्भ होकर वर्त्तमान अवस्था तक पहुंची है। 'हूबक" नामक एक बैल इन ऊंची सींगवाली गोजातिका पूर्व्वपुरुष था। टामस बूथ और बेट्स नामक दो व्यक्तियोंने १७९० इस्वीसे, छोटी सींगवाली गोजातिकी उन्नतिके लिये जीवनव्यापी व्रत आरम्भ कर उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यभागमें अपने अपने नामोंसे इनका दो विभाग किया था।

---

* Markham's Way to wealth.

† Elli's Modern husbandman.

टौन्ले नामक एक व्यक्तिने इन गायोंको उन्नति करनेमें विशेष कृतित्व दिखाया है। नाइट्ले, कोट और टोर्ट आदि गोपोंने भी विशेष मनोयोग और अध्यवसाय द्वारा इस जातिकी गायोंकी विशेष उन्नतिकी है। नाइट्लेके तीस वर्षोंके परिश्रमके फलसे उसकी सत्तर गायें, १२५०) फी गायके हिसाबसे बिकी थी।

बेईट विभागकी अक्सफोर्ड नामक गोवंशीय तीन गायें सन् १८७२ ई०में फी १३२७१) के हिसाबसे बिकी थी। न्यूयार्कके सेलमें सन् १८७३ इस्वीमें डचेजवंशकी पन्द्रह गौवें फी संख्या ५५१६५) के पड़तेसे बेंची गई थीं। गो-प्रदर्शनी और गोजातिको वंशावली (Herd Book) की रक्षा द्वारा इन गायोंकी इतनी उन्नति हुई है।

इस समय ये गायें विश्व विख्यात हैं। ये जैसो सुन्दर और दर्शनोय होती हैं वैसी ही दुग्धवती भी होती हैं। और इनके दूधमें घीका अंश भी खूब होता है। एक गायके एक दिनके दूधमें एक सेर मक्खन निकलता है। इस जातिकी गायें अमेरिका कनाडा, जर्मनी, बेलजियम, होलैण्ड, नारवें, स्वीडेन; डेनमार्क फ़िनलैण्ड, इटाली, स्पेन, पूर्त्तगाल, भारत, श्याम, जापान, न्यूजीलैण्ड आदि देशोंमें बड़े ऊंचे दामोंपर खरीद कर लायी जाती हैं।

इनके शरीरका रंग सफेद और लाल तथा उज्ज्वल रक्तवर्णका होता है। मस्तक अपेक्षाकृत छोटा, नाक रक्ताभ और उन्नत, आंखें उज्ज्वल कृष्णवर्णकी, सींगे छोटी, स्थूल, टेढ़ी और झुकी हुई होती हैं। गर्दन लम्बी, स्थूल और दृढ़ता व्यञ्जक होती है। वक्षस्थल प्रशस्त और गभीर होता है। सामनेके दोनों पैर पीछेके पैरोंसे छोटे होते हैं। पीठपर गर्दनसे लेकर दुमतक एक सीधी रेखाकी भांति दिखाई देती है।

गायोंका सिर अपेक्षाकृत बड़ा और लम्बा और थन घड़ेकी तरह बड़ा होता है। इङ्गलैण्डमें ये गायें दूध भी देती है और खानेके

काममें भी आती हैं जब ये गायें दूध देना बन्दकर देती हैं तो मोटी हो जाती है। ये गायें साधारणतः दस मन भारी होती है।

इनमें एक और गुण यह होता है कि इस जातिके सांढ़ोंका जिस जातिकी गायोंसे संयोग होता, है उसका बच्चा उसी सांढ़की जातिका पैदा होता है। इसीसे विदेशोंमें इन गायोंका आदर विशेष रूपसे होता है। ये गायें सालमें १२३२ गैलन तक दूध देती हैं। कोई कोई १५ वर्षों तक इसी तरह दूध दिया करती हैं और २७ वर्षतक जीवित रहती हैं।

लिङ्कन शायर—लाल छोटी सींगकी गायें।

इङ्गलैण्डकी आदिम जंगली गायें और पहाड़ी गायोंके साथ फ्रिजलैण्ड, जटलैण्ड, होलष्टीन उपनिवेशिकोंके साथ, उनके देशसे सन ४४९ से ९९० तक इङ्गलैण्डमें आई हुई गायें तथा उसके बादके समयोंमें डचों द्वारा लाई हुई गायें, और यार्कशायार और डरहम शायारसे लाई हुई गायें, छोटी सींगवाली गायोंके संयोगसे एक उत्कृष्ट जातिकी लिङ्कन शायर—लाल रंगकी क्षुद्रसींगी गायें उत्पन्न हुई हैं। परन्तु १८९५ ईस्वीसे पहले इन गायोंकी खूबीके बारेमें कुछ भी जाना नहीं गया था।

इसी शताब्दीमें लिङ्कनशायरकी शार्ट हर्न नामक समिति, इन गायोंकी उन्नतिके लिये स्थापित की गई और १९०९ में इस स्थानमें ३७० समितियाँ स्थापित हो गईं। गायोंकी रजिस्ट्री (Herd book) का प्रबन्ध हो गया है। उसमें ५९२९ बैलोंका नाम रजिस्टर्ड किया गया है। रायल एग्रीकलचर सुसायिटी और ईङ्गलैण्डकी ओर कार्डिफ नामक नगरमें एक प्रदर्शनी हुई थी। वहां जिस समय इस जातिकी गायें दिखाई गई थीं; उस समय (१९०१ ईस्वीमें)

इस सुसायिटीकी ये गायें इङ्गलैण्ड, अमेरिका, युरोप और आष्ट्रेलिया आदि देशोंमें विख्यात हो गईं।

इन गायोंकी प्रकृति यार्क शायर और डर्हम आदि छोटी सींग-वाली गायोंकी तरह होती है। विशेषता केवल यह होती है, कि इनका रंग लाल होता है। इस जातिके बैल खेतीके कामोंके लिये अच्छे होते हैं। क्योंकि ये अल्पाहारी, कष्टसहिष्णु और साधारणतः नीरोग होते हैं। ये ईङ्गलैण्डका जाड़ा और बरसात खूब सहन कर सकते हैं। इङ्गलैण्डके कठोर शीतकालमें जिस समय पूर्वी हवा चला करती है, उस समय भी ये खुले मैदानोंमें रहते हैं। दूध बन्द हो जाने पर गायें थोड़े ही दिनोंमें खूब मोटी-ताजी हो जाती हैं। अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्तमें मि० टोरनेल नामक गोप द्वारा, सबसे पहले इस गो-जातिकी उन्नति आरम्भ हुई थी। इस गोपालने लाल सांड़ोंके संयोगसे इस गोवंशकी वृद्धि आरम्भ कर दी। इस समय इनमें ६८ सैकड़ा लाल रंगकी गायें होती हैं।

कोट्स नामक पशुपालकके हर्डबुक (Herd book)में इस जातिके सांढ़ोंकी फिहरिस्त बनाई गई है। उसके बादसे गोजातिकी विशेष उन्नति हुई है। फेवरिट और कोमेट नामक बैल बड़े उत्कृष्ट थे। छः वर्षकी उमरमें कोमेट १५०००) पर बिका था। लेडी और लारा नाम्नी गायें भी बड़ी उत्तम श्रेणीकी थीं। इनके वंशधर ही आजकल इस श्रेणीकी सबसे उत्तम गायें हैं। इस जातिकी अच्छी गायें प्रतिदिन साढ़े सैंतिस सेर दूध देती हैं। १८७१ इस्वीमें चेटार्टन नामक गोपालकके पास एक प्रसिद्ध गाय थी, उसके गर्भसे अलकेमा नामकी एक बाछी पैदा हुई, उसके साथ एकजिटरके मार्क्ड इसके पांचवें ड्यूक नामं सांढ़का संयोग हुआ। उससे 'हरक्यूलिश' नामक एक बैलकी उत्पत्ति हुई थी। इसी बैलके द्वारा थोड़े ही दिनोंमें इस प्रदेशकी गोजातिकी आश्चर्य्यजनक उन्नति हो गई। रायल लिङ्कन शायर

प्रदर्शनीमें इसी जातिकी गायोंको सर्व्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ था। मि० इवान नामक गोपालककी गोशाला (Dairy) की सुख्याति समस्त पृथिवी पर हुई है। उसकी गायें दूध और मक्खनके लिये इङ्गलैण्डकी प्रदर्शनियों और लण्डन, डबलिन, बेलफ़ाष्ट आदिको दुग्ध-परीक्षाओंमें (Milking trial) बहुत बार उत्कृष्ट ईनाम पा चुकी हैं। उसकी एक गायने ३४ महीनोंमें ३६७३ गैलन अर्थात् ४५६ मन ५ सेर दूध दिया था।

हेरीफोर्ड शायर ।

अट्ठारहवीं शताब्दीके पहलेका कोई विवरण इन गायोंके सम्बन्धमें नहीं पाया जाता। विलियम मार्शल साहबने १७८६ में एक पुस्तक लिखी थी उसमें उन्होंने 'हेरी फोर्ड' डिवन, ग्लाचेष्टार और उत्तर वेलस जातीय गायोंको मूलतः इसी जातिकी गायोंसे उत्पन्न बतलाया है। इंगलैण्डके हेरीफोर्ड शायरकी भूमि, जल और हवा इस जातिकी गायोंके लिये विशेष उपयोगी है। इसीलिये वहां वे अच्छी वृद्धि प्राप्त करती हैं। हेरीफोर्ड शायरके किसानोंके बड़े यत्न और बड़ी चेष्टासे इस जातिकी गायोंने वर्त्तमान समयमें इतना उच्च स्थान प्राप्त किया है।

१८३६ ईस्वीमें मि० टी० सी० ईटनने हेरीफोर्ड गोजातिका हर्ड बुक लिखा था। १८३५ ईस्वीमें इयेट साहबने अपने लिखे हुए गोपालन सम्बन्धीय ग्रन्थमें लिखा है, कि इस जातिकी गायोंका मुँह, गर्द्दन और पेटका रंग सफेद और शरीरका रंग घोर लाल होता हैं। अन्यान्य जातिकी गायोंमेंसे इस जातिकी गायें चुन ली जा सकती हैं। बहुत लोगोंका अनुमान है, कि माण्टगोमेरी जातीय गायोंसे इनकी संकर उत्पत्ति हुई है। इसीसे इनके मुँहका रंग

सफेद हो गया है। इनके मुँहकी सफेदी ही इस जातिकी गायोंकी विशेष पहचान है।

बेञ्जामिन टामकिन्स साहब और उनके वंशधरोंने इस जातिकी गायोंको उन्नतिके लिये विशेष चेष्टा की है। इन्हीं लोगोंकी चेष्टा और अध्यवसायसे इस गो-जातिकी विशेष उन्नति हुई है। टामकिन्स-परिवार पुश्त दर पुश्तसे गोपालन करते थे, परन्तु बेञ्जामिन टामकिन्सने इस विषयमें बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। १८१५ ईस्वीमे टामकिन्स साहबकी मृत्युके बाद उनकी २८ गायें, प्रत्येक २२५०) के पड़तेसे बिकी थीं। इस जातिकी उत्कृष्ट गायें साधारणतः दो तीन हजार रूपयेपर बिकती हैं। इस जातिकी गायें अन्यान्य विषयोंमें इंगलैण्डकी छोटी सींगवाली गायोंकी तरह होती हैं। परन्तु ये उतनी दुग्धवती नहीं होती हैं। ये अत्यन्त शान्ति और धीर स्वभावकी होती हैं। सहजमें ही मोटी हो जाती हैं। ये गायें मांसके लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। इस जातिकी सभी गायें एकही रंगकी होती हैं। इनके शरीरका अधिकांश भागका रंग घोर लाल होता है। मुँह, मस्तक, गर्दन, छाती, शरीरका निम्नभाग, पैर और दुमका निचला अंश सफेद होता है। इनके रोयें कोमल कुञ्चित और परिमाणके अनुसार लम्बे होते हैं। वक्षस्थल प्रकाण्ड और गभीर, सींग सादी होती है। बैलोंकी सींगे नीचेकी ओर और गायोंकी ऊपरकी ओर झुकी होती हैं। १८८६ इस्वीमें अमेरिकामें इस जातिकी सींगहीना (मैना) गायें उत्पन्न हुई हैं। बहुत पहले जमानेमें इङ्गलैण्डमें इसी गोजातिके सहारे खेती होती थी। वर्त्तमान समयमें मैनचेष्टरके निकट किसी स्थानमें इसी जातिकी गायोंकी सहायतासे खेती होती है। इस जातिकी गायें बहुत दिनोंतक खुले स्थानोंमें रह सकती हैं। आष्ट्रेलियामें कभी कभी दीर्घकाल व्यापी अवर्षण होता है। उस समय यह गो-जाति सबल और सुस्थ रहती

हैं। दूरका रास्ता तै करलेनेपर भी इङ्गलैण्डकी गो-जातिकी भांति क्लान्त और अवसन्न नहीं हो जातीं।

१८५५ ईस्वीमें भारतकी महारानी विक्टोरियाके पति प्रिन्स अलवर्ट वीण्डसरके फ्लेमिस गो-शालामें इस जातिकी गायोंको मंगाकर रखवाया था। उसके बाद महारानी विक्टोरिया और उनके पुत्र महाराज सप्तम एडवर्डने इस जातिकी गायोंके लिये खूब पुरस्कार पाया था। (१)

स्टोन साहब द्वारा सबसे पहले ये गायें अमेरिकाके केनाडा प्रदेशमें लाई गई हैं। १८८०से १८८७ तक उक्त राज्योंमें जितनी गायें आईं, उनमें अधिकांश हेरीफोर्ड जातिकी थीं। उत्तरीय और दक्षिणी अमेरिकामें तथा अष्ट्रेलियाके उपनिवेशोंमें, तथा न्यूज़ीलैण्डमें इस जातिकी बहुतसी गायें आईं और उनकी वहां आश्चर्य्यजनक बृद्धि होगई है। इस जातिकी गायोंमें साधारण गुण यह है कि ये केवल घास खाकर ही जीती और वृद्धि पाती हैं सन् १९०२ इस्वीमें इण्डियाना-पोलिसकी नीलाममें तीन वर्षकी उमरका एक बैल १००००) दश हजार डालरको बिका था। इसी साल और एक सांढ़ चिकागो शहरमें ६००० डालरको बिका था। इस जातिके तीन वर्षकी उमरके एक सांढ़का वजन बीस पच्चीस मन तक होता है।

---

(1) Prince Albert, the late Queen Victoria's Royal Consort, laid the foundation of the herd, at the Flemish farm Windsor in 1855, and many prizes were obtained by the Queen and more recently by her son. His majesty king Edward VII. The splendid bull fire king was bred by His Majesty at the Royal farm. Windsor, and was awarded, first prize as well as beingthe champion in the Aged Bull Class at park Royal in 1905.

P. 14, S. C. M. Agriculture Vol. 7.

नार्थ डिवन और साउथ डिवन

इन्हें पश्चिमी चुन्नी (The rubies of the west) कहते हैं। इनके शरीरका रंग उज्ज्वल होता, इसीलिये ये इस नामसे विख्यात है। इङ्गलैण्डकी गो जातियोंमें इस जातिकी गायें हेरीफ़ोर्ड, गालवे, आदि गो-जातियोंकी तरह प्रसिद्ध न होनेपर भी एक अच्छी जातिकी समझी जाती हैं। इनके शरीरका गठन और वर्ण सुन्दर होता है। इनमें दो श्रेणियां होती हैं। उत्तर डिवन और दक्षिण डिवन। उत्तर डिवनकी अपेक्षा दक्षिण डिवन-जातीय गायें बड़ी होती हैं। इनके पेटके नीचेका कुछ स्थान काला या सफेद होता है। सींगे सफेद और छोटी होती हैं। गायोंकी सींगे, उपरको ओर और बैलोंको नीचेकी ओर झुकी होती हैं। इनका मुंह छोटा और पतला होता है। आंखें चमकीली, नाक सफेद, कान पतले, गठन मझोला, ललाट और पश्चात् देश प्रशस्त होता है।

उत्तर डिवन जातीय गायें पहाड़ी देशोंमें और दक्षिण डिवन गायें समतल भूमिपर होती हैं। कार्टली परिवार विशेषतः फ्रेन्सिस कार्टलीने इस जातिकी गायोंकी विशेष उन्नति की है। इस जातिकी एक गाय साधारणतः ४५०) को बिकती हैं। इनका साधारण वजन १०।१२ मन होता है, किन्तु मोटी हो जानेपर इनका वजन २०।१५ मन तक हो जाता है। इस जातिकी गायें उतनी दुग्धवती न होनेपर प्रतिदिन १०।१२ सेर दूध देती हैं। इनके दूधमें मक्खनका अंश अधिक होता है। एक गाय के प्रतिदिनके दूधमें आधा सेरसे लेकर तीन पाव तक मक्खन होता है। रूगोया, दक्षिण अमेरिका, अष्ट्रे-लिया, न्यूजीलैण्ड, और पृथिवीके अन्यान्य स्थानोमें थोड़ी संख्यामें और जापानमें अधिक संख्यामें लाई गई हैं। इनके मालिकोंने इनका दूध बढ़ानेकी बड़ी चेष्टा की है।

जल, वायु, भूमि तथा घास पर इस जातिकी गायोंका रंग, गठन और अन्यान्य विषय निर्भर हैं। जो गायें प्रचुर घास और पुष्टिकर खाद्य पाती हैं उनका आकार साधारणतः बड़ा होता है। इस जाति के बैलोंके लिये स्मिथफील्ड क्लबकी प्रदर्शनीसे सम्राज्ञीको प्रथम पुरस्कार, और प्रिन्स आफ वेल्सको, तीसरा पुरस्कार मिला था।

दीर्घ सींगी गायें

इस जातिकी विलायती गायोंमें छोटी बड़ी दो श्रेणियां होती हैं। छोटी श्रेणीकी गायें, पहाड़ी और जलप्रधान देशोंमें होती हैं। दरिद्र किसान भी इस जातिकी गायें पालते हैं। ये खूब दूध देती हैं और सहजहीमें मोटी हो जाती हैं। इसीलिये इन्हें मांसके काममें भी लाते हैं। बड़ी श्रेणीकी गायें समतल तथा उर्व्वरा भूमिमें होती हैं। सन १६२० ईस्वीमें सर टाम्स ग्रिजली साहब इस जातिकी कुछ गायें पालते थे। उनके पाससे खरीद कर क्रमशः वेलसी, बेलेस्टार बेकवेलने इस जातिकी गायोंकी विशेष उन्नति की। परन्तु बेकवेलमें यह विशेष दोष था, कि वे गायोंकी उन्नति केवल मांसकी वृद्धिके लिये ही किया करते थे। दूध बढ़ानेकी ओर उनका ध्यान बिल्कुल न था। बेकवेलके अनुसरणकारी, उनके परवर्त्ती उत्पादकोंके समयमें (१६ शताब्दी) में इस जातिकी गायोंकी अवनति हो गई। इसके बाद सन १८६६में इस जातिके गायोंकी उन्नतिकी फिर चेष्टा हुई। वर्त्तमान समयमें उनकी बहुत कुछ उन्नति हुई हैं। अति प्राचीन कालमें पनीर और मक्खन तैयार करना ही कृषकों का प्रधान उद्देश्य था। इस विषयमें छोटी सींगवाली गायें, बड़ी सींगवाली गायोंकी बराबरी नहीं कर सकतीं। परीक्षा द्वारा देखा गया है। कि दीर्घ-सींगी गायोंके दूधमें सबसे अधिक पनीर होता है। इन गायोंका शरीर लम्बा, पैर छोटा, सींग बड़ी, पीठ प्रशस्त और समान होती है।
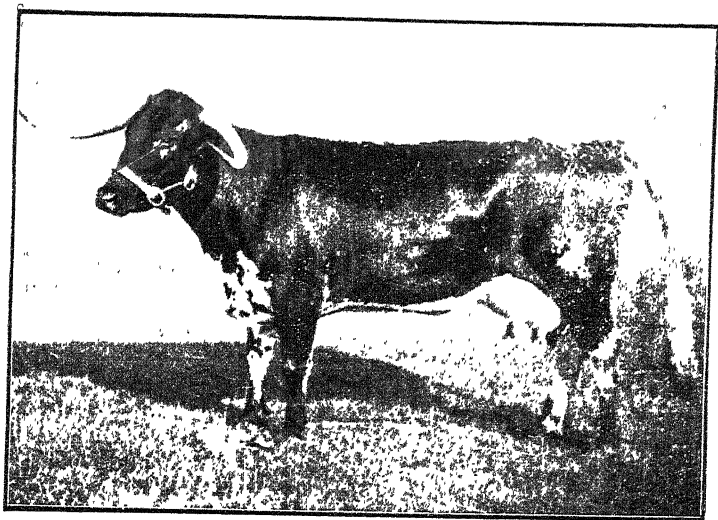
लंहर्न गो।
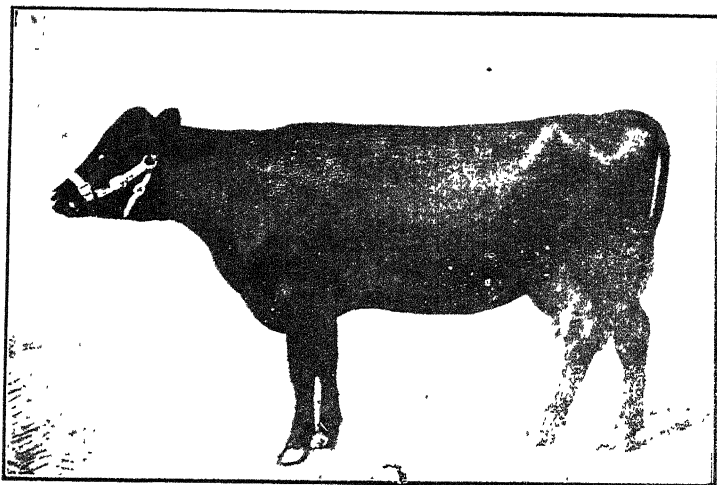
शरीरका चमड़ा घने रोओंसे आच्छादित होता है। इसीलिये शीत-कालमें ये ठंढी हवा खूब बरदाश्त कर सकती हैं। इनके बथन बड़े होते है। ये गायें प्रतिदिन १२।१३ सेर दूध देती हैं। एक गायके दूधमें सप्ताह भरमें ६ सेर मक्खन निकलता है। ये गायें अल्प-भोजी होती हैं। इस जातिके एक सवातीन वर्षके बैलने १८०५ ईस्वीकी प्रदर्शनीकी कठिन प्रतियोगितामें मेक्सिमम पुरस्कार पाया था। उक्त बैल वजनमें २६ मन ६ सेर था और नीलाममें ६०००) को बिका था। सन १६०६ ईस्वीमें अरडैण्ट कांकरर (Ardent conqueror) नामक एक बैलने विभिन्न प्रदर्शनियोंमें प्रथम तथा अन्यान्य कई तरहका पुरस्कार और सिल्वर कप (silver cup) प्राप्त किया था।

सींग हीना लाल गायें (Red polled.)

पावेल (Powell) साहबने इस जातिकी गायोंकी विशेष उन्नति की है। इस जातिकी गायोंके सींग नहीं होती। और इनके शरीरका रंग लाल होता है इसीलिये ये बड़ी सुन्दर मालूम होती हैं। इन गायोंको गलकम्बल नहीं होता। इनके पैर छोटे और पतले होते हैं। दुम छोटी होती हैं, थन बड़ा और दूधकी नली मोटी होती है। ये बड़ी दुग्धवती होती हैं। इस जातिकी गायोंकी विशेषता यह है कि ये बहुत दिनोंतक यहांतक, कि प्रसवके थोड़े समय पहले तक भी दूध दिया करती हैं। इस जातिकी एक गायका इतिहास बड़ा ही विचित्र है। इस गायने प्रसवके बाद ५०६ दिनोंमें १३४ मन २६॥ सेर और दो छटांक दूध दिया था और दूसरी बार प्रसव करने पर १४३ मन ५ सेर दिया था। तीसरी बार प्रसव करनेके बाद उसने फिर प्रसव नहीं किया। सन १८६० इस्वीकी ११ वीं मईसे लेकर सन १८६६ की २८ वीं सितम्बर तक ६ वर्ष चार महीनेमें इस गायने ६३२ मन १६॥ सेर दूध दिया था। बारह वर्ष नौ दिनमें इस गायने केवल ५१ दिन

दूध नहीं दिया था। सब मिलाकर इस गायने ६०२ मन२० सेर ए छटांक दूध दिया था। (१) इसी जातिकी एक दूसरी गायने ३२८ दिनोंमें १६६ मन साढ़े अड़तीस सेर दूध दिया था। इन गायोंका साधारण मूल्य पांच छ सौ रूपये होते हैं। इस जातिका एक एक वर्षका बैल ४'१००) पर और एक वर्षकी एक बछिया ३०००) पर बिककर दक्षिण अमेरिका गई थी।

हमारे देशमें ये सींगहीना गायें नहीं होतीं। युरोपमें इस जातिकी गायें कब और कहांसे आई थीं, इसका कुछ पता नहीं है। डार्विन साहब भी कुछ स्थिर नहीं कर सके हैं कि ये गाये सींग हीना कबसे हो गईं। कुछ लोगोका मत हैं, कि ये अमेरिकासे लाई गई हैं। छोटी सींगवालोंसे सींग हीना गोजातिका संयोग होनेसे ही इनकी उत्पत्ति हुई है। चाहे इनकी उत्पत्ति किसी भी तरहसे हुई हो, डारहम और हेरीफोर्ड जातीय सींगविहीना गायोंकी और उत्तर दक्षिण डिवन शायर गायोंकी उन्नति और वृद्धिके लिये बहुतसी समितियां गठित हैं। सम्राट् पञ्चम जार्ज्ज भी रायल काव्ज़ विण्डसर सुसाइटी (Royal calves windsor society) नामक समितिके एक सदस्य

---

(1). One cow's history is probably without a parallel, she began her carrier with 11, 178¼ lb. of milk in 509 days; next 11, 405½ lb in 394 days. In dropping her third calf, she became incapable of further breeding. From May 11,1890 was in milk till September 28, 1899. Her total milk yield, with only 51 days cessation. in 12 year 9 days, was 63221¾ lb. While yet giving 6. 19 lb. of milk per day......she was slaughtered.

S. C. M. Agriculture.

हैं। सींगविहीना गायें जैसी शान्त होती हैं, वैसी ही दुग्धवती भी होती हैं। इस जातिमें जायण्ट, विलसन, आदि बैल और लरा तथा ब्युटी नाम्नी गायें हैं।

डारहम और यार्क-शायरी गो-जाति

टीम नदीके दोनों तीरोंपर डारहम और यार्कशायर नामक इङ्गलैण्ड के दो प्रदेश हैं। यही दोनों प्रदेश क्षुद्र सींगवाली गायोंकी उत्पत्तिके प्रधान स्थान हैं। इन स्थानोंकी गायें तमाम पृथिवीपर विख्यात हैं। विस्तृत विवरण क्षुद्र सींगवाली गायोंके विवरणके साथ दिया गया है। हमारे महामहिमान्वित सम्राट पञ्चम जार्ज्जकी गायोंमें भी इस जातिकी गायें हैं; उन्हें कई प्रदर्शनियोंसे पदक मिले हैं।

सासेक्स्

इस जातिकी गायें, सासेक्स, केण्ट, मारे आदि प्रदेशोंमें मिलती हैं। इस जातिकी गायोंकी आकृति-प्रकृति और वर्ण सौसादृश्य देखने से मालूम होता है कि ये और डिवन जातीय गायें एकही वंशकी हैं।

इनमें छोटी और बड़ी दो तरहकी गायें होती हैं। सासेक्स की उत्कृष्ट गोचर भूमिके कारण ही वहांकी गायें बड़ी होती हैं। गाड़ी खींचने और बोझ ढोनेमें छोटे आकारके बैलोंकी तरह बैल इङ्गलैण्डमें नहीं होते। इस जातिके बैल भारी बोझ लेकर प्रतिदिन पन्द्रह मील बहुत दिनोंतक चल सकते हैं। लार्ड सेफिल्डने लिखा है, कि इस जातिकी एक गाय १६ मिनिटमें चार मील दौड़ आई थी। इनके मुंहमें घोड़ेकी तरह लगाम लगाकर काम लिया जा सकता है। वास्तव में इस जातिकी गायें दुग्धवती नहीं होती। इन गायोंको जो दूध होता हैं, वह उनके बच्चे के लिये भी यथेष्ट नहीं होना। वंगदेशीय गायोंकी

भांति गोवत्स तमाम दिन गायके साथ ही फिरा करता है । इसके बाद रातको बच्चा अलग कर दिया जाता है । प्रातःकाल ये गायें थोड़ासा दूध देती हैं । बहुत थोड़ी उमरमें ये गायें पूर्णता प्राप्त करती हैं और नाना प्रकारके मेहनती कामोंमें लगी रहती हैं । बैल तीन वर्षसे लेकर सात वर्षतक मेहनतके काम कर सकते हैं । उसके बाद उन्हें खिला-पिलाकर मोटाकर मांसके लिये बेंच देते हैं । इङ्गलैण्डमें इनका विशेष आदर है । इनका मुंह चिपटा, पेट और पीठ दोनों सीधी रेखाकी भांति और हड्डी मोटी और मजबूत होती है ।

वेल्स-देशीय गो-जाति

वेल्सदेशकी काली गो-जाति ही इस देशकी प्राचीन गो-जाति है । सफेद तथा काले रंगकी गायें सेक्सन और रोमनोंके समयमें लाई गई थीं । सौथ वेल्सकी गायें दूध अवश्य देती हैं । परन्तु नार्थ वेल्सकी गायें बहुत दुग्धवती नहीं होती हैं । यह बहुत थोड़ी खुराक पाकर भी परिपुष्ट रहती हैं, इसीसे इनका पालन करना बहुत सहज है । इनकी सींगे लम्बी होती हैं । वेल्सकी काली गो समितिने इस जातिकी गायोंकी विशेष उन्नति साधन की है ।

फकलेण्डकी गो-जाति

इङ्गलैण्डके बादशाह सातवें हेनरीने अपनी कन्या कुमारी मारग-रेटकी शादी स्काटलैण्डके राजा चौथे जेम्सके साथ किया था और दहेजमें ३०० गायें प्रदान की थीं । स्काटलैण्डके राज-परिवारवाले अधिकतर फकलेण्डके राज-भवनमें वास किया करते थे । यह गायें फकलेण्डमें ही रहती थीं, इसीसे इनकी बंशावलीको फकलेण्डकी गायें कहते हैं ।

एबार्डिन एङ्गास साँढ़।
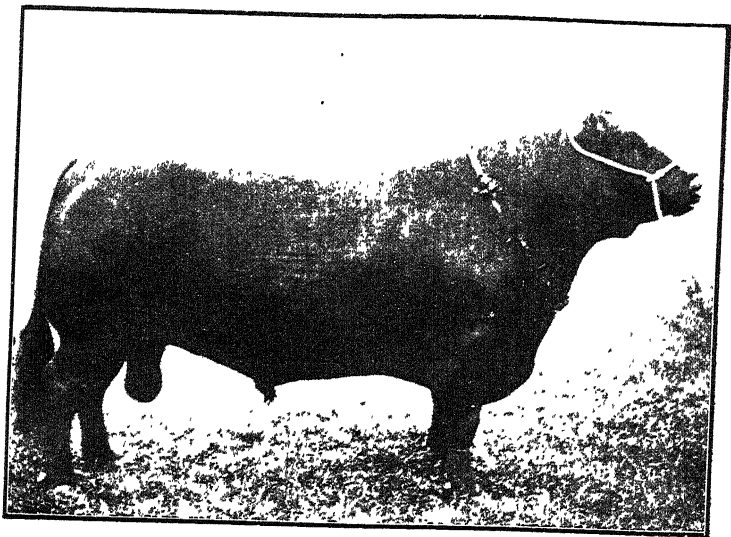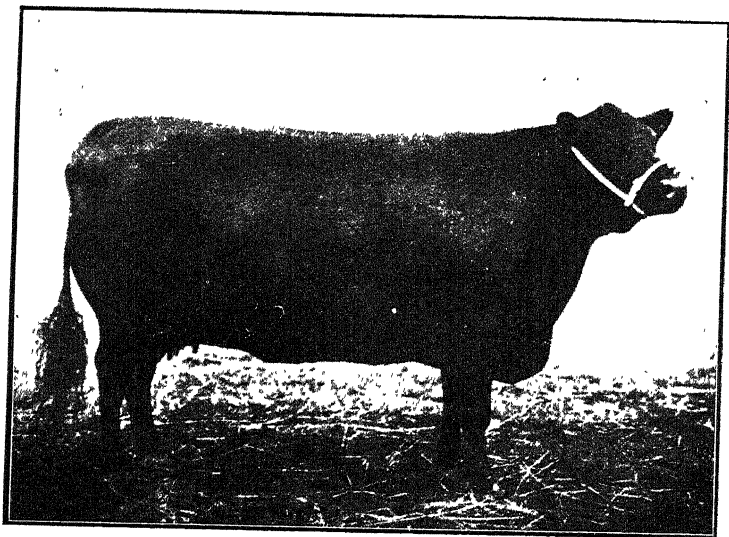
एबार्डिन एङ्गास गाय।

एवार्डिन एगांस गो-जाति

स्काटलैण्डकी इस जातिकी गायें बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका आदि विवरण विशेष रूपसे प्राप्त नहीं होता है। सन १७५२ इस्वीमें इस जाति की गायोंके सम्बन्धमें बहुत थोड़ासा विवरण प्राप्त हुआ था। परन्तु इनकी प्रकृति उन्नति, इङ्गलैण्डकी अन्यान्य गायोंकी भांति सन् १७२६ के बाद्से आरम्भ हुई थी। इसी थोड़े समयके भीतर इनकी आश्चर्य्य-जनक उन्नति हुई है। वाटसन नामक एक नवयुवकने अपने पितासे छः अच्छी गायें और एक उत्तम सांढ़ पाया था। परन्तु इससे वह सन्तुष्ट न हुआ और अपनी तमाम गायोंको बेंचकर उत्तम जातिकी दस बछियां और एक बैल खरीद कर थोड़े ही दिनोंमें इस जातिकी गायोंकी विशेष उन्नति कर डाली।

इस गोपालकके बाद फार्गूसन आदि अन्यान्य गोपालकोंने भी इस जातिकी गायोंकी यथेष्ट उन्नति कर डाली। परन्तु (१८७६ से १८८० तक) मेकम्बी नामक एवार्डिन शायर निवासी एक कृती बुद्धिमान और विचक्षण गोपालकने वाटसनको नकलकर आश्चर्य्य फल लाभ किया था। और उसके विशेष उद्योगसे यह एवार्डिन एगांस गो-जाति समस्त संसारकी दूध देनेवाली गायोंकी श्रेणीमें आगई। सन १८६६, १८७२ और १८७८ इस्वीमें पैरिसकी प्रदर्शनीसे और १८५७ की पोइसी (Poessy) प्रदर्शनीसे मि० मेकम्बीकी गायोंने सोनेका तमगा प्राप्त किया था। इन गायोंको देखकर उस समय लोग बड़े आश्चर्य्यमें पड़ गये थे। इस जातिके एक चार वर्षके बैलने समस्त ऊंचे दर्जेका पदक प्राप्त किया था। भारतेश्वरी महारानी विक्टोरियाने उसे देखनेके लिये अपने विण्डसर प्रासादमें मंगाया था।

शृङ्गहीन गो-जातिकी वंशावली (Herd book) सबसे पहले सन १८६२में प्रकाशित हुई थी ।

दूधके परिमाणमें और नवनीत की अधिकताके लिहाजसे एवार्डिन एङ्गास जातिकी गायें अति उत्तम होतीं हैं । इनके दूधमें नवनीतका परिमाण अधिक होता हैं । ऊन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम तीस वर्षोंमें इस जातिकी गायें तमाम पृथिवीपर फैल गई हैं । आजकल उत्तर अमेरिका, कनाडा अष्ट्रेलिया तथा युरोपके अन्यान्य देशोंमें खूब फैल गई हैं ।

इस जातिकी गायें मांसके लिये भी प्रसिद्ध हैं । महारानी विक्टोरिया और सम्राट सातवें एडवर्डने अच्छी जातिकी गायोंको 'चेलेञ्ज कप' दिया था । यह कई बार एवार्डिन एङ्गास जातिकी गायोंने ही प्राप्त किया था । चिकागोकी इण्टरनेशनल प्रदर्शनीमें भी इस जातिकी गायोंने कईबार पुरस्कार पाया है । इस जातिके एक तीन वर्षकी उमरके बैलका वजन ३३ मन तक हो चुका है । इन गायोंकी उन्नतिके लिये जो समिति है । उसके सदस्योंकी संख्या ५१२ है और अबतक ६७११८ गायोंकी राजिस्ट्री हो चुकी है ।

१८७६ इस्वीमें उत्तर अमेरिकामें पहले पहल ये गायें लाई गई थीं । आजकल वहां एक समिति गठित हो गई है । उसके सदस्योंकी संख्या प्रायः एक हजार है । और गायोंकी वंशावली (Herd book) सोलह खण्डोंमें प्रकाशित है । उसमें लाखों गायोंकी रजिस्ट्री हो चुकी है । अमेरिकाकी क्या आश्चर्य उन्नति हो गई हैं ।

आयार सायर गायें

स्काटलैण्डके आयार सायर नामक कौण्टी, इस जातिकी गायोंका आदि निवास है । गोशालाके लिये यह स्थान चिर प्रसिद्ध है । यहां बहुत अच्छी गोचर भूमि हैं । अनाज भी यहां खूब पैदा होता है ।

इस स्थानके अधिवासी तथा गायें कष्टसहिष्णु होती हैं। आज ६० वर्षों से इस स्थानकी गायोंकी सुख्याति बाहर फैल गई है। ये गायें पृथिवीके विभिन्न देशोंमें लाई जाती हैं। इनकी तरह विभिन्न स्थानोंका जलवायु दूसरी कोई विलायती गायें नहीं सह सकती हैं।

आयार-शायर जातिकी गायें मझोले आकारकी होती हैं. और इनका वजन १२॥ मन होता है। ये नाटे पैरोंकी, लाल और सफेद रंगोंकी चितकबरी और कोई कोई केवल लाल और सफेद रंगोंकी होती हैं।

यह गायें अल्पाहारी होती हैं, इसलिये पालनेके उपयुक्त होती हैं। इनके दूधका गुण भी अच्छा होता है। साधारण भोजन पाकर भी ये सालमें ७५ मन दूध देती हैं।

इस जातिकी १८ गायोंने १ वर्षमें ८००० पोण्ड दूध दिया है। (१)

,,	५१	,,	,,	८५००	,,	,,
,,	४३	,,	,,	९०००	,,	,,
,,	१७	,,	,,	९५००	,,	,,
,,	१४	,,	,,	१००००	,,	,,
,,	७	,,	,,	१०५०	,,	,,
,,	६	,,	,,	११०००	,,	,,
,,	४	,,	,,	११५००	,,	,,
,,	२	,,	,,	१२०००	,,	,,
,,	१	,,	,,	१२५००	,,	,,

गैलवे गाय

स्काटलैण्डके दक्षिण और पश्चिम अंशोंमें गैलवे नामका एक

(1) The Journal of Dairying and Dairy farming in India July 1914. P. 310

प्राचीन प्रदेश है। इस प्रदेशकी गायें गैलवे नामसे प्रसिद्ध हैं। पहले ये बड़ी बड़ी सींगोंवाली होती थीं, परन्तु आजकल गोपालकोंके :यत्न से बिना सींगकी हो गई हैं।

सन १६८६में अर्ल अफ़ सेलकार्क और उनके पुत्र लार्ड डूयरने इस जातिकी गायों को समुन्नत करना आरम्भ किया था।

स्टिनचर नामक पहाड़ी प्रदेशमें तीन हजार काली गायें विचरण किया करती थीं। और वेलड्रममें सर डेविड डानवरके पास एक हज़ार गायें थीं।

सन १८२१में हाइलैण्ड सुसाइटीको गो-प्रदर्शनी आरम्भ हुई। सन १८७७में गैलवे की गो-समितिकी प्रतिष्ठा हुई और गोवंशावली (Herd Book) प्रकाशित हुई। उसमें पांच सौ गायोंका नाम लिखा गया था। १६०६ इस्वीमें उसमें तीस हजार गो-संख्या सन्निविष्ट की गई।

इस गो-जातिका रंग साधारणतः काला होता है। आयार-शायर अथवा अन्यान्य गोशालाओंकी गायोंकी भांति ये विशेष दुग्धवती नहीं होतों। इनके दूधमें नवनीतका भाग अधिक होता है। एक गायके एक दिनके दूधमें प्रायः एक सेर मक्खन निकलता है।

इनमें संकर वत्स उत्पादन करनेकी भी विशेषता है। इस जातिका बैल अन्यान्य जातियोंकी गायोंमें मिल जाता है और उसीसे इस जातिको गायोंकी वृद्धि होती है। इस जातिकी बहुतसी गायें, उत्तर अमेरिका, कनाडा, ग्रीस, साइप्रास रूस और मेसोपोटामियामें लाई गई हैं।

पश्चिम हाइलैण्डर गो

स्काटलण्डके पश्चिम हाइलैण्डमें, समुद्रके किनारे और पार्श्व-

शायरमें इस जातिकी गायें होती हैं। इनका शरीर लम्बे और घने बालोंसे अच्छादित होता है। इसीलिये ये कठोर जाड़ा बरदाश्त कर सकती हैं। बहुत प्राचीन कालमें इनको काईलो (Kyloe) कहते थे। ये गायें साधारणतः काले रंगकी होती हैं। जाड़ा, गरमी, बरसात आदि सब मौसिमोंमे ये खुले मैदानोंमें रह सकती हैं। ये क्षुद्रकाय और बृहत्-सींगी, होती हैं। ये दैनिक केवल पांच सेर दूध देती हैं; परन्तु इनका दूध निहायत अच्छा होता है। अर्थात् उसमें नवनीतका भाग अधिक होता है। इस जातिकी गायोंकी उन्नतिके लिये समितियाँ बनी हैं और उनके द्वारा इनकी विशेष उन्नति भी हो रही है। प्राचीन कालमें जब इन गायोंको आदिम अवस्था थी, तब इनकी देहका वजन साढ़े तीन मन या चार मन होता था, परन्तु समितिको चेष्टासे आज कल इनका वजन १८।१६ मन हो गया है। ये गाय और भैंसके बीचके पशु हैं। इनके शरीरका गठन बहुत कुछ जंगली गायेलको भांति होता है। काइलो गाय और भैंसोंसे संयोग कर संकर वत्स उत्पन्न करनेमें नार्दमबारलैण्डके ड्युकने आशातीत सफलता प्राप्त की है।

आईरिश गो

केरी और डेक्सटार।

आयलैण्डमें केरी और और डेक्सटर, दो जातिकी गाये' होती' हैं। केरी जातिकी गायें छोटी और अल्पभोजी होती हैं। ये दरिद्रोंकी गाये' हैं। आकारमें छोटी होनेपर भी ये दूध खूब देती हैं और थोड़ा खाकर ही मोटी-ताजी बनी रहती हैं। इनका रंग साधारणतः काला होता है। किन्तु काले रंगके अलावा, चितकवरी भी होती हैं। इनकी सींगे बहुत बड़ी नहीं होती और ऊपरकी ओर टेढ़ी होकर उठी रहती हैं। सींगोंका रंग सफेद होता है। किन्तु अग्रभागका रंग काला होता है। आंखें उज्ज्वल, गठन सुन्दर और चमड़ा कोमल होता है। एक

८।९ मन वजनकी गायने पहलीवार प्रसव करनेपर ६० मन दूध दिया था ।

इस जातिकी पहाड़ी गायों द्वारा डेक्सटर साहबने एक स्वतन्त्र जातिकी गायें उत्पादनकी हैं। इसीलिये ये केरी डेक्सटरके नामसे विख्यात हैं। इनका गठन सुगोल और पैर छोटे होते हैं। ये खूब वलवान होती हैं। रंग इनका भी साधारणतः काला ही होता है, परन्तु बहुतसी लाल और सफेद मिली हुई भी होती हैं। ये बड़ी शान्त होती हैं; परन्तु केरी जातीय गायोंकी भांति दुग्धवती नहीं होतीं। धनी दरिद्र सभी इन्हें पाल सकते हैं। केरी प्रदेशका अधिकांश स्थान पहाड़, प्रान्तर और पानीसे घिरा है। वहां खुले स्थानोंमें रहकर, ये शीत और एटलाण्टिक महासागरकी प्रवल तूफानी हवा बरदाश्त कर सकती हैं। १८७७ ईस्वीके जनवरी महीनेमें आयर्लेण्डके कृषक पत्रमें (Farmar Gazzetteer) में केरीडाक्सटर गायोंकी रजिस्ट्री प्रकाशित हुई थी। ये रायल डबलिन सुसाइटीकी प्रदर्शनीमें अलग अलग दिखायी गई थीं। इसी सुसाइटीने केरी डेक्सटर जातिकी गायोंकी रजिस्ट्री प्रकाशित की थी।

सन १८८६ ईस्वीमें नारविच शायरकी कृषि-समितिकी (Agricultural Society) प्रदर्शनीमें एक तीन वर्षके गायके वजनके लिये राबर्टसन साहबने ईनाम पाया था। उक्त राबर्टसन साहबकी चेष्टासे इङ्गलैण्डमें इन गायोंका आदर बढ़ा था। वहां सन १८९२से इङ्गलिश केरी और डेक्सटार सुसाईटी स्थापित हो गई है। सन १९०० में एक डेक्सटर हर्डबुक भी प्रकाशित हुई थी।

रायल डबलिन सुसाइटीके हर्डबुकमें केरी और डेक्सटर जातीय जिन गायोंकी रजिस्ट्री हो सकेगी उनके विषयमें कतिपय नियम भी बनाये गये थे।
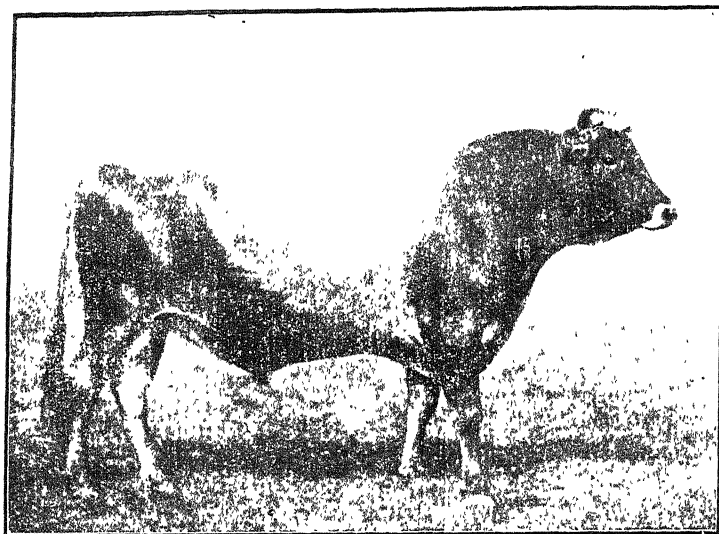
जारसी बैल ।

जारसी गाय ।

(क) जिन गायोंका नाम हर्ड बुकमें दर्ज है, उनका और उनके सन्तान सन्ततिका।

(ख) जिन प्रदर्शनियोंमें इस सुसाइटीके मनोनीत परिदर्शक हैं, उन प्रदर्शनियोंसे पुरस्कार पाई हुई गायें। कृष्णवर्ण केरी-जातीय गायें और बैल, जिन गायोंके पैर और नाभीका रंग धूसर (भूरा) हो। थोड़ी थोड़ी सफेद लाल और काले रंगोंकी डेक्सटर जातीय गायें।

(ग) उक्त सुसाइटीके सदस्यगण प्रदर्शितकर जिन गायोंका नाम दर्ज करनेके लिये अनुरोध करें।

इंगलिश चेनाल द्वीपोंकी गो-जाति

जार्सी-गो।

इङ्गलिश चेनाल द्वीपोंमें जार्सी नामका एक द्वीप है। इस द्वीपकी गायें जार्सी नामसे ख्यात हैं। जार्सी जातीय गाये' अच्छी होती हैं। ये दूधके लिये ही विख्यात हैं। क्योंकि ये गाये' प्रचुर दूध देती हैं। ये मांसके लिये नहीं पाली जाती हैं। क्योंकि ये कभी भी खूब मोटी नहीं होतीं। पूरी उमर की एक गायका वजन नौ दस मन होता है। इङ्गलैण्डकी सब जातिकी गायोंकी अपेक्षा इस जातिकी गायोंके दूधमें नवनीतका भाग अधिक होता है। इन गायोंके अट्ठारह उन्नीस सेर दूधमें एक सेर मक्खन निकलता है। एक गायके एक वर्षके दूधमें सवा चार मन मक्खन होता है। इनके शरीरका रंग शुभ्र और धूसर होता है; शरीरकी गठन मझोली, सामनेकी अपेक्षा पीछेका भाग प्रशस्त होता है। गर्दन नाटी और पतली होती है। सामनेका भाग कुछ झुका हुआ होता है। पूंछ लम्बी, कान छोटे, आंखे चमकीली, मुख और मस्तक छोटा तथा उन्नत होता है। पीठ धँसी और

सीगें छोटी होती हैं, ये दो वर्षकी उमरमें बच्चे देती हैं। एकवार प्रसव करनेपर एक गाय प्रायः सवा छप्पन मन दूध देती है।

इस द्वीपमें गोचर भूमि नहीं हैं। गर्मीके दिनोंमें गायें घासमें बांध दी जाती हैं। ये रातमें बाहर ही सोती हैं और शीत कालमें सूखी घास खाती हैं। एक गायको चार सेर खाना देनेसे ही काम चल जाता हैं। इन चार सेरोंमें डेढ़ सेर जई, डेढ़ सेर दालकी खुद्दी और एक सेर बिनौला दिया जाता है। इस द्वीपमें इस जातिकी गायोंकी तादाद अधिक नहीं है; समस्त द्वीपमें कुल ११००० गायें हैं। इनमें ६००० गायें दूध देती हैं। इस द्वीपसे प्रतिवर्ष १००० गायें इङ्गलैण्ड, १०० फ्रान्स और ६०० डेनमार्कमें लाई जाती हैं। १६०० इस्वीमें ४१६ गायें युनाइटेड स्टेट्समें भी गई थीं।

१८६६ इस्वीमें जर्सी कृषि-समितिके यत्नसे जर्सी गो-जातिकी वंशावली प्रकाशित हुई थी। १८७८ ईस्वीमें इङ्गलिश जर्सी गो-समिति स्थापित हुई और उसके बादके सालमें गायोंकी वंशावलीकी पुस्तक प्रकाशित हुई।

गारन्सी गो-जाति

इस जातिकी गायें नार्मण्डीसे गारन्सीमें लाई गई हैं। विलियम दी कांकररके पिताके समयमें भी इस जातिकी गायें इस देशमें थीं। इसका प्रमाण है। इस जातिकी गायें स्वभावतः अत्यन्त दुग्धवती होती हैं। १८८५ इस्वीमें गारन्सी समिति स्थापित हुई, और गायोंकी वंशावली प्रकाशित की गई। १८८६ ईस्वीमें रायल एग्रोकलचरल सुसाइटीके विण्डसर प्रासादमें जो प्रदर्शनी हुई थी, उसमें इस जातिकी गायोंने (Champion prize) सर्व प्रधान पुरस्कार पाया था। एक अमेरिकन गोपालकने उस गायको २२५०) देकर खरीद लिया था।

कर्नल ग्लीनेस (Glynes) की इसी जातिकी "गोल्डेन हार्न" नामकी एक गायने कितने ही "चेम्पियन" और अन्यान्य पुरस्कार प्राप्त किये हैं। इस जातिकी गायें खूब दूध देती हैं। इनका मस्तक दीर्घ, आंखे बड़ी, ललाट प्रशस्त, सींगे टेढ़ी, गर्दन लम्बी और पतली, पीठ धँसी हुई ; अन्यान्य बिलायती गायोंकी तरह सीधी होती है। दुम लम्बी और घन लोमावृत और नाक सफेद होती है। दुग्ध-वाहिनी शिरायें कुञ्चित और स्थूल होती हैं। बाहरसे खूब स्पष्ट दिखाई देती हैं। इनका "थन" खूब बड़ा होता है और खूब दूध धारण कर सकता है। दूधकी नलियां बड़ी, मोटी और अलग अलग होती हैं। कान, दुम, अगला हिस्सा, सींगोंकी जड़ें थन और शरीरका वर्ण ईषत् पीला होता है। दूध और नवनीतकी परीक्षाओंसे जाना गया है, कि ये गायें अच्छी होती हैं। १८६० ईस्वीकी सौदमटन रायल प्रदर्शनीमें इस जातिकी एक अच्छी गायने १६सेर ६ छटाँक दूध दिया था। और प्रदर्शनीसे दोबार पुरस्कार प्राप्त एक दूसरी गायने २४ घण्टोंमें १ मन चार सेर दूध दिया था। उपर्युक्त प्रदर्शनी द्वारा रौप्य पदक प्राप्त नवनीत देनेवाली गायके २४ घण्टोंके दूधमें तीन पाव मक्खन निकला था। प्रथम पुरस्कार प्राप्त गायके दूधमें एक सेर एक छटांक नवनीत निकला था। उसके दूसरे साल उसी प्रदर्शनीमें फ्लारेन्स नाम्नी प्रसिद्ध गायके नवनीतकी परीक्षा कर देखा गया था कि उसके एक दिनके दूधमें १ सेर तीन छटांक मक्खन होता है। ये गायें साधारणतः १५से २० सेर तक दूध देती हैं।

शीतकालमें नवनीत देनेवाली गायोंको पाम लीफ़ और दूध देनेवाली गायको बाफेट खानेको दिया जाता है। गोमांस खानेवालोंके लिये इन गायोंका मांस स्वादिष्ट नहीं होता।

इस जातिकी तथा जार्सी जातिकी गायोंका मक्खन पीलापन लिये हुए होता है। इङ्गलैण्डके शार्ट-हर्न गायोंके गौशालाओंमें भी

दो एक जर्सी और गारन्सी गायें दिखाई देती हैं। और उनके मक्खन से दूसरी गायोंके मक्खनमें रंग किया जाता है। इनके शरीरका गठन बलिष्ठ होता हैं और ये कष्टसहिष्णु होती हैं। शीत और बर्षामें बाहर विचरण करती हुई चर सकती हैं। ६ महीनेमें ये प्रतिदिन डेढ़ सेर से लेकर अढ़ाई सेर तक बिनौल की खली खाती हैं। अमेरिकावाले इन गायोंके विशेष खरीदार होते हैं। इस जातिकी गायें थोड़ा खाती हैं और बहुत दूध देती हैं। इनके प्रति जो यत्न और चेष्टा होती है, वह कभी निष्फल नहीं जाती।

ईस्टइण्डियन गो-जाति

भारतवर्षसे नाना जातिकी गायें समय समय पर इङ्गलैण्ड भेजी जाती हैं। वहां जाकर इन गायोंने अपनी जाति और वंशकी क्षमताका यथेष्ट परिचय दिया है। ये एक मनुष्यको पीठपर लादकर फी घण्टे ६ मीलेके हिसाबसे १६ घण्टे तल चल सकती हैं। और दौड़कर अति उच्च बेड़ा नाँघ लेती हैं।

बंगालके गवर्नर बेरिलष्ट साहबने भारतसे कितनी ही गायें लेजाकर लार्ड वर्किङ्घमको उपहार दिया था। उनके वंशकी गायें अभी भी वहां मौजूद हैं।

हालैण्ड

हालैण्ड भारतवर्षके गुजरात प्रदेशकी भांति समुद्र तीरवर्त्ती प्रदेश है। पृथिवीके सब देशोंकी अपेक्षा अधिक दूध देनेवाली गायें हालैण्डमें होती हैं। इस देशकी तीन श्रेणियोंकी गायें अधिक प्रसिद्ध हैं। (१) होलस्टिन फ्रिजियन (२) लेकेन फील्ड वा डचबेल्ट (३) उत्तर हालैण्डीय गायें।

इस देशकी गायें खूब बड़े आकारकी शान्त, धीर और खब सूरत होती हैं।
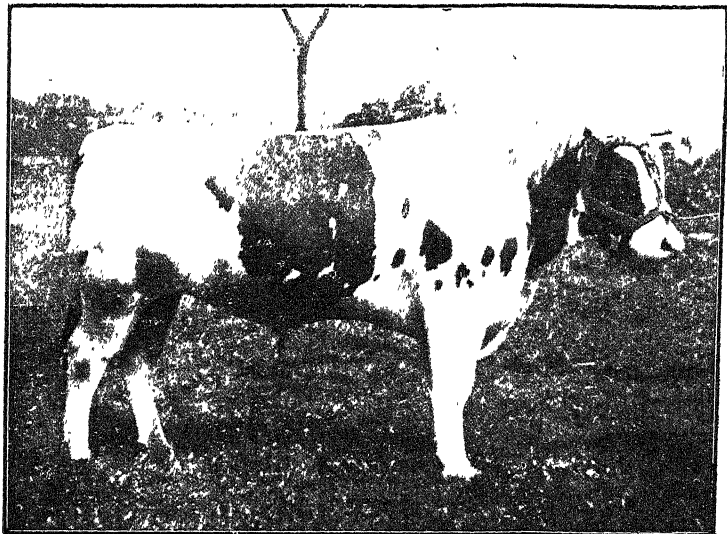
फ्रिसियन बैल।
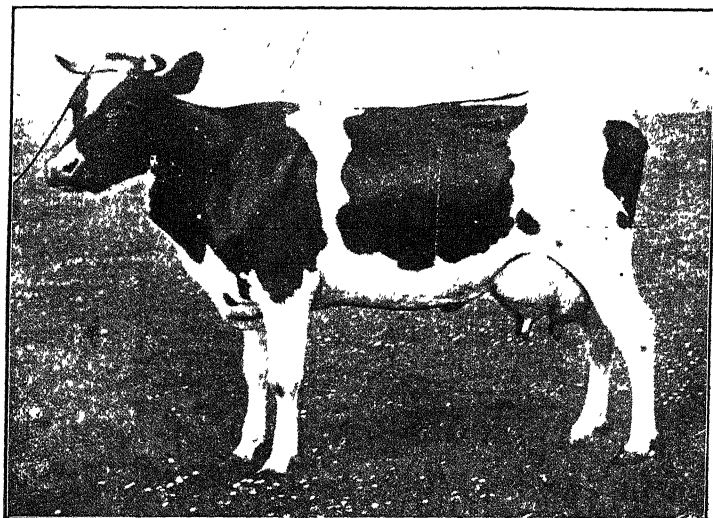
फ्रिसियन गाय।

होलस्टिन फ्रिजीयन

नेदरलैण्डके पश्चिमोत्तर प्रदेशको फ्रिजिया कहते हैं। फ्रिजिया और बटिविया, व्हावाल (vabal) और राइन नदीका उत्तरीय किनारा इस गो-जातिका आदि स्थान है। जर्मनीके होलस्टिन बन्दरसे ये गायें दूसरे देशोंमें जाती हैं; इसीसे अमेरिका वाले इन्हें होलस्टिन फ्रिजियन कहते हैं। फ्रिजियनके अधिकांश स्थान खाल हैं, इसलिये वहां घासकी सदैव अधिकता रहती है। यही श्यामल घास-पूर्ण मैदान वहांका गोचर-भूमि है। इसी गोचर-भूमिके कारण यहांकी गायें इतनी अच्छी होती हैं। इस स्थानके बैलोंकी उंचाई २४से ३२ इंच तक होती है। यहांका एक गोष्ठ १०० एकड़से अधिकका नहीं होता। हरएक गोष्ठमें, गोगृह, गोपालकोंका वासगृह और गोग्रासागार होता है।

मई महीनेके पहले ही गायें बाहर छोड़ दी जाती हैं। उस समय उन्हें और खाद्य नहीं दिया जाता। अक्तूबर महीनेसे वे घास खाती हैं। वहां गो-स्वामी गो-पालनके सिवा और कोई काम नहीं करते। इसीसे वे गायोंके प्रति विशेष मनोयोग रखते हैं। एक साधारण गोष्ठमें ३० वा ३५ गायें रहती हैं। इस जातिकी गायोंका रंग सफेद और काला मिला हुआ होता है। इङ्गलैण्डमें सब जगह ऐसी चितकबरी गायें दिखाई देती हैं। इन्हें सफेद पेट वाली भी कहते हैं।

ये छोटो बड़ी और मझोली, तोन श्रेणियोंकी होती हैं। जिस भूमिमें ये चरती हैं उसी भूमिके गुणानुसार तीन भागोंमें विभक्त हैं।

पहली श्रेणीकी गायें कीचड़-युक्त भूमिमें होती हैं, दूसरी श्रेणी की स्थलमें और तीसरी श्रेणीकी रेतीली भूमिपर रहती हैं। इनकी

सींगें छोटी और सीधी होती हैं तथा अगला भाग झुका हुआ होता है।

बहुतोंके मतानुसार ये ही इङ्गलैण्डकी छोटी सींगवाली गायोंकी आदि बीज हैं। इस जातिकी गायें खूब दूध देती हैं। अच्छा भोजन देनेसे ये सहजही मोटी-ताजी हो जाती हैं। इनके शरीरका चमड़ा पतला, आंखें कोमल; मस्तक बृहत् और काले कपालमें सफेद टीका होता है। नाक विस्तृत और बड़ी होती है, गला पतला, होता है। गर्दनसे दुम तक सीधी रेखाकी तरह मालूम होता है। थन और चूंचियां पुष्ट होती हैं, परन्तु लम्बी नहीं होतीं। दुम लम्बी होती है। बच्चोंका वजन जन्मते ही एक मन पांच सेर होता है। एक वर्षके बकेनाका वजन सवा आठ मन और बछड़ेका वजन प्रायः साढ़े आठ मन होता है। चार वर्षकी गायका वजन अट्ठारह मन होता है। ये गायें एक बियानमें १०० मनके पड़तेसे दूध देती हैं। इन्टरनेशनल प्रदर्शनीमें फ्रिजियन जातीय गायें ही, अधिक दूध और मक्खनके लिये, पहले दर्जेका इनाम पाया करती हैं। सन १८८३ ईस्वीकी चिकागो-प्रदर्शनी, सन १८८४ ईस्वीकी आमस्टर्डम प्रदर्शनी और सन १६०४ की सेण्ट लूई प्रदर्शनीमें इन गायोंने प्रथम पुरस्कार पाया था। इसी प्रदर्शनीमें एक गायके १२० दिनके दूधमें चार मन पांच सेर मक्खन निकला था। कण्ट्रोलिङ्ग एसोसियेशनने इनकी आश्चर्य्यजनक उन्नतिकी हैं। १८६७ में उनकी गायोंके दूधमें ३.५ भाग मक्खन था। परन्तु सन १८६२में ३.२८ हो गया, १८६६में ३.३६, सन १६०० में ३.४६, सन १६०१में ३.४७ सन १६०२में ३.४०, सन १८०३में ३.५० और सन १६०४में ३.५२ हुआ था। इस समितिकी एक गायने ३२६ दिनोंमें २३३ मन ५सेर दूध दिया था। इसी जातिकी एक दूसरी गायने एक दिनमें ३० सेर दूध दिया था और उसके दूधमें सैकड़ा ५.६ भाग मक्खन था। एक और गायने ३७० दिनोंमें २०५ मन दूध दिया

था। उसमें ८ मन ८ सेर मक्खन निकला था। एक गायने ३३६ दिनोंमें २१७ मन दूध दिया था। ये गायें खरीदकर प्रसिया, जर्मनी, जापान तथा पृथिवीके अन्यान्य देशोंमें लाई गई हैं।

डचबेल्ट वा लेकेन्-फिल्ड जतीय गायें।

इस जातिकी गायोंका आदि निवासस्थान हालेण्ड देश है। इनका रंग बड़ा ही आश्चर्यजनक होता है। ये इङ्गलैण्डकी गालवे जातीय गायोंकी तरह होती हैं। परन्तु इनको सींगें होती हैं। युरोपमें ये डचबेल्टके नामसे विख्यात हैं। हालेण्ड देशमें इन्हें लेकेन्फिल्ड कहते हैं। इसका अर्थ है वस्त्रावृत। इस जातिकी गायोंका अगला और पिछला हिस्सा घोर काला; किन्तु शरीरका बिचला हिस्सा खूब सफेद रोमोंसे ढंका हुआ होता है। देखनेसे मालूम होता है कि एक सफेद कम्बल उनकी देहके बीचोंबीच लपेट दिया गया है। इसीसे इनका नाम लेकेन्फिल्ड पड़ा है। ईसाकी सतरहवीं शताब्दीमें हालेण्डके छोटे बड़े सभी इन गायोंकी पालते थे।

आकारमें ये गायें इङ्गलैण्डकी आयर-शायर और गारन्सी जातीय गायोंसे बड़ी और होलष्टिन जातीय गायोंसे छोटी होती हैं। एक गायका वजन १२ से १५ मन तक होता है और एक सांढ़का वजन २०।२२ मन होता है। ये निम्न भूमिकी प्रचुर घास खाकर पुष्ट होती हैं। परन्तु ऊचभूमिमें रहकर उतनी पुष्ट नहीं होतीं। इस जातिकी गायें अत्यन्त दुग्धवती होती हैं। एक गाय केवल मैदानकी घास खाकर एक मन दूध देती हैं। ये गायें केवल दूधके लिये ही पाली जाती हैं। इङ्गलैण्ड, मेक्सिका, कनाडा, अमेरिका संयुक्त-राज्य और अन्यान्य स्थानोंमें भी इस जातिकी गायें होती हैं। परन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है।

उत्तर हालेण्डकी गोजातिमें ऐसी कोई विशेषता नहीं होती। इसलिये उनका बिशेष विवरण नहीं दिया गया।

बेलजियम।

इस देशकी गोजाति अनेक अंशोंमें हालेण्डकी गोजातिकी तरह होती है, इसलिये उसका विस्तृत विवरण देना अनावश्यक है।

स्वीजरलैण्ड।

यह राज्यही एक गोचर-भूमि है। इस राज्यका दो तृतीयांश भूमि खेतीके योग्य और गोचर-क्षेत्र है। इसका सैकड़ा ८३ भाग गोचारणके लिये रक्षित रहता है। १६०१ में इस राज्यमें १३४० गायें थीं। सन १९०६ से उनकी संख्या १४९९८०४ हो गई है। गर्मीके दिनोंमें आल्प्सकी पहाड़ी भूमिमें इस देशकी गायें घास चरा करती हैं और जाड़ेके दिनोंमें घरोंमें रहती हैं।

यहांकी गायें खूब दूध देती हैं। इस देशकी गोजातिमें कतिपय वर्णोंकी एक जातीय गायें होती हैं। वेही अधिक दूध देती हैं। ये खूब मोटी होती हैं, इससे नाटी मालूम पड़ती हैं। इस श्रेणीकी एक गायका वजन १६।१७ मन और एक बैलका वजन २०।२२ मन होता है इनका स्वभाव खूब शान्त होता है। ये बड़ी आसानीसे पहाड़ोंपर चढ़ उतर सकती हैं। इनके शरीरका चमड़ा और रोएं मुलायम होते हैं। इनका थन तथा इनकी चूँचियां सुगठित होती हैं, दूधकी शिरायें साफ दिखाई पड़ती हैं। स्वीटजरलैण्डमें दूधका खूब विस्तृत व्यवसाय होता है। आजकल इस देशको पृथिवीका गो-गृह कहते हैं।

डेनमार्क।

गुजरात प्रदेशके कच्छ नामक स्थानकी भांति डेनमार्क भी समुद्रसे घिरा हुआ है। एक समयमें डेनमार्क समस्त युरोपका गोगृह था। वहां ओल्डेनबर्ग और रेड डेनिस नामक दो जातियोंका उत्कृष्ट गो-परिवार दिखाई देता है। एक समय इस देशसे समस्त

युरोपमें खोआ, मक्खन, पनीर और दूध जाया करता था। आज भी यह देश दूध और मक्खनके लिये विख्यात है

नारवे और स्वडिन

डेनमार्क की भांति इन दोनों देशोंमें भी प्रभूत दूध देनेवाली गायें होती हैं। ये और डेनमार्ककी गायें एकही जातिकी हैं। यहां गोशाला-ओंका बन्दोबस्त बड़ा ही अच्छा है। गोस्वामी लोग उन्हें सदैव खूब साफ-सुथरा रखते हैं। गायोंको अच्छे प्रशस्त और अलग अलग घरोंमें रखते हैं। गो-गृहोंमें रोशनी पहुंचनेके लिये कांचके जंगले लगे रहते हैं। प्रत्येक गोके सामने और पीछे काफी स्थान खाली रहता है। इसके सिवा मलमूत्र शीघ्र ही साफ कर दिया जाता है। एक स्त्री बीस पच्चीस गायोंकी सेवा कर सकती है।

दूसरी जगहोंमें दो आदमी प्रतिदिन छः घण्टे परिश्रम करनेपर भी गायोंको इस तरह नहीं रख सकते। मट्टी और ईंटके स्थानोंकी अपेक्षा इस तरहके स्थान खूब सूखे और साफ़ रहते हैं। गायोंके घरोंमें लोहेकी पाइपों द्वारा जल प्रवेश कराया जाता है और पम्प द्वारा उत्तोलित किया जाता है। गायोंकी सेवाके लिये जो औरत नियुक्त रहती है। वह भी इस मकानके एक कोनेमें अपना वासस्थान रखती है। इस देशका अधिक स्थल शीतकालमें बर्फसे ढंका रहता है। इससे घासकी नितान्त कमी रहती है, परन्तु गोस्वामियोंके सुन्दर प्रबन्धके कारण घासका अपव्यय नहीं होने पाता। इसीसे घासका अभाव भी नहीं होता।

इटली

इस देशमें अच्छी गायें नहीं हैं। और गो-जातिकी उन्नतिके लिये कोई चेष्टा भी नहीं की जाती है। यहांकी गो-जातिकी सींगें बड़ी होती हैं गायें दूध देनेवाली नहीं होतीं। इटलीके उत्तरीय भागोंकी गायें

अनेकांशोंमें स्वीटजरलैण्डकी गो-जातिकी भांति होती हैं। इटली पार्मेशन पनीर (Parmesan Cheese) के लिये विख्यात स्थान है।

फ्रान्सदेशकी गो-जाति

फ्रान्सके उत्तर भागमें राइन नदीके किनारेके सिवा सब जगह नार्मेन गो-जाति, दिखाई पड़ती है। इनकी देहका रंग लाल होता है। और शरीरमें जहां तहां सफेद दाग भी होते हैं। इनकी छोटी सींगे सिरसे ऊपरकी ओर उठकर झुक जाती हैं और उनका अगला भाग काला होता है। पैर पतले और खूबसूरत होते हैं। नार्मण्डीमें बहुत सा गोचर मैदान है। वहांकी गो-जाति स्थूलकाय और खूब दूध देनेवाली होती हैं। इंगलिश चैनेलकी गायें, इन्हींकी एक जातिमेंसे हैं।

अमेरिकन गो-जाति

उत्तर अमेरिकाकी अधिकांश गायें, युरोपसे और दक्षिण अमेरिकाके ब्रेजिल आदि देशोंकी गायें भारतसे लाई गई हैं। आदि उपनिवेशिकों द्वारा, उत्तर अमेरिकाके कनाडा नामक स्थानमें होलष्टिन गोजाति युरोपसे लाई गई हैं। वर्त्तमान समयमें इङ्गलैण्ड और युरोपमें जितनी तरहकी गायें होती हैं, वे सभी उत्तर अमेरिकामें लाई गई हैं, और विभिन्न समितियों द्वारा अलग अलग उनकी उन्नति हो रही है। वस्तुतः अमेरिकाके आदि निवासियोंके समयकी कोई गोजाति वहां मौजूद नहीं है। किन्तु अमेरिकाके धन-कुवेर लोग युरोपकी प्रदर्शनियोंसे उत्तम पुरस्कार पाई हुई गायें और सांढ़ असम्भावित उच्च मूल्य देकर खरीद लेते हैं और उन्हींके द्वारा अपने देशकी गो-जातिकी उन्नति का विधान करते हैं। अमेरिकाकी कोई कोई गोप-समितियां केवल हालैण्डकी डचबेल्ट, कोई स्वीडिस, कोई इङ्गलैण्डकी जर्सी, गारन्सी आयरशायर और डिवनशायर गो-जातिकी उन्नतिके लिये असाधारण

यत्न करती हैं। इसीलिये अमेरिकामें उत्कृष्ट गोजाति हो गई है। वहाँ की गायें अल्पाहारी, प्रचुर दूध देनेवाली और खूबसूरत होती हैं।

अमेरिकाके संयुक्त-राज्योंमें छोटी सींगवाली जातिकी अच्छी अच्छी गाये' देखनेमें आती हैं। वहाँ गोचारणके लिये बड़े बड़े मैदान भी हैं।

किउबा

इस द्वीपमें स्वभावतः बहुतसा गोग्रास उत्पन्न होता हैं। इसीसे यहां गोचर-भूमि यथेष्ट है। किन्तु अन्तर्विप्लवके कारण यहां गो-जातिकी यथेष्ट उन्नति नहीं हो रही है।

कनाडा

इस द्वीपमें बहुतसी गायें उत्पन्न होती हैं। और नाना जातिका उत्तम गोग्रास भी बहुतायतसे उत्पन्न होता है। इस देशके उत्तर पश्चिम प्रदेशमें बहुतसी गोचर भूमि (Prairie land) है। यहाँसे प्रति-वर्ष बहुतसे स्थूलकाय बैल नाना देशोंमें जाते हैं। इस देशके खेतोंमें जुवार, मूली, गाजर, केरट, मैङ्गेल (Mangels) जव, गेहूं, मटर, राई और तीसी उत्पन्न होती हैं। इस देशकी गोशालाओंकी गायों द्वारा दूध, मक्खन और पनीर आदि होता है। सरकारी गो-चिकित्सकोंके तत्वावधान द्वारा गाये' विभिन्न देशोंमें भेजी जाती हैं।

इस देशकी गो-जाति साधारणतः इङ्गलैण्डकी गोजातिसे उत्पन्न-हुई है। क्षुद्र सिंगी, हेरीफ़ोर्डशायर, गालवे, एबार्डिन ऐंगास, आयार शायर, जर्सी, गारन्सी, होलष्टिन और फ्रिजियन जातीय गायें यहां अधिक हैं। फरासी कनाडामें जर्सी गारन्सी ब्रिटीनी गायोंका अधिक आदर है।

१९०१ इस्वीमें कनाडामें गोजातिकी संख्या २०६६५४७ थी और १९०७में बढ़कर ७४३६०'५१ हो गई।

एरीजोना

उत्तर अमेरिकामें संयुक्त राज्योंके दक्षिण पश्चिम भागस्थित मेक्सिको और कालीफोर्नियाके एरीजोना नामक प्रदेशमें उत्तम गोखाद्य और गोचारणके लिये बहुतसे बड़े बड़े मैदान हैं। इन स्थानोंमें गोजातिकी वृद्धिका काम बड़ी तेजीसे हो रहा है और खूब उन्नति हो रही है। सरकारने कानून बनाकर यहां बहुतसा मैदान गायोंके चरनेके लिये छोड़वा दिया है। इस स्थानसे प्रति वर्ष पैंतालीस करोड़ रुपयेकी गायें इङ्गलैण्ड जाती हैं।

दक्षिण अमेरिका

दक्षिण अमेरिकाके धनवान भी युरोपके नाना स्थानोंसे गायें मंगाकर अपने देशमें पालते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रेजिलमें नेलोर और महीशूर जातीय बहुतसी गायें भी लाई जाती हैं। यहांके जलवायुके कारण भारतीय गायोंकी खूब उन्नति और वृद्धि हो रही है।

आर्जेण्टाइन दक्षिण अमेरिका

दक्षिण अमेरिकाका अधिकांश दक्षिण भाग लेकर यह देश गठित है। इस देशमें गायोंके खाने लायक घास और गोचर भूमि बहुत है। थोड़े ही दिनोंमें इस देशकी गो-जातिकी असम्भव उन्नति हो गई है। सन १८७८ ईस्वीमें यहां १२०००,००० गायें थीं। सन १८६६ में २५०००००० हो गईं। इस देशमें सबसे पहले स्पेन देशकी बड़ी सींगवाली अपकृष्ट गायें थीं। क्रमशः डरहम, क्षुद्र-शृंगी और हेरीफोर्ड जातिकी गायें लाई गईं और इस देशकी गोजातिकी उन्नति हुई। होलष्टिन, फ्रिजियान, जर्सी गो तथा अन्यान्य अधिक दूध देनेवाली गायें लाकर अब इस देशमें मक्खन और पनीरका व्यवसाय चल रहा है।
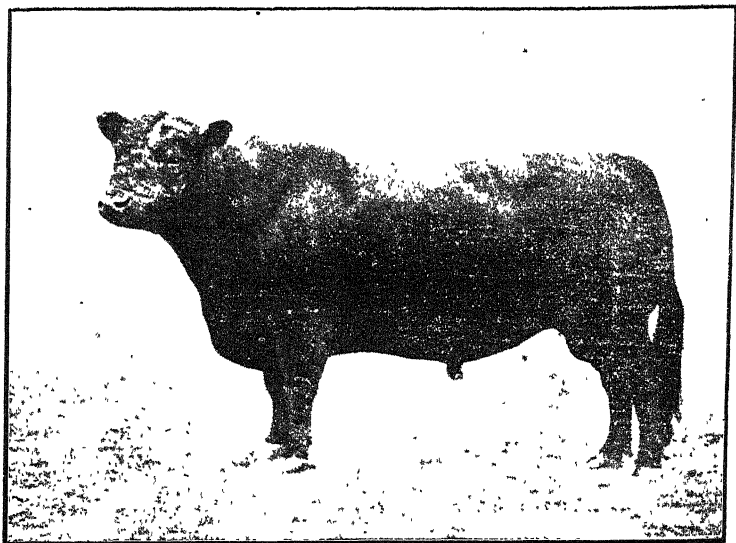
गालवे बैल।
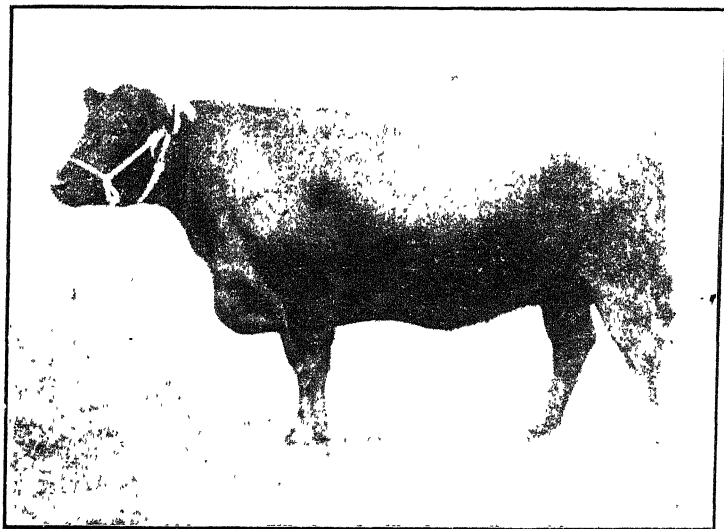
गालवे गाय।

आस्ट्रेलियन गोजाति।

आस्ट्रेलिया प्रशान्त महासागरका एक द्वीप है। यह एशियाके पूर्व-दक्षिण प्रान्तसे तीन हजारकी दूरी पर है। गत एक सौ वर्षोंमें आस्ट्रेलियामें गोजातिकी जो उन्नति हुई है वह पृथ्वीके इतिहासमें और कहीं भी पायी नहीं जाती। गोजातिकी उन्नतिके विषयमें भारत-वासियोंके हताश होनेका कोई कारण नहीं है। एक शताब्दी पहले आस्ट्रेलियामें एक भी गाय नहीं थीं। गत शताब्दी के आरम्भमें बोटानीके गवर्नरने सबसे पहले एक सांढ़, चार गायें और एक बछड़ा मंगाया था। सन् १९०६ इस्वीमें वहां गायोंकी गणना हुई थी तो ८१७८०० गायें पायी गई थीं। अभी भी वहां कई लाख गायोंके पालनके लिये मैदान पड़े हैं। आस्ट्रेलियामें बसनेवालोंने ईङ्गलैण्ड और स्काटलैण्डसे नाना जातिकी पुरस्कार प्राप्त गायें, ऊँचे दामों पर खरीदकर अपने देशमें लाकर उनकी इतनी उन्नतिकी है। आजकल आस्ट्रेलियाकी गायें नाना देशोंमें लायी जाती हैं। डचबेल्ट गोजातिके साथ जार्सी और आयर-शायर गोजातिके संमिश्रणसे अत्यन्त दुग्धवतीं संकर जातीय गायोंकी सृष्टि हुई है। गोचर-भूमि यथेष्ट रहनेके कारण वहां गायोंके खानेकी चाजोंकी विशेष सुबिधा है। वहांकी सरकार गोपालकोंको गोपा-लन करनेमें और पनीर आदिकी रफतनी करनेमें मदद करती है। दूधकी चोजें तैयार करनेके लिये सरकारी कृषिविभागमे कितने ही विशेषज्ञोंको उपदेशक नियुक्त कर दिया है। सन १९०६ इस्वीमें विक्टोरिया प्रदेशसे ४०३४००० पौण्ड मक्खन, न्यू सौथवेल्ससे ६००००००० पौण्ड मक्खन, और ५०००००० पौण्ड पनीर, क्वीन्सलैण्ड से १४०००४००० पौण्ड मक्खन दूसरे देशोंमें भेजा गया था।

यह वृन्दाबनकी तरह गोष्ट और शस्यपूर्ण प्रदेश है इस महादेशमें गायोंके

चारेका अभाव नहीं है। इस देशसे भैसों, गायों और घोडोंके खानेका पदार्थ दूसरे देशोंमें भेजा जाता है। यह देखकर चतुर अंगरेज जातिने इसी प्रदेशमें घोड़े और गायें चराना आरम्भ किया है। आजकल यहां ईङ्गलैण्डकी जार्सी, आयार-शायर, डिवन शायर, साक्सेस, एवार्डिन एङ्गास आदि सब श्रेणियोंकी गोजातियां पाई जाती हैं। आस्ट्रेलियन गायोंके दोष-गुण ठीक उनके पूर्वपुरुषोंकी भांति होते हैं।

नूजिलैण्ड देशीय गोजाति

न्यूजिलैण्ड द्वीपपुञ्ज प्रशान्त महासागरमें अवस्थित हैं। ये द्वीप-पुञ्ज आस्ट्रेलियासे १००० मील दूर हैं। यहां अङ्गरेगोंने उपनिवेश स्थापित किया है। इन द्वीपोंमें भैंस और गाय आदि पशु पाले जाते हैं। यहां गोपालन और गोचारण इङ्गलैण्डकी तरह होता है। परन्तु गायोंके घरोंमें रखनेकी आवश्यकता नहीं होती। यहां की आबोहवा अच्छी है। अतिवृष्टि या अनावृष्टि नहीं होती। जाड़ेमें अत्यन्त जाड़ा और गर्मीमें अत्यन्त गर्मी नहीं पड़ती। नदियों और झरनोंसे सदा प्रचुर पेय जल यहां प्राप्त होता है। इन्हीं कारणोंसे इस देशमें, सालमें प्रायः सब दिनोंमें प्रचुर घास मिलती है। यहां बहुत सी स्थायी गोचर-भूमि है, इसलिये चारेका अभाव कभी भी नहीं होता। और, इसीलिये पशुपालन यहांके अधिवासियोंका प्रधान व्यवसाय है। इस द्वीपका आयतन १०४७९१ वर्ग मील अर्थात् ६७०३०६४० एकड़ है। इसमें २८०००००० एकड़ भूमि खेतीके लिये, २७२००००० एकड घास करनेके लिये और बाकी ऊसर और पहाड़ी भूमि होनेके कारण परती है। जहां जहां आबादी है, वहां वहां पशुओंके खाने के लिये नाना प्रकारके चारे तथा अन्यान्य फसल उत्पन्न होती है। यहांकी भूमि बड़ी उर्व्वरा है। घासके पौधे सतेज होते हैं और शीघ्र ही बढ़ते हैं। १९०६ इस्वीकी गो-गणनामें १८५१७५३ गायें थीं, जिनमें

५६३६२७ गायें दूध देनेवाली थीं। मांसके लिये शार्टहर्न, हेरिफोर्ड, एवार्डिन एङ्गास, रेडपोल्ड, डिनन और हाइलेण्ड जातीय गायें और दूधके लिये शार्टहर्न, आयारशायर, जार्सी, होलस्टिन, और केरी डिक्सटार जातीय गायें पाली जाती हैं। वहां बड़ी आसानीसे इनकी वृद्धि होती हैं। १६०६ इस्वीमें २२८३१६६१ रूपयेका, ४१६२४५॥ मन मक्खन और ६७४६०४० रूपयेका २२८०३२॥ मन घी सेर पनीर यहांसे विदेशोंमें भेजा गया है। इस उपनिवेशमें सरकारी कृषिविभागके २१२ मक्खनके कारखाने हैं। इसीके अधीन ४६४ कारखाने क्रीम तैयार करनेके लिये भी हैं। इसके सिवा ३६१ मक्खनके गैर सरकारी कारखाने भी हैं। इसके सिवा पनीरके १०६ सरकारी और ४२ गैर सरकारी कारखाने हैं। मक्खनकी रफ्तनीके लिये १२८ पैकिंग हौस हैं। उपर्युक्त मक्खन और पनीरके कारखाने समवाय-समितिके नियमानुसार चला करते हैं। इन कारखानोंकी बनी हुई चीजें अति उत्तम समझी जाती हैं। यहां दूध, सूखादूध और पनीरके व्यवसायकी खूब उन्नति हो रही है।

आफ्रिकावासी गोजाति।

(मिश्र देशीय गो)

मिश्रजातीय गायें भारतीय गायोंकी भांति कूबड़ तथा गलकम्बलयुक्त होती हैं। वहांकी गायें वृष्टिके अधिकांश समयोंमें मिश्रके "ब-द्वीप" की गोचर भूमिमें एक एक चरवाहोंके अधीन रहती हैं। वर्षाकालमें ये स्थान पानीमें डूब जाते हैं तो गायें सूखी घास खाकर जीती हैं। इस देशमें गोजातिकी उन्नतिके लिये कोई विशेष चेष्टा नहीं की जाती। अमृतमहल गायोंके बिकनेके समय इजिप्तके खदीव और पाशा मद्रास प्रदेशसे बहुत सी गायें खरीदकर अपने देशमें लाये थे।

दक्षिण आफ्रिका

दक्षिण अफ्रिका वा केपकलोनी प्रदेशमें हालेण्ड देशीय और ईङ्गलि चेनेलकी जासी जातिको दुग्धवती गाये हैं। ये गायें बस्टरास जाति की हैं। परन्तु केपकालोनी और मेगडास्कर द्वीपोंमें जेबू श्रेणीकी गायें होती हैं। कुछ लोगोंका ख्याल है, कि वे अफ्रिका प्रवासी भारतवासियों द्वारा लाई गई हैं।

कबिरेण्डोगो

कबिरेण्डा देश अफ्रिकाके पूर्व्व भागमें हैं। इस देशके अधिवासी गोपालन किया करते हैं। पुरुषगण गायोंका दूध पीते हैं, परन्तु स्त्रियोंको दूध नहीं पीने दिया जाता। हां दूसरी चीजोंके साथ मिला कर स्त्रियां भी दूध खा सकती हैं।

अफ्रिकाके काफ्रियोंके निकट गायें सबसे अधिक आदरकी चीज हैं। सांढ़ोंके द्वारा ये घोड़ दौड़ करते हैं। साँढ़ों द्वारा १० मील तक दौड़ते हैं। जिसके पास एक दौड़नेवाला साँढ़ होता है, वह इस प्रदेशमें प्रधान व्यक्ति समझा जाता है। एक दौड़नेवालेका साँढ़का दाम एक हजार गायोंके दामके बराबर होता है।

आइलेण्ड-गो

गोजातिकी अति समीपवर्त्ती दूसरी तीन जातियोंका बिबरण इस ग्रन्थमें लिखा हुआ है।

अफ्रिकाके जंगलोंमें एक प्रकारकी जंगली गायें वा मृग होते हैं। ईङ्ग-लैण्डमें इन्हें आईलैण्ड गो वा विदेशी गो कहते हैं। अफ्रिकामें भ्रमण करनेवाले लिविस्टोन आदि अंगरेजोंने इस जातिकी गायें या गवयोंको

देखा था और अपने भ्रमण वृतान्तमें उनका विवरण भी दिया है। यद्यपि इङ्गलैण्डमें वे गाय ही कहलाती हैं, परन्तु वास्तवमें ये गाय नहीं वरं गो-सदृश मृग हैं। जहां गर्मी और सर्दी अधिक नहीं पड़ती ऐसे ही प्रदेशोंमें ये रहती हैं। किसी समय ये केपलोनी तक फैली हुई थीं। परन्तु औपनिवेशकोंने क्रमश: उन्हें ध्वंश कर डाला है। ये देखनेमें सुन्दर और बलिष्ठ होती हैं। ये कृष्णसार जातिकी हैं और अनेक अंशों में कृष्णसारकी भांति ही होती भी हैं। इनका मांस भी कृष्णसार जातीय गायोंके मांसकी तरह होता है। ये साधारणत: घोड़ेकी तरह बड़ी होती हैं। गर्दनके पास इनकी ऊंचाई ५ फीट तक होती है। इनकी सींगें दृढ़, तीक्ष्णाग्र, और पीछेकी ओर झुकी होती हैं। ये बड़ी बलवान होती हैं। २७।२८ मन घासका बोझ ये अपनी सींगों द्वारा अनायास ही उलट देती हैं। इनकी दुमका अगला अंश काले केशोंसे ढका हुआ होता है। ये अत्यन्त स्थूलकाया होती हैं। इनकी देहका रंग सफेद और सफेदके साथ कुछ पीलापन मिला हुआ होता है। ये आकार में जैसी बड़ी होती है, वैसी ही शक्तिशाली और भयंकर भी होती हैं। इस जातिकी गायें दुग्धवती नहीं होतीं। लार्ड हील साहब पालनेके लिये इस जातिकी कई गायें इङ्गलैण्ड लाये थे। सन् १८६७ इस्वीकी स्मिथ क्लबकी गोप्रदर्शनीमें इस जातिकी एक गाय दिखाई गई थी। उस गायका वजन २३ मन १२ सेर था। सन १८३५ से १८५१ के दरमियान डरबीके अर्ल इस जातिकी गाय पालकर लाये थे। उन्होंने जुलोजिकल सुसाइटीको दो साँढ़ और तीन गायें प्रदान किया था। ईङ्गलैण्डके विलिङ्गम पार्क, चार्ली पार्क और बोलाईन पार्कमें चार पांच सौ वर्षोंसे इस जातिकी गायें जंगलियोंकी भांति रहती हैं। ये गायें अपने पालकी पीड़ित और दुर्व्वल गायोंको सींगों द्वारा मार डालती हैं। बच्चा पैदा होने पर आठ दश दिन तक उसे गुप्त भावसे रखती हैं। यदि कोई आदमी बच्चेके पास जाता है, तो वह अपना सिर ज़मीन पर

रखकर अपनेको छिपानेकी चेष्टा करता है और पकड़ने पर चिल्ला उठता है। उस समय पालकी तमाम गायें पकड़नेवाले पर टूट पड़ती हैं और उसे उसी समय मार डालती हैं। यदि कोई उनके पालके समीप दिखाई पड़ जाता है तो वे कुछ दूर पीछेकी ओर हटकर प्रबल वेगसे उस पर आक्रमणकर उसे मार डालती हैं।

चामरी गो (Yak).

पहलेही लिखा जा चुका है, कि हिमालय पहाड़के उत्तरीय भागोंमें चामरी गायें होती हैं। ये पालतू भी होती हैं और जंगली भी होती हैं। इनकी गर्दन, गला, छाती, जंघे और दुमका निचला अंश घने केशों से आच्छादित रहता है। नाकका भीतरी और बाहरी अंश भी छोटे छोटे रोओंसे विशेषरूपसे आच्छादित होता है। अन्य किसी भी गोजातीय पशुके रोएं इतने बड़े बड़े नहीं होते। इन्हें प्रबल शीत प्रधान बर्फीले स्थानोंमें रहना पड़ता है शायद इसीलिये प्रकृतिने उन्हें रोओंसे अच्छादित कर दिया है।

विलायती गायोंकी तरह इनकी गरदन और पीठ बराबर होती है। इनका मुंह नीचे और पैर छोटे छोटे होते हैं। पैरके खुर विस्तृत होते हैं। सींगें पीठकी तरफ झुकी हुई होती हैं।

बनैली चामरी गायोंका रंग काला होता है और गृहवासियोंका रंग सफेद और काला मिला हुआ होता है। सफेद रंगकी गायोंकी पूंछका ही चमर बनता है। गृहपालित पशुओंके सींगे नहीं होती।

इनके शरीरका वजन सात मन और ऊंचाई ताढ़े तीन हाथ और चार हाथ तक होती है। ये दस महीने पर बच्चे देती हैं। इनका शब्द हमारे देशकी गायोंके शब्दकी भांति नहीं होता।

तिब्बती इनका दूध पीते हैं, उनकी पीठ पर सवारी करते हैं। चमड़ेसे कपड़े तैयार करते हैं, उनके शरीरके रोओंको नाना प्रकारके रंगोंमें रंगकर टोपियोंमें व्यवहार करते हैं।

बाईसन।

पृथ्वीपर बाईसन वंशकी दो जातियां मौजूद हैं। एक जाति अमेरिकामें है और दूसरी युरोपमें है। अमेरिकन बाइसन जातिकी गायोंका निवासथान ग्रेट स्ले हृदसे लेकर मेह्सिकोके मध्यवर्त्ती स्थानों तक हैं और युरोपीय बाईसन गण पोलेण्डमें, लियुनियारके बनोंमें और काकेशशके पहाड़ी स्थानोंमें रहती हैं।

इनके सामनेका हिस्सा पिछले हिस्सेसे ह्रस्व होता है, सींगें और दुम छोटी होती हैं और मस्तक भारी होता हैं। इनकी गर्दन, गला और कन्धों पर बड़े लम्बे लम्बे बाल होते हैं, यहां तक कि जमीन पर लटकते हैं। उनके लम्बे केश जाड़ेके दिनोंमें और भी बढ़ जाते हैं और गर्मीके दिनोंमें गिर जाते हैं। केश इतने भारी होते हैं, कि एक गुच्छका वजन चार सेर तक होता है।

ये गायें दलवद्ध होकर रहना बहुत पसन्द करती हैं। सन १८६६ इस्वी में अमेरिकामें ट्रान्सकण्टिनेण्टल रेलवे जारी होजाने पर सन १८७५ इस्वीके मध्यमें ही वहांके अधिवासी, विशेषतः श्वेत जातियोंने बाइसन बंशकी गायोंकी प्रायः निर्मूल कर डाला है। अमेरिकामें अङ्गरेज गवर्ममेण्ट और युरोपमें रूसकी गवर्नमेण्टने बाईसनबंशकी गायोंका बध करना निषेध कर दिया है। इसीसे इस जातिकी गायें पृथ्वी पर मौजूद हैं।

ये बड़ी जिद्दी और निर्व्वोध होती हैं। इनके आगे चलनेवाला पशु आदि पानीमें डूबकर मर जाये तो पीछेकी तमाम गायें उसके साथ डूबकर मर जायेंगी। अपनी निर्बुद्धिताके कारण ही ये चमड़े और मांसके लिये, मारी जाती हैं। व्यवसायीगण उनके केशोंका सूत बनाकर उसके द्वारा दस्ताना और मोज़ा तैयार करते हैं। इनकी गर्दन पर भी एक छोटासा अयाल होता है। परन्तु हमारे देशके बैलोंकी अयालकी तरह नहीं होता है।

इस भांतिकी गायें गर्मीके दिनोंमें गर्भ धारण करती हैं। इनका गर्भकाल नौ महीना होता है। इस जातिके बैलोंकी ऊंचाई ५ फीट ६ ईञ्चसे अधिक होती है और शरीरका वजन २० मनसे लेकर २२॥ मन तक होता है। अमेरिकाके ग्राण्डकेनेल आव कलोरेडो नामक स्थानके पश्चिमकी ओर संकर बाईसन (कटालू) बहुतायतसे पैदा होती हैं।

युरोपका बाईसनवंश भी क्रमशः ध्वंस हो रहा है। युरोपकी बाईसनका आकार अमेरिकाके बाईसनसे भिन्न होता है। ये देखनेमें वैसी बदसूरत नहीं होतीं।
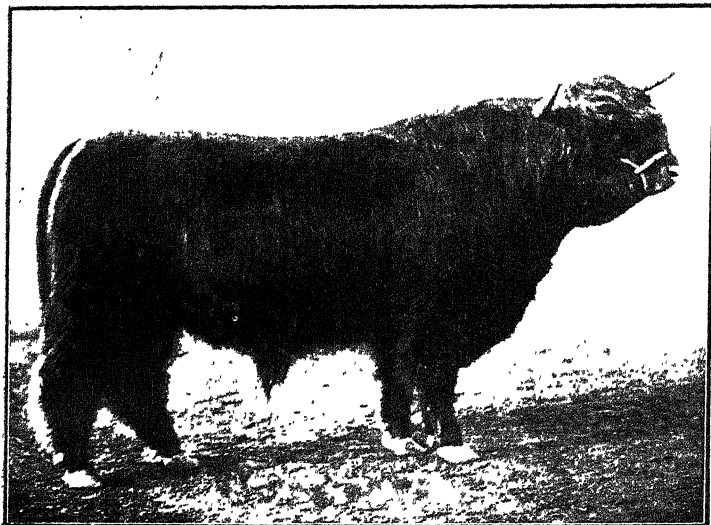
हाईलेण्डर बैल ।
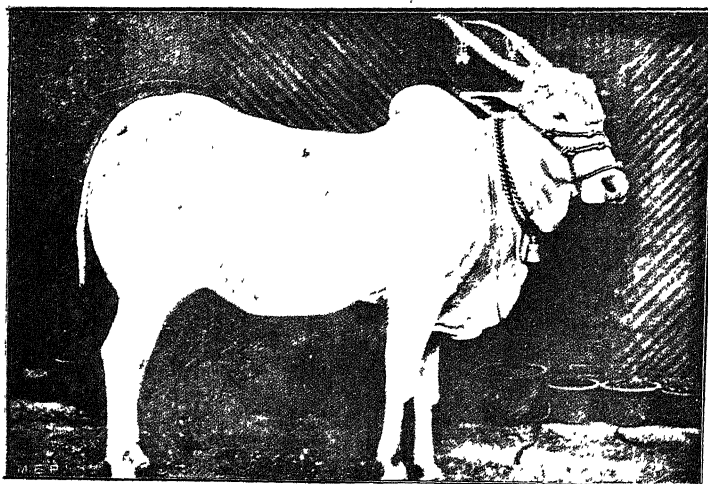
मैसोर राजमहलकी गाय ।

तृतीय खण्ड।

प्रथम परिच्छेद।

वृष

यह ध्रुव सत्य है, कि साँढ़के निर्वाचन पर ही गोजातिकी उन्नति और अवनति निर्भर है। यह स्थिर हो चुका है कि उत्कृष्ट गायसे उत्पन्न साँढ़से उत्कृष्ट गायका संयोग करानेसे उत्कृष्ट जातिकी गो उत्पन्न होती हैं। किसी जातिकी अच्छी गायके साथ किसी अच्छी जातिके सांढ़का संयोग करानेसे वह गो-वंश क्रमशः उन्नत होता है। केवल गायोंकी उत्कृष्टतासे कोई लाभ नहीं होगा, साँढ़ भी उत्कृष्ट होना चाहिये। साँढ़की माता और मातामहीके गुणदोष पर विचार कर उसका निर्व्वाचन होना चाहिये। कारण यह है, कि सांढ़का गुणदोष उसके द्वारा उत्पन्न बच्चेमें आजाता है। अच्छी गायके साथ खराब सांढ़का संयोग करानेसे बच्चा भी खराब पैदा होगा और गायके दूधमें भी कमी होगी। साँढ़ ही गोशालाका मस्तक स्वरूप है। केवल एक सांढ़ ही तमाम दलके आधेके बराबर है। इसका अर्थ यह है, कि गो-वंशकी वृद्धि और उत्कृष्टताके लिये एक दलकी समस्त गायें मिलकर जितनी शक्ति लगाती हैं, उतनी शक्ति सांढ़ अकेले ही लगाता है; यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं। कारण यह है, कि सांढ़ अच्छा होता है तो दलकी तमाम गायों और उनके वंशधरोंकी उन्नति होती है। इस हिसाब से सांढ़ दलकी आधी गायोंकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान और सांढ़ ही गायोंके दलका मूल-सर्वस्व होता है। यदि निकट ही अच्छा सरकारी साँढ़ अथवा अच्छा ब्राह्मणी सांढ़ मिले तो गोपालक बिना सांढ़ रखेही दो तीन गाये' पाल सकता है। परन्तु चार पांच या इससे अधिक

गायें पालना हो तो गोपालकको एक सांढ़ भी रखना चाहिये। क्योंकि गायके ऋतुमती होने पर यदि सांढ़ न मिले तो वह नष्ट हो जाती है।

इस ग्रन्थके ग्रन्थकारने कलकत्तेसे एक गाय खरीद कर मंगाया था। वह गाय प्रति दिन दस ग्यारह सेर दूध देती थी। परन्तु बड़ी चेष्टा करने पर भी कोई अच्छा सांढ़ नहीं मिला और गाय बांझ हो गई।

इङ्गलैण्ड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशोंके गोपालक अपनी गायोंकी उन्नतिके लिये प्रदर्शनीसे पुरस्कार पाया हुआ उत्तम सांढ़ असम्भावित मूल्य देकर खरीद लेते हैं। उनके कोई कोई सांढ़ ऐसे अच्छे होते हैं, कि उनसे एक गायको गर्भ धारण करानेके लिये १५) से लेकर १५०) तक फीस देनी पड़ती है। इस तरह अधिक रुपया खर्चकर साँढ़से संयोग कराना भी लाभ-जनक समझा जाता है। इसी वजहसे उन देशोंमें गायोंकी जैसी उन्नति हुई है, उसे सुनकर आश्चर्य्य होता है। पाश्चात्य पण्डितोंके मतानुसार सांढ़का मस्तक छोटा और उन्नत, छाती गम्भीर और चौड़ी, पीठ लम्बी और प्रशस्त, गठन गोल और बलिष्ठ, कन्धा तथा अन्यान्य अंग बलवान, ललाट चौड़ा, गर्दन छोटी, गलकम्बल लम्बा, कान मझोले, शरीरका चमड़ा कोमल और पतला, सींग छोटी और सुगठित और दुम लम्बी होनी चाहिये। येही अच्छे सांढ़ोंके लक्षण हैं। सांढ़की माता अधिक दूध देनेवाली होनी चाहिये। सांढ़ जितना ही बड़ा हो, उतना ही अच्छा है। तीन वर्षसे कम और आठ वर्षसे अधिक सांढ़ द्वारा जनन-कार्य्य करना ठीक नहीं है। सांढ़को कभी भी स्वतन्त्र छोड़ना नहीं चाहिये। क्योंकि यत्न न करनेसे और स्वतन्त्रपूर्वक छोड़ देनेसे वह निस्तेज होजाता है। धूपके समय उसे सायेमें और वर्षाकालमें तथा रातको घरमें रखना चाहिये। उसे अच्छा भोजन देना चाहिये। परन्तु बहुत अधिक

खाद्य तथा गुड़ चीनी आदि नहीं देना चाहिये। क्योंकि उनसे उसका मादा बढ़जाता है और वह अकर्मण्य होजाता है। प्रतिदिन दो सेर खली चार सेर भूसी, दो सेर खुद्दी,एक छटाँक नमक, थोड़ीसी गन्धक और परिमाणके अनुसार घास देना चाहिये। सवेरे और शामको, उन्हें भोजन देना चाहिये। सवेरे साँढ़को घरसे बाहर निकाल कर हरी घास खिलाना चाहिये। पहर भरके बाद उसे घरमें लाकर जल पिलाना चाहिये और इसके बाद उपर्युक्त चीजोंका अर्धांश खिलाना चाहिये। उसके बाद शामको प्रायः तीन बजे उसे घरसे बाहर मैदानमें लाकर बांधना चाहिये और फिर शामको घरमें लेजाकर बाकी भोजन खिला देना चाहिये। इसके बाद पानी पिलाकर रातमें बांध रखना चाहिये। खलीको दो तीन घण्टे पहले ही पानीमें भिंगा रखना चाहिये और खिलानेके वक्त उसे भूसी और घासमें अच्छी तरह लपेट देना चाहिये। खुद्दी और भूसीको भी कुछ समय पहले ही भिंगा देना और भी अच्छा है। यदि हरी घास प्रचुर परिमाणमें मिले तो दूसरी चीज़ोंकी उतनी आवश्यकता नहीं। सांढ़को समय समय पर नहलाना चाहिये और उससे कुछ कुछ परिश्रम भी लेना चाहिये।

सांढ़को ऐसी जगह रखना चाहिये, जिसमें वह गायोंको अच्छी तरह देख सकता हो। एक सांढ़से सप्ताहमें सिर्फ दो तीन गायोंको गर्भ धारण कराना चाहिये। इससे सांढ़ अच्छा रह सकता है। सप्ताहमें इससे अधिक गायोंसे संयोग करानेसे सांढ़ खराब होजाता है। सांढ़ यदि निस्तेज हो जाये, तो उसे पांच छः सप्ताह तक किसी गायके निकट नहीं जाने देना चाहिये। उससे प्रति दिन कुछ कुछ परिश्रम कराना चाहिके परन्तु अधिक थकाना नहीं चाहिये। उसे कभी कभी उत्तेजक चीजें खिलाते रहना चाहिये। सवा सेर तीसी खलीके साथ आधी छटांक स्पिरिट टार्पेण्टाइन् मिलाकर आधा

सवेरे और आधा शामको खिलाना चाहिये। गायसे संयोग करनेके कुछ काल बाद सांढ़को नहला देना चाहिये और उसके बाद दो तीन दिन तक खल्ली आदि उत्तेजक चीजें कुछ अधिक खिलाना चाहिये।

गोजातिकी उन्नतिके लिये पूर्व्वकालमें हिन्दू शिव, सूर्य्य और नदी के नामपर उत्कृष्ट सांढ़ोंको छोड़ दिया करते थे। आजकल श्राद्धके समय साँढ़ दागकर छोड़नेकी प्रथा मौजूद रहने पर भी उसका यथोचित पालन नहीं होता। गोजातिके प्रति अनादरही इसका एक प्रधान कारण है। आजकल श्राद्धका सांढ़ कहीं २ गोप अथवा महापात्र लेजाते हैं और गोखादकोंके हाथ बेंच देते हैं या उसे हलमें जोतते हैं। श्राद्धके उपलक्षमें जो सांढ़ छोड़ा जाता है, उस पर किसीका अधिकार नहीं होता, वह सर्व-साधारणको सम्पत्ति समझा जाता है; उसपर सबका समान अधिकार होता है। अतएव साँढ़को यथेच्छापूर्व्वक विचरण करनेके लिये छोड़ देना चाहिये ताकि वह सर्वत्र विचरणकर गोजाति की सहायता किया करे। यदि कोई महापात्र अथवा गोप उसे लेना चाहे तो उससे शर्त करा लेनी चाहिये कि वह लेकर पालन करेगा; उसे बेंच नहीं सकेगा। इस श्रेणीके सांढ़ोंकी रक्षाके लिये ब्राह्मणों, सरकारी कर्मचारियों और डिस्ट्रिक्ट तथा लोकलबोर्डके कर्मचारियों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिये।

ब्राह्मण सामाजिक शासन द्वारा, डिस्ट्रिकबोर्ड तथा म्यूनिसिपलटी-वाले नोटिस जारीकर, सांढ़ोंके स्वतन्त्रतापूर्व्वक विचरण करने देनेकी व्यवस्था कर सकते हैं।

इङ्गलैण्डकी क्षुद्रसींगी जातिके कोमेट और ड्यूबेक नामक दो बैल एवार्डिन एगांसके ओलडजैक, गालवे जातीय मास्ट्रोपार, केरोराईट और मारकुईस नामक बैलोंने वहां बड़ी ख्याति प्राप्त की है।

हमारे देशके कुछ धनवान किसान लड़नेवाले बैल पालन करते हैं। बैलोंकी लड़ाई कभी कभी बड़ी भयानक होती है। लड़नेवाले दो बैल

एकत्र होने पर कुछ पीछे हटकर दूसरेपर आक्रमण करते हैं। अनेक समय ये लड़ते लड़ते मरजाते हैं, पर युद्धमें पीठ दिखाना नहीं चाहते।

द्वितीय परिच्छेद।

बधिया।

जो बैल क्लीव बना दिये जाते हैं, उन्हें बधिया बैल कहते हैं। कहीं कहीं ऐसे बैलोंको केवल बधिया ही कहते हैं। ये बधिया बैल और भैंसे ही भारतीय खेतीके प्रधान आधार हैं। ये वाहनके रूपमें बैल गाड़ीमें भी जोते जाते हैं और इनके ऊपर बोझ भी लादा जाता है।

अपनी निजकी बैंलगाड़ी खर्च घटानेकी प्रधान तदबीर है। अच्छे साँढ़ और अच्छे बधिया बैलमें प्रायः एक ही गुण होते हैं। परन्तु बैल सांढ़ोंको तरह मंथरगामी नहीं होते। ये अधिक कर्म्मठ उग्र और तेज चलनेवाले होते हैं। इनकी दुम ऐंठ देनेसे या पीछेसे हंकानेसे ये दौड़ने लगते हैं।

सफेद बधिया बैल उतने परिश्रमी नहीं होते। परन्तु दो एक इस साधारण नियमसे विवर्जित भी देखे जाते हैं। बधिया बैलका गलकम्बल तथा नाभी बड़ी होने पर वे श्रमविमुख हो जाते हैं। जब बैल बधिया कर दिया जाजा है, तो उसमें बहुत कुछ परिवर्तन होजाता है। काम करनेवाले परिश्रमी बैलको सांढ़ोंकी तरह भोजन देना चाहिये। परन्तु बैलको परिमाणमें आधा भोजन देना चाहिये। दोबारके बदले उन्हें तीन बार खिलाना चाहिये। इनको, सवेरे दोपहर और शामको खिलाकर विश्राम करने देना चाहिये। मेहनत करने पर तुरन्त

खिलाना अच्छा नहीं और खिलाकर तुरन्त काममें लगाना भी ठीक नहीं। खानेके दो घण्टे बाद उनसे मेहनत कराना और मेहनत कराने के दो घण्टे बाद भोजन देना चाहिये।

बैलोंको प्रतिदिन साफ़ करते रहना उचित है। इनका घर और खाने पीनेका वर्त्तन हमेशा साफ रखना चाहिये।

बैलोंको कड़ी धूपमें, प्रबल वर्षामें या तेज सर्दीमें छोड़ देना उचित नहीं है। साँढ़ और बैलको खूब साफ पानी पिलाना चाहिये।

हल जोतने वा गाड़ी खींचनेके लिये जो बछड़े तैयार किये जायें उन्हें अपनी माताका समस्त दूध पीने देना चाहिये और इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य प्रकारका पुष्टिकर आहार भी देना चाहिये।

पश्चिममें गाड़ीके बैलोंको बधिया बनानेके समय तथा उनके शैशवावस्थामें उन्हें खूब खिलाया पिलाया जाता है और बड़ी चेष्टासे वे तैयार किये जाते हैं। वे अपनी माताका समस्त दूध पाते हैं और अन्यान्य पुष्टिकर भोजन भी उन्हें दिया जाता है।

तृतीय परिच्छेद।

—o—

बैलोंको बधिया करनेकी प्रणाली।

बैलोंको बधिया करनेकी प्रथा कुछ निष्ठुर और कष्टदायक है। पूर्व्वकालमें यह प्रथा भारतवर्षमें प्रचलित न थी। मालूम होता

---

(१) मालूम होता है, कि प्राचीनकालमें यह प्रथा प्रलित नहीं थी। क्योंकि हिन्दूमतानुसार गोवीर्य्यहन्ता महापापी समझा जाता है। यथा—"गोवीर्य्य हन्ता न मुच्यते पापेभ्यः चतुर्युगानि।"

है, कि मुसलमानोंके राजत्वकालमें यह प्रथा इस देशमें प्रचलित हुई है। (१) अनेक स्थानोंमें जिन बैलों द्वारा कृषिकार्य्य, नित्य नैमित्तिक कार्य्य और आवश्यकोय कार्य्य सुचारू रूपसे नहीं हो सकता, और जो बैल बोजके लिये अच्छे नहीं समझे जाते, वे बधिया कर दिये जाते हैं।

बंगालमें दोसे लेकर छः दांत होजानेके बीचमें, अर्थात् दो वर्षसे पांच वर्षकी उमरके भोतर ही बैल बधियाकर दिये जाते हैं। ईङ्गलैण्डमें एक माससे लेकर तोन मासके भीतर ही बछड़ोंका अण्डकोष निकाल दिया जाता है। इसलिये वहांके बधिया बैल गायोंकी तरह दिखाई देते हैं और इसीलिये वे बड़े शान्त होजाते हैं। इसके अतिरिक्त वे खूब मोटे-ताजे और बलवान भी होते हैं। पूर्व्वीय उपद्वीपोंमें बैलके चारो पैरोंको बांधकर उसका अण्डकोष कुचल दिया जाता है। यह प्रथा कोष काटकर निकाल देनेकी तरह निर्द्दयतापूर्ण नहीं है, न उससे पशुके प्राणनाशकी कोई आशंका रहती है और न कोषकी खोलही फूलती है। इस प्रथाके अनुसार बधिया करनेसे पशुका तेज बना रहता है और वह पूर्व्ववत् परिश्रमी तथा कर्म्मठ भी बना रहता है।

ग्रन्थकारने गाड़ी खींचनेके लिये ऐसाही एक बधिया बैल खरीदा था। वह बैल साँढ़की भांति लड़ाई करता था, सहज ही कोई उसके निकट जा नहीं सकता था। देखनेमें वह साँढ़की तरह मालूम होता था।

इस देशकी प्रथाके अनुसार बैलको बधिया करनेसे उसका दोष और गुण उसमें मौजूद रह जाता है।

——०——

चतुर्थ परिच्छेद ।

हलमें जोतने लायक, और सेनाविभागके उपयुक्त बैल ।

हलमष्टगवं धर्म्यं षडगवं व्यवसायिनाम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवञ्च गवाशिनाम् ॥

(पराशरः)

जिन बैलों द्वारा हल जोतनेका काम लिया जाता हो, उनसे जननकार्य्य कराना कभी भी उचित नहीं है। हल चलानेवाले बैल मजबूत और मोटे होने चाहियें।

गाड़ी खींचनेवाले बैल भी इसी श्रेणीके होने चाहिये। कमान खींचनेवाले आदि बैलोंका और भी कष्टसहिष्णु, सुदृढ़ शरीर होना आवश्यक है। नेलोर अमृतमहल और दामड़ा इस कामके लिये बड़े दक्ष होते हैं।

भारतवर्षमें पहले गोजातिकी संख्या अत्यन्त अधिक थी। उस समय बैलोंसे आधे दिनसे अधिक काम नहीं लिया जाता था। परन्तु आजकल देशमें ऐसा दुर्दिन आया है, कि जिस बैलसे सबेरे हल जोतनेका काम लिया जाता है, उसीसे कहीं कहीं गाड़ी खींचनेका काम भी लिया जाता है। और, दो बैल प्रातःकालसे लेकर दिनके बारह या एक बजे तक हल खींचते हैं।

किन्तु पहले समयमें, पराशर ऋषिके जमानेमें, दैनिक आठ बैलोंसे हल चलवाया जाता था। यही धर्म्म था। व्यवसायी लोग छ बैलोंसे हल जुतवाते थे, जो चार बैलों द्वारा हल खींचवाते थे, उन्हें क्रूरः और निर्दयकी आख्या दी जाती थी। जो दो बैलोंसे काम लेते थे, उन्हें गोघाती कहा जाता था। किन्तु हाय, सवेरे दो बैलोंसे हल जुतवानेके

बाद शामको उन्हींसे गाड़ी खींचनेका काम लेनेवाले गोघातियोंकी कल्पना भी पराशरजी नहीं कर सके!

—०—

पाचवां परिच्छेद।

गाय।

एकबार प्रसव करलेने पर ही बछियायें गायें कहलाने लगती हैं। कोई कोई गाय बीस इक्कीस बार तक बच्चे दे सकती हैं और कोई कोई चार पांच बारसे अधिक नहीं देतीं।

जो गायें अधिक बार बच्चे देती हैं, वे कम बच्चे देनेवाली गायोंकी अपेक्षा मुल्यवान होती हैं इसमें सन्देह नहीं। प्रसव करने पर गाय अपने स्वामीको वत्स और दूध, दो प्रकारका फल प्रदान करती है।

गर्भ धारण करने पर एक गाय २७० से २८० दिनोंमें एकबार एक सन्तान प्रसव करती है। दैवात् कोई गाय एक साथ ही तीन बच्चे भी देती है। साधारणतः सन्तान प्रसव करनेके तीन मास बाद गाय फिर ऋतुमती होती है। कोई कोई गाय ऐसी भी देखी गई हैं जो सात आठ महीने, यहां तक कि वर्ष दो वर्ष पर भी ऋतुमती होती हैं।

गायके पश्चाद्भागमें, दोनों पैरोंके बीच नाभीके नीचे दुग्धाधार थन (Uder) होता है। उसमें चार चूचियाँ (Teat) होती हैं। इन चारों चूचियोंमें छेद होते हैं उन्हींके द्वारा दूध निकलता है। गायके प्रसव करनेके २१वें दिन उसका दूध मनुष्योंके खाने लायक होता है। (१) क्योंकि इक्कीस दिन तक दूध गाढ़ा नहीं होता और मक्खनका अंश भी बहुत कम होता है।

(१) "अजा गावो मनुष्याणां विशरात्रेण शुध्यति।"
मनुः।

षष्ट परिच्छेद ।

—o—

अच्छी गायके लक्षण ।

जब समुद्र मथा गया था, तब लक्ष्मीके साथ साथ सुरभिने (२) भी निकल कर स्वर्गलोकको दुग्धदान किया था। सुरभि, नंदिनी आदि प्रातःस्मरणीया गायोंके सिवा काम-दुग्धा गायोंको भी भारत-वासी बड़ी श्रद्धासे देखते हैं।

कामधेनु वा कामदुग्धा गायें बिना प्रसव किये ही दूध देती हैं। जब इच्छा हो तभी वे दूही जा सकती हैं। इनको दूहनेके लिये बच्चेकी आवश्यकता नहीं होती।

(२) गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः।
गवां प्रधाना सुरभिर्गोलोक सा समुद्भवा ॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—प्रकृतिखण्ड)

सुनते हैं, कि भारतमें ऐसी कामदुग्धा गायें थीं, जो जिस समय इच्छा हो उसी समय अप्रयाप्त दूध दे देती थीं। अब वैसी कामदुग्धायें नहीं मिलतीं। आजकल जो कामदुग्धा गायें मिलती हैं, वे प्रसव बिना ही दूध तो देती हैं, परन्तु बहुत थोड़ा।

कामधेनुका दूध बच्चेका जूठा नहीं होता और उससे बच्चे अपने आहारसे बञ्चित भी नहीं किये जाते, इसीसे कामधेनुके दूधका बड़ा आदर होता है। देवसेवा सम्बन्धीय कामोंके लिये कामधेनुका दूध बड़ा पवित्र माना गया है।

अब भी यदि फिर भारतमें देवासुर मिलकर हमारे देशकी सुरभि-

वंशीया द्रोणदुग्धा गायोंको समुद्रालय इङ्गलिश चैनेलकी जार्सी, गारन्सी या आष्ट्रेलियाकी गायोंकी भांति, पालन, प्रतिष्ठा और रक्षा-की जायें तो हमारे देशमें अच्छी अच्छी गायें मिल सकती हैं। वस्तुतः इस समय गायोंके पालन करनेकी ओर हमलोगोंका ध्यान नहीं है। इङ्गलैण्ड और आष्ट्रेलियामें आध मनसे लेकर एक मन पांचसेर तक दूध देनेवाली बहुतसी गायें हैं। हांसी, गुजराती, मुलतानी और नेलोरी जातिको गायें अधिक दुग्धवती होती हैं। यदि उनका यथो-चित पालन-पोषण किया जाय तो वे भी वैसीही हो सकती हैं। इनमें जो अच्छी गायें होती हैं, उनके बाहरी लक्षण नीचे दिये जाते हैं।

आकारमें बड़ी, मस्तक छोटा, कपाल चौड़ा शरीरके रोएं घने और चिकने, शरीरका त्वक पतला (महीन) दुम लम्बी, पतली और चञ्चल और उसके अग्रभाग पर बहुतसा घना केश होना अच्छो गायके लक्षण हैं। ऐसी गायोंकी सींगोंका अगला अंश पीछेकी ओर झुका हुआ होता है। सामनेकी ओर झुकी हुई सींगवाली गायें बहुत कम अच्छी होती हैं। अच्छी गायोंके पैर छोटे और श्लथ (Loose. bimbed) होते हैं। उनकी जांघें चोड़ी होती हैं। वक्षस्थल गम्भीर और प्रशस्त होता है। पीछेके पैर कुछ पृथक होते हैं। मानों प्रकृतिने ने उन दोनों पैरोंके बीचमें थन स्थापित करनेके लिये ही उन्हें पृथक कर रखा है। इनके थन घड़ेकी तरह बड़े होते हैं। जिस समय वे बछियाँ रहती हैं, उस समय उनकी दूधकी नलियां दिखाई नहीं देती, किन्तु प्रसवसे पहले पाकस्थलीके नीचे एक मोटी रस्सीकी भांति टेढ़ी और कुञ्चित दुग्धवाहिनी नली दीख पड़ती है। उनके थनमें चार तुल्य आकारकी बड़ी बड़ी चूंचियाँ दिखाई पड़ती हैं। चूचियाँ एक दूसरेसे समान फासलेपर होती हैं और उनमें दूध निकलनेका छेद रहता है।

अच्छी गायोंके अंग-प्रत्यङ्ग कुछ ढीले होते हैं। उनके शरीरका

मांस नीचेकी ओर झुक जाता है। मोटी चमकीली गायें बहुत खाती हैं, और जो कुछ खाती हैं, उसका अधिकांश दूध बन जाता है। अच्छी और खूब दूध देनेवाली गायें प्रायः लाल या काली होती हैं। (१) कपिला अर्थात् सुनहरे रंगकी गायें भी अच्छी श्रेणीकी होती हैं। काली, खूब भूरी और लाल रंगकी गायें नीरोग और बलिष्ठ होती हैं। लाल गायका दूध सबसे मीठा होता है। साधारणतः लाल रंगकी गायोंमें पचानेकी शक्ति अधिक होती है।

भारतीय अधिकांश गायोंका रंग भूरा मिला हुआ सफेद होता है। कोई कोई गाय किसी किसी मौसिममें खूब सफेद दिखाई देती हैं और कोई कोई किसी किसी मौसिममें खूब भूरी दिखाई देती हैं। इस तरहकी गायें किसी विशेष जातिके अन्तर्गत नहीं होतीं। इसी तरहकी गायें साधारणतः कम दूध देनेवाली होती हैं। यदि गायें धूसर रंगके बदले पिबल्ड (Piebald) रंगकी हों तो वे भी खूब दूध देती हैं। यदि गायके शरीरका रंग कुछ पीलापन लिये हुए सफेद हो और कानों तथा खुरोंके भीतरका अंश पीला हो तो उसका शरीर स्वस्थ्य तथा रक्त साफ होता है। उसके दूधमें नवनीतका भाग अधिक होता है और दूध खूब मीठा होता है। यदि गायके शरीरके रोयें खूब चमकीले और रेशमकी तरह मुलायम हों तो वह अत्यन्त दुग्धवती होती है और उसका दूध भी खूब मीठा भी होता है।

जो गाय अत्यन्त दुग्धवती होती है, उसका थन भी खूब बड़ा होता है और दूधकी नालियां भी खूब मोटी होती हैं। दूहनेके समय दूध बड़े प्रबल वेगसे निकलता है। जिस पात्रमें दूध दूहा जाता है, उसमें एक प्रकारका शब्द पैदा हो जाता है। उसीसे गायके दूधका परिचय मिल जाता है! जब अच्छी गाय दूध देना बन्द करने लगतीहै तो उससे कुछ पहले तक दूहनेसे भी वैसी ही मोटी धार निकलती है।

गवांकृष्णा बहुक्षीरा।

अच्छी गायका और एक लक्षण यह है, कि एक ही बारके पेनानेमें उसका समस्त दूध दूहा जासकता है। किन्तु खराब गायको २।३।४ बार बच्चेका मुँह देकर पेनानेको जरूरत पड़ती है।

कोई कोई गाय दूध दूहनेके समय दूध नहीं देती। अपने बच्चेके लिये दूधको अपने थनमें रखलेती है। वे किसी तरह भी दूही नहीं जा सकतीं। बड़े कष्टसे थोड़ासा दूध निकाला जा सकता है। जो लोग दूधके व्यवसायी हैं, उनके लिये ऐसी गाय एक कुबाहत होती है। थोड़ा दूध देनेवाली गायका दूध बड़ी पतली धारासे धीरे धीरे निकलता है। गायके बच्चेको देखकर भी उसके दूधका अन्दाज लगाया जा सकता है। यदि बच्चा अत्यन्त कमजोर और छोटा होतो समझना चाहिये, कि गाय कम दूधवाली है। जिस गायकी चारो चूंचियों से समान दूध निकलता है, वह भी दुग्धवती होती है। किसी किसी गायकी एक या दो और कभी कभी तीनों दूधकी नलियां बन्द हो जाती हैं। ऐसी नलियोंको अन्धी चूंचियां कहते हैं। अच्छी गाय बहुत दिनों तक दूध देती हैं। अर्थात् एकबार प्रसव करने पर एकवर्ष अथवा पन्द्रह-सोलह महीने तक दूध दिया करती है। प्रसव करने पर साधारणतः दस महीने तक गाय दूध देती हैं। स्वल्पदुग्धा गायें पांच छः महीने तक दूध देकर क्रमशः दूध देना बन्द कर देती हैं। परन्तु अच्छा पुष्टिकर और दुग्धवर्द्धक खाना देनेसे हरएक गाय बहुत दिनों तक और अधिक परिमाणमें दूध दिया करती है। इस ग्रन्थकारकी एक गायने पन्द्रह मास तक दूध दिया था।

उसके बाद ग्रन्थकारके कहीं अन्यत्र चले जानेके कारण उस गायको खाना अच्छी तरह नहीं दिया गया, इससे उसने दूध देना बन्दकर दिया।

अच्छी गायोंकी प्रकृति बड़ी मृदु और शान्त होती हैं। इनकी दृष्टि मातृभावापन्न होती है। अत्यन्त दूध देनेवाली गायें माताकी तरह

स्नेहमयी और रागद्वेष विहीना होती हैं। अपरिचित आदमी भी उनके शरीर पर हाथ रख सकता है। वे किसी तरह उत्तेजित नहीं होतीं। यहां तक की बच्चे को पकड़ लेने पर भी वे क्रोध नहीं करती। उन्हें हर-एक आदमी जब चाहे दूह सकता है। उत्कृष्ट गायें अत्यन्त दूध देने वाली होती हैं। पारिवारिक व्यवहारके लिये जो गाय आठ या दस सेर दूध देती है, वहीं अच्छी गाय है। इससे अधिक दुग्धवती गाय पारिवारिक कार्य्यके लिये रखनेसे कभी कभी बड़ी असुविधामें पड़ना पड़ता है। क्योंकि अधिक दुग्धवती गायें अत्यन्त मृदु प्रकृतिकी होती हैं। उनके शरीरकी समस्त शक्ति दूधके साथ निकल जानेके कारण वे अत्यन्त कमजोर होजाती हैं। अति सामान्य कारणसे भी वे बीमार पड़ जाती हैं; गिर जाता हैं अथवा मर जाती हैं। अत्यन्त दुग्धवती गायका पालन या तो व्यवसायी कर सकते हैं या कोई शौकीन कर सकता है। भारतीय गायें साधारणतः १३ सेरसे अधिक दूध नहीं देतीं। परन्तु विशेष यत्न करनेसे बीस पचीस सेर तक दूध दे सकती हैं। जार्सी और आस्ट्रेलियाकी गायें दैनिक एक मन पांच सेर तक दूध देती हैं। जिन गायोंके दूधमें नवनीतका अंश अधिक होता है, वे भी अच्छी समझी जाती हैं। परन्तु जिन गायोंके दूधमें नवनीतका भाग अधिक होता है, वे साधारणतः कम दूध देती हैं। सार भाग अधिक होनेसे थोड़ा दूध भी अधिक दूधका ही काम देता है। जिस दूधमें मलाई और नवनीत अधिक होता है, वह दूध पीताभ होता है। पीताभ दूधकी कमीकी पूर्त्ति उसकी सारवत्ता कर देती है। जो गाय अधिक दूध देती हो और उसके दूधमें नवनीतका भाग भी अधिक हो तो मानों सोनेमें सुगन्ध समझना चाहिये।

अष्टम परिच्छेद।

ऋतुमती गायके लक्षण।

गर्भधारण करनेका समय उपस्थित होने पर अधिकांश गायें उच्च-स्वरसे चिल्लाती हैं, बारबार मलमूत्र त्याग करती हैं, दुमको बारबार हिलाया करती हैं, खाना पीना छोड़ देती हैं, दूध देना भी बन्दकर देती है, उनका मूत्र-द्वार लाल हो जाता है और उससे सफेद तरल स्राव निकलने लगता है। इस अवस्थामें यदि कोई दूसरी गाय उसके पास होती है, तो वह उस पर चढ़नेकी चेष्टा करती हैं, पैरोंसे मिट्टी खोदती हैं और पगहा तुड़ानेकी चेष्टा किया करतो हैं। कोई कोई गाय तो अत्यन्त दुर्दमनीयता तथा अशान्तिका भाव प्रकाश करती हैं। कुछ गायें ऐसे अवसरों पर अशान्ति या चञ्चलता नहीं दिखातीं, परन्तु दुमको बारबार हिलाया करती हैं और बारबार मलमूत्र त्याग किया करती हैं। यह अवस्था केवल कई घण्टोंके लिये होती हैं। इसी समय लक्ष्य कर गायको साँढ़से सम्मिलित कराना चाहिये। ठीक समय पर साँढ़ का संयोग कराना अच्छा होता है। दूसरे दिन या तीसरे दिन भी साँढ़ से मिला देना चाहिये। विलम्ब होने पर गर्भधारण करेगी या नहीं, इसकी कुछ स्थिरता नहीं रहती। युरोपके विशेषज्ञोंने परिक्षा द्वारा निश्चय किया है, कि ऋतुमती होनेके साथ ही साँढ़से संयोग करा देनेसे बछिया पैदा होती है और एक या दो दिन बाद संयोग करानेसे बाछा पैदा होता हैं। इस नियमको मान लेनेसे अपनी इच्छाके अनुसार बच्चा पैदा कराया जा सकता है।

——:०:——

नवम परिच्छेद।

गर्भधारण करनेकी उमर।

साधारणतः इस देशकी बछियायें दो वर्ष तीन महीनेकी उमरसे लेकर दो वर्षकी अवस्था तक गर्भधारण करती हैं। प्रचुर पुष्टिकर आहार देनेसे अट्ठारह मासकी उमरमें गर्भधारण करते भी देखा गया है। इङ्गलैण्डकी जार्सी और गारन्सी जातिकी बछियायें दो वर्षके भीतर ही प्रसव करते देखी गई हैं। कमजोर, रोगिनी अनाहार क्लिष्टा बछियायें चार वर्ष तक ऋतुमती नहीं होतीं। उत्तम आहार देनेसे गायें दो वर्षकी उमरसे २५ वर्ष तक बच्चे देसकती हैं। ऐसा प्रायः देखा गया है कि साधारणतः गायें १५।१६ वर्षकी अवस्थामें बच्चे देना बन्द कर देती हैं। उमरके साथ साथ गायोंके दाँत क्रमशः घिस जाते हैं। परन्तु दाँत एकदम क्षय होजाने पर भी वे गर्भधारण कर सकती हैं। इसीसे इस देशमें कहीं कहीं कहावत प्रचलित है कि "गाय बूढ़ी आँतसे और बैल बूढ़ा दाँतसे"। अर्थात् गाय वत्स देना बन्दकर देने पर और बैल दाँत क्षय होजानेपर बूढ़े अर्थात् अकर्मण्य हो जाते हैं।

दशम परिच्छेद।

गर्भधारण।

रजस्वला गायको गर्भधारण करानेके लिये, साँढ़के साथ किसी ऐसे स्थानमें छोड़ देना चाहिये, जिसमें वे स्वेच्छा और अपनी प्रवृतिके अनुसार संयुक्त हो सकें तो बहुत अच्छा है। कोई कोई गाय सांढ़के निकट जानेमें डरती हैं। ऐसी अवस्थामें गायको दो खूटियोंके मध्य

बाँध देना अच्छा है परन्तु कभी कभी इससे भी कोई फल नहीं होता। साँढ़को देखते ही गाय जमीनमें बैठ जाती है। उस समय गायके दोनों बगलमें दो बांस डालकर उसे खड़ी रखना चाहिये और साँढ़को उसके पास जाने देना चाहिये। परन्तु यह स्मरण रहे कि ऐसा करनेसे गायको तकलीफ होती है। यदि इससे भी सुबिधा न हो तो गायको घुठने भर पानीमें लेजाकर खड़ी कर देना चाहिये। उस समय साँढ़ बड़ी आसानीसे कामयाब हो सकता है। इससे गाय को कोई तकलीफ नहीं होती और वह आसानीसे गर्भरक्षा कर सकती है। पहले पहले ऋतुमती होने पर बछियायें प्रायः साँढ़के निकट जाते डरती हैं। और कभी कभी इसी भयके हेतु ऋतुमती होने पर भी गर्भधारण नहीं करतीं। इसलिये नयी ऋतुमती बछियाओंके सम्बन्धमें विशेष सतर्कतासे काम लेना चाहिये, जिसमें वे भागने न पायें। यदि कोई गाय बच्चा प्रसव करने पर एक या दो महीनेमें ही ऋतुमती होजाय तो उसे साँढ़के निकट नहीं जाने देना चाहिये। क्योंकि उस समय गायका गर्भाधार बिल्कुल शिथिल रहता है। ऐसी अवस्थामें साँढ़से संयोग कराने पर वह गर्भधारण नहीं कर सकती। पहले या दूसरे महीनेके भीतर यदि गाय साँढ़के निकट जानेके लक्षण प्रगट करे तो उसे नहलाकर ठंढी चीजें खिलाकर शान्त कर देना चाहिये। इसके सिवा दूसरे किसी समय उसे रोकना न चाहिये। क्योंकि प्रकृतिके पुकारकी उपेक्षा करना अनुचित होता है। इससे गाय बन्ध्या हो सकती है या उसे मृतवत्सा रोग हो सकता है। जो गायें तीसरे महीने साँढ़ोंसे संयुक्त होती हैं वे हर तेरहवें महीने बच्चा पैदा करती हैं। कोई गाय ४।५।६।७ महीने दूध देने पर गर्भवती होती हैं।

एकादश परिच्छेद ।

गर्भका लक्षण और काल ।

भारतीय गायें साधारणतः २७० से २८० दिनोंमें प्रसव करती हैं। कोई कोई २६५ दिनमें भी प्रसव करती हैं। गर्भधारण करने पर गायें कुछ उज्जवल हो जाती हैं। गर्भधारण करने पर भी कोई कोई गाय चिल्लाया करती हैं और ऋतुमती होनेके समय वे अन्यान्य लक्षण पैदा करती है। ऐसी अवस्थामें खूब विचारकर देखना चाहिये, कि गायने गर्भधारण किया है वा नहीं। यदि गर्भावस्थामें उसका साँढ़के साथ संयोग होजाये तो निश्चय ही उसका गर्भपात हो जायेगा। ऐसी दशामें उसकी तन्दुरुस्ती भी बिगड़ जाती है। कोई कोई गाय गर्भ-धारण करनेके सात महीने बाद भी रजस्वला गायकी तरह चिल्लाया करती हैं और अस्थिर होकर दूसरी गायों पर चढ़नेकी चेष्टा करती है। ऐसे समय विशेष परीक्षा और सतर्कतासे काम लेना चाहिये। गायके गर्भधारण करने पर पहली अवस्थामें उसे जान लेना कठिन होता है। गर्भधारण करने पर जननेन्द्रियसे एक प्रकारका पीताभ स्राव जारी होता है। यदि ऐसा स्राव जारी न हो तो समझना चाहिये, कि गायने गर्भधारण नहीं किया है। कुछ महीने बीत जाने पर तो गायके शरीरका भारीपन देखकर ही उसके गर्भवती होनेका अनुमान किया जा सकता है। चार पांच मासके बाद तो आसानीसे समझमें आजाता है कि गाय गर्भवती है या नहीं। गायके दाहिने बगलमें अंगुलीसे दबानेसे मालूम हो जाता है, कि इसके पेटमें बच्चा है या नहीं क्योंकि उस समय अंगुली दबानेसे ही बच्चा हिल जाता है। गायको एक बालटी ठंढा पानी पिलानेसे उसके पेटका बच्चा चञ्चलता प्रकाश करता है और गायके पीछेकी ओर बच्चेका हिलना मालूम होता है।

हाथकी पांचों अंगुली गायके पार्श्व और थनमें स्पर्श कराने से भी बच्चेका अस्तित्व अनुभव किया जा सकता है।

द्वादश परिच्छेद।

गर्भधारणके समयकी जाननेवाली बातें।

गर्भधारण करनेके पहले से ही गायको पुष्टिकर और उत्तम भोजन देना चाहिये, एवं जिसमें गाय नीरोग रहे, इसकी ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। क्योंकि गायके स्वास्थ्य पर ही बच्चेकी उत्कर्षता निर्भर होती है। परन्तु अत्यधिक पुष्टिकर भोजन देनसे गायके पेटमें चर्बी बढ़ जाती है, गर्भाशय संकुचित हो जाता है और बच्चा छोटा पैदा होता है। अनेक समय गर्भपातकी भी सम्भावना रहती है। गर्भरक्षाके लिये उत्कृष्ट, और नीरोग साँढ़ तलाश करना चाहिये। जिस साँढ़की माता अधिक दुग्धवती होती है, उससे उत्पन्न बच्चा अच्छा होता है और गाय भी अधिक दूध देने लगती है। अच्छेके साथ अच्छेका संयोग करानेसे बहुत थोड़े दिनोंमें गायोंकी विशेष उन्नति हो जाती है। गर्भ-धारण करने पर गायको कुछ दौड़ाकर नहला देना चाहिये। यदि क्रमशः अच्छी गायसे अच्छे साँढ़का संयोग कराया जाय तो बहुत थोड़े दिनोंमें अति आश्चर्य्य फल प्राप्त होता है। विशेषतः किसी संक्रामक रोगकी सम्भावना नहीं होती। जिनके पास एक ही गाय हो, उनके लिये साँढ़ पालना मुशकिल है। परन्तु जिनके पास दस बारह गायें हों, उन्हें तो अवश्य ही एक साँढ़ रखना चाहिये। नहीं तो प्रयोजनके समय अच्छा साँढ़ न मिलनेसे बड़ी असुविधा होती है। जिनके पास सिर्फ एक ही गाय है, उनके लिये एक सांढ़ रखना विशेष व्ययसाध्य हैं, उन्हें चाहिये कि दो या तीन सांढ़के व्यवसायियोंसे पहले ही बात चीत पक्की रखें जिसमें समय पर साँढ़ मिलनेमें दिक्कत न हो।

कई जगह बातचत पक्की रहनेसे समय पर कहीं न कहीं साँढ़ अवश्य ही मिल जायगा। इङ्गलैण्डमें जिन गोपालकोंके पास साँढ़ नहीं होते वे दो तीन व्यबसायियोंसे बातचीत करके पहले ही से साँढ़

ठीक कर लेते हैं। साँढ़ गायसे बलवान और दूध देनेवाली गायके वंशका होना चाहिये ; साँढ़ और गाय दोनों ही का उत्कृष्ट होना आवश्यक है। दुर्बल और बीमार साँढ़के साथ गायका संयोग कदापि न कराना चाहिये। गोजनन कार्य्य कतिपय नियमोंके अधीन होता है। प्रथमतः जिस तरह मनुष्योंके रंगरूप और स्वास्थ्य आदिके अनुसार उनका लड़का होता है उसी तरह गायोंका भी होता है। सफेद, पीले और दुर्बल पिता माताकी सन्तान भी वैसी ही होती है। नेलोर जातीय गायका बच्चा नेलोर जातीय ही होगा। अत्यन्त दुग्धवती गायका संयोग यदि दुग्धवती मातासे उत्पन्न साँढ़से कराया जाय तो, सन्तान भी दुग्धवती होगी। निकृष्ट गायके साथ निकृष्ट साँढ़का संयोग करानेसे निकृष्ट बच्चा पैदा होगा। साधारणतः बछियामें पिताका गुण और वत्समें माताका गुणो अवगुण आजाता है। एक ही परिवारकी गाय और साँढ़से संयोग कराना ठीक नहीं है। अर्थात् पिता और कन्या, माता और पुत्र, भाई और बहनमें संयोग कराना अवैध है। क्योंकि ऐसा करनेसे बच्चे हीनबीर्य्य, और दुर्वल होते हैं और क्रमशः अत्यन्त अधोगति प्राप्त करते हैं। वास्तवमें बच्चे ही गोशालाकी उन्नतिके सोपान हैं। बच्चोंकी ओर ध्यान देकर ही गोशालाकी उन्नति कीजा सकती है और उन्हींके द्वारा मूलधन भी बढ़ाया जासकता है। बच्चोंको अच्छा आहार आदि देनेसे और उनके प्रति विशेष यत्न और चेष्टा करनेसे वे अवश्य ही अपनी माताओंसे अच्छे हो जाते हैं। इस तरफ विशेष दृष्टि रखना चाहिये, जिसमें अपने माता पितासे अच्छे हों। ऐसा होनेसे आशानुरूप फल प्राप्त होगा और थोड़े ही दिनोंमें गायोंकी उन्नति होने लगेगी। गोवंशकी वृद्धि होगी।

——:०:——

त्रयोदश परिच्छेद ।

अनुलोम-विलोम संयोगका फलाफल।

इस सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानोंके अनुसन्धानका फल नीचे दिया जाता है।

(१) निकृष्ट गाय, और उत्कृष्ट साँढ़ (अधिक दूध देनेवाली मातासे उत्पन्न) का संयोग होनेसे केवल अच्छा बच्चा ही नहीं पैदा होता, गाय भी अधिक दूध देने लगती है। यह प्रकृतिका नियम है। क्योंकि उत्कृष्ट और बच्चेके उपयुक्त आहारके लिये प्रकृति उसकी माताके थनमें अधिक दूध पैदा करती है।

(२) उत्कृष्ट गायसे अपकृष्ट साँढ़का संयोग करानेसे गायका दूध कम हो जाता है। क्योंकि उससे जो निकृष्ठ बच्चा पैदा होगा, उसे कम आहारको आवश्यकता होगी। इसलिये प्रकृति ऐसी गायके स्तन में कम दूध पैदा करती है।

(३) उत्कृष्ट सांढ़ और निकृष्ट गायके संयोगसे उत्पन्न वत्स पिताकी भांति उत्कृष्ट होता है और मातासे श्रेष्ठ होता है।

(४) निकृष्ट साँढ़ और उत्कृष्ठ गायके संयोगसे जो बच्चा पैदा होगा, वह दोनोंसे अपकृष्ट होगा। इस सम्मिलनका फल दूध और बच्चा, दोनोंके लिये खराब होगा।

(५) (क) अच्छी गाय और अच्छे साँढ़के संयोगसे उत्पन्न बच्चा उत्कृष्ट होगा। (ख) निकृष्ट साढ़ और निकृष्ट गायसे उत्पन्न बच्चा भी निकृष्ट होगा।

(६) किसी अच्छी गायको क्रमशः दो तीन बार खराब सांढ़से संयुक्त कराने पर, फिर उसे किसी अच्छे सांढ़से संयुक्त कराने पर उसके गर्भसे अच्छी सन्तान नहीं होती।

(७) अनेक समय बच्चा अपने पिता माताके अनुरूप न होकर अपनी मातामही या उससे भी दो एक पुश्त पूर्व्वके पुरुषोंकी भांति होता है।

(८) कभी कभी पिता माता आदिका रूप न पाकर किसी और ही रंगरूपका हो जाता है। यह बात गर्भधारिणीके आहार और जल वायुपर निर्भर करती है।

(क) अच्छा खाद्य और अच्छे जलवायुके अनुसार नया बच्चा भी अच्छा होता है।

(ख) खराब अहार और खराब आब-हवाके दोषसे खराब बच्चा पैदा होता है। हिसारकी अच्छी गाय और अच्छा साँढ़ अथवा गुजरात की अच्छी गाय और अच्छा साँढ़, अथवा मौण्टगोमरी जातीय अच्छी गायसे उसी जातिके अच्छे साँढ़का संयोग करानेसे फल अच्छा होता है।

चतुर्दश परिच्छेद

—:o:—

संकर गोजाति।

किस जातिका विदेशी साँढ़ भारतीय गायके उपयुक्त होता है? वर्तमान समयमें दूध देनेमें, विलायती गायोंने इस देशकी गायोंकी अपेक्षा बड़ी उन्नति की है। ये दुग्धवती गायें देशीय जलवायु और गर्मी शर्दी बरदाश्त नहीं कर सकतीं। परन्तु विलायती सांढ़ों द्वारा इस देशकी गायोंसे संकर वत्स उत्पन्न करनेसे खूब दुग्धवती गायें उत्पन्न होंगी। इसके लिये बड़ी चेष्टा की गई है परन्तु अभी तक कोई फल नहीं हुआ है।

सम्प्रति "जर्नाल आफ् डायरिंग" नामक पत्रिकाके जुलाई सन १९१४ वाले अंकमें "भारतवर्षके लिये विदेशोंसे आये हुए बैल" शीर्षक एक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है। उसमें दिखाया गया है, कि आयर शायर जातिके साँढ़ भारतीय गायोंके जनन-कार्य्यके लिये अच्छे हैं। (१) बंगलोर डायरी फार्ममें जो हिसारी गाय एक वियानमें १७५० पौण्ड दूध देती थी, उससे डोनाल्ड (Donald) नामक आयर-शायर जातीय साँढ़के संयोगसे एक बाछी पैदा हुई थी। उसने तीन वर्षकी अवस्थामें बच्चा दिया था और रोज ७५ पौण्ड दूध देती थी। एक वियानमें,२७० दिनोंमें उसने ८००० पौण्ड अर्थात् प्रायः सौ मन दूध दिया था। केवल २० दिनों तक दूधहीना रहकर फिर डोनालड द्वारा उसके गर्भसे एक बाछी पैदा हुई है। वह आजकल प्रतिदिन ५६ पौण्ड दूध देती है। एक ही महीनेमें उसने १०३२ पौण्ड दूध दिया है। और जुलाई मास तक ८००० पौण्ड दूध दिया है और आजकल प्रतिदिन १० सेर दूध देती है। आजकल कच्ची घासकी कमीके कारण उसे वह नहीं मिलती। इस गायका फल बड़ा ही सन्तोषजनक मालूम पड़ता है।

परीक्षा करके देखा गया है, कि आयार-शायार जातिके साँढ़ ही भारतीय गायोंके जननकार्य्यके लिये अच्छे होते हैं।

आस्ट्रेलियन शार्टहर्न जातीय गायोंमें इलावारा (Illawara) नामक प्रसिद्ध वंगीय बैलकी अपेक्षा भी आयार-शायर जातीय बैल भारतीय गायोंके लिये अच्छा है।

इन आस्ट्रेलियन साँढ़ द्वारा उत्पन्न गायें एक बियानमें ५००० पौण्डसे अधिक दूध नहीं देतीं। यह एक गाय चर्मावरणमें चार गायोंके बराबर होती है।

---

(1) The best tope of imported bulls for India
By S. T. W. Rouse

भिन्न देशोंसे आये हुए साँढ़ गरम प्रधान भारतमें आकर बीमार पड़ जाते हैं। परन्तु आयर शायर जातिके साँढ़ भारतीय जल वायुके कारण सहज ही बीमार नहीं पड़ते ।

सिन्धु देशीय गायसे और आयर शायर साँढ़के संयोगसे उत्पन्न गाय बड़ी सुडौल और सुगठित होती है। परिश्रमके कामोंके लिये वे बड़ी अच्छी होती हैं। फारेस्ट विभागवाले तथा प्लाण्टरगण इस प्रकारके संकर बैलोंका बड़ा आदर करते हैं और बहुत दाम देकर उन्हें खरीदते हैं।

बेंगलोर डायरीफार्ममें एक पितासे जन्मी हुई बहुत सी बाछियाँ हैं। उनमें ६ दूध देती हैं। नीचे उनमेंसे एकके दूधका हिसाब दिया जाता है :—

No नं०	Breed जाति	Total एक वियानका दूध	दिनोंकी तादाद	माताकी जाति	माताके दूधका परिमाण ।
१२७	H. B. शार्टहर्न	३७०६ पौण्ड	२६०	२० हांसी	१८२१ पौ०
१३१	ऐ०	४२०० ,,	२६७	ऐ०	१५४६ ,,
१३२	,, आयर-शायर	३४३७ ,,		६४ सिन्धु	२०१० ,,
१३३	,, ,,	६००० ,,		८० हांसी	१७५० ,,
१३५	,, शार्टहर्न	३१५० ,,	२००	७० ,,	१७१८ ,,
१३८	,, आयर-शायर	६२७० ,,		८८ ,,	१५०६ ,,
१४०	,,	२६७४ ,,		६० ,,	२०५७ ,,
१४१	,,	२७८४ ,,		६७ ,,	१७०२ ,,

पञ्चदश परिच्छेद ।

उत्कृष्ट वत्स प्राप्त करनेका उपाय ।

किसी एक जातिकी अच्छी एक गायको मडॆल (नमूना) अर्थात् उसके रूपकी कल्पना कर लेना, जैसे, उसका रङ्ग लाल हो, सींगे न हों, मस्तक उन्नत हो, आँखे बड़ी हों, दुम सफेद हो, पेटमें थोड़ासा सफेद हो, ललाट सफेद हो अथवा थन किसी खास परिमाणका हो, यह स्थिरकर, उसी नमूनेके मुताबिक गाय उत्पन्न करनेकी चेष्टा करनेसे उस जातिकी गायोंकी यथेष्ट उन्नति होती हैं। युरोपीय गोपालक अपने मनोनीत नमूनाके- अनुसार काठ या मिट्टीकी एक गाय बनाकर, उसे अपनी इच्छानुसार किसी रङ्गका कम्बल उढ़ाकर गर्भरक्षाके समय गायके सामने रख देते हैं। इससे उसी नमूनाके अनुरूप बच्चा पैदा होता है।

पाश्चात्य देशोंमें गो जातिके दो विभाग हैं। एक डायरी गो अर्थात् दूध देनेवाली और दूसरी मांसके काममें आनेवाली। साधारणतः एक जातिका साँढ़ दूसरी जातिकी गायके गर्भ-रक्षाके लिये व्यवहार नहीं किया जाता। डायरी अर्थात् दूध देनेवाली गायका शरीर कम मोटा और ढीला ढाला होता है और मांसके काममें आनेवाली गायोंका कलेवर खूब मोटा ताजा होता है।

हमारे देशमें भी हल जोतने, गाड़ी खींचने और युद्धका सामान ढोनेवाली गोजातिका शरीर अत्यन्त मजबूत होता है और दूध देनेवाली गायोंका शरीर ढीला ढाला और कम स्थूल होता है। इन दोनों श्रेणियोंकी गोजाति अलग अलग होती हैं। एक श्रेणीकी गायसे दूसरी

जो बैल हल खींचता है। उससे यदि दुग्धवती गायका संयोग कराया जाय तो उससे जो बच्चा पैदा होगा, वह कदापि उत्कृष्ट नहीं होगा और गाय भी उतनी दुग्धवती नहीं रह जायगी। अच्छी और अधिक दूध देनेवाली गायके पेटसे पैदा बच्चा पाल कर, तैयार होनेपर यदि उसीके द्वारा दुग्धवती गायका संयोग कराया जाय तो सन्तान पैदा होगी, यदि वह गाय होगी तो उसमें दूध देनेकी क्षमता अवश्य अधिक होगी।

षोड़श परिच्छेद।

गर्भवती गाय।

गर्भावस्थामें बड़ी सतर्कताके साथ गायकी रक्षा करनी चाहिये। किसी कारणवश उछलनेसे, किसी दूसरे पशुके साथ लड़ाई करनेसे अथवा दौड़नेसे गर्भपात हो जानेकी सम्भावना रहती है। ऐसे समय गायोंसे प्रत्यह थोड़े परिश्रमका काम या व्यायाम कराना चाहिये। व्यायाम न करानेसे मृतवत्स पैदा हो सकता है। ऐसी अवस्थामें गायको एक स्थानपर बांधकर छोड़ देनेसे उसके गर्भाधारमें चर्बी बढ़ जाती है। इससे कमजोर, छोटा अथवा मरा हुआ बच्चा पैदा होता है। इसीसे इस देशमें बहुधा गायें मृतवत्सा प्रसव करती हैं। गर्भवती गायको खली आदि उत्तेजक पदार्थ नहीं खिलाना चाहिये। इससे गायें गर्भ-पातकर फिर साँढ़ ढूंढ़ने लगती हैं। गर्भावस्थामें भी यदि किसी कारणसे गाय साँढ़से संयुक्त हो जाय तो गर्भपात हो जानेकी सम्भावना होती है। गर्भावस्थामें कोई उत्तेजक चीज खानेके कारण उत्तप्त होकर गाय चित्कार करती है। इस लिये गोस्वामीको चाहिये, कि विशेष विवेचना कर

गायको साँढ़से मिलावे। ऐसा न हो, कि गर्भवती होनेपर गाय साँढ़के पास चली जाय। गर्भके समय गायको आंगन अथवा अन्य किसी निरापद स्थानमें टहलने देना चाहिये और उसे नहला धुलाकर साफ़ रखना चाहिये। स्नान और प्रसादन बड़े यत्नसे करना चाहिये। गर्भावस्थामें गायोंकी प्रकृति बड़ी मृदु हो जाती है। इससे सहज ही गर्भपात हो जानेकी सम्भावना रहती है। गर्भपात होनेपर बच्चेको पोशीदा तौरपर ले जाकर कहीं गाड़ देना चाहिये। क्योंकि गर्भपात वाणी कभी कभी गायोंमें संक्रामक हो जाती है। इसी लिये गर्भस्त्रावको गोशालासे दूर ले जाकर गाड़ना उचित है। इसके बाद जबतक कुछ दिन बीत न जाय, तबतक गायको साँढ़के पास जाने देना ठीक नहीं है। क्योंकि एक बार गर्भपात हो जानेपर पुनः पुनः गर्भपातकी आशंका रहती है। विशेष जिस समय गर्भपात हो, दूसरी बार गर्भ रहनेपर वह समय उपस्थित होनेपर विशेष सतर्कतासे काम लेना चाहिये। एक बार जिन कारणोंसे गर्भपात हुआ हो, दूसरी बार बड़ी सावधानीसे उन कारणोंको उपस्थित न होने देना चाहिये। अननास आदि कितनी ही चीजें ऐसी हैं, जिनके खानेसे गर्भपात हो जाता है। इस लिये गर्भावस्थामें गायको ऐसी चीजें न खाने देना चाहिये।

सप्तदश परिच्छेद।

आसन्नप्रसवा गायकी परिचर्य्या।

आसन्नप्रसवा गायके शरीरमें परिवर्त्तनके चिन्ह साफ़ दिखाई देते हैं। उस गायका पाछा भारी होता है। पाछाके ठीक नीचे भी गर्भकी भाँति दिखाई पड़ता है। और पाकस्थली छातीकी ओर झुक जाती है। अधिक

उमरकी गायोंके बच्चोंका गर्भमें स्थान परिवर्तन करना साफ़ दिखाई देता है। कई गायोंके मूत्रस्थान और गुह्यद्वारमें अनवरत उत्तेजना दिखाई देती है, गाय बारबार मलत्याग करती है और पूंछ हिलाया करती है। प्रसवद्वार प्रशस्त होकर कुछ फूल जाता है। प्रसव कालके दो तीन सप्ताह पहले तक प्रसव द्वारसे पीले रङ्गका स्राव निकला करता है। इन चिन्होंके प्रकट होते ही गायको सतर्कता पूर्व्वक रखना चाहिये। उस समय मैदानमें चरने देना ठीक नहीं है। क्योंकि भय अथवा अन्य किसी आशंकासे गायें असमयमें ही प्रसव कर देती हैं। मैदानके बीहड़ स्थानमें प्रसव हो जानेपर गाय और वत्स दोनों ही नाना प्रकारकी दुर्घटनामें पड़ सकते हैं। कोई कोई गाय उपयुक्त चिन्होंके प्रकट होनेके दिन ही प्रसव करती हैं। इस समय उन्हें स्थिर भावसे रखना अच्छा होता है। प्रसवके दस पन्द्रह दिन पहलेसे गायका थन बड़ा हो जाता है। कभी कभी दूधसे भर जाता है। दुग्धवाही शिरायें मोटी और विस्तृत् होती हैं। ऐसे समय गायकी देहमें ठण्ढा लगनेसे विशेष क्षति होनेके सम्भावना होती है। इस समय गायोंको परम सूखें स्थानोंमें रखना चाहिये और नहलाना न चाहिये और न ठण्ढी जगह रखना ही चाहिये।

यदि थन खूब बड़ा हो जाय और दुग्धवाहिनी शिरायें अत्यन्त फूल जायें तो प्रतिदिन सवेरे और शामको दूध दूहकर निकाल देना चाहिये। क्योंकि ऐसा न करनेसे थनमें दूध जम जानेपर गायको पीड़ा होती है और उसे दुग्धज्वर हो जाता है। इससे गाय और बच्चेको बड़ी तकलीफ होती है। बहुतसी अच्छी गायें इस तरह बीमार होकर नष्ट हो जाती हैं। उनकी दो एक चूंचियां कानी हो जाती हैं और गायें भी अक्सर मर जाती हैं।

गायका दूध दूहना आरम्भ करनेपर प्रति दिन समयपर दूहना उचित है।

गायको जब प्रसव वेदना उपस्थित होती है तो एक या दो घण्टे पहलेसे ही आँखोंसे भयके लक्षण दिखाई देते हैं। कष्टके चिन्ह स्वरूप आँखें उज्ज्वल हो जाती हैं और वह टकटकी बाँधकर एक ओर देखने लगती हैं। इस तरहके लक्षण दिखाई दे तो गायको गोशालामें शान्त भावसे रख देना चाहिये। गोशालाकी भूमिपर सूखा हुआ पोवाल बिछा देना चाहिये। इस समय पिछले अङ्गोंपर तथा उसके मूत्र द्वारपर नारियलका तेल ढाल देना प्रसवके लिये लाभदायक होता है। उसके बाद उसे बाँसकी पत्ती या कच्ची घास खानेको देना चाहिये। चरवाहेको गायकी नजरोंसे छिपकर उसे देखते रहना चाहिये। वत्सासक्त गायके निकट जाकर वृथा उसे कष्ट देना उचित नहीं है। पीड़ा न रहनेपर गाय कुछ कुछ घास खाती है। जिस समयसे गाय अशान्त होकर उठना बैठना आरम्भ करे और अशान्तिके लक्षण दिखाने लगे, उस समयसे प्रसव कालतक चरवाहेको उसके निकट ही रहना चाहिये। परन्तु ऐसी हालतमें गायको छूकर उसे कष्ट देना उचित नहीं है। प्रसव आरम्भ होनेपर सामनेके दो पैर और शिरके निकल जानेपर जबतक बिल्कुल प्रसव न हो जाय तबतक गायको उठने न देना चाहिये।

जिस समय जल बहने लगता है, उसी समयसे प्रकृत प्रसव क्रिया आरम्भ होती है। उस समय गाय सोई रहती है और थोड़ी देरके बाद साधारणतः बाईं करवट हो जाती है। इसी समय वत्सके दो पैर प्रवसद्वार पर दिखाई देते हैं, उस समय पीड़ा बहुत होती है। उसी समय वत्सका मस्तक भी दिखाई पड़ता है। बच्चेका सिर घुटनोंपर अड़ा रहता है। बच्चेकी पीठ गायकी पीठके साथ एक समान्तराल रेखामें रहती है। मस्तक दिखाई पड़नेके दो तीन मिनिट बाद ही बच्चेका पिछला हिस्सा भी बाहर आ जाता है। पेटके भीतरवाले जरायुकोषके दबाव और गायके पश्चाद्भागकी स्नायु-पेशियोंकी सहायतासे ही प्रसव-क्रिया होती है।

बच्चा प्रसव करनेके थोड़ी देर बाद ही गाय अपने घुटनोंके बल बैठती है और यदि गाय विशेष कमजोर नहीं होती है, तो उठकर खड़ी हो जाती है और बच्चेको अपनी जीभसे चाटने लगती है।

बच्चा पड़ा पड़ा बड़े जोरसे साँस खींचता है। उसके बाद क्रमशः सिर उठाता है और सामनेके पैरोंको सिरके नीचे स्थापित कर उठनेके लिये बार बार निष्कल प्रयत्न कर अन्तमें उठ जाता है। उसके बाद मत-वालेको तरह लुढ़कने लगता है। इसके बाद फिर उसका पैर बिचलित नहीं होता और वह चल सकता है। साधारणतः प्रसव क्रिया प्राकृतिक नियमानुसार ही सम्पन्न होती है। भयानक शीतकालमें गायका बच्चा पैदा हो तो गायको विशेषतः बच्चेको आग जलाकर सेंकना चाहिये। उससे बच्चा बड़ी आसानीसे दृढ़ हो सकता है। गायको प्रसव पीड़ा आरम्भ होनेपर फिर कम हो जाय और प्रसवमें देर होने लगे तो गायकी विशेषताके अनुसार उसे २० से ८० ग्रेन तक कुनैन खिला देनेसे बहुत जल्द बच्चा पैदा हो जाता है। दौना और चिताकी जड़ एक एक छटांक लेकर, जलके साथ पीसकर पिला देनेसे प्रसव कार्य्य शीघ्र हो जाता हैं। पावभर मठा साथ डेढ़ छटाँक झोलमिलाकर पिला देनेसे भी शीघ्र प्रसव हो जाता है। प्रसव पीड़ा यदि आठ दस दिनतक जारी रहे, तो गायको गुड़ और भूसीके साथ तीसीका तेल खिलानेसे या उपसम साल्ट खिलानेसे शीघ्र प्रसव हो जाता है। यदि प्रसव कार्य्यमें कोई दुर्घटना हो अर्थात् बच्चेका एक पैर पहले निकल जाय, या अगला और पिछला पैर पहले निकलने लगे, तो उस समय खूब सावधानीसे काम लेना चाहिये। उसी समय डाक्टरको बुलाना चाहिये। किन्तु हाय, दुर्भाग्य-का विषय है, कि डाक्टर बुलानेकी बात लिख रहे हैं! डाक्टर हैं कहां जो विपद्के समय गूंगी गो-जातिकी प्राण रक्षाके लिये आवेंगे।

अष्टादश परिच्छेद ।

——*-*——

प्रसवके बाद गायका फूल झरना और उसकी परिचर्य्या ।

प्रसव हो जानेपर गोपालकको जल वा फूल निकलनेकी ओर प्रधान लक्ष्य रखना चाहिये, जिसमें गाय उसे खा न जाने पावे। प्रसवके बाद गायें अपने शरीरका पिछला अंश चाटकर साफ करती हैं। इसी समय फूल निकलता है और वे उसे खा डालती हैं। उससे गायोंको रक्तामाशय (आँव-पेचिश) आदि कठिन रोग हो सकते हैं। फूल साधारणतः चार घण्टेमें गिर जाता है। यदि न गिरे तो कुछ गरम पानी, एक पाव गुड़, एक पाव अदरख या सोंठ और एक छटाँक कच्ची हल्दी, पीस कर आटेके साथ मिलाकर छ घण्टेके भीतर क्रमशः दो बार खिला देना चाहिये। इससे फूल सहज ही गिर जाता है और प्रसव होनेके बादकी पीड़ा भी कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त थोड़ासा धान या पोयकी पतियाँ, जँगली पोय की पतियाँ या शियालमूत्री वृक्ष गायको खिलाकर थोड़ासा गरम जल पिला देनेसे भी फूल शीघ्र ही निकल जाता है। शालि धानकी जड़ एक छटाँक और मट्ठा आध पाव, मिलाकर खिलानेसे फूल शीघ्र निकल जाता है। फूल निकल जानेपर उसे तुरन्त फेक देना चाहिये। फूल निकलनेके लिये और औषधियाँ चिकित्सा अध्यायमें दी गई हैं। यदि गाय फूल खा जाय तो ५० पानकी पत्तियाँ या उसका रस निकालकर खिलाना चाहिये या तुलसीके पत्तेका रस मधुके साथ मिलाकर खिला देना चाहिये। यदि प्रसव हो जानेपर गाय बच्चेको न चाटे तो बच्चेके शरीरमें खलीका पानी गुड़ या मधु लपेट देना चाहिये। यदि बच्चा पैदा होकर निर्जीवकी भांति पड़ा रहे तो अदरख या काली मिर्च चबा कर उसकी नाकमें फूंकना चाहिये। अथवा उसके शरीरमें सेंक देना चाहिये। कुकरौंदेकी पत्ती खिलानेसे भी फूल गिर जाता है। प्रसव

हो जानेपर गायका प्रसव द्वार और शरीरका पिछला अंश गरम पानीसे धोकर उसपर सरसोंका तेल और कपूर कई दिन तक लगाना चाहिये। बच्चेकी नाभीको इसी तरह साफ़ कर देना चाहिये। इङ्गलेण्डमें बच्चेकी नाभीकी नाड़ी काट दी जाती है। किन्तु इस देशमें वैसी प्रथा नहीं है। यदि नाड़ी काटी जाय तो फिनाइल द्वारा उस स्थानको अच्छी तरह साफ़ करके नारियलका तेल लगा देना चाहिये।

प्रसवके बाद गायको ठंढा पानी कदापि न देना चाहिये; क्योंकि प्रसवके एक घण्टा बाद गायोंको ठंढा लगनेकी विशेष सम्भावना रहती है। इस समय उसे खूब गरम रखना चाहिये। एक गरम कम्बल गायको उढ़ा देना और भी अच्छा है। एक सप्ताह तक गायको गरम जल पिलाना चाहिये। अधिक दूध देनेवाली गायें बड़ी मृदु प्रकृतिकी होती हैं। उनके दुग्धाधारमें बड़ी जल्दी ठंढ लग जाती है। उनका थन कड़ा हो जाता है और दूध जम जाता है।

प्रसवके बाद गायको बांसकी पत्ती खिलाई जा सकती है। प्रसवके चार-पांच घण्टे बाद गायको उड़दकी दाल और चावलकी खिंचड़ी देना चाहिये। प्रसवके बाद एक हफ्तेतक गायको कच्ची घास खिलाना चाहिये। और दिनमें दो तीनवार खुद्दी और उड़दकी दाल पकाकर उसमें एक छटाँक नमक और हल्दी मिलाकर खिलाना चाहिये। प्रसवके बाद एक सप्ताह तक सूखी घास और पवाल वगैरह कदापि न खिलाना चाहिये। इसके सिवा खली आदि गरम चीजें भी एक सप्ताह नहीं देनी चाहिये। नहीं तो थनमें पीड़ा होनेकी सम्भावना बनी रहती है। ऐसे समय यदि गायको कोई बीमारी हो जाये, तो बड़ी सावधानीसे तुरन्त इलाज करना चाहिये। प्रसव हो जानेपर गायका दूध दूह-कर फेंक देना चाहिये। क्योंकि यह दूध पीबकी तरह होता है। उसे बच्चेको कदापि पिलाना नहीं चाहिये। उसके पीनेसे वत्सको बीमारी हो सकती है। इसके बाद बच्चेको दूध पीने देना चाहिये।

प्रसवके बाद तीन दिन तक बच्चेके दूध पीलेनेपर तीनवार दूहना चाहिये। दूहनेके एक घण्टा पहलेसे ही वत्सको बांध रखना चाहिये दूहनेके समय गायकी थनमें दूध नहीं छोड़ना चाहिये। प्रसवके सात दिन बादसे एक महीने तकके दूधमें मक्खनका भाग बहुत रहता है। इसलिये प्रसवके तीन सप्ताह बाद तक दूध केवल बच्चेको पीने देना चाहिये। यही कारण है, कि इस देशमें २० दिन तक गायका दूध कोई व्यवहार नहीं करता। प्रसवके बाद यदि गायके थनसे आसानीसे दूध न निकले तो बिचना नामक घाससे अथवा अन्य किसी उपायसे चूंचियोंके छोटे छेदोंको साफ़ कर देना चाहिये।

उनविंश परिच्छेद।

दूध देनेवाली गायकी परिचर्य्या।

दूध देनेवाली गायें बड़ी कोमल प्रकृतिकी होती हैं। इसीसे उनके शरीरमें तथा थनमें सहज ही कोई बीमारी हो जानेकी सम्भावना रहा करती है। और दूध देनेमें व्याघात घटता है। अधिक दूध देनेवाली गायें शीघ्र ही बीमार पड़ जाती हैं। उनका थन बड़ा ही कोमल होता है। उसमें बहुत जल्द सर्दी लग जाती है और सर्दी लगनेसे ही थनमें दूध जम जाता है। इससे कभी कभी दो एक चूंचियां बिलकुल बेकार हो जाती हैं। अतएव गायको सर्दीसे बचाते रहना चाहिये।

कठोर सर्दीके समय यदि गाय प्रसव करे तो उसके थनमें गरम कपड़ा बांध देना चाहिये। चूंचियोंमें कभी कभी घाव हो जाता है तो गाय दूध दुहने नहीं देती। दूध दूहनेका प्रयत्न करनेसे लात चलाती है। ऐसी अवस्थामें, किसी प्रकार दूहनेसे दूधके बदले खून आ जाता है। ऐसी हालतमें नीमकी पत्ती उबाल कर उसी जलसे थनको

धोना चाहिये । तीसी या रेंड़ीके तेलके साथ पांच छः दिन तक मुर्गी या बतकका अण्डा गायको खिलानेसे घाव सूख जाता है । किसी जंगल या भाड़ीके पास गोशाला रहनेसे सांप आकर गायका दूध पी जाता है ।

डोंड़ आदि कई सांप गायके पैरोंको अपनी दुमसे बांधकर थनमें मुंह लगाकर उसका दूध पीते हैं । इससे गायकी थनमें घाव हो जाता है । यदि इस प्रकारका उत्पात हो तो गोशालाके निकटका बन साफ़ कर देना चाहिये और घावपर नारियलके तेलमें नीमकी पत्तियाँ भूनकर वही तेल लगाना चाहिये । इससे घाव शीघ्र ही आराम हो जाता है ।

गायको प्रति दिन अपनी झुण्डके साथ चरने देना चाहिये । उससे गायको हवाखोरी, व्यायामके साथ ही नई घास भोजन करनेका अवसर मिल जाता है । दुग्धवती गायको सर्दीके दिनोंमें गरम पानी पिलाना चाहिये ।

विंश परिच्छेद ।

दुग्धवती गायका खाद्य और उसका नियम ।

भोजनके सम्बन्धमें गायोंका मन रखना बड़ा ही मुश्किल होता है । उनके खानेकी वस्तुमें किसी तरहकी सड़ी दुर्गन्धि होनेसे वे उसे हरगिज़ नहीं खातीं । एकबार मुंह उठा लेनेपर फिर उन्हें खिलाना बड़ा मुश्किल होता है । अतएव गायके खानेकी चीज़ोंको खूब अच्छी तरह देख लेना चाहिये । पहले दिनका बचा हुआ भोजन फेंककर बर्त्तनको पानीसे अच्छी तरह धोकर उसमें दूसरा भोजन देना चाहिये ।

दूध दूहनेके बाद गायोंको कुछ अवश्य ही खिलाना चाहिये । खाली पेटमें दूहनेसे गायें अक्सर चञ्चलता दिखाया करती हैं । उस समय दूध दूहना असाध्य हो जाता है । सवेरे शाक सबजी कटैली चौराईके

पौधेके साथ चावल और दालकी खुद्दी पकाकर चिउड़ा और गुड़ मिला कर खूब खिलानेसे गाय अधिक दूध देती है। इस तरह यदि डेढ़ महीने गायको खिलाया जाय तो उसका दूध डेढ़ा बढ़ जायेगा।

सवेरे गायको दूह लेनेपर गायको मैदानमें चराकर कड़ी धूप और तेज हवाके पहले ही लाकर, दोपहरको यथानियम खली और भूसी आदि खिलाना चाहिये। जो गाय आठ या दस सेर दूध देती है, उसे नीचे लिखा हुआ भोजन देना चाहिये।

आधा दला हुआर जुआर, जई, गेहूँ या चावल तीन पाव, दालकी खुद्दी एक सेर, खली आधा सेर, बिनौला, बूट, या उड़द पावभर, उड़दकी भूसी डेढ़ सेर, कच्ची घास (छोटे छोटे टुकड़ेकर) ६ सेर, एक जगह मिलाकर उसमें आधा छटांक नमक डालकर खिलाना चाहिये। इसमें आधा तोला गन्धक डाल देना और भी अच्छा है। उड़द, जई, चना और गेहूँको एक दिन पहले ही दो टुकड़ेकर पानीमें रखना या फुलाकर खिलाना अच्छा है। गायके शरीर और उसके दूधका अन्दाज लगाकर गायके भोजनकी चीजोंमें कमी बेशी करना चाहिये। आवश्यकता होनेपर ऊपर लिखी चीजोंके साथ तीन या चार सेर पवाल खूब छोटा छोटा काटकर खिलाना चाहिये। कच्ची घास यदि बिल्कुल न मिले तो पवाल खिलाना चाहिये। चावलका धोवन, माँड़ आदि खिलानेसे गायें सहज ही मोटी हो जाती हैं। शामको गायको भीतरसे लाकर बाहर बाँधना चाहिये और उसे शीतल और साफ़ पानी पिलाकर पहले की तरह भोजन देना चाहिये। कितनोंहीके मतानुसार भूसी और खलीको ६ घण्टे भिंजाकर शामको पानीमें घोलकर पिलानेसे दूध खूब बढ़ता है। दुग्धवती गायके लिये उड़दकी दालकी तरह उपकारी चीज़ दूसरी नहीं होती। इससे दूध भी बढ़ता और शरीरकी शक्ति भी बढ़ती है। उड़द ठंडी चीज है। इससे गायका शरीर ठंडा रहता है। परन्तु जाड़ेके दिनोंमें अधिक उड़द खिलानेसे गायको बात व्याधि हो सकती है। वत्स और बैलके चना जितना लाभदायक है उतना गायके

लिये नहीं। गाय यदि कमजोर हो जाय तो उसे भात, गेहूं या दूसरा कोई अन्न प्रदान करना चाहिये। यदि गायकी पाचनशक्ति कम हो जाय तो उसे दूसरा कोई अन्न न देकर केवल भात देना चाहिये। अनाज और कच्ची घास खिलानेसे गायका दूध बढ़ता है और उसमें मक्खनका भाग भी अधिक होता है। बड़ी गाय हो तो भी बिनौला आधा सेरसे अधिक नहीं देना चाहिये क्योंकि बिनौला बड़ा उत्तेजक गरम और देरसे पचनेवाली चीज है। इसे अधिक खानेसे पेटकी बीमारी पैदा हो जाती है और थनमें जलन पैदा होती है। खली भी दूध और मक्खन बढ़ाती हैं। भूसी पाचनशक्तिको बढ़ाती और दूधको भी बढ़ाती है। नमक और गन्धकसे कोठा साफ रहता है। उससे किसी प्रकारकी बीमारी नहीं होने पाती। धानसे पयालमें कोई विशेष पुष्टिकर पदार्थ नहीं होता। उड़द, खेसारी, मसूर, मूंग, जईकी भूसी और सूखे पौधे अपेक्षाकृत अधिक लाभकारी हैं।

दूध देनेवाली गायके लिये सरसोंका तैल विशेष उपकारी नहीं होता। इससे गायकी चर्बी बढ़ती है और वह उत्तेजक भी है। तिलकी खली सुखाद्य और उसमें तेलकी गन्ध भी रहती है; लेकिन पुरानी होनेपर सूख जाती है और कड़ी हो जाती है। दुग्धवती गायके लिये तिलकी खली बड़ी उपकारी चीज है। किन्तु वह बहुत कम मिलती है। तीसी और नारियलकी खली भी दूध देनेवालीके लिये बहुत उपकारी होती हैं। किन्तु उसे गाय आसानीसे खाना नहीं चाहती है। पहले थोड़ा थोड़ा खिलाकर अभ्यास करानेकी ज़रूरत पड़ती है। सब तरहकी खली गायके लिये पुष्टिकर होती है। परन्तु गायें उसे खाना नहीं चाहतीं। उससे उनकी मांस पेशियाँ पुष्ट होती हैं और शारीरिक उनकी पूर्णता होती है। खली खूनको साफ करनेवाली और पुष्टिकर होती है और उससे दूधकी भी वृद्धि होती है। खलीमें बड़ी जल्दी कीड़े पड़ जाते हैं और बड़ी जल्दी खराब हो जाती है। इसलिये जहाँतक हो सके गायोंको ताजा खली खिलाना ही अच्छा है। पुरानी

खलीका व्यवहार विशेष परीक्षा कर लेनेपर करना चाहिये। गायको जो अनाज दिया जाय, वह पहले चक्कीमें डालकर दल लेना चाहिये और फी सेर चार पाँच सेर पानीमें रातभर भिंजाकर या पकाकर ठंडा हो जानेपर खिलाना चाहिये। सूखा या खड़ा दाना शामको कभी न खिलाना चाहिये। उड़दकी दलिया भिंजाकर खिलानेसे गाय बड़ी खुशीसे खाती हैं। सूखी भूसी कभी भी गायको नहीं देना चाहिये।

अधिक सूखी भूसी खानेसे गायोंका पेट फूल जाता है और अक्सर गायें मर जाती हैं। इस ग्रन्थकारकी एक गाय सूखी भूसी खाकर प्राण त्याग कर चुकी है। अधिक भात खानेसे भी गायें मर जाती हैं। पवाल या कच्ची घास खूब साफकर गायको खिलाना चाहिये। खलीको चूर्णकर पाँच छः घण्टे पानीमें भिंजानेके बाद गायको खिलाना चाहिये। परन्तु खलीको अधिक समयतक भिंजानेसे उसमें बदबू आ जाती है और गायें उसे खाना नहीं चाहतीं। नमक और गन्धक पीसकर खिलाना चाहिये। खानेकी चीजोंको अच्छी तरह मिलाकर गायको खिलाना चाहिये।

गोपालकको इस बातपर सदैव ध्यान रखना चाहिये, कि कच्ची घास गायको खिलाना बहुत जरूरी है। क्योंकि कच्ची घास खाये बिना गायें नीरोग नहीं रह सकतीं और उनका दूध भी उतना स्वादिष्ट नहीं होता। दूब घास गौ गायोंके लिये बड़ी लाभदायक होती है। दूब लेकर उसे धोकर गायको खिलाना चाहिये। नाना जातीय अनाजोंके कोमल पौधे जैसे दाल उड़द, मटर, मक्का, जुवार, और जई। बलवान वृक्षोंके कोमल कच्ची पतियां और पल्लव तथा बांसकी पत्तियां गायके लिये उत्तम खाद्य है। गाजर मूलीकी जड़ी करमकल्ला गोबीका फूल और अत्यन्त शाक सबजी, आदमीके खाद्य वस्तुओंका परित्यक्त अंश, ऊखकी गंडेरी और आम, कटहल आदि गायको खिलानेसे उसकी परिपाक शक्ति बढ़ती है। इन चीजोंको खाकर गायें बहुत प्रसन्न होती हैं। गायोंको यदि नमक न खिलाया जाये, तो मट्टी चाटकर नमक संग्रह करती हैं। और उससे उन्हें कई रोग हो जाते हैं।

धानके पवालकी अपेक्षा जव और गेहूंका भूसा अधिक पुष्टि कारक होता है। पवाल देना हो तो कुवारी धानका पवाल खिलाना चाहिये। बोरो धानका पवाल और सड़ी हुई बदबूदार घास गायको कदापि न खिलाना चाहिये। उसके खानेसे गाय बीमार पड़ जाती है। यह कभी न भूलना चाहिये, कि गायको जो कुछ हम खिलाते हैं उसीका दूध बनता है और हमलोग खाते हैं। अखाद्य और कुखाद्य खानेसे गायोंको चेचक, टाईफायेड आदि कठिन रोग हो जाते हैं। बीमार गायका दूध अथवा जिस गायके दूधमें बीमारीके जीवाणु मौजूद है, उसका दूध खानेसे बहुतसे आदमी बीमार पड़ जाते हैं। माताका दूध पीनेवाले शिशुके बीमार होनेपर उसकी माताको ही दवा खिलाई जाती है। माताके बीमार पड़नेसे स्तनपायी शिशु भी बीमार हो जाता है। इसी तरह मातृ स्वरूपिणी गायको दवा खिलाकर उसका दूध पीनेसे बीमार आदमीको बड़ा लाभ होता है। यह कई बार देखा गया है, कि गायको अधिक गुड़ खिलानेसे उसका दूध मीठा होता है और नीम अथवा गुरुचकी पतियाँ खिलानेसे गायका दूध कड़वा हो जाता है।

गायोंको प्यास बहुत जल्द लग जाती है। उनकी प्यास बुझानेके लिये साफ़ जलका प्रबन्ध होना चाहिये। जिस तरह गायोंको साफ़ हवाकी आवश्यकता होती है; उसी तरह साफ़ पानीकी भी आवश्यकता होती है।

देशमें कई जगह गायोंके पीने लायक पानीका अभाव है। जो गायें अधिक दूध देती हैं, उनकी शरीरकी रक्षाके उपयुक्त पदार्थ उनके दूधके साथ शरीरसे निकल जाते हैं, इससे गायें बहुत कमजोर हो जाती हैं। युरोपमें इसी तरहकी गायोंको हड्डी पीसकर एक चमचा नित्य पिला देते हैं इसे खिला देनेसे उनके शरीरमें बल बना होता है। अच्छे जलका अभाव बँगालमें बहुत अनुभव किया जाता है। बंगालके नाना स्थानोंमें मैला और बदबूदार खराब, सड़ा हुआ और दुर्गन्धयुक्त बे स्वाद जल

पीनेके कारण गायोंको नाना प्रकारकी कठिन संक्रामक बीमारियाँ हो जाती हैं और उनके दूध पीनेवाले भी रोगी हो जाते हैं। हमलोग भी तो इन गायोंका दूध पीकर बीमार पड़ते हैं। गायोंके बीमारीकी खबर अक्सर लोगोंको मालूम भी नहीं होती।

जिस समय व्याधिके वीजाणु शरीरमें प्रवेश करते हैं, उस समय उन गायोंका दूध पीनेसे मनुष्य भी बीमार पड़ जायेंगे, इसमें आश्चर्य्य-की कोई बात ही क्या है? इस लिये गायोंके पीने योग्य पानीकी व्यवस्था करना बहुत जरूरी है और गायोंको भरपेट पानी पिलाना ही कर्त्तव्य है।

एकविंश परिच्छेद।

बन्ध्या गायके ऋतुमती और मृतवत्साकी गर्भरक्षाका उपाय.

यदि साँढ़से संयुक्त होनेपर भी गाय गर्भवती न हो तो उसे बाँझ नहीं समझ लेना चाहिये। कोई कोई, विशेषतः बड़ी गायें छ सात बार साँढ़के साथ संयुक्त होनेपर गर्भवती होती हैं; परन्तु क्रमशः दो वर्ष तक इसी तरह साँढ़से संयुक्त होनेपर भी गाय गर्भवती न हो तो उसे बन्ध्या समझना चाहिये। अत्यधिक पुष्टिकर खाद्य, खली और अन्यान्य प्रकारकी चीजें खानेसे गायोंके शरीरमें चर्बी बढ़ जाती है और उनका जरायुकोष चर्बीसे भर जानेके कारण उनकी जननशक्ति कम हो जाती है। इसके सिवा फूका आदि अस्वाभाविक उपायोंद्वारा गायोंको दूहनेसे भी वे बाँझ हो जाती हैं। अस्वाभाविक प्रसव अथवा जरायुके स्थानान्तरित हो जानेसे भी गायें बाँझ हो जाती हैं।

(a) 1914, July Dairing and Dairy furming in India P. 346.

स्नायविक वा शारीरिक व्याधि और कमजोरीके कारण भी गायें वन्ध्या हो जाती है। बन्ध्या गायोंका यह वन्ध्यत्व संक्रामक होता है। बाँझ गायको दलमें रखनेसे दूसरी गाय भी बाँझ हो जाती हैं।

कोई कोई गाय मृतवत्सा होकर अन्तमें बाँझ हो जाती हैं। अत्यन्त परिश्रम, आहारकी कमी और बुढ़ापेके कारण भी गायें बाँझ हो जाती हैं। कभी कभी गायके पेटमें बच्चा मरकर सूख जाता है, उससे भी गाय बन्ध्या हो जाती है। जिस वंशकी गाय हो, उसी वंशके साँढ़से बार बार संयुक्त होकर भी गायें बाँझ हो जाती हैं।

यदि मोटी हो जानेका कारण गाय बांझ हो जाये तो उसका आहार कम कर देना चाहिये। उसे कच्ची घास या सूखी बिचाली आदि खिलाना चाहिये। और उसे किसी मेहनतके काममें लगा देनेसे भी उसके शरीरकी मुटाई कम हो जाती है। बँगालमें ऐसी गायोंको हलके काममें लगा देते हैं इससे वे कमज़ोर हो जाती हैं। बन्ध्या गाय यदि बराबर साँढ़के साथ चरा करे तो ऋतुमती होकर गर्भ धारण करती है।

यदि इससे भी फल न हो तो उसे प्रति दिन १० ग्रेन सोहागा-पीस कर पाँच छः दिन तक बराबर देना चाहिये। इससे बन्ध्यत्व छूट जाता है।

साँढ़से संयोग होनेपर गायको आहार नहीं देना चाहिये। और संयोग होनेसे दो दिन पहले संयोग होनेके दो दिन बाद तक बाई आरगट अथवा सुहागेका चूर्ण ५ ग्रेन खिलाना चाहिये।

गाय यदि रजस्वला न होती हो तो उसे कुछ दिन सूखी खली खिलाना चाहिये। इससे शीघ्र ही रजस्वला हो जायेंगी। गायोंका कोठा साफ रखनेवाली चीजें, गेहूंकी भूसी या चोकर, दालकी खुद्दी, जुवारकी भूसी, और जुवारका व्यवहार करनेपर गायें शीघ्र हो ऋतुमती हो जाती हैं। गायें साधारणतः फागुन, चैत और बैशाख महीनेमें ऋतुमती होती हैं। इन महीनोंकी एकादशी त्रयोदशी, पूर्णिमा या अमावस्याको

मुर्गी या बतकके अण्डेका पीला अँश केलेके साथ गायको खिला देनेसे शीघ्र ही ऋतुमती हो जाती है सफेद कूँच २० चूर्ण कर मधुमें मिलाकर या चीनी अथवा केलेके साथ दो तीन रोज़ खिलानेसे गाय ऋतुमती होती है। कपासका बीज (बिनौला) खिलानेसे गायका दूध बढ़ जाता है और उसके व्यवहारसे भी गायें ऋतुमती हो जाती हैं।

द्वाविंश परिच्छेद।
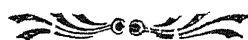
प्रसव कार्य ।

एक श्रेणीकी गायें ऐसी होती हैं, जो गर्भ धारण तो करती हैं, परन्तु पाँच-छः मासके-बाद ही गर्भ गिरा देती हैं। एकबार ऐसा मृतवत्सा रोग हो जानेपर गायें बार बार ऐसा ही किया करती हैं। उस समय उन्हें इस रोगसे छुड़ाना बड़ा मुशकिल हो जाता है। गायको इस रोगसे छुड़ानेके लिये गोपालकको बड़ी सतर्कतासे काम लेना चाहिये। नहीं तो गाय गोपालकके लिये एक उत्पात स्वरूप हो जाती हैं, इस गर्भपात करनेवाली गायको कभी, खली, पियाज और लहसुन आदि किसी प्रकारकी उत्ते-जक चीज नहीं खिलानी चाहिये। और गायको किसी प्रकार उत्तेजित नहीं होने देना चाहिये, ऐसे समय गायकी ओर विशेष दृष्टि रखना चाहिये, जिसमें गाय किसी तरह भयभीत न हो जाये।

एक वार गर्भपात हो जानेपर गायके प्रसव द्वारको साबुनसे अच्छी तरह धोकर 'बाई कारबनेट आफ़ सोडा द्रावक' नामकी डाक्टरी दवा लगाकर भी प्रसव द्वारको अच्छी तरह धोकर साफ़ कर देना चाहिये। इसके बाद जब गाय फिर गर्भवती हो तो उसे स्नान कराकर, दुग्ध पिलाकर निर्जन शीतल स्थानमें रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त ऋतुकालमें दो एक वार साँढ़का संयोग न कराकर, तीसरी बार ऋतु-

मती होनेपर गायको साँढ़के साथ संयुक्त कराना चाहिये और नियमानुसार उसे दौड़ाकर नहला देना चाहिये। इसके बाद उसे गोशालामें स्थिर भावसे रहने देना चाहिये और उस दिन गायको किसी प्रकारका खाद्य नहीं देना चाहिये। यदि आहार देनेकी नितान्त ही जरूरत हो तो कच्ची दूब खिलाना चाहिये, इस तरह गर्भधारण कर लेनेपर फिर उसके पतित होनेकी आशङ्का नहीं रहती।

त्रयोविंश परिच्छेद।

अच्छे वत्सके लक्षण.

जिन वत्सोंके मुखसे लेकर गलकम्बल तकका चमड़ा ढीला, वक्षस्थल गोल और पेट लम्बा, कपाल चौड़ा, आँखें एक दूसरेसे कुछ दूरपर होती हैं। जिनकी नाक छोटी और ऊपरकी ओर झुकी होती है, पैरकी गाँठें मोटी होती हैं, और गर्दन छोटी होती है, वे बछड़े अच्छे होते हैं। बछड़ेकी गर्दन जितनी ही छोटी होगी वह उतना ही उत्तम होगा। परन्तु बछियाकी गर्दन जितनी ही लम्बी होगी वह उतनी ही अच्छी होगी। साधारणतः बछियाओंके मस्तक छोटे, कान लम्बे, आँखें छोटी और परस्पर निकट होती हैं। गर्दन और दुम लम्बी होती है और दुमके अन्तिम सिरेपर बालोंका एक गुच्छा होता है। अच्छी बछियोंका आकार प्रकार अच्छे बछड़ोंकी भाँति होता है। परन्तु गर्दन लम्बी होती है। अच्छी बछियोंका स्तन जन्मसे ही बड़ा और लम्बा होता है। चमड़ा अत्यन्त पतला होता है। शरीरके रोयें रेशमकी तरह नरम होते हैं। इनके सिर लम्बे होते हैं। इनको गलकम्बल नहीं होता। उनके सम्मुखका अंग पीछेके अंगसे कुछ ऊँचा और स्थूल मालूम होता है।

चतुर्विंश परिच्छेद।

वत्स-पालन.

:—::*::—:

गायके बच्चोंके पालन करनेकी दो तद्बीरें हैं :—एक स्वाभाविक और दूसरी कृत्रिम। हमारे देशमें स्वाभाविक उपायसे ही वत्सोंका पालन होता है। युरोप और अमेरिकामें बच्चेको माताका स्तनपान नहीं करने दिया जाता। बहुतसे लोग पैदा होते ही बच्चोंको बेंच देते हैं और हाथसे अथवा कलकी सहायतासे दूध दूहते हैं। इस उपायसे वे गायका तमाम दूध पाते हैं। गाय अपने थनमें एक बूँद भी नहीं रख सकती है। इसीलिये कृत्रिम उपायसे काम लेते हैं। परन्तु भारतीय गायोंको उस तरह बिना वत्सके हाथसे या कलकी सहायतासे दूहना सुविधाजनक नहीं है। जबतक बच्चा सामने नहीं होता तबतक भारतीय गायें दूध नहीं देतीं। बहुत दिनोंकी चेष्टा, शिक्षा और अभ्यासके कारण ही विलायती गायें इस तरह दूध देती हैं। अभ्यासके कारण वत्स सामने न रहनेपर भी उन्हें कोई असुविधा नहीं होती। भारतीय गायोंको इस तरह दूहनेके लिये बहुत दिनकी चेष्टा, शिक्षा और अभ्यासकी जरूरत है। हमारे देशमें कृत्रिम उपायसे दूध दूहनेकी कोई आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। हमारे देशके लोग इसे निष्ठुरता समझते हैं। गायके बच्चेसे बचा हुआ दूध दूहनेका दृष्टान्त हमारे देशके लिये थोड़ा नहीं है। बच्चेके लिये गायके मनमें जो वात्सल्य भाव उत्पन्न होता है उससे जो दूध देती है और कृत्रिम उपायसे बलपूर्व्वक जो दूध निकाला जाता है, उसके गुणमें बड़ा फर्क होता है। वत्सोंको यत्नके साथ पालन करना उचित है। क्योंकि वत्सोंपर गोवंशकी भविष्य उन्नति निर्भर करती हैं। बच्चोंके बाँधनेका स्थान सदैव साफ़ रखना चाहिये। बच्चोंके बाँधनेका स्थान

ऐसा होना चाहिये, जहाँ दिनको रोशनी और हवा जानेकी पूरी गुंजाइश हो। वर्षा, गर्मी और सर्दीसे बच्चोंको तकलीफ़ न होने पावे, इसकी पूरी व्यवस्था करनी चाहिये। हमारे देशमें स्वाभाविक उपायों द्वारा बच्चोंका पालन करना कुछ कष्टकर नहीं होता। थोड़ासा यत्न करनेसे ही बच्चे स्वस्थ और सबल होकर बढ़ जाते हैं।

पंचविंश परिच्छेद ।

वत्सपालन करनेके स्वाभाविक उपाय ।

प्रसव होनेपर बच्चेको पोवाल बिछाकर या चटाईके ऊपर रखना चाहिये, ताकि उसकी देहमें मट्टी न लगने पावे। कारण यह है, कि गाय बच्चेको चाटकर उसे सुखा देती है। जब गाय वत्सको चाटती है तभी वह खड़ा हो सकता है। वत्सके मुँहमें थोड़ासा पोवाल लगामकी तरह लगाकर बाँध देना चाहिये। इससे वह मुँह हिलाता रहेगा, जिससे उसके जबड़े (दाढ़) मजबूत होंगे। जब बच्चा खड़ा हो जाय तो गायके थनमेंसे थोड़ासा दूध दूहकर फेंक देनेके बाद उसे स्तन पान करने देना चाहिये। यदि बच्चा स्तनपान न कर सके तो दो उँगली उसके मुँहमें डालकर उसे स्तनपान करनेकी शिक्षा देनी चाहिये। गाय और बच्चेको एकही जगह रहने देना चाहिये। उसके बाद एक सप्ताहतक बच्चेके पी लेनेके बाद गायके थनमेंसे दूध दूहकर फेंक देना चाहिये। क्योंकि थनमें जमा हुआ दूध खानेसे बच्चे बीमार पड़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त यदि थनका सब दूध न निकाला जाये तो दूध नहीं उतरता और न बढ़ता ही है। परन्तु यदि कम दूध देनेवाली गाय हो तो ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि बच्चा ही तमाम दूध पी जाता है। जनन कार्यके लिये साँढ़ बनाने के लिये जो बच्चे पाले जायें उन्हें अपनी माताका समस्त दूध

पिला कर वलिष्ट और हृष्ट पुष्ट होने देना चाहिये। वत्सको सदैव साफ़ रखना चाहिये जिसमें उसके शरीरमें जूँ या कीड़ न होने पाये। जूँ हो तो बच्चेको फिनैल द्वारा धो देना चाहिये। बच्चा देनेके बाद तीन सप्ताहतक गायको दूहना नहीं चाहिये और गाय तथा बच्चेको बराबर एक साथ ही रहने देना चाहिये। यदि इस समय बच्चेको हटाकर गायको दूहनेकी नितान्त आवश्यकता पड़ जाये तोभी तीन घण्टेसे अधिक समय तक उसे बाँधना नहीं चाहिये। कारण यह है, कि उस समय बच्चेको छोड़ कर माताके साथ रहने देना चाहिये। जब बच्चा तीन हफ्तेका हो जाय तो उसे थोड़ी थोड़ी घास खिलाना चाहिये। उस समय बच्चोंको दूब खिलाना ही उचित है। एक महीनेके बाद उसे दूबके साथ गेहूँ या चावलकी थोड़ी भूसी भी खिलानी चाहिये। एक मासतक बच्चेको माताका दूध भरपेट पीने देना चाहिये। जब बच्चा डेढ़ महीनेका हो जाये, तो उसे कच्ची घासके साथ गेहूँ, चना, जौ या दालकी खुद्दी और भूसी भी खिलाना चाहिये। गेहूँ और जौ आदिकी खुद्दी भिंजाकर खिलाना चाहिये। बच्चेकी उमर तीन महीनेकी हो जानेपर बच्चेको दोनों वक्त दूह सकते हैं। इस समय उसे कच्ची घास खिलाना चाहिये और गाय-को दूह लेनेके बाद बच्चेको एक घण्टातक उसके साथ रहने देना चाहिये। इस समय गेहूँको भूसी पावभर, चना एक पाव, तीसीकी खली एक पावतक दी जा सकती है। जब बच्चा चार महीनेका हो जाये तो क्रमशः अनाजकी मात्रा कम करके उसे खली और घास खिलाना चाहिये। पाँचवे महीने दाना और भूसी एकदम बन्दकर केवल खली और घास ही देना चाहिये। परन्तु बच्चेको खली अधिक नहीं खिलाना चाहिये। क्योंकि अधिक खली खिलानेसे बच्चेके सिरमें चक्कर आने लगता है।

छ मासकी उमरमें खलीके साथ बच्चेको सूखी घास आदि दी जा सकती है। परन्तु सरसोंकी खली और सूखी घासके बदले केवल हरी घास ही दी जाय तो अधिक लाभकी सम्भावना रहती है। परन्तु यदि

हरी घास न मिल सके तो सूखी घास दी जा सकती है। बहुतसे लोग जबतक बच्चेको दूध नहीं छुड़ाते तबतक उसे सूखी घास या भूसा नहीं खिलाते। बच्चेको खानेकी चीजोंके साथ नमक और गन्धक बराबर देते जाना चाहिये। बच्चेको भरसक बाँध कर न रखना ही अच्छा है। बहुतसे गोपालक ऐसे निठुर होते हैं, जो बच्चेको दूध या दूसरी कोई चीज यथेष्ठ नहीं देते। इससे बच्चे क्रमशः रोगी और दुर्बल हो जाते हैं। इस तरहके बच्चे जीते रहकर भविष्यमें उनसे अच्छी गाय उत्पन्न नहीं होती है। आहारपर ही बच्चोंकी शरीरका बल आकृति, प्रकृति, गठन और बल और रङ्गरूप आदि निर्भर होता है। पूर्ण भोजन पानेपर गायें और बैल अधिक सुन्दर और सुडौल होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। आहारके अभावके कारण यदि बछड़े मर जायें तो इससे बड़ी हानि होती है। यदि वे जीते रहें तो लाभकी बड़ी सम्भावना है। बछड़ेके मर जानेसे गायका दूध सूख जाता है और गायके बाँझ हो जानेकी सम्भावना रहती है। ऐसी गायें दूसरी बार प्रसव करनेपर कम दूध देती हैं। और कोई कोई गाय फिर प्रसव ही नहीं करती हैं। अतएव गायके बच्चोंको बड़ी दयासे पालन करना चाहिये। उनका स्वभाव और अभ्यास उनके प्रतिपालक परही निर्भर करता है। बकेना बछड़ोंको उनका आदर करना चाहिये। सांढ़ बच्चेका आहर करते समय उनकी पीठ या पूँछपर हाथ न देना चाहिये। उनको न छूना ही अच्छा है।

षट्विंश परिच्छेद।

वत्स-पालनके कृत्रिम उपाय।

—*—:o:—*—

प्रसवके समय यदि गाय दैवात् मर जाय जो बच्चेको पयाल या चटाईपर लिटाकर खूब पोंछकर साफ कर देना चाहिये। उसके बाद कृत्रिम (विलायती) प्रथाके अनुसार उसे दूध पिलाना चाहिये। उस नवप्रसूत मातृहीना बछड़ेको दो अँगुलियोंके सहारे किसी नई बियाई हुई गायका दूध पिलाना चाहिये। यदि तुरन्त बियाई गायका दूध न मिले तो बतकके अण्डेका सफेद अँश एक चमच रेंडीका तेल, डेढ़ पाव दूध और एक पाव गरम जल मिलाकर इसी तरह दिनमें दो तीन बार नित्य पिलाना चाहिये।

बच्चेको सुलाकर या खड़ाकर उसके मुँहमें दो अँगुली डालकर चमच अथवा शीशीसे उपर्युक्त चीजें पिलाना चाहिये। चार पाँच दिनके बाद उसे ऐसा अभ्यास कराना चाहिये, जिसमें वह स्वयं पात्रमें मुँह लगाकर पी सके। बछड़े पहले पहल स्वयं पीना खाना नहीं चाहते। वैसी हालतमें उनके मुँहमें उँगली डालकर धीरे धीरे उनका मुँह नीचे झुकाना चाहिये। चार दिनके बाद उन्हें दूध पिलाना चाहिये और दूधकी मात्र वढ़ानी चाहिये। इसी प्रकार प्रति दिन सवेरे, दोपहरको और शामको बच्चेको आहार कराना चाहिये। बच्चेको जहाँ रखा जाय उस स्थानको साफ़ और गरम रखना चाहिये। उसके सोनेके लिये खड़पात बिछा देना चाहिये। स्थान ऐसा ढालुआँ होना चाहिये, जिसमें मलमूत्र बहकर नीचे चला जाय।

तीन सप्ताहके बाद वत्स धीरे धीरे घास खाना आरम्भ करता है। उस समय उसे थोड़ी थोड़ी हरी और नरम घास देनो चाहिये। एक महीनेकी बाद बच्चा थोड़ी थोड़ी घास खाने लग जाता है। उस समय

उसे हरी घास देना चाहिये और दूधके साथ चावलका गाढ़ा माँड़ भी मिलाकर खिलाना चाहिये।

जब बच्चा डेढ़ महीनेका हो जाये तब उसे गेहूं, चना अथवा गेहूँ दलिया खिलाना चाहिये। तीन महीनेकी उमर हो जानेपर ऊपर लिखी चीजोंके साथ थोड़ी थोड़ी खली देना भी आरम्भ करना चाहिये। बच्चेको खाद्य पदार्थोंके साथ थोड़ासा नमक और गन्धक अवश्य ही देना चाहिये। क्रमशः दूधका परिमाण घटाकर माड़का परिमाण बढ़ा देना चाहिये। और अन्तमें जब उसकी उमर छः मासकी हो तो दूध बन्द कर देना चाहिये। उसीके साथ बूट और गेहूँ आदि देना भी बन्द कर देना चाहिये। उस समय सिर्फ घास और खली खिलाना चाहिये। दूध और खाद्य आदिका कोई परिमाण नहीं बताया गया है। बच्चा जितना खाकर पचा सके उतना ही उसे खिलाना चाहिये। बच्चेको अधिक या कम भोजन नहीं देना चाहिये। यह सभी जानते हैं, कि अधिक खानेसे बीमारी होती है और कम खानेसे कमजोरी होती है। विलायतवाले भातके माड़की जगह नीचे लिखी हुई चीजें मिलाकर बच्चेको खिलाते हैं। पहले दिन नौ सेर पानीमें एक सेर तीसी मिला देते हैं, सवेरे उसे पाव घण्टे तक पकाते हैं। जब वह पक जाता है तो उसमें पावभर मैदा पानीमें घोलकर और पकाकर उसमें मिला देते हैं। उसके बाद उसे हिला देते हैं, जिसमें वह जम न जाय। उसके बाद उसे बच्चेको खिलाते हैं। इस देशमें भी बच्चेको उसी प्रकारका खाद्य दिया जा सकता है। गोपालकोंकी असावधान-ताके कारण बहुतसे बछड़े मर जाते हैं। बच्चोंको यत्नसे नहीं रक्खा जाता। शीत और गर्मीसे बचानेकी कोई तदबीर नहीं करते हैं। इसीसे बहुतसे बच्चे अकालमें ही मर जाते हैं।

सप्तविंश परिच्छेद ।

बछियोंका प्रतिपालन ।

बछियोंको खूब अच्छी तरह खिलाना चाहिये । गायकी तरह उन्हें भी नियमानुसार आहार कराना उचित है। उनके खिलानेका फल हाथों हाथ प्राप्त हो जाता है । प्रचुर परिमाणमें अच्छा खाना खिलानेसे गायोंकी परिपाक-शक्ति बढ़ती है इसलिये जहांतक सम्भव हो बछियोंको पुष्टिकर खाना खिलाना चाहिये। बछियोंका मोटा और पुष्ट होना क्षति जनक नहीं होता। परन्तु इस बात पर अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये, कि बछियां शीघ्र ही बढ़कर अकाल पकता न प्राप्त कर लें। इङ्गलैण्डमें किस जातिकी गायका वजन कितना होना चाहिये उसका एक नमूना (मडेल) गोसमितियाँ द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । उसी तरह हमारे देशकी गायोंके लिये भी मडेल (नमूना) बनाकर उसीके अनुसार गाय और बैल पैदा करनेकी चेष्टा की जा सकती है और जबतक बछिया उस मडेलके अनुसार मोटी और पुष्ट न हो सके तबतक उसे बराबर पुष्टिकर भोजन देते रहना चाहिये। अत्यधिक मोटी गायोंकी दूध देनेवाली शक्ति कम हो जाती है । इसलिये इस बात पर ध्यान रखना होता है कि जिसमें गायें अत्यधिक मोटी न हो जायें । उसी तरह बाछियोंपर भी ध्यान रखना चाहिये । यह निश्चय है, कि भोजन पर ही गोजातिकी उन्नति निर्भर करती है । उत्तम आहार-विहार द्वारा ही गोजातिके मूल्यकी बृद्धि होती है । बहुतोंका ऐसा भ्रम विश्वास है, कि एक अच्छी गाय गोशालामें रख देनेसे ही सब गायें अच्छी हो जाती हैं । बरसातमें अच्छी जातिकी गायको साधारण गायोंके साथ असतर्कभावसे रखना कदापि उचित नहीं है । कोई अच्छी गाय यदि गोशालामें आये, तो उसे वैसा ही आहार आदि देना चाहिये,

जैसा, कि वह पहले पाती रही हो। उसके सिवा समस्त गायोंके आहार विहारकी व्यवस्था भी वैसी ही कर लेनी चाहिये। यदि इस नियमका प्रतिपालन किया जाये तो निश्चय ही गोजातिकी उन्नति होती है। पालकी बाछियोंकी ओर गोपालकोंको सदैव नजर रखनी चाहिये ताकि वे भविष्यमें गाय होकर किसी खराब गायकी तरह आचरण न करने पायें। दुष्ट गायें दूहनेके समय थनमें हाथ नहीं लगाने देतीं, लात चलाती हैं या सींग द्वारा मारती हैं। इस तरहका खराब अभ्यास कुशिक्षाके कारण पड़ जाता है। बछड़े और बछियोंकी प्रथम शिक्षा गोपालकको उनका प्यार करना है। भीत न होकर मालिक यदि बछड़े और बाछियोंके प्रति क्रूर भाव न दिखायें तो बच्चे कदापि उनके आदर और प्यारकी उपेक्षा नहीं करेंगे और न उसे देखकर भयभीत ही होंगे। यदि जी भर उनका आदर और प्यार किया जाये, अपने हाथसे उन्हें भोजन खिलाया जाये तो वे सहज ही वशीभूत हो जाते हैं और बुलानेपर खुशीसे नाचकर दुम उठाकर मालिकके निकट आ जाते हैं, उसके शरीरको चाटते हैं अथवा उसके शरीरको सिर द्वारा स्पर्शकर अपना प्रेम प्रकट करते हैं।

इस ग्रन्थके ग्रन्थकारको अपने बछड़ोंसे इसी तरहका प्रेम व्यवहार प्राप्त होता है। ग्रन्थकारने देखा है, कि कलकत्ता हाईकोर्टके वकील बाबू ताराकिशोर चौधरी एम० ए० बी० एल० की एक बछिया उनकी आवाज़ सुनते ही दुम उठाकर उनकी देहपर चढ़नेकी चेष्टा करती थी और आदर और प्रेमसे विह्वल हो जाती थी। गायें बहुत जल्द पोस मानती हैं, पशु जीवनकी स्वाभाविक आदतें छोड़कर शान्त और शिष्ट हो जाती हैं। सम्पूर्ण खराब आदतें छोड़कर गृह पालित पशुओंका स्वभाव प्राप्त कर लेती हैं। इस महोपकारी कार्य्यके लिये गोपालकको खूब चेष्टा करनी चाहिये। इस वाणिज्यका फल और लाभ अच्छा बछड़ा प्राप्त करना है। गोस्वामियोंकी दया, ममता और मृदुता द्वारा ही इस प्रकारके गुण गायोंमें आते हैं।

चतुर्थ खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

गो-शाला—(Dairy)

-:※-:-※:-

बैठे बैठे केवल मथुरा, वृन्दावन और उत्तर दक्षिणके गो-गृहोंका नाम स्मरण करनेसे शून्य प्राय निर्ज्जीव भारतीय गोवंशकी पुनः उन्नति नहीं हो सकती। गोजातिके पुनर्जीवन पर भारतवासियोंका पुनर्ज्जीवन भी निर्भर है। भारतीयोंकी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और पारमार्थिक उन्नति गोजातिपर ही निर्भर करती है। इसीलिये भारत वासियोंको कमर कस कर गोजातिको पुनर्जीवित करनेमें लग जाना चाहिये। इस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सबको मिलकर, गोप बनकर भारतमें पुनः गोजातिको संस्थापित करना चाहिये। वशिष्ठ और भृगुकी भांति ब्राह्मणगण यदि गोपालनके लिये प्राण दान करनेको तय्यार हों, राजर्षि जनककी भांति, क्षत्रियगण राजा महाराजा और जमीन्दार यदि फिर गायोंके पालने पर ध्यान दें और गोपालनके कार्य्यमें मनोनिवेश करें, तो सीता स्वरूपिणी लक्ष्मी स्वर्गसे आकर भारतवर्षको पुनः लक्ष्मी श्री द्वारा विभूषित करेंगी। वैश्य धर्म्म वणिकवृत्ति परायण विलायतवाले, गोपालनमें अपनी समवेत चेष्टा, ज्ञानबल, बुद्धिबल, और अर्थबल, नियोजित करते हैं। इसीसे उनके अर्थकी प्रभूत वृद्धि हुई है और इसीसे आज वे लाखों रुपये देकर एक गाय खरीदनेमें समर्थ और व्यस्त हो रहे हैं।

एक दिन भारतवर्षमें कीर्त्तवीर्य्य और विश्वामित्रने एक एक गायके लिये अपना समस्त राजपाट दे देना चाहा था। परन्तु गोपाल-

कोंने गायोंके बदले राज्य लेनेसे इन्कार कर दिया। आजकल इङ्गलैण्ड, अमेरिका और आस्ट्रेलियाके गोपालकगण लाखों रुपये खर्च कर गायें खरीदते हैं।

यूरोपके राजे महाराजे अपनी परीक्षित सिवा दूसरी गायोंका दूध नहीं पीते। और हमारे देशके अधिवासी जिसके तिसके हाथके दूध यहाँतक कि घृतसार शून्य विलायती दूध तक खा लेते हैं। युरोपवाले दूधका सार भाग निकाल कर स्वयं भोग करते हैं और अपना उच्छिष्ट अंश चीनी मिलाकर जमा देते हैं, वही हमारे देशमें आता है और हम वही उच्छिष्ट बहुत दिनोंका जमा हुआ दूध सहर्ष व्यवहार करते हैं। उसी उच्छिष्ट और बहुत दिनोंके जमे हुए दूध द्वारा हमलोग अपने बच्चोंकी जीवन रक्षा करते हैं। दूधके दाममें ही हमलोग जमे हुए दूधमें मिली चीनी भी खरीदते हैं। वह जमा हुआ दूध भैंसका है, या भेड़ बकरीका है, या शूकर कुत्ताका है इस बातपर जरा भी विचार नहीं करते। जाति और समाज निर्जीव होकर कुम्भकर्णों की भांति सो रही है। दूधके नामसे जो चीज मुंहमें डाल दी जाती है, उसे आंख मूंदकर खालेते हैं और दैहिक मानसिक और धर्मबल खो रहे हैं। यदि हमारी कुम्भकर्णी नींद न टूटेगी तो हमारे सोनेका भारत नष्ट हो जायेगा।

कृषिजीवी और गोपालकगण आर्य्य कहलाते हैं और इनके अतिरिक्त जातियोंको अनार्य्य कहते हैं। आजकल हमलोग अपनेको आर्य्य, आर्य्य, कहकर चिल्लाते हैं, परन्तु आर्य्य रीति-रिवाजोंको छोड़कर, शरीरकी धूल झाड़कर, गायोंको खदेड़ हमलोग आर्य्य होना चाहते हैं। गो-विहीन होकर भी गोस्वामी होना चाहते हैं, गोविहीन होकर भी गोप गरिमा करते फिरते हैं। गोष्ठ नहीं हैं, पर गोष्ठी (खान्दान) की उन्नति की चेष्टामें लगे हैं। गो त्यागकर गौतमके वंशज बननेका दावा कर रहे हैं। गोघाती होकर गोविन्दका भजन कर गोलोक जानेकी आकांक्षा कर रहे हैं। गो जातिको विलुप्त कर गोपालकी आराधना कर रहे हैं।

आज भी गोपाल और गौतम वंशी बुद्ध भारतके अवतारोंमें श्रेष्ठ अवतार

कहे जाते हैं। आज भी भारतमें भोंसले, गायकवाड़ वा गोकुमार वंश आधुनिक राजाओंमें उज्ज्वल नक्षत्र रूपसे मौजूद हैं। इतनेपर भी क्यों हमलोग गोपालनसे घृणा करते हैं? गोपालनसे घृणा करनेपर भारतकी उन्नतिकी आशा सुदूर पराहत समझना चाहिये। यदि कोई भगीरथ, पांचजन्य और वेणु बजाकर गोमुखी गङ्गाके प्रवाहमें अथवा गोमतीके पवित्र सलिल प्रवाहको भाँति भारतमें पुनः गोप्रवाह जारी कर सकें, तो आर्य्यवंश आर्य्यावर्त्तमें फिर जाग उठेगा।

समवाय समिति (Co-operative Society) स्थापित कर, गोशाला या Dairy द्वारा गो-जातिकी उन्नति करना चाहिये। यदि ऐसा किया जाये, तो हमारी सदय सरकार भी अवश्य ही इधर विशेष दृष्टि रखेगी। भारत विशेषतः वङ्गालमें प्रायः सब जगह रुपयेका चार पाँच सेर दूध बिकता है। भारतीय अच्छी गायका दाम १५०) या २००) होता है। यदि एक गाय दस महीनेतक प्रतिदिन आठ सेर दूध दिया करे तो मानो वह प्रतिदिन कमसे कम २)का दूध देती है। एक गायकी खुराक और रुपयेका सूद आदि मिलाकर अधिकसे अधिक एक रुपया रख लिया जाय तो भी सब खर्च आदि निकालकर ३००) रुपया फी गाय प्राप्त होगा और गाय भी मौजूद रहेगी। इससे अधिक और क्या लाभ हो सकता है।

इङ्गलैण्ड, अमेरिका और यूरोप, आस्ट्रेलिया और न्यूजिलैण्ड आदि देशोंमें गायोंका दाम बहुत है। वहाँ नौकरों और गोसेवकोंको तनख्वाह भारतकी अपेक्षा बहुत अधिक देनी पड़ती है। वहाँ खाद्य पदार्थोंका मूल्य भी अधिक है और भूमिका किराया ही अधिक देना पड़ता है। इन स्थानोंमें जार्सी, गारन्सो, लिङ्कलन साराय, लाल गायोंसे भारतीय हिसार, मुलतान, सिन्धु, मोण्टगोमेरी, जिर, गुजरात और काठियावाड़ की गायें यदि सयत्न रखी जायें तो दूध देनेमें किसीसे कम नहीं होतीं। विदेशी गायोंके २५ से ४० पौण्ड दूधमें एक पौण्ड मक्खन होता है। किन्तु भारतीय गायोंके केवल १३ से २४ पौण्ड दूधमें एक सेर मक्खन

निकलता है। मक्खन निकालनेका खर्च भी युरोप और अमेरिकाकी अपेक्षा यहाँ कम पड़ता है। इङ्गलैण्डमें एक पौण्ड मक्खनका दाम एक शिलिङ्ग या एक शिलिङ्ग (१) दो पेन्स होता है। अमेरिकामें इतने मक्खनका दाम बारहसे बीस सेण्टतक होता (२) है। किन्तु भारतमें एक पौण्ड मक्खनका दाम १) या १।) होता है। इङ्गलैंण्डमें ५ सेर दूधका दाम अधिकसे अधिक ॥) या ॥।) होता है और बङ्गालमें उतने ही दूधका दाम ॥।≈) से १।) तक होता है। इङ्गलैंड आदि स्थानोंमें नाना प्रकारसे खर्चकी अधिकता होनेपर भी यहाँकी एक एक गोशालोंसे लाखों रुपयेकी आमदनी होती है तो भारतमें गोपालनका व्यवसाय लाभजनक क्यों नहीं होगा ?

हमारे देशमें गोशालाओंकी कमीका प्रधान कारण यही है, कि हम लोग व्यवसाय वाणिज्यको समझते ही नहीं। हम गोपालन करनेसे घृणा करते हैं ; हमने वैश्य वृत्ति छोड़कर दासत्व, नौकरीको ही सब कर्म्मोंका सार समझ लिया है। हमारे देशके चरवाहे निरक्षर मूर्ख और घृण्यजीव हैं। उनमें किसी तरहकी व्यवसाय बुद्धि या ज्ञान नहीं है, वही आजकल गोपालनके लिये नियुक्त किये जाते हैं। हमारे देशके शिक्षित और बुद्धिमान, किसी साहबकी गोशालामें, २०) २५) की हिसाब लिखनेकी नौकरी कर लेंगे, परन्तु गोपालन कर अथवा एक गोशाला स्थापित कर दही, दूध, घी और मक्खनका कारोबार नहीं कर सकते। अङ्गरेज अपना देश छोड़कर प्राचीन महाद्वीपके उत्तर पश्चिम प्रान्त इङ्गलैंडसे अपने देशकी माया छोड़कर उस महाद्वीपके पूर्व दक्षिण प्रान्त, आस्ट्रेलिया और नरमांस मोजी (२) न्यूजिलैंडमें जाकर गोशालाके स्थापित करते हैं और लाखों करोड़ों रुपयेका कारबार करते हैं।

---

(१) एक शिलिंग बारह आनेके बराबर होता है। (२) एक सेण्ट दो पैसेके बराबर होता है।

(२) एशिया महादेशके दक्षिण पूर्व प्रान्तसे अस्ट्रेलिया ३००० मील दूर है। न्यूजिलैण्ड आस्ट्रेलियासे १००० मील दक्षिण पूर्व कोनेमें है।

हमारे देशके आसाम तथा कुमिल्ला, त्रिपुरा, ढाका भावल परगना, मयमनसिंह, रंगपुर, दिनाजपुर, राजशाही, बांकुड़ा, मेदिनीपुर, छोटा नागपुर, बैजनाथ प्रभृति स्थानोंमें नाम मात्र मालगुजारीपर सात आठसौ विगहा भूमि मिल सकती है। इन स्थानोंमें १०० गायें रखकर, यहाँके शिक्षितोंकी सलाहसे यदि कोई गोशाला स्थापित कर घी दूध और मक्खनका रोजगार आरम्भ करे, और युरोपीय वैज्ञानिक प्रणालीका अवलम्बनकर गोपालन, गोजनन आरम्भ करें तो शीघ्र ही भारतीय सुरभियोंका पुनः अविर्भाव हो सकता है। और पीछे पीछे लक्ष्मी भी धन-धान्य लेकर आवेंगी। उसीके साथ अमृतभाण्ड हाथमें लिये हुए भगवान धन्वन्तरी भी भारतमें प्रगट होंगे। इस तरहके उद्योगकर्त्ताके गलेमें स्वयं देवराज आकर अम्लान मन्दारकी माला पहनावेंगे। उद्योग करनेवाले धन्य होंगे, समग्र भारत वासी धन्य होंगे हमारी स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि उन्हें सुपुत्र समझ कर ग्रहण करेगी।

कार्य्यारम्भ करनेसे पहले ही कतिपय विषयोंपर मनोयोग करनेकी जरूरत है। पहले पाश्चात्य देशवासियोंका गोशाला (Dairy) परिचालन विषयक अधीन और सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त मनुष्योंकी आवश्यकता है। गोशालाका तत्वावधान ऐसे मनुष्यके हाथ होना चाहिये, जो इङ्गलैण्डकी गोशालाओंमें रहकर या भारतकी सरकारी गोशालाओंमें रहकर गोपालनका हाल जानता हो। गोशालामें परिश्रम, कर्मठ और सच्चा आदमी नियुक्त करना चाहिये। निरक्षर मूर्खोंको यह काम सौंपकर बैठनेसे काम बिगड़ जायेगा। **दूसरा---मूलधन**। इस कार्य्यके के लिये मूलधनकी आवश्यकता है। त्रिपुराके महाराज प्रति बिगहा चार आना मालगुजारी लेकर हजारों बिगहे जमीनका चन्दोबस्त कर रहे हैं यदि ५।७ वर्षकी मालगुजारी माफ हो अथवा २०।२५ वर्षके लिये जमीन भाड़ेपर ली जाये और खरीदी न जाये तो मूलधनमें भी कमी हो सकती है। क्योंकि जमीन खरीदनेके लिये बहुत रुपयेकी

आवश्यकता होती है। १००, ५०, या कमसे कम ३० गायें रखकर पहले कार्य्य आरम्भ किया जाये तो शीघ्र ही लाभ मालूम होगा। दस बारह हजार रुपयेके मूलधनसे कार्य्य आरम्भ किया जाये तो और भी लाभकी सम्भावना है।

कुछ अधिक एक शताब्दीसे पहले (१) आस्ट्रेलियाके पहले गवर्न-रने चार गायें एक बैल और एक बछड़ा लेकर गोशाला स्थापित की थी। आजकल वहाँ ८१७४०० गायें हैं; जिनका अन्दाजी दाम ५१८७७५०००) होता है। इसके अलावे बहुतसी गायें वहांसे पृथिवीके अन्य देशोंमें चली गई हैं।

गोशाला किसी ऊँची जमीनपर स्थापित करना चाहिये। जिसमें खूब वर्षा होनेपर भी वह स्थान सूखा ही रहे जल मग्न न हो। पानीके निकासके लिये गोशालाके चारो तरफ मोरियां होनी चाहियें। गायोंके चरनेके लिये काफ़ी मैदान होना चाहियै। प्रत्येक गायके लिये ६।७ बीगहा जमीन काफ़ी है। इस भूमिका तिहाई अंश गायोंके चरनेके लिये और बाकी तिहाई गेहूं, जव और जुआर आदि उत्पन्न करना चाहिये। गायोंके चरनेका स्थान गोशालाके निकट ही रहना चाहिये। गोशाला यदि शहर अथवा रेलवे स्टेशनके पास हो तो और अच्छी बात है। गोशा-लाके निकट ही गोष्ठ होना चाहिये और दूध न देनेवाली गायें तथा बछड़ोंको वहां छोड़ देना चाहिये।

इस देशकी गोशालाओंके लिये इसी देशकी गायें भी अच्छी हैं। परन्तु जहाँतक हो सके अच्छी गायें ही रखनी चाहियें। स्काटलैंड की आयार शायर गायोंके सिवा और कोई भी विदेशी गाय

---

(1) Little more than a century has passed since the modest beginning of the present mammoth herds were made. the first Governor of the Botany Bay convict settlement, landing an initial consignment of stock, which included I bull, 4 cows, I calf. At the beginning of 1906, there were in the whole of Australia 8178000 head of cattle, the value of which was computed at £. 3485000.

S. Cyclopeadia of M. Agriculture v 2. p 5.

इस देशके जलवायुके उपयुक्त नहीं। देशी गायोंमें ऐसी गायें चुन लेना चाहिये, जो प्रतिदिन कमसे कम दस सेर दूध देतीं हों? यदि १५ सेर या २० सेर दूध देनेवाली गायें मिल जायें तो और भी अच्छा। बहुतसी गायें १०।१२ महीने तक और कुछ १६ महीने तक दूध देती हैं। और कोई कोई गाय पांच छः महीनेसे अधिक दूध नहीं देती हैं। उनमें जितनी ही अच्छी मिल सकें लेना चाहिये। पहले कुछ खर्च अधिक होगा; परन्तु अन्तमें फल अच्छा होगा। क्योंकि गायोंकी खरीद पर गोशालाका फलाफल निर्भर रहता है।

गोशालाकी अच्छी दूध देनेवाली गायोंको कभी भी बेचना न चाहिये; क्योंकि एक गाय प्रसव करनेके तीन चार महीनेके बाद ही गर्भ धारण करती है और उसके बाद भी आठ दस महीने तक दूध दिया करती है। केवल तीन महीने तक दूध नहीं देती। इसके सिवा कुछ गायें ऐसी भी होती हैं, जो प्रसवके दो तीन दिन पहले तक दूध दिया करती हैं इसलिये अपनी गाय बेंचकर दूसरी खरीदना अच्छा नहीं। विशेषत जो गायें प्रसवके दो चार दिन पहले तक दूध देती हैं उन्हें बेंच देनेका कोई कारण नहीं है। गोजातिका आदर करनेसे वे सहज ही पोस मानती हैं। जब गाय मालिक और चरवाहेको पहचान लेती हैं, तब परिचितको बेचना और दूसरी गाय लाना किसी तरह उचित नहीं है।

गोशालाकी गायोंको ठीक समय पर आहार कराना चाहिये। इनका स्नानाहार और व्यायाम निर्द्धारित समय पर ही होना आवश्यक है गायोंको सदैव साफ़ सुथरी रखना उचित है। इस बातपर विशेष दृष्टि रखना आवश्यक है कि इनके शरीरमें कीचड़ और गोबर आदि न लगने पावे। इनकी सेवाके लिये निर्दिष्ट नौकर रहना चाहिये। गायोंके प्रति दया, ममता और स्नेह करनेसे वे भी उसका प्रतिदान देती हैं।

प्रत्येक गोशालामें अपना साँढ़ रखकर गायोंकी गर्भरक्षा करानी चाहिये। यह साँढ़ जितना ही अच्छा होगा, उतना ही अच्छा बच्चा भी पैदा होगा। पहले ही कहा जा चुका है, कि गायोंकी उन्नति साढ़ों

पर ही निर्भर है, अतएव जहाँतक बन पड़े साँढ़ अच्छा ही रखना चाहिये। प्रथम श्रेणीके हिसार, काठियावाड, मौण्टगोमरी, या गुजराती साँढ़ होना ही अच्छा है। गोशालामें संकर गोजाति उत्पन्न करना हो तो उसके सम्बन्धमें अन्यत्र लिखा गया है।

द्वितीय परिच्छेद।

पाश्चात्य देशोंकी गोशाला सम्बन्धीय नियमावली।

पचास नियम।

—:०:—

(१) गोशालाके अध्यक्षको, गोशाला सम्बन्धीय समस्त नवीनता पूर्ण साहित्यको अध्ययन करना चाहिये।

(२) गायें, गोपालक गोशाला तथा गोशालाकी तमाम चीजोंकी सफाईकी ओर अध्यक्षको तीव्र दृष्टि रखनी चाहिये।

(३) जिन्हें कोई संक्रामक (फैलनेवाली) बीमारी हो गई हो उन्हें गायें तथा दूधसे अलग रखना चाहियें।

(४) गोशालामें केवल गोजातिको ही रखना चाहिये। गोशालाकी दीवालके नीचे अथवा कड़ियोंपर दूसरी चीजें नहीं रखनी चाहिये।

(५) गो-गृहमें रोशनी, हवा और नाबदानका काफ़ी बन्दोबस्त होना चाहिये।

(६) भींगी हुई तथा मैली शय्यापर गायोंको नहीं सुलाना चाहिये।

(७) तीव्र गन्धवाली कोई चीज़ गोशालामें नहीं रखनी चाहिये। गोबरकी ढेर रखनेका स्थान गोशालासे दूर और छिपा हुआ होना चाहिये तथा गोबर और गोमूत्र गोशालासे जल्द जल्द हटाते रहना चाहिये।

(८) गोशालाकी दीवारोंपर वर्षमें एक या दोबार चूना कली कराना चाहिये। गोबरको प्रतिदिन मट्टीसे छिपा देना चाहिये।

(९) गायोंको दूहनेसे पहले उन्हें सूखी अथवा धूल मट्टी मिली हुई चीजें कभी नहीं खानेको देनी चाहियें। चारेमें यदि धूल मिट्टी हो तो उसे धोकर साफ़ कर देना चाहिये।

(१०) गायोंको दूहनेसे पहले गो-गृहको अच्छी तरह साफ़ कर उसमें हवाका प्रवेश होने देना चाहिये। गर्मीके दिनोंमें गो'गृहोंमें पानीका छिड़काव कराना चाहिये।

(११) गोशालाके जिस स्थानमें दूध रखा जाता हो उसे सदैव साफ़ रखना चाहिये।

(१२) विज्ञ चिकित्सक द्वारा वर्षमें एक या दोबार गायोंकी परीक्षा करानी चाहिये।

(१३) यदि किसी गायके बीमार हो जानेका सन्देह हो तो उसे तुरन्त ही अलग कर देना चाहिये।

(१४) गायोंको दूहनेसे पहले या उन्हें खिलानेसे पहले दौड़ाना उचित नहीं। दूहनेके समय तथा खिलानेके समय उन्हें धीर गतिसे हटाकर दूहने और खाद्य स्थानमें लेजाना चाहिये।

(१५) कठोरता पूर्वक, चिल्लाकर गायोंको खदेड़ना गाली देकर, वृथा उत्पात मचाकर गायोंको उत्तेजित करना बड़ा ही अनुचित है। आन्धी तूफ़ान, वर्षा, तथा शीतके समय गायोंको बाहर कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

(१६) गायोंका भोजन हठात् बदलना नहीं चाहिये!

(१७) गायोंको भोजन देनेमें कंजूसी नहीं करना चाहिये, जहाँतक हो सके उन्हें ताजी चीजें खिलानी चाहियें। सड़ी या भुकड़ी लगी हुई चीजें गायको कभी नहीं खिलानी चाहिये।

(१८) खूब साफ़ और ताज़ा पानीका काफी बन्दोबस्त रखना चाहिये।

बासी अथवा बहुत ढंढा पानी गायोंको नहीं पिलाना चाहिये।

(१६) गोगृहोंमें नमक ऐसी जगह रख देना चाहिये, जिसमें गायें अपनी इच्छानुसार उसे खा सकें।

(२०) पियाज़, करमकल्ला और मूली गायको दूहनेके बाद खिलाना चाहिये। इसके सिवा और किसी समय ये चीजें नहीं देनी चाहिये।

(२१) गायकी सब देह अच्छी तरह साफ़ रखनी चाहिये। यदि थनके पासके रोओंकी सफ़ाई असानीसे न हो सके तो उन्हें कैंचीसे छांट देना चाहिये।

(२२) प्रसवके २० दिन पहले और प्रसवके पांच दिन बादका दूध व्यवहार करना चाहिये।

(२३) गायोंके दूहनेवालेके सब प्रकारसे साफ़ सुथरा रहना चाहिये। गायको दूहनेसे पहले दूहनेवालेको तम्बाकू नहीं पीना चाहिये। गोदोहनसे पहले हाथ धोकर और साफ़ कपड़ेसे पोंछकर दूहने-में हाथ लगाना चाहिये।

(२४) गोदोहनसे पहले दूहनेवालेको एक साफ़ कपड़ा पहन लेना चाहिये और फिर उस कपड़ेको उतार कर रख देना चाहिये, केवल दूहनेके समय ही उस कपड़ेको व्यवहार करना चाहिये।

(२५) दूहनेसे पहले थनको ब्रुश कर लेना चाहिये और उसके बाद एक भींजे गमछेसे उसे पोंछ लेना चाहिये।

(२६) शान्त भावसे, तेजीसे, सफ़ाईसे और सम्पूर्ण रूपसे गायोंको दूहना चाहिये। अनावश्यक शोर और समय बरबाद करना गायें पसन्द नहीं करतीं। सवेरे और शामको एक ही समय और एक ही प्रणालीसे गोदोहन करना चाहिये।

(२७) गायके प्रत्येक स्तनसे पहले थोड़ासा दूध निकालकर फेंक देना चाहिये। क्योंकि उसमें पानीका अंश अधिक रहता है। उसमें कोई सार पदार्थ नहीं होता। वह दूसरे दूधमें मिलकर उसे भी नष्ट कर सकता है। (इस देशमें वह दूध बछड़ेको पिलाया जाता है।)

(२८) यदि दूहनेके समय किसी गायके दूधमें रक्त हो, उसका रंग अस्वाभाविक हो तो उसे फेंक देना चाहिये।

(२६) गायोंको सूखे हाथोंसे दूहना चाहिये। दूहनेवालेके हाथमें दूध नहीं लगना चाहिये।

(३०) दूहनेके समय बिल्ली, कुत्ते या दूसरे किसी जानवरको गायके निकट नहीं रहने देना चाहिये।

(३१) यदि दूधमें कोई खराब चीज पड़ जाये तो ऊपरका अंश फेंक कर बाकी रख लेना अनुचित है। ऐसी हालतमें सब दूध फेंक देना ही उचित है।

(३२) हर एक गायका दूध रोज तौलकर उसके परिमाणका हिसाब रखना चाहिये। सप्ताहमें एक गायके दूधमें कितना मक्खन होता है। उसका एक हिसाब रखना चाहिये।

(३३) दूधकी हिफाजत।

गायको दूहनेपर दूध फ़ौरन् वहाँसे हटाकर किसी दूसरे स्थानपर रख देना चाहिये और ऐसे स्थानमें रखना चाहिये जो साफ़ और हवा-दार हो। दूधका बरतन भरनेकी राह देखना ठीक नहीं है।

(३४) गायको दूहनेके बाद तुरत ही दूधको फलालेन, रूई, या धातुके ढकनेसे देना चाहिये।

(३५) गो-दोहनके बाद ही दूधको (aerated) और ठंढा कर लेना चाहिये। यदि इसके लिये पात्र आदि तुरन्त न मिले तो पहले दूधको निर्मल वायुमें रख देना चाहिये। यदि दूधको जहाज़ द्वारा कहीं भेजना हो तो ४५ डिग्री और नहीं भेजना हो तो ६० डिग्री ठंढा कर लेना चाहिये।

(३६) दोहन करने पर तुरन्त ही दूधको ढक देना भी अच्छा नहीं। कुछ ठंढा हो जानेपर ढँकना चाहिये।

(३७) यदि दूधके बरतनका ढकना न हो तो उसे साफ़ कपड़ेसे ढँककर रखना चाहिये। ताकि उसमें कोई कीड़ा मकोड़ा आदि न पड़ने पावे।

(३८) यदि उस दूधको गुदाममें रखनेकी जरूरत हो तो ऐसे गुदाममें रखना चाहिये जो साफ़ हवादार और शीतल हो। दूधको ताजे पानीसे भरे हुए हौजमें बरतन समेत रख देना चाहिये। (जिस हौजमें दूध रखा जाय उसका पानी रोज़ बदल देना चाहिये।) दूधमेंसे यदि क्रीम निकालना हो तो टीनकी मथनी द्वारा मक्खन निकालना चाहिये।

(३९) रातमें दूधको आवृत्त स्थानमें रखना चाहिये। जिसमें बरसातका पानी दूधके बरतनमें न पड़े। गरमके दिनोंमें दूधका पात्र ठंढे पानीके हौजमें रख देना चाहिये।

(४०) ठंढे दूधके साथ ताजा दूध मिलाकर रखना ठीक नहीं है।

(४१) दूधको जमने देना उचित नहीं है।

(४२) किसी अवस्थामें दूध नष्ट न हो, इसके लिये उसमें कोई चीज मिलाना उचित नहीं है।

(४३) खरीददारको अच्छा दूध ही देना चाहिये। गर्मोके दिनोंमें दो बार (सवेरे और शामको) देना चाहिये।

(४४) यदि दूधको कहीं दूर स्थानमें भेजना हो तो स्प्रिङ्गवाले पात्रमें रखकर भेजना चाहिये।

(४५) गर्मीके दिनोंमें यदि गाड़ीमें दूध भेजना हो तो उसके बरतनका मुंह भींगे कपड़ेसे ढँककर भेजना चाहिये।

(४६) पात्र—गोशालाके बरतन धातुके और खूब साफ़ होने चाहिये। पात्रका बाहरी और भीतरी अंश सर्वदा साफ़ रखना चाहिये। पात्रके जोड़ोंको अच्छी तरह साफ़ रखना चाहिये और अच्छी तरह जोड़ दिये हुए होना चाहिये।

(४७) दूध बेचनेवाले पात्रमें गोशालेका कूड़ा आदि कभी नहीं रखना चाहिये। क्रीम निकाला हुआ पानी और छानाके जलपर नजर रखनी चाहिये।

(४८) क्रीम निकाले हुए जलका पात्र जिस समय गोशालामें आवे, उसी समय उसे साफ़ करदेना चाहिये ।

(४६) गोशालेमें जितने धातुपात्र हों, उन्हें पहले किञ्चित् गरम पानीसे धोना चाहिये और उसमें परिष्कारक द्रव्य भी मिलाना चाहिये। उसके बाद ब्रशसे अच्छी तरह रगड़कर फिर अच्छे जलसे धो लेना चाहिये और गरम जलसे भाफ़ द्वारा बरतनोंको साफ़ करलेना चाहिये ।

(५०) बरतनोंको धोकर धूपमें सुखालेना चाहिये और हवा भी अच्छी तरह लगा लेना चाहिये ।

तृतीय परिच्छेद ।

गोष्ठ या गोचरभूमि ।

भारतमें आजकल चारेके लिये विषम समस्या उस्थित हो रही है। इस पर सरकार, राजा महाराजा तथा देशके धनियोंका विशेष ध्यान आकृष्ट होना चाहिये। भारतीय प्रजागण गोचर भूमिकी आवश्यकताको नहीं समझती। उनकी गायें अनाहारसे या अर्द्धाहरसे मरजाती है, इस पर उनका ज़रा भी ध्यान नहीं है। उनकी गाये घरोंमें या रास्तेके किनारे बंधी रहती हैं और निकटके धानके खेतोंकी ओर अथवा अन्य किसी शस्य खेतकी ओर टकटकी लगाये देखा करती हैं। यह कहना भी अनुचित न होगा, कि उनके खानेका कोई बन्दोवस्त नहीं है। इसका फल यह हो रहा है, कि गायें खाने बिना सूखी जा रही हैं। और वें इतनी कमजोर होईगई हैं, कि उनके द्वारा किसी प्रकारका परिश्रमका कार्य्य होना असम्भव हो रहा हैं। प्रति वर्ष गोजाति इतनी नष्ट हो रही है, कि किसानोंको खेतीके कामके लिये बैलोंका मिलना मुश्किल

हो रहा है। कहीं कहीं तो बेचारे किसान मालगुजारी देने और अपना खर्च चलानेमें भी अशक्त हो रहे हैं।

गोचरभूमि छोड़नेके लिये कानून बनानेकी बड़ी जरूरत हो रही है। यद्यपि इन कामोंके लिये कानूनका बनना बड़ा ही लज्जाजनक है, तथापि दुःखके साथ लिखना पड़ता है, कि बिना कानून बनाये हम-लोगोंके चैतन्य होनेकी आशा नहीं है। जमीन्दारों और काश्तकारोंको वाध्य कर गोचरभूमि छुड़वाये बिना काम नहीं चलेगा प्रत्येक गायके लिये कमसे कम एक विगहा गोचर भूमि चाहिये यदि किसी गांवमें दो सौ गायें हो तो वहां दो सौ बिगहे जमीन गोचरके लिये छोड़ देनी चाहिये। यदि किसी ग्राममें २०० गाय रहे तो कमसे कम २०० बीघा गोचर भूमि रखना उचित है। प्रत्येक गृहस्थको अपनी गायोंकी तादादके अनुसार गोचर भूमि रखनेके लिये वाध्य करना चाहिये। जमीन्दारोंका इस जमीनके लिये बहुत थोड़ी मालगुजारी लेनी चाहियै। खेतके मालिकको उस जमीनमें चाराके अतिरिक्त और कोई काम नहीं करने देना चाहिये। जिलेके मजिस्ट्रेट या डिप्टी मजिस्ट्रेट गाँववालोंकी पञ्चायत द्वारा इस बातका निश्चयकर देंगे, कि कहां कितनी भूमि गोचर छोड़ी जा सकती है।

देशके धनवान अपनी गायोंके लिये चारा खरीदा करते हैं, परन्तु कच्ची घासका मिलना आजकल व्ययसाध्य और दुष्प्राप्यतः हो रहा है। यदि गोचरभूमि रहे तो उसमें चारा पैदा किया जा सकता है आसानीसे घास मिल सकती, और सालभर गायें हरी घास पासकती हैं। देहाती गायोंके लिये यदि प्रति गाय एक बीगहा जमीन भी छोड़ दी जाये तो वह किसी तरह जी सकती है।

अच्छी गायके आहारका बन्दोवस्त करनेके लिये साढ़े तीन बिगहा जमीनकी आवश्यकता है। इङ्गलैण्डके किसी किसी गोपालकके मतानुसार सब प्रकारके खाद्यके लिये फी गाय सात बिगहा जमीन रखना चाहिये।

कुछ लोगोंके मतानुसार गोचर भूमिमें खाद्य पैदाकर उसीसे गोपा-

लन करना चाहिये। कुछ लोगोंके मतानुसार उस स्थानमें गीनी प्रभृति घास बो कर उसीसे गायोंके चारेका काम लेना चाहिये। और कुछ लोगोंके मतानुसार दो बिगहेमें घास और बाकी पांच बिगहेमें उड़द आदिकी खेती करना चाहिये। उसमें घास खड़ आदि सब चीज़ें उत्पन्न होती हैं। गोचरभूमिको खाली छोड़ना उचित नहीं। चार पांच वर्षमें एक बार चारागाहको घास आदि अच्छी तरह साफ़ कर देना चाहिये और उसे जोतकर खाद और गोबर आदि छोड़ना चाहिये। यदि गोचर भूमिमें जलके निकासका बन्दोबस्त हो और कभी कभी जोतकर उसमें खाद आदि दी जाय तो चारेकी कमी नहीं हो सकती। दूब तथा दूबकी जातको चालिया घास गायके लिये विशेष उपकारी और पुष्टिकर होती है। गोचर भूमिको जोतकर उसमें दूब काटकर छींट देनेसे अच्छी घास पैदा हो सकती है। विलायती लूसर्न और क्लावर घास हमारे देशमें भी गायोंके लिये उपयोगी नहीं है। कुछ लोगोंके मतानुसार विलायती घास खानेसे हमारे देशकी गायें भी विलायती गायोंकी तरह दूध दे सकती हैं। परन्तु ऐसी धारणा ठीक नहीं। विलायती घाससे हमारे देशकी गायोंका खून गरम हो जाता है और दूध भी कम हो जाता है। हां सांढ़ बैल, और बाछियोंको यह घास खिलाई जा सकती है। जर्मनी देशमें बहुतसी गोचरभूमि है। सन् १८९३ और १९०० का रिटर्न देखनेसे मालूम होता है, कि जर्मनी देशमें फी सैकड़ा ९१ भाग जमीन उर्व्वरा है और बाकी ९ भाग अनुर्व्वरा है। जर्मनीमें ६५१९९५३० एकड़ जमीनमें खेती हुई थी, उसमें तरह तरहकी चीज़ें और अङ्कूर आदि पैदा हुआ था। २१३९७३०० एकड़ जमीनमें घास, गोचारणभूमि और स्थायी गोष्ठ है। ३४५६९८०० एकड़ जमीनमें वृक्ष और जङ्गल है। १२३८३३९० एकड़ भूमि अन्यान्य प्रकारसे पड़ी है।

इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड आदि देशोंमें भूमिकी कीमत बहुत ज्यादा होती है। वहां भी बहुतसी स्थायी गोचरभूमि पड़ी है। यहां गायें बारह महीने चरा करती हैं। इङ्गलैण्डमें कुल ३२५९०३५७ एकड़ जमीनमें

जलाभूमि और पहाड़ी स्थानके सिवा १०६६०६५ भूमि स्थायी गोचर भूमि है । वेल्स प्रदेशके ४७३८४४८६ एकड़ जमीन इसी तरहके खाल और पहाड़ी स्थानोंके सिवा बाकी १५२७५३४ एकड़ जमीनमें चरागाह है। स्काटलैण्डकी कुल जमीन १६६३६३७७ एकड़ है। उसमें १११२२६६ एकड़ गोचरभूमि है । इसके सिवा वहां और भी ४६७८६४० एकड़ भूमि परती पड़ी हुई है। मानवद्वीप (Isle of man) ही १८००० एकड़ भूमिमें १६८६० एकड़ जमीन स्थायी गोचर भूमि है और ६५४६३ एकड़ जमीन वहां पड़ती है।

इससे मालूम होता है, कि इङ्गलैण्ड और वेल्समें तिहाई अंशसे भी अधिक तथा मानवद्वीप और आयर्लैण्डमें आधी जमीन गोचरके लिये हैं। आयर्लैण्डकी कुल जमीनका ३।५ अंश और स्काटलैण्डका ३।५ अंश खाल और पहाड़ी भूमि है। ग्रेटबृटेनके द्वीप समूहमें कुल ७७५००००० एकड़ भूमि है। जमीनमें ४६०००००० में गो-खाद्य घास उत्पन्न होती है और बाकी ४३०००००० एकड़ भूमि स्थायी गोचर भूमि है। बाकी कुल भूमि खाली और पहाड़ी भूमि है।

इङ्गलेण्डकी भांति स्वीटजरलैण्ड, हालेण्ड आदि युरोपके सभी राज्योंमें और उत्तरीय और दक्षिणी अमेरिकामें, आस्ट्रेलिया और न्युजीलेण्डमें गोचारण भूमि निर्दिष्ट है। अतएव इन देशोंको एक एक गोष्ठ कहना भी अनुचित न होगा।

अमेरिकाके युक्तराज्योंमें, विशेषतः टेकसास प्रदेशमें लीविङ्गस्टोन-कैण्टीमें एल सुलिवान नामक एक गोपालकके पास आठमील लम्बी और आठ मील चौड़ी गोचरभूमि है। इस स्थानमें साहबकी ३२ गोशालायें हैं। प्रत्येक गोशालाके लिये एक कप्तान और दो लेफ्टिनेण्ट रहते हैं और सब गोशालाओंके लिये एक कमाण्डर-इन-चीफ़ है। उस देशमें कितनी गोचर भूमि है और उस देशके लोग कितनी गायोंका पालन करते हैं, वह उसी देशके एक जिलेके गोपालकका नाम और उसकी पाली हुई गो संख्या देखनेसे सहज ही मालूम हो जायेगा।

उपर्युक्त टेकसास प्रदेशके प्रसिद्ध गोपालक जॉन हिटसन साहबके पास पचास हजार, जान चेशोल साहबके पास तीस हजार, कोगिन्स और पार्कके पास बीस हजार, जेमूसब्रौनके पास पन्द्रह हजार, राबर्टश्लोनके पास बारह हजार, चेस रिवार्सके पास १०००० हजार मार्टिन चाइल्डर्सके पास दस हजार विलियम हिटसनके पास आठ हजार, जोनसन साहबके पास आठ हजार और जार्ज बीवर्सके पास छ हजार गायें हैं। इन देशोंकी अपेक्षा हमारे देशमें गायोंकी संख्या कितनी कम है, वह इस हिसाबसे अच्छी तरह मालूम हो जाती है। (१)

न्युजिलेण्डमें ६७०४०४०६४० एकड़ जमीन है, जिसमें २७२०००० एकड़ भूमि चारागाहके लिये छोड़ दी गई है। इसके अलावे और भी बहुत सी भूमि खाल आदिके खयालसे पड़ती छोड़दी गई है। इसके सिवा जिस जमीनमें खेती होती है, वहां भी गायोंके लिये चारा उत्पन्न किया जाता है। *

(1) In the United States * * there are vast tracts in that country devoted to cattle raising. The New York Tribune, discoursing on farming in the west, mentions that "Mr. L Sullivan has, in Livingstone Country, Illinois, a farm 8 (Eight) miles square containing 40,960 acres (64 Sections Government Survey). This great area is subdivided into 32 farms of 1280 acres each. Each farm has a Captain and first and second Lieutenants, all under the control of a Commander-in-Chief. * * *

* * * * * * *

Speaking of the immense scale in which cattle-raising is carried on in Texas, it is stated that among the large cattle-raisers, are John Hittson, who has 50000 head of Cattle, Willium Hittson, who has 8000, George Beavers 6000, Chas. Reavers, 10,000, James Brown 15000, C. I. Johnson 8000, Roberts Sloans, 12000, Coggins and Parks 20,000, Martin Childers, 10000 and John Chesholm 30,000. The entire number of cattle owned in Texas is nearly 40,00000.

(*Vide* Macdonald's Cattle, Sheep and Deer. page 194 and 195)

* The area of the dominion is 104,751 square miles, or 67040640 acres of which 28000000 acre agricultural land and 27200000 acres pastoral land.

(*Vide* Standard Cyclopedia of Modern Agriculture page 88, Volume 9)

भारतमें गोष्ठ या गोचरकी कभी नहीं थी। समस्त भारतको यदि एक प्रकाण्ड गोचरभूमि कहा जाय तो कोई अयुक्ति न होगी।

गोचरभूमि रखे बिना गोरक्षा नहीं हो सकती। यह अधःपतितजाति एक दिन इस बातको अच्छी तरह समझती थी। सर्वश्रेष्ठ स्मृतिकार महर्षि मनुने विधान किया था, कि गांवकी चारो ओर सौ धनु अर्थात् चार सौ हाथ स्थान गोचरके लिये छोड़कर ग्रामकी स्थापना करनी चाहिये। यदि नगर बसाना हो तो उसका तिगुना स्थान चारों ओर गोग्रासके लिये छोड़ देना चाहिये। गोग्रासके लिये निर्दिष्ट भूमिके निकट चारा रोपकर, उसके चारों ओर खूब ऊँचा और घना बेड़ा स्थापित कर देना चाहिये। बेड़ा इतना ऊँचा होना चाहिये जिसमें उसके भीतरकी चीज ऊँटको भी दिखाई न पड़े। छेद घना ऐसा होना चाहिये जिसमें सूअर और कुत्ता आदि उसमें मुँह न डाल सकें। यदि स्वामी ऐसा बेड़ा न बनावे तो उसकी फसल चर जानेपर कोई चरवाहा दोषी नही समझा जा सकता। (१)

---

(१) धनुशतं परिहारो ग्रामस्य स्यात् समन्ततः
सम्यापातास्त्रयोवापि त्रिगुणो नगरस्य तु
तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि
न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम्
वृत्तिं तत्र प्रकुर्व्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत्
छिद्रञ्च वारयेत् सर्व्वं श्वशूकर मुखानुगम्
मनुसंहिता। अष्टम् अध्याय

धनुशतं परीनाहो ग्रामो क्षत्रान्तरं भवेत्
द्वे शते कर्कटस्य स्यान्नगरस्य चतुःशतं।
२ य अ० १७० श्लोक। याज्ञवल्क्य

ग्रामेच्छया गोप्रचारो भूमि राजवशेनवा
२ अ० १६६ श्लोक। याज्ञवल्क्य

अटव्यः पर्व्वताः पुण्यास्तीर्था न्यायतनानिच।
सर्व्वान्यस्वामिकान्याहुर्न हितेषु परिग्रहः॥
५ अन० १६ श्लोक उशना संहिता।

महर्षि याज्ञवल्क्यने भी गोचारण-भूमि छोड़नेका विधान दिया है।

ऊशना संहितामें भी.............पर्वत और अरण्य आदि स्थान सर्व साधारणकी सम्पत्ति निर्द्धारित किये गये हैं।

गोचरभूमि चार भागोंमें विभक्तकी जा सकती है।

(१) अच्छे अनाज उत्पन्न करने वाले खेतमें चारे लायक चीजें, विलायती गीनी आदि अथवा अपने देशकी दूब आदि उत्पन्नकर गायोंको खिलाना चाहिये। यह घास दो तीन महीनेपर काट लेनेके लायक हो जाती है और उसे गायोंको चरा भी सकते हैं।

(२) चारेकी खेती न करनेपर भी वहां गायें चराई जा सकती हैं। किन्तु उससे उतना लाभ नहीं होता। पृथिवीमें जो सार पदार्थ होते हैं, वह बारबार घासके रूपमें परिणत होने पर उसमें सार पदार्थ उतना अधिक नहीं रहता और इस लिये गोचरभूमिमें खाद देकर चारा उत्पन्न करना, गायोंको रक्षा लिये उपयोगी होता है। हड्डी पीसकर जो खाद बनाया जाता है, उससे जो चारा उत्पन्न होता है, वह गायोंके लिये विशेष उपयोगी होता है।

हड्डीमें नीचे लिखी चीजें होती हैं :---

लाईम	५१ भाग।
मेग्नेसिया	२ ,,
फास्फरिक एसिड	३८ ,,
कार्बोलिक एसिड	४,५ ,,
अन्यान्य पदार्थ	४,५ ,,
	१०० पदार्थ

हड्डीका चूर्ण और उसका आधा डाईल्युटेड सलफरीक एसिडके साथ उसका चौगुना पानी मिलाकर दो दिन स्थिर भावसे रख देनेसे सुपरफास्फेट तैयार हो जाते हैं। यह सबसे अच्छा खाद होता है। एक

भाग सुपरफस्फेट सौ भाग जलमें मिलाकर खेतमें छिड़क देनेसे खूब घास पैदा होती है ।

(३) खालसे सड़ा हुआ जल निकालकर उसमें गोयानों नामक खाद डाल देनेसे गायोंके खाने लायक चारा उत्पन्न होता है। यह खाद स्वभावतः बड़ा ही उत्तेजक होता है। भीगी और गीली जमीनके लिये ही वह अच्छा होता है। बलवान उर्व्वरा भूमिमें यह खाद डालनेसे घासोंकी जड़ नष्ट हो जाती है। जिपसम (Gypsum) नामक खाद भी घासकी जमीनके लिये अच्छा होता है ।

(४) पहाड़ी भूमिमें नाला खोदकर उसे गोचारणके उपयुक्त बना सकते हैं ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

गायोंका खाना-पीना ।

गायोंके पीनेका पानी और भोजनकी चीज़ोंका परिमाण और समय निर्दिष्ट रहना आवश्यक है। क्योंकि आहारके समय और परिमाणकी कमी बेशी गायोंके स्वास्थके लिये हानिकारक होती है। विशेषतः दुग्धवती गायोंके खानेपीनेके नियमोंमें बाधा पड़नेसे उनका दूध ही बन्द हो जाता है। इनके भोजन करनेका स्थान और भोजन देनेवाले आदमीके बदलनेसे भी अक्सर दूधमें कमी हो जाती है। इस बातको अच्छी तरह लक्ष्यमें रखकर गायोंके भोजनके समय और भोजनका परिमाण निर्दिष्ट रखना चाहिये। गायोंको सवेरे ६ बजे और शामको भरपेट भोजन कराना चाहिये। सवेरे शस्याहार और शाकको चराना अच्छा होता है ।

साँढ़, बैल, गाय, बाछियां, बांझ गाय, और दूध न देनेवाली गायको भिन्न भिन्न परिमाणसे भोजन देना चाहिये। इस पुस्तकके तीसरे खण्ड-में साँढ़ और गाय आदिके भोजनका परिमाण आदि लिखा गया है।

गोजाति बड़ी तृष्णातुर जीव होती है। अतः इन्हें भरपेट साफ़ पानी पिलाना चाहिये।

पञ्चम् परिच्छेद।

गोग्रास.

(गीनी घासकी खेती।)

यह इस देशकी गायोंके लिये विशेष उपयोगी घास होती है। यह घास नरम मट्टीमें पैदा होती है। यह बीज और लत्ती दोनोंसे उत्पन्न होती है। जब बीजसे उत्पन्न होती है तो पहले बीजको खेतमें बिखेरकर उससे चारा (या बीहन) उत्पन्न किया जाता है। जब उसका पौधा आधा हाथका हो जाता है तो खेतको अच्छी जोतकर खूब खाद देकर ५।६ अङ्गुलीके अन्तरपर उसे रोपते हैं। फागुन और चैतमें खेतको जोतकर बैसाख जेठमें खाद देते हैं, उसके बाद बरसातमें रोपते हैं। यह घास जाड़ा और गर्मीके दिनोंमें भी रोपन की जा सकती हैं। परन्तु उस समय जलसे सींचनेकी आवश्यकता होती है। लत्ती लगानेकी तरकीब यह है, कि जब घास तयार हो जाती है तो उसके ऊपरका तीन हिस्सा काट लिया जाता है और बाकी एक हिस्सा खेतमें छोड़ दिया जाता है। गीनी घास एक बार रोपनेसे बहुत दिन तक खिलाई जाती है। बाकी नीचेका भाग जो बाकी रह जाता है, वह दो महीने बाद फिर पनपकर बढ़ जाता है। इस एक बिगहामें एक वर्षके भीतर कमोबेश २०० मन गिनी घास उत्पन्न हो सकती है।

(कासावा घासकी खेती)

ग्रीष्म प्रधान देशोंके उपयोगी और भी एक तरहकी एक घास खेतीसे पैदा होती है। यह सोंठ जातीय घास होती है। दो अंश मट्टी कासावा घासकी खेतीके उपयुक्त होती है। गीनी घासकी लताकी तरह इसकी जड़ें रोपी जाती हैं। आठ दस मासके बाद जड़ उठानेके लायक हो जाती है। इसी मूलसे पालो तैयार होता है। वह गायोंका उत्कृष्ट भोजन है। कसावा दो प्रकारका होता है। (१) मीठा और (२) कड़वा। कड़वा कसावा गला लेनेसे खाद्यके उपयुक्त बनाया जाता है।

क्लोवर, लूसार्न, सेनफोर्न मेड्किक, बियाना और आल्फा आल्फा आदि विलायती घासोंके बीज खरीदनेसे मिल सकते हैं। यदि इन घासोंकी खेती कीजाय, तो इस देशमें प्रचुर गोखाद्य पैदा हो सकता है। क्लोवर बड़ा पुष्टिकर घास होता है। परन्तु नियमानुसार हड्डीके चूर्ण आदिका खाद देनेसे क्लोवर घास बहुत उत्पन्न हो सकती हैं।

षष्ट परिच्छेद।

साइलो और साइलेज. (Silo and Silage)

गायोंको ताज़ी घास खिलानेकी आवश्यकताके बारेमें पहले ही लिखा जा चुका है। किन्तु बारहो महीने ताजी घास खिलाना सहज नहीं है। इङ्गलैंड आदि देशोंमें साइलो तैयार कर उसमें कच्ची घास रखी जाती है। चारो ओर मज़बूत प्राचीरसे घिरेहुए आधार विशेषका नाम है साईलो है। प्राचीर ऐसी होनी चाहिये जो सर्दी और हवाको रोक सके। उसमें बहुत दिनों तक घास कच्ची अवस्थामें रखी जा सकती है। साईलोको कच्चो घासका गोला कह सकते हैं। साईलो इस

तरहका बनाया जाता है, जिससे बड़ी आसानीसे घास निकाली और रखी जा सकती। उसका भीतरी भाग ऐसा चिकना होता है, कि उसमें घास दृढ़ रूपसे रखी जा सकती है। साइलो ताप परिचायक पदार्थों द्वारा बनाना चाहिये और इतना मजबूत होना चाहिये, कि जिसमें उसके प्रत्येक वर्गइञ्चमें मानो भार सहन कर सके।

साइलोका आकार—अभिज्ञतासे मालूम हुआ है, कि साइलोका आकार गोला होना अच्छा होता है। जबतक उसमें हवा प्रवेश नहीं कर सकती तबतक उसमें रखी हुई घास हिफ़ाजतसे रहती है। हवाके प्रवेश करनेसे घास कुछ नष्ट हो जाती है।

साइलो बनानेके उपकरण—साइलो लकड़ी ईंट और सीमेण्टसे बनता है। जमीन खोदकर या जमीनके ऊपर साइलो बनाया जा सकता है। भारतवर्षकी अवस्थाके अनुसार जमीनमें कुएँकी तरह गड्ढा खोदकर साइलो बनाना अच्छा होगा। मट्टीके अन्दरका साइलो दीवारदार कुएकी तरह बनाना सुविधाजनक होता है। साइलोकी दीवारके भीतरकी ओर सीमेण्टका पलस्तर देना अच्छा होता है। यदि विशेष खर्च करनेकी समाई हो तो जमीनके ऊपर साइलो बनाया जा सकता है।

साइलोका परिमाण और परिसर।

साइलोकी गहराई १६ फोट और व्यास १० फोटसे कम नहीं होना चाहिये। जमीनके नीचे साइलोकी गहराई पानीकी तह (वाटर लेवल) के कुछ ऊपर तक होनी चाहिये। अर्थात् जिस जमीनमें १२ फीटके अन्दर पानी हो वहाँ, साइलो १० फीट गहरा बनाना चाहिये। इस तरह वाटर लेबिलके दो फीट ऊपर ही साइलोका पेंदा रखना उचित है। साइलोके अन्दरसे घास निकालनेके लिये दो फीट गोलाकार रास्ता रखना चाहिये। इसी रास्तेसे मजदूरे आवश्यकतानुसार घास निकाल सकते हैं। साइलो जितना गम्भीर हो उतना ही अच्छा होता है। क्योंकि

घासमें ऊपर जितना ही भार पड़ता है, वह उतनी ही अच्छी रहती है। १६ फीट गहरे साइलोकी अपेक्षा ३२ फीट गहरे साइलो में अधिक घास अँटती है। गायोंकी तादादके अनुसार साइलो भी छोटा बड़ा बनाना चाहिये। यदि सौ गायोंके खाने लायक घास रखनी हो तो साइलोकी गहराई ३२ फीट और व्यास २० फीट होना चाहिये। यदि ५० से लेकर सौ गायोंके लिये घास रखनी हो तो साइलोका व्यास १० से २० फीट तक होना चाहिये। यदि १० से लेकर ५० गायें हों तो साइलोका व्यास १० से १६ फुटका होना चाहिये। १० से कम गायोंके लिये साइलो बनानेमें कोई फायदा नहीं है। इसलिये भारतमें साइलो बनानेके लिये समवाय समितियां बनानेकी आवश्यकता है। क्योंकि यहाँ बहुतसे गोपालकोंके पास दो ही चार गायें होती हैं।

जो स्थान पानीमें डूबता न हो, वहाँ गड़हा खोदकर उसमें दूब आदि घास रखकर मट्टीसे खूब दबा देनेसे भी वह ताज़ी ही बनी रहती है। परन्तु इस बातका ख्याल रखना चाहिये, जिसमें गड़हेके अन्दर बरसातका पानी न घुसने पावे। गड़हेके ऊपरकी मट्टीको ढालू बना देनेसे ही पानी ढलकर नीचे चला जाया करेगा।

साइलोमें जो घास रखी जाती है, उसे साइलेज कहते हैं। साइलेज गायोंके लिये अत्यन्त पुष्टिकर और स्वादिष्ट घास होती है। साइलोंके अन्दर घास दो तीन वर्ष तक बड़ी अच्छी हालतमें रह सकती है और ताजी बनी रहती है।

भुट्टा, जुवार और बाजराके पेड़में चीनी और पुष्टिकर पदार्थ अधिक होता है, इसलिये उन्हें साइलोंमें रखना ठीक है। सर्व प्रकारकी घास, यहाँ तक, कि जो घास गायें नहीं खातीं वह भी साइलोंमें रखकर साइलेज बना देनेसे गायें आग्रह सहित खा लेती हैं। गायोंकी शरीरकी पुष्टि और दूध देनेवाली शक्तिको बढ़ानेमें कच्ची घासकी अपेक्षा साइलेज अधिक उपयोगी होती है।

जब घास पक जाती है अथवा दानेमें जिस समय दूध पैदा हो जाता है, उसी समय उसे काटकर साइलोमें रखना चाहिये। अपरिणत अवस्थामें रखनेसे उसमें खट्टापन आजाता है। यदि अनाजका डंठा साइलोंमें रखना हो तो काटकर फौरन् ही रखना चाहिये नहीं तो उसका स्वाद और गुण नष्ट हो जाता है। डंठा यदि सूख गया हो तो उसे पानीसे तर कर साइलोंमें रखना चाहिये। घास तथा पवाल आदिको काटकर (अर्थात् एक या आधी इञ्चका टुकड़ा बनाकर) साइलोमें रखना चाहिये और रखनेसे पहले उसे खूब साफ़ कर लेना चाहिये। साइलोके भीतर घास रखनेके समय उसे पैरसे खूब दबाकर रखना चाहिये। इसी तरह आठ दस दिन तक बराबर दबा दबा कर साइलोमें घास भरना चाहिये। साइलोको घाससे भर देनेके बाद नमकका पानी छींटकर उसे मट्टीसे छिपाना चाहिये। साइलोको मट्टीसे बन्द कर देनेके बाद उसे छप्पर या टीनसे ढँक देना चाहिये। साइलो चाहे जिस तरह रखा जाये, उपरकी कई इञ्च घास नष्ट हो जाती है। इसी तरह घास अत्यन्त गरम होकर बाकी घासको सिझा देती है। साइलोमें रखी हुई घास सदैव व्यवहार की जा सकती है। सुगठित साइलोंमें अच्छी तरह घास रखनेसे कई वर्ष तक काम दे सकती है और ताजी बनी रहती है। पूर्व्वोक्त मट्टीके साइलोमें साइलेज रखनेसे भी वह तीन वर्ष तक रह सकती है, परन्तु घासका जो अंश मट्टीके साथ लगा रहता है, वह कुछ नष्ट हो जाता है।

साइलोमेंसे घास निकालनेके समय उसमें गढा न कर समान भावसे घास उठा लेना चाहिये। साइलेजका विशेष गुण यह है, कि वह गर्मीसे पक जाता है सुस्वाद होता है और सहज ही पच जाता है, अन्यान्य खाद्यकी अपेक्षा साइलेज गायोंकी शक्तिको बढ़ाता है। जिस परिमित स्थानमें एक मन घास रखी जा सकती है, उतनेमें आठ दस मन साइलेज रखा जा सकता है। जिस घासको गायें अखाद्य समझ कर

छोड़ देती हैं, उसे भी यदि साइलेज बना दिया जाय तो उसे सुखाद्य समझ कर खाती हैं।

वह बहुत दिनों तक अच्छी अवस्थामें रखी जा सकती है। साइलेज अत्यन्त गरमीमें पकता है, इसलिये उसके दूषित बीजाणु नष्ट हो जाते हैं। साइलेज घास काटनेके लिये कलें होती हैं, उनकी सहायतासे बहुत थोड़े समयमें बहुत सी घास काटी जा सकती है।

सप्तम् परिच्छेद।

दूध बढ़ानेकी तरकीब।

यह सभी जानते हैं, कि गायके थनमें दूध नहीं होता बल्कि उसके मुँहमें होता है। अर्थात् अच्छी तरहसे खिलानेसे ही गायें अधिक परिमाणमें दूध देती हैं। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये, कि सभी चीजोंसे दूध बढ़ता ही है। बहुतसी चीजें ऐसी हैं; जिन्हें खानेसे गायें मोटी होती हैं, परन्तु उनका दूध नहीं बढ़ता। प्रति दिन पेट भरकर हरी घास खिलानेसे दूध बढ़ता है। गायको प्रसवके एक मास पहलेसे कच्ची घास खूब खिलाना चाहिये। प्रति दिन घासकी मात्रा थोड़ी थोड़ी बढ़ाते जाना चाहिये। प्रसवके तीसरे दिन उड़दकी दलिया या आधा सेर, खुद्दी या चावल, आधा सेर, नमक एक छटांक, हल्दी आधी छटांक, पीपलिका चूर्ण १ छटांक। इन सब चीजोंको एकत्र कर पानी मिलाकर पकाना चाहिये। इसके बाद उसमें पावभर गुड़ मिलाकर कुछ गरम रहते ही, शामको गायको खिला देना चाहिये। इससे गायका दूध खूब बढ़ जाता है। यदि प्रसवके बाद दूध बन्द होकर गायका थन कठोर हो जाय तो रेंडकी पत्तीसे सेंक देकर उसीसे ढंक कर थनको बांध देना चाहिये। इससे दूध भी

उतरेगा और थनकी कठोरता भी जाती रहेगी। परन्तु यह काम बड़ी सावधानीसे होना चाहिये। क्योंकि पत्तो अधिक गरम रहनेसे गायके थनमें फोड़ा पड़ जाता है। काँटानटके टुकड़ोंको नमक मिलाकर पकाकर खिलानेसे गायका दूध बढ़ता है। पका केला और पानीमें मिलाया हुआ भात एक साथ ही खिलायें तो गायोंका दूध बढ़ जाता है वेरण्डको छीमी पानीमें उबाल कर वही पानी गायको पिलानेसे भी दूध बढ़ता है।

ऊखकी गण्डेरी खिलानेसे भी गायोंका दूध बढ़ता है। ऊखका रस निकालने पर जो अंश बच जाता है, उसे खोइया कहते हैं। यह खोइया भी गायोंके दूधको खूब बढ़ाती है। तीसीकी खली और उबाला हुआ मटर खिलानेसे भी गायका दूध बढ़ता है। उबाली हुई बांसकी पत्तियां आधी छटांकके थोड़ीसी अजवाइन और गुड़ मिलाकर खिलानेसे गायका दूध बढ़ता है। दूध देनेवाली माताके गर्भसे उत्पन्न, सांढ़से यदि गर्भ रक्षा कराई जाय तो गायका दूध बढ़ जाता है। दालका धोवन विशेषतः खेसारीकी दालके धोवनमें इमली मिलाकर खिलानेसे भी दूध बढ़ जाता है। खेसारीकी दाल अथवा चावलके साथ गेहूं उबाल कर खिलानेसे भी दूध बढ़ता है। गुड़ और कांजी मिलाकर खिलानेसे गायोंका दूध बढ़ता है। नीचे लिखी चीज़ोंको एकत्र कर प्रति दिन सवेरे और शामको एक या दो मुट्ठी गायके आहारके साथ मिला देनेसे गायका दूध बढ़ता है। नाइट्रेट्. आफ़ पोटासियाम १ भाग, फिटकिरी १ भाग, खली मट्टी १ भाग, जीरा १० भाग सफेद चन्दन २ भाग, नमक १० भाग, सौंफ १० भाग और लवँग ५ भाग।

प्रसवके कई दिन बाद दुग्ध जारन नमक पौधेको काटकर चावलकी खुद्दीके साथ उबाल कर खिलानेसे भी गायोंका दूध बढ़ता है। दूध देनेवाली गायका दूध हठात् बन्द हो जाय, या हठात् उसका दूध कम

हो जाय और इसका कोई सबब मालूम न हो तो पपीताकी पत्ती और उसका कच्चा फल एक साथ ही पीसकर चीनीके गाद या गुड़ और मैदाके साथ मिलाकर खिलानेसे गायोंका दूध बढ़ता है।

गोवी और करमकल्लाकी पत्तियोंसे खूब दूध बढ़ता है। गाजरशलगम और मूली खिलानेसे भी गायोंका दूध खूब बढ़ता है। पपीता और पपीताके पत्तेसे भी दूध खूब बढ़ाता है। पलास और सेमलका फूल खिलानेसे गायोंका दूध खूब बढ़ता है। पका बेल या कच्चा बेल उबालकर खिलानेसे भी गायोंका दूध बढ़ता है। इमली और खेसारीकी दाल उबालकर खिलानेसे गायका दूध बढ़ता है। गायको उसका दूध दूहकर पिला देनेसे भी वह खूब दूध देती है। शराब और चीनीका गाद प्रति दिन एक बार खिलानेसे भी गायोंका दूध बढ़ता है। घी, मैदा और गुड़ मिलाकर खिलानेसे भी खूब दूध बढ़ता है। देशी शराबका गाद एक दिन खिला देनेसे दूसरे ही दिन गायका दूध बढ़ जाता है। सनका फूल, महुआका फूल, घास, गुड़ या पानीमें उबाल कर खिलानेसे भी दूध बढ़ता है। आम, कटहल और शरीफाके वृक्षकी छाल पकाकर खिलानेसे दूध बढ़ता है।

आलूका पता भी गायोंका दूध बढ़ाता है। बीजवाले केलेका फल चावलके साथ उबालकर खिलानेसे भी गायका दूध बढ़ता है। यदि उपर्युक्त दूध बढ़ानेवाली चीजें नियमित रूपसे गायको खिलाई जायें तो वह बहुत दिनों तक दूध देती है। गुरुचकी पत्ती तथा उसकी लता-काट कर खिलानेसे भी दूध खूब बढ़ता है।

डाक्टर टामसनके मतानुसार डेढ़ सेर भेली गुड़ और ६ पौण्ड बार्ली एकत्र पकाकर खिलानेसे गाय बहुत दिनों तक दूध देती है। कन्द और मूलादि गायको पकाकर खिलाना चाहिये। उससे गायकी दूध देनेवाली शक्ति बनी रहती है।

अष्टम् परिच्छेद ।

गो-दोहन ।

गोदोहन कार्य्य दो प्रकारसे होता है। इङ्गलैण्ड और अमेरिका आदि, देशोंमें, वर्त्तमान समयमें कलकी सहायतासे दूध दूहनेका काम लिया जाता है। किन्तु हमारे देशोंमें हाथसे दूहते हैं इङ्गलैंड आदि देशोंमें जहाँ, कि गायके बच्चोंको स्तन पान नहीं करने दिया जाता, वहाँ, पहले गायके थनको पानीसे धोकर फिर कपड़ेसे अच्छी तरह पोंछ लेते हैं। इसके बाद दोहन कार्य्य आरम्भ किया जाता है। किन्तु हमारे देशमें पहले बच्चेको कुछ दूध पी लेने दिया जाता है। इससे दूध बड़ी आसानीसे उतर आता है। गायके बाईं ओर बैठकर दूहना चाहिये। दूध हाथ द्वारा दो तरहसे दूहा जाता है। प्रथमतः यदि गायकी स्तन बड़ी और मोटी हो तो हाथकी तीन या चार अंगुलियों द्वारा पकड़कर मुट्ठीमें दबाना होता है। फिर छोड़कर दबाना होता है; इसी तरह दबाते और छोड़ते हुए गायका दूध दूहा जाता है। इसी तरह दूहनेसे एक बूंद तक दूध थनमें बाकी नहीं रहता। दूसरा तरीका यह है, कि अंगूठा और तर्जनीकी सहायतासे खींचकर दूध निकाला जाता है। बंग देशमें दूसरे तरीकेसे ही गायें दूही जाती हैं, किन्तु पश्चिममें और बंगालमें भैंसोंको दूहनेके लिये पहले तरीकेसे ही काम लिया जाता है। गोदोहनके समय कोई कोई विशेषतः गृहस्थ सामनेके दो स्तन पहले दूहते हैं। किन्तु इस देशके गोप पहले पीछेके दो स्तन दूह लेते हैं। पश्चिम देशके अधिवासी कहीं कहीं पहले सामनेका एक स्तन दूह लेनेपर फिर सामनेका एक और पीछेका एक स्तन दूहते हैं।

कलकी सहायतासे दोहन कार्य्य करनेसे दूधमें किसी प्रकारकी मैल वा कीटाणु प्रवेश नहीं कर सकते। इसी लिये युरोप और अमे-

रिकावाले कलसे गाय दूहते हैं। किन्तु कलोंका दाम बेशी होता है, और हमारे देशवासियोंको उसका अभ्यास भी नहीं है। और गायोंको उसका अभ्यास कराना भी मुशकिल है। क्योंकि कलकी सहायतासे दूध दूहनेके लिये बच्चेकी आवश्यकता नहीं पड़ती और हमारे देशकी गायें बच्चेको सामने देखे बिना दूहने नहीं देती। अतएव हमारे देशमें हाथ द्वारा गायोंको दूहना चाहिये।

दोहनकार्य्य जितना शीघ्र और हलके हाथों द्वारा और धीरतापूर्व्वक हो उतना ही अच्छा है। किन्तु अच्छी तरह दूहनेका कार्य्य जाननेवाला ही यह कर सकता है, पहले हमारे देशमें इतने चतुर दूहनेवाले थे, जो कुहनीके आगे बाँहके ऊपर तेल भरी कटोरी रखकर गाय दूह लेते परन्तु कटोरीका तेल गिरता नहीं था।

दूहनेके समय कभी भी गायको मारना नहीं चाहिये। उसके साथ हमेशा सदय व्यवहार करना चाहिये।

दूहनेके समय इस बातका खूब ख़याल रखना चाहिये, जिसमें गायको किसी प्रकारकी तकलीफ़ न हो। जिस पात्रमें दूध दुहा जाय, उसे खूब साफ रखना चाहिये। गायको दूहनेके समय निर्दिष्ट रहना चाहिये और एक ही दोहक द्वारा गायको दुहवाना चाहिये। यदि गायका स्तन कड़ा और खुरखुरा हो तो उसमें घी या तेल लगा लेना चाहिये। हमारे देशमें गायके सामने जबतक बच्चा नहीं होता तबतक दूध नहीं देती। परन्तु युरोप और अमेरिकामें सामने बच्चा न रहनेपर भी गायें दूही जा सकती हैं। उनके मतानुसार वत्सको अलग रखकर गाय दूहनेका अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि यदि बच्चा मर जाता है तो गाय दूध देना बन्द कर देती है, इससे गृहस्थको बड़ी क्षति होती है।

नवम् परिच्छेद।

दूध दूहनेकी कल।

-:*:—:*:-

उन्नीसवीं शताब्दीमें अमेरिकाके न्यूयार्क शहरमें पहले पहल गायके स्तनमें नल लगाकर उसे दूहनेकी चेष्टा की गई। परन्तु असम्भव समझकर वह चेष्टा छोड़ दी गई। उसके बहुत दिन बाद मेयर नामक एक अमेरिकनने गाय दूहनेकी एक कल बनाई। उसमें गायका स्तन दबाकर उसमेंसे दूध निकाला जाता था। उसके बाद इसी तरहकी बहुतसी कलें अमेरिका, जर्म्मनी, स्वीडन और डेनमार्क आदि देशोंमें तैयार हुईं। किन्तु कलें बहुत ही जटिल थीं, इससे साधारण लोगोंको उन्हें व्यवहार करनेमें बड़ी असुविधा होती थी। इसके बाद इस तरहकी कलोंका व्यवहार छोड़ दिया गया और वायु निष्काशन प्रणालीसे गो दोहनकी कल तैयार की गई। स्काटलैण्ड वासियोंने इस कलकी विशेष उन्नति की। इसी प्रणाली द्वारा स्काटलैण्डके मार्चलेण्ड साहबने सन् १८८६ में और निकलसन साहबने सन् १८६१ में गो दोहन यन्त्र आविष्कृत किया। परन्तु इस प्रकारकी कलों द्वारा दूध दूहनेसे गायके थनमें रक्त सञ्चालन होनेमें वाधा उपस्थित होने लगी तथा उनका थन और स्तन सङ्कुचित होने लगे, इसलिये सन् १८६५ इस्वीमें डाक्टर लिण्डने एक दूसरी कल बनायी। परन्तु उनकी कल बड़ी जटिल थी, उसमें खर्च भी बहुत पड़ता था और उसे साफ करना भी बड़ा कठिन था, इसलिये ग्लासगोके केनेडी और लारेन्स नामक व्यक्तियोंने अपनी समवेत चेष्टा द्वारा एक "केनेडी लारेन्स युनिवर्सल मिल्कर" नामकी कल बनाई। उसके बाद सन् १६०७ में वेल्स नामक एक अँगरेज़ने उसी प्रणाली द्वारा एक कल बनाई। इन कलोंकी सहायतासे एक साथ ही दो गायें केवल पांच सात मिनिटोंमें दूही जा सकती हैं। इन कलों द्वारा गायके स्त-

नोंसे वैसे ही दूध निकाला जा सकता है, जिस तरह चूसकर बच्चे दूध पीते हैं। चाहे कितनी ही चेष्टा क्यों न की जाये। कलकी सहायतासे गायके थनमेंसे समस्त दूध निकाल लेना बड़ा ही कठिन काम है। किन्तु बच्चा चूसकर थनका सब दूध निकाल लेता है। और यदि गायके थनमेंसे कुल दूध निकाल न लिया जाय, तो स्तनोंमें दूध जम जाता है और थनमें नाना प्रकारकी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। कलकी सहायतासे दूहनेके पहले भी हाथ द्वारा पहले और अन्तमें थोड़ा दूध निकाल लिया जाता है। कल लगाकर दूहनेसे दूसरा अनिष्ट यह होता है, कि गाय शीघ्र ही दूध देना बन्द कर देती है और इस तरहके दूहे हुए दूधमें मक्खनका हिस्सा बहुत थोड़ा होता है।

आजकल इङ्गलैण्डमें "ओमेगा" नामकी एक कल बनी है। इससे पहलेकी सब कलोंकी अपेक्षा यह कल अच्छी समझी गई है और उसके बनानेवालेको प्रदर्शनियों द्वारा पुरस्कार दिया गया है। यदि कोई चाहे तो इस कलको मंगाकर परीक्षा कर सकता है।

दशम् परिच्छेद।

स्नान।

गायोंको सदा साफ सुथरी रखना चाहिये। यदि वे नीरोग हों तो गर्मीके दिनेमें सप्ताहमें एक या दो दिन, वर्षा कालमें सप्ताहमें एक दिन और जाड़ेमें कमसे कम महीनेमें एक बार उन्हें नहला देना चाहिये। जिस दिन अच्छी धूप हो उसी दिन गायको नहलाना चाहिये। नहलानेके बाद गायका शरीर अच्छी तरहसे पोछ देना चाहिये। गायकी देहमें शीत न लगने पाये, इसकी ओर खूब ध्यान रखना चाहिये। इस बातका खूब ख्याल रखना चाहिये, कि दुग्धवती गायकी देहमें विशेषतः उसके थनमें ठंढा न लगने पावे।

एकादश परिच्छेद ।

प्रसाधन (Grooming)

गायका शरीर प्रतिदिन ब्रशद्वारा अच्छी तरह साफ कर देना चाहिये। गायोंकी देहमें अठई और जूएं आदि लगकर उनका खून पीया करती हैं। यदि प्रति दिन ब्रशसे गायोंका शरीर साफ कर दिया जाय तो ये कीड़ें नहीं लगने पाते। गायें बहुत जल्दी ही नाराज हो जाती हैं। इन कीड़ोंके शरीरमें पड़ जानेसे गायें नियमानुसार दूध नहीं देतीं। शरीरसे इन कीड़ोंको निकाल देनेसे गायें बहुत खुश होती हैं। गायोंका दूध देना उनके मनकी प्रसन्नता और स्वच्छन्दतापर बहुत कुछ निर्भर करता है। इनके शरीरकी धूल और मट्टी प्रतिदिन साफ करते रहनेसे उनके मनकी प्रसन्नता और स्वच्छन्दता खूब बढ़ती है।

इससे उनकी दूध देनेकी शक्ति बनी रहती है। गायोंको अठई नामक जो कीड़ा लग जाता है, उसे हाथसे छुड़ा देनेकी जरूरत पड़ती है। गायें अपनी देहके बहुतसे स्थानोंको चाटकर साफ कर लिया करती है। किन्तु गलेको नहीं चाट सकतीं। उनका गला हाथसे सहलानेसे वे बहुत प्रसन्न होती हैं। यदि गायको प्रसन्न और वशीभूत करना हो तो उनका गला सहलाना चाहियें, इससे वे बहुत प्रसन्न होती हैं। जो सहलाता है, उसके हाथ पर गर्दन रखकर गायें आँखें बन्द कर लेती हैं। गायोंके बच्चोंको भी इसी प्रकार ब्रशके द्वारा प्रतिदिन साफ कर देना चाहिये। इससे वे सहज ही मनुष्यके वशीभूत होते हैं।

द्वादश परिच्छेद ।

व्यायाम.

-:*-:-*:-

गायोंका शरीर नीरोग और कार्य्यक्षम बनाये रखनेके लिये, भोजन पचनेके लिये और क्षुधाकी वृद्धिके लिये गायोंको नियमानुसार परिश्रम कराना बहुत जरूरी है। गाड़ी और हलके बैल यथेष्ट परिश्रम करते हैं, अतः उनके लिये व्यायामकी आवश्यकता नहीं होती; परन्तु यदि कामकी कमीके कारण ये बेकार पड़े रहते हों तो उन्हें भी व्यायाम कराना चाहिये। दूध देनेवाली गायोंको यथा नियम परिश्रम कराना आवश्यक है। क्योंकि परिश्रम न करनेसे उनके शरीरमें यथानियम रक्त संचालन नहीं होता, दूध देनेकी शक्ति कम हो जाती है, गोशाला रूप कारागारमें दिनरात पड़ी रहनेके कारण भूख कम हो जाती है, परिपाक शक्ति घट जाती है और वे बीमार पड़जाती हैं। अतएव गायोंको प्रति दिन स्वतन्त्रता पूर्व्वक चरागाहमें छोड़ देना चाहिये। इससे वे अपनी इच्छापूर्व्वक दौड़ती फिरती हैं और अपने अंगप्रत्यंगको संचालित कर सकती हैं। इसीसे प्रायः देखा जाता है, कि जो गायें दिनरात एक ही जगह बैठकर घास खाती हैं, उन्हें यदि छोड़ दिया जाय तो वे पूँछ उठाकर एक बार खूब दौड़ती है। गायोंकी यह सामयिक उत्तेजना केवल १५।२० मिनिटके लिये होती है। (१) दुग्धहीन गायों, बछियों और बछड़ोंको यदि वर्षा और कड़ी धूप न हो तो चरागाहमें तमाम दिन छोड़ देना चाहिये। वहाँ वे अपनी इच्छानुसार चर सकते हैं और दौड़ धूप मचाकर व्यायाम भी करते हैं। चरागाहमें यदि छप्परके घर हों तो वहाँ वे धूप आदिके

---

(१) गायकी इस सामयिक उत्तेजनाको बङ्गालकी साधारण भाषामें "बेङ्गाई" और बिहार तथा संयुक्तप्रान्तमें जहां तहां "माकना" कहते हैं।

समय विश्राम कर सकते हैं। अथवा यदि वहाँ बड़के बड़े पेड़ हों तो उसकी छायामें भी धूप और वर्षाके समय बैठ सकते हैं। बैलोंको व्यायाम कराना बहुत जरूरी है। नहीं तो थोड़े ही दिनोंमें उनके पेटमें चर्बी बढ़ जाती है और वे अकर्मण्य हो जाते हैं। इसलिये उन्हें प्रति दिन व्यायाम कराना चाहिये। उन्हें किसी हलकी गाड़ीमें जोतकर या दूसरे किसी तरीकेसे परिश्रम कराना चाहिये।

मैदानमें दूसरी गायों या बैलोंके साथ उन्हें छोड़ देना खतरनाक होता है। क्योंकि बैलोंका स्वभाव कोपयुक्त होता है, वे पालके अन्य पशुओंपर और कभी कभी आदमियोंपर भी आक्रमण कर बैठते हैं और तीक्ष्ण सींगोंद्वारा उन्हें घायल कर देते हैं। अतएव उन्हें ४०।५० हाथ-की खूब मजबूत रस्सीसे बाँधकर मैदानमें छोड़ना चाहिये। या दीवाल युक्त आँगनमें छोड़ देनेसे वे कुछ नुकसान नहीं कर सकते और चल फिरकर व्यायाम भी कर सकते हैं।

त्रयोदश परिच्छेद।

विश्राम और निद्रा

—*—:०:—*—

गायोंको नियमानुसार विश्राम करने और सोनेकी भी आवश्यकता होती है। दुग्धवती गायोंके सोने और विश्राम करनेमें यदि किसी तरहका व्याघात उपस्थित होतो वे नियमित दूध नहीं देती। यदि रातमें वे सो न सकें तो सवेरे दूध नहीं देती। यदि किसी दिन गाय दूध न दे तो सवेरे सबसे पहले इस बातका पता लगाना चाहिये, कि रातमें उसे अच्छी नींद न आनेका क्या कारण है। मालूम हो जानेपर उस

कारणको तुरन्त दूर कर देना चाहिये। दुग्धवती गायोंकी प्रकृति अत्यन्त मृदु होती है। रातको मच्छड़ या चीटीं अथवा और किसी कीड़ेके काट लेनेसे गायको नींद नहीं आती। उस समय उनकी दूध देनेकी शक्तिमें कमी आ जाती है। यदि इसी तरहका उत्पात एक सप्ताह भर बना रहे तो दूध बहुत कम हो जाता है।

दोपहरके भोजनके बाद गायोंको शीतल स्थानमें विश्राम करने देना चाहिये। उस समयमें खाई हुई चीजोंको शान्तभावसे रोमन्थन करती हैं अर्थात् पागुर द्वारा खाई हुई चीज़को फिरसे चबाकर पचनेके उपयुक्त बनातीं है। गायोंकी सृष्टि इस तरह हुई, जिससे वे शान्त भावसे विश्रामकर अपनी खाई हुई चीजोँको बारबार चबाया करती हैं। खानेके साथ ही खाई हुई चीज उनकी पाकस्थलीमें नही पहुँचती। गायोंका खाया हुआ भोजन पहले एक बड़ी रूमेन नामक पाकस्थलीमें जाती है लालाके संयोगसे गोलीके रूपमें परिणत होकर फिर द्वितीय और तृतीय पाकस्थालीमें जाती है और वहांसे फिर उनके मुँहमें आ जाता है। उस समय गायें फिर चबाती हैं। इसके बाद वह चतुर्थ पाकस्थलीमें जाता है। (१)

शामको आहार करानेके बाद उनके सोनेका प्रबन्ध कर देनेसे गायें और बैल आदि आरामसे लेटे हुए पागुर करते करते सो जाते हैं।

---

(1) "A portion of the food reaches the reticulam.............. ....the raticulam also communicated with the third stomach by an opening."
The feeding of Animal Page 110.

चतुर्दश परिच्छेद ।

:—*—*—*—:

शय्या.

—:—*—:—

शीत और वर्षाकालमें चटाई या पवाल बिछा देनेसे गायें उसपर आरामसे सोती हैं। नारवेमें गोगृह काठका बना होता है और उसके ऊपर भारतीय रबर या गाटापार्चा द्वारा गोगृहोंकी दीवालें और घरकी सतह मढ़ देते हैं जिसमें गायोंको चोट न लगने पावे। मच्छड़ गायोंको बहुत दिक करते हैं। मच्छड़ोंके काटनेके कारण उन्हें नींद नहीं आती। सोनेके स्थानमें गायोंके लिये मसहरीका प्रबन्ध होना चाहिये। गायोंके लिये 'बोरा' या मोटे कपड़ेकी मसहरी तैयार हो सकती है। किन्तु मसहरीको मट्टी और कीचड़से बचानेके लिये पहले चटाईकी दीवार खड़ीकर उसीपर मसहरी लगा देना चाहिये। जिसमें मसहरीमें गोमूत्र या गोबर आदि न लगने पावे। मसहरीको बेड़ेसे पीछे लटकाकर उसके साथ संलग्न कर देना चाहिये जिसमें वह सरकने न पावे। यदि अधिक गायें हों तो हमारे देशमें मसहरीका बन्दोबस्त नहीं होता। उसके स्थानपर मच्छड़ोंको दूर करनेके लिये शामको गोगृहोंके द्वारपर धुआँ कर दिया जाता है। गोशालाके आस पासका कूड़ा कर्कट एकत्र कर जला देनेसे भी यह काम चल सकता है।

इससे गायोंका घर भी साफ रह सकता है। इस तरह साफ रहनेसे मच्छड़ भी कम रहते हैं। बङ्गालमें पटुआकी डंठी जलाकर मच्छड़ोंको भगानेकी चेष्टा करते हैं। यदि धुएंसे मच्छड़ोंको भगाना हो तो रातमें दो तीन बार उठकर धुआँ करना चाहिये और इस बातका ख्याल रखना चाहिये, जिसमें आगके कारण गायों या गोगृहको कुछ नुकसान न पहुंचने पावे। कभी कभी गोशालोंकी आगसे सब घर

जलकर भस्म हो जाता है। मच्छड़ोंके काटनेसे दूध देनेवाली गायोंका दूध कम हो जाता हैं। गायोंकी सींगों और खुरोंमें सरसोंका तेल लपेट देनेसे मच्छड़ोंका उपद्रव कम हो जाता है। तुलसीके पत्तेका रस गायके शरीरमें लपेट देनेसे भी मच्छड़ नहीं लगते। गायोंकी सींगों और खुरोंमें सरसोंका तेल अच्छी तरह लगा देनेसे उन्हें सर्दी भी कम लगती है।

पञ्चदश परिच्छेद।

गोशाला वा गोगृह ।

गोशाला सुदृढा यस्य शुचिर्गोमय वर्ज्जिता।
तस्य वाहा विवर्द्धन्ते पोषणैरपि वर्ज्जिता ॥ ८४ ॥
शकृन्मूत्र विलिप्ताङ्गा वाहा यत्र दिने दिने।
निःसरन्ति गवां स्थानात् तत्र किं पोषणादिभिः ॥ ८५ ॥
पञ्च पञ्चायता शाला गवाँ वृद्धिकरी मता।
सिंहस्थाने कृता सैव गोनाशं कुरूते ध्रुवम ॥ ८६ ॥
(पराशरकृत कृषिसंग्रह।)

पराशरजीने गोशालाका विधान करते हुए लिखा है—कि गोशाला सुदृढ़ और गोमयवर्ज्जित होनी चाहिये। उसकी लम्बाई ५'५ हाथ होनी चाहिये और उसे ऐसे ऊंचे स्थानपर बनाना चाहिये जहां रोशनी और हवाकी खूब गुजर हो। किसी गीले और सीड़वाले स्थानपर गोशाला नहीं बनाना चाहिये। गोशाला ऐसी होनी चाहिये जो सदा साफ रहे और गोबर आदि वहां न रहने पावे। इसके लिये गोशालेमें एक नाबदान होना चाहिये, जिसमें गोबर और गोमूत्र शीघ्र निकल जाये। गायोंको इस तरह रखना चाहिये, जिसमें वे चारों ओर फिर न सकें। यदि गाय स्वच्छन्दतापूर्व्वक बैठ और सो सकें अथच फिर न सकें और उनके

पीछे पैरोंके पास नाली हो तो गोबर और गोमूत्र आदि बड़ी आसानीसे निकल जाता है। गायोंके शरीरपर नहीं पड़ सकता।

गोगृह यदि उत्तर दक्षिण लम्बा और पूर्व्व पश्चिम चौड़ा हो और दक्षिण और उत्तरकी ओर दो दरवाजे हों तो पूर्व्व और पश्चिमकी ओर गिनकर दो कतारोंमें गाये बाँधी जा सकती हैं और उनके ठीक बीचमें एक नाली हो तो दोनो कतारकी गायोंका गोबर और गोमूत्र उसीके द्वारा बाहर निकल जा सकता है। दोनो कतारकी गायें एक ही स्थानसे दूही भी जा सकती हैं। गायोंका मुँह और उनके खानेकी नाद बीचमें रखकर भी दो कतारोंमें गायें बाँधी जा सकती हैं।

गायोंका सिर दीवालसे लग जाये इस तरहसे रखनेसे भी गायें फिर नहीं सकतीं। गायोंके खानेके लिये मट्टीकी नाद, काठका कठौता या टीन अथवा पीतलका वर्तन दिया जा सकता है। इनमें काठका कठौता (टब) कम खर्चमें हो सकता है, परन्तु यह अच्छी तरह धोकर साफ नहीं किया जा सकता। इसी लिये उसका व्यवहार भी बहुत कम होता है। गायोंके भोजनका पात्र उनके गलेके बराबर ऊंचा रखनेसे गायोंको खानेमें बड़ी सुविधा होती हैं। खानेके पात्रको ईंटोंसे बाँधकर सीमेण्ट कर देनेसे, या पर्शलेनका टब वनानेसे बर्त्तन साफ़ रहता है। उसमें किसी प्रकारकी सड़ी गन्ध नहीं रह सकती। ईंटसे बने हुए टबमें यदि एक तरफ एक छोटासा छेद रहे तो धोया हुआ पानी उसी रास्तेसे बह सकता है और भोजन देनेके समय उस छेदको कार्क लगाकर बन्द कर दिया जा सकता हैं। जिन शहरोंमें पानीकी कलें हैं, वहाँ यदि दीवालोंमें एक एक कल हों और टबके ऊपर पानीके कलोंका मुँह हो तो उसके द्वारा टब बहुत अच्छी तरह साफ किया जा सकता है और इसके बाद पीनेका साफ पानी भी भर दिया जा सकता है।

प्रत्येक दो गायोंके बीचमें एक छोटी चार फोट ऊँची दीवाल हो तो एक गायके साथ दूसरे गायसे झगड़ा आदि नहीं हो सकता। इस

लिये दो गायोंके भोजन करनेके टबोंके बीचमें एक छोटीसी दीवाल बना देनी चाहिये। नहीं तो एक गाय अपना भोजन समाप्त कर दूसरी गायका भोजन खाने लगती है। किसी किसी गायमें दूसरी गायोंका खाना खा जानेकी प्रकृति होती है। प्रत्येक गायके खाद्य पात्रके सामने एक खिड़की होनी चाहिये। ताकि उससे रोशनी और हवाका गुजर होता रहे। प्रत्येक गायके लिये चार हाथ लम्बा और तीन हाथ चौड़ा स्थान होना चाहिये। बड़ी गायके लिये साढ़े चार हाथ लम्बा स्थान होना चाहिये। भोजनका पात्र पौन हाथ गहरा और एक या सवा हाथ चौड़ा होना चाहिये और ऊंचाई एक हाथ होनी चाहिये। नाबदान चार इञ्च गहरा होना चाहिये और यदि वह ढालुवां हो तो अच्छा है, क्योंकि ढालुवां होनेसे पानी ढाल देनेसे ही तमाम गोबर आदि बह जाता है।

घरके जमीनकी सतह एक या डेढ़ हाथ ऊँची होनी चाहिये। स्थानकी अवस्थाके अनुसार और भी ऊंची सतह बनाई जा सकती है। घरकी दीवालमें बांस नल या टीन या ईंट दी जा सकती है। यह कहना ही वृथा है; कि ईंटकी दीवाल अच्छी होती है। उससे गायकी देहमें सर्दी आदि नहीं लगने पाती। पक्का घर हो तो १० फीट ऊंचा होना ही यथेष्ट होता है। यदि दीवाल पक्की हो तो उसमें बहुत अच्छी पलस्तर करा देना चाहिये, जिसमें गायोंके भोजनके पात्रमें सुर्खी या चूना आदि न गिरने पावे। ज़मीनकी सतहपर तिर्छी ईंट जोड़कर सीमेण्ट कर देना चाहिये, जिसमें चिकनाहटके कारण गायोंका पैर न फिसलने पावे। दुग्धवती गायके पीछे, स्तनमें या थनमें गोबर आदि लग जानेसे वह नियमित दूध नहीं देती है। अतएव दूध देनेवाली गायके शरीरकी सफाईकी ओर विशेष नजर रखनी चाहिये।

सालके सभी मौसिमोंमें गोगृहकी जमीन सूखी और साफ रखनी चाहिये। हमारे देशकी प्रजाकी अवस्था वैसी अच्छी नहीं। इसलिये वे पक्का गोगृह नहीं बना सकती हैं। ऐसी दशामें गोगृहकी सतह ऊंची बनाकर उसे साफ रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

कभी कभी अगर सूखा बालू बिखेर दिया जाय तो सतह साफ और सूखी रह सकती है। गर्मीके दिनोंमें गोगृहोंका द्वार और खिड़की आदि खुली हुई रखी जा सकती है। शीत तथा वर्षा और तूफानके मौसिम-में उत्तरका द्वार दिन रात बन्द रखना चाहिये। दिनमें खोलकर रखना चाहिये। दरवाजेके ऊपर एक ऐसा छेद होना चाहिये, जिसके द्वारा घरमें हवा प्रवेश कर सके। दरवाजों तथा जंगलोंके किवाड़ काठके हो सकते हैं। इसके सिवा खूब मोटा पर्दा भी लटकाया जा सकता है। गोगृह १०।१२ फीट ऊंचा होना चाहिये और दूसरे तीसरे दिन उसकी पूरी सफाई होती रहनी चाहिये।

गोगृहमें गोवर और गोमूत्र अधिक देर तक पड़ा नहीं रहने देना चाहिये। आवश्यकतानुसार कभी कभी फिनैल या कार्बोलिक पौडर छोड़ देना चाहिये। गोगृहका नावदान भी रोज साफ़ करना चाहिये इस नावदानको बहुत दूर ले जाकर किसी बड़े नावदानमें मिला देना चाहिये। जिसमें गोगृहमें गन्ध न जाये। क्योंकि उससे गायोंके शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जहां गोवर और गोमूत्र खादके लिये व्यवहृत किया जाता है, वहां गोगृहके पीछे बड़ासा गढ़ा रखना चाहिये और गोवर आदि इकट्ठा होनेपर यथा समय वहांसे उठा लेना चाहिये। गायोंको भोजनके पात्रके निकट दो रस्सीसे बांधना चाहिये अर्थात गायोंके दोनों तरफ़ चार चार फीटकी दूरीपर दो खूंटे गाड़कर उसीमें गायको बाँधना चाहिये। दोनों रस्सी इतनी बड़ी होनी चाहिये और ऐसे तरीकेसे बाँधना चाहिये, जिसमें गायके उठने बैठनेमें किसी तरहकी तकलीफ़ न होने पावे। यदि दोनों खूटोंमें लोहेके कड़े लगा दिये जायें और एक सिरा उन कड़ोंमें बाँधकर दूसरा गायोंकी गर्दनमें बाँधा जाये तो गायोंको उठने बैठनेमें तकलीफ़ नहीं होती। इस तरह बाँधनेसे गायें बड़ी आसानीसे उठ बैठ सकती हैं। लोहेके दोनों कड़े बड़ी आसानीसे परिचालित हो सकते हैं। इससे गायके गलेमें कोई तकलीफ़ पहुँचनेकी आशंका

नहीं रहती। बैल, सांढ़ और बछियोंको भी इसी तरह बाँधना चाहिये। बैलोंको दूसरी गायोंसे दूर बाँधना चाहिये। क्योंकि यदि वे किसी तरह छूट जाते हैं, तो दूसरी गाय या बैल पर बड़े जोरसे हमला कर बैठते हैं। बैलोंको अधिक मोटी रस्सी अथवा लोहेकी जंजीरसे बाँधना अच्छा होता है। प्रत्येक गोशालामें बछड़ोंके रहनेके लिये, गायोंको दूहनेके लिये और घास आदि रखनेके लिये अलग अलग स्थान बनाना चाहिये। इसके अतिरिक्त गायोंके विश्रामके लिये एक आंगन भी होना चाहिये और उसमें गायोंकी संख्याके अनुसार खूंटे गाड़कर आवश्यकतानुसार गायोंको वहां बाँधना चाहिये। आँगनमें दूधवाली गायोंको छोड़ देनेसे वह दौड़ धूप भी मचा सकती हैं। प्रत्येक गोशालामें गोपालन सम्बन्धीय आवश्यक चीजें रखनेके लिये भी एक अलग घर रखना चाहिये। गोपालकके रहनेका घर भी गोशालाके निकट ही होना चाहिये। गोगृहोंका भीतरी भाग ऐसा बना होना चाहिये, जिसमें गायें साफ सुथरी रह सकें। दुग्धवती गायोंका मन शीघ्र ही चंचल हो जाता है और मनमें चंचलता आनेसे ही दूध कम हो जाता है। गायकी पूंछमें गोबर या गोमूत्र लगनेसे ही वह उनके शरीरमें भी लग सकता है। इसलिये कहीं कहीं रातको गायोंकी पूंछ किसी पतली रस्सी या तारमें बाँधकर ऊपरकी ओर बाँध देते हैं ताकि पूंछमें मलमूत्र न लगने पावे। हमलोगोंको यह तरीका सुविधा जनक नहीं मालूम होता। क्योंकि गायें अपनी पूछों द्वारा ही मक्खी और मछड़ोंको भगाती हैं और शरीरको खुजलाती हैं। पूंछ बाँधनेसे गायोंको तकलीफ़ और असुविधा होती है।

षोड़श परिच्छेद।

गोप।

"उरू यदस्य तद्वश्यः" (१)

गोभ्यः वृत्ति समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्म्मं नाधितिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः (२)

(१) भारतवर्षमें आर्योंकी एक शाखा गोपाल, खेती, लेनदेन और वाणिज्य किया करती थी। वे समाजकी जांघ अर्थात् मूलभित्ति स्वरूप थे। वेही आर्य जातिके धन कुबेर थे।

(२) समाजमें इनका स्थान बड़ा ऊंचा था। द्वापरमें नन्दगोपके यहाँ यदुवंशीय क्षत्रिय कुमार कृष्ण और बलदेवने अन्नादि खाया था।

(३) आजकल भी कहीं कहीं ऊंचे दर्जेके गोप हैं। मेदिनीपुर जिलेके गाप नामक स्थानमें विराट् राजके गोवास या गोगृह था। आज भी वहाँ गोपवंशीय नाराजोलके राजा बास करते हैं। परन्तु देशमें गोचर भूमिके अभावके कारण देशके गोप अपनी वृत्ति छोड़कर समाजमें हीन होते जाते हैं।

(४) यदि गोप फिर अपनी वृत्तिकी रक्षा आरम्भ करें और दृढ़ प्रण कर गो जातिकी उन्नति करें तो उनकी स्वजातिकी उन्नति हो सकती है।

(५) गोप दृढ़व्रत और एक निष्ट होकर प्रतिज्ञा कर लें कि अपनी वृत्ति किसी दूसरेको नहीं करने देंगे तो फिर पूर्व्व कालकी भाँति यहाँ दूध-दही सस्ता हो जाये और देशमें गोजातिकी वृद्धि हो जाये।

(६) उपर्युक्त शिक्षाकी कमींके कारण देशके ग्वालोंका अत्यन्त अधःपतन हो गया है। वे अब अपनेको गोप कहते लजाते हैं।

(१ ऋग्वेद। (२) महाभारत शान्ति पर्व्व।

जब गोपालनकर भगवान गोपाल और गोविन्द हुए थे तब गोपालन घृणाका विषय क्योंकर हो सकता है ? यदि गोप समाजमें वैश्य बन कर आदर और गौरव प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें चाहिये, कि गोपालन करें। यदि वे नौकरीकी चेष्टा छोड़कर गोपालन-विद्या सीखें तो देशकी धन वृद्धिके उपायके साथ ही स्वदेश और स्वजातिकी खूब उन्नति कर सकते हैं।

(७) हम यह सुनकर चकित होते हैं, कि आस्ट्रेलियामें किसी गोपके पास पचास हज़ार गाये हैं, परन्तु एक दिन वह भी था, जब नन्द गोपके पास नौ लाख गायें थी। यह कविकी कोरी कल्पना या किसी उपन्यासकी बात नहीं है। यदि गोपगण फिरसे अपने धर्म्मका उद्बोधन करें तो इस बातकी सत्यता देख सकते हैं।

(८) गोपोंको चरितवान और अपने सजातियोंके प्रति प्रेमवान होना चाहिये। गोपालकोंका परिश्रमी और कर्मठ होना ही आवश्यक है। कुछ रात रहते ही उठकर गायोंके खानेका पात्र साफ़ कर गायोंको सवेरे खिलाना चाहिये। गोपालकको सदा साफ़ सुथरा रहना चाहिये।

(९) गायें मैली रहती हैं तो दूध कम देती हैं। यदि गोपगण केवल कर्त्तव्य कार्य्यका ख्याल छोड़कर गायोंका प्यार करें तो निश्चय ही वे अपने प्रेमका प्रतिदान प्राप्त कर सकते हैं। गोपगण भी अपेक्षाकृत सुस्थ रह सकेंगे। गायें अधिक दुग्धवती होंगी।

सप्तदश परिच्छेद ।

गोजातिकी आयु ।

दांत तथा सींगं द्वारा उमरका निर्णय ।

आम तौरपर लोग कहते हैं, कि गायें २२ वर्ष तक जीती हैं। साधारणतः इतनी ही जीती हैं, परन्तु बहुत सी गायें तथा बैल २७।२८ वर्ष तक जीते हैं। एक गायने २० बच्चे दिये थे। इस गायने तीन वर्षकी उमरमें पहले-पहल बच्चा दिया था, इसके बाद प्रति पन्द्रह महीने पर उसका प्रसवका हिसाब रखा जाय तो उसने २३ वर्ष ५ मासकी उमर तक बच्चे दिये थे। उसके बाद १ वर्ष ३ मास और जीनेसे ही २८ वर्ष पूरा हो सकता है ।

दो वर्ष पांच मास या छः मासकी ऊमरमें गोजातिके दूधके दांत गिर जाते हैं, और उनके स्थानपर दो नये दांत निकलते हैं। इसके बाद प्रति वर्ष दो दांत निकला करते हैं। इस तरह पांच वर्षोंमें आठ दांत होते हैं। उसी समय गाय पूर्ण यौवन प्राप्त कर सकती है। इसके आठ या दस वर्षके बाद दांत क्षय होने लगते हैं। और बीस वर्षके भीतर हो बिल्कुल क्षय हो जाते हैं। दाँत घिस जानेपर भी गायें बच्चे देती हैं। इसीसे कहीं कहीं कहावत है कि गाय आँतसे बूढ़ी होती है और बैल दांतसे बूढ़े होते हैं। इसी तरह बाल्य कालसे बूढ़ापे तक उमरका निर्णय किया जाता है।

सर्व प्रकारके स्तन पायी जोवोंकी स्त्रियाँ जब गर्भवती होती हैं, तब उनके शरीरके रक्तका अधिकांश उनके गर्भकी पुष्टिमें लगता है। इसी लिये प्रायः गर्भवतीके शरीरमें रक्तकी कमो या घाव हो जानेसे प्रसवसे पहले नहीं आराम होता। शरीरके अन्यान्य अँशोंकी अपेक्षा शरीरका केश कम जरूरी चोज़ होता है। इसीलिये गर्भके समय औरतोंके बाल झड़ जाते हैं। गायोंके शरीरमें स्वल्प प्रयोजनीय उनकी सींगे होतो हैं। इसोलिये गर्भवस्थामें सींगोंका बढ़ना रूक जाता है।

फिर प्रसवके बाद सींगे अपना स्वाभाविक आकार धारण कर बढ़ने लगती हैं। इसीलिये प्रत्येक गर्भकालमें सींगपर एक दाग पड़ जाता है। इसी दाग़ द्वारा यह मालूम हो जाता है, कि गायने कितने बच्चे दिये हैं। तीन वर्षकी ऊमरमें गाय पहला बच्चा देती है। इसके बाद प्रति पन्द्रह महीने पर एक बच्चेके हिसाबसे जोड़कर उसमें तीन वर्ष और मिला देनेसे गायकी ऊमरका निर्णय किया जाता है। परन्तु इस तरहके हिसाबमें फरक भी पढ़ जाता है, क्योंकि सभी गायें तीन वर्षकी उमरमें ही बच्चे नहीं देतीं। कोई कोई गायें १॥ वर्ष और दो वर्षकी उमरमें भी बच्चे देती हैं। बहुतसे व्यवसायी गायोंकी सींगे घिसकर उसपर का दाग़ मिटा देते हैं। इससे उनकी उमरका पता नहीं लगता। पहले जमानेमें गायें प्रति बारहवें महीने बच्चे दिया करती थीं इन्ही बारह महीनोंका नाम "वत्सर" पड़ा है (१)

अष्टादश परिच्छेद।

गायोंको बिना सींगकी बनानेकी बिधान।

काष्टिक पोटासको पानीमें मिलाकर वत्सोंकी सींगको जगह लगा देनेसे उनकी सींगे नहीं निकलतीं। छूरी द्वारा सींग काट भी दी जाती है। सींग काटनेवाली छूरी युरोपकी बहुतसी दूकानोंमें बिकती है।

दाक्षिणात्यमें जब बच्चा आठ दस दिनका हो जाता है, तो उसकी सींग की जगह पर गरम लोहेसे दाग़ देते हैं। इससे भी सींग नहीं निकलती। भगवानने गायोंकी आत्मरक्षाके लिये सींगे बनाई हैं। परन्तु सींगवाली गायोंकी प्रकृति कुछ उग्र होती है और सींग हीना गायोंकी प्रकृति मृदु हो जाती है, इसीसे युरोपवाले गायोंको सींग बिहीना बनारहे हैं।

---

(१) वत्स शब्दके उत्तर अस्त्यर्थमें र प्रत्यय।

उनविंश परिच्छेद ।

गो-मूल्य ।

—:※:—

भारतवासियोंके लिये गाय एक अमूल्य धन है। अति प्राचीन कालमें यहाँ गायें ही खरीद फरोख्तमें रुपयेका काम देती थीं। गो द्वारा ही सब प्रकारकी चीजोंकी खरीद बिक्रीके मूल्यका आदान प्रदान हुआ करता था।

इसके बाद भारतमें कौड़ी द्वारा मूल्यके आदान प्रदानका काम होने लगा। उस समय एक दुग्धवती गायका मूल्य दो काहन कौड़ी निर्धारित होता था। दो काहन कौड़ीका मूल्य एकरूपयेके २।३ अंशके बराबर होता था। परन्तु सुलक्षणा गायोंका दाम अधिक होता था। आईने-अकबरीमें लिखा है, कि अकबर बादशाहके जमानेमें जब १ सेर दूधका दाम १ पैसा था और एक सेर घीका दाम चार पैसा था, उस समय भी अच्छी दुग्धवती गायोंका मूल्य १० से २० मोहर तक था। किसी किसी गायका मूल्य १०० मोहर होता था। बादशाहने स्वयं लाख "दाम" अर्थात् ५०००) रूपयमें दो गायें खरीदी थीं। (१)

विभिन्न देशों और विभिन्न मौसिमोंमें गायोंके मूल्यमें विशेष न्यूनाधिक्य होजाता है। जिस देशमें जिस जातिकी गाय उत्पन्न होती है, उसे वहांसे किसी दूसरे प्रदेशमें ले जानेपर उनका मूल्य बढ़ जाता है।

भारतके कई प्रदेशोंमें बैसाखसे लेकर कुवार तक खेतोंमें फसल रहती है और बरसातमें बहुतसी जमीन पानीमें डूबी रहती है इससे चारेकी बड़ी कमी रहती है। उस समय अनाहार तथा नाना प्रकारके रोगोंके कारण, विना चिकित्साके बहुतसी गायें मर जाती हैं। उस

(1) His Majestry once bought a pair of Cows for 2 lacs of dams (Rs. 5000). Vide 1 of Ain-i-Akbari by Blochman.

समय खेतीका काम भी नहीं रहता। इससे गृहस्थ अपनी गायों और बैलोंको बेच देते हैं। इससे उस समय गायोंके मूल्यमें कमी होजाती है।

गायोंका मूल्य उनके वंश और दूधकी अधिकता पर निर्भर रहता है। हांसी, गुजराती और मुलतानी गायके-बछड़ेका दाम ५०) से लेकर २००) तक होता है। कलकत्तेमें ये गायें १५०) से ३००)पर बिकती हैं। नेलोर, अमृत महाल और हांसीके एक जोड़ा बैलका दाम साधारणतः २००) से ५००) तक होता है।

बङ्गला सन् १३२१ के कुवार महीनेमें कलकत्तेके "हितवादी" नामक समाचार पत्रमें लिखा गया था, कि पञ्जाबसे एक हांसी जातीय बैल १३००) पर ब्रेजिल देशमें गया था।

एक गाय २४ घण्टेमें जितना दूध देती है उसका दाम पहले फी सेर आठ रुपया या दस रुपये सेरके हिसाब बेची जाती थी। आज कल फी सेर १५) १६) और यहां तक कि २०) सेर तक हो गया है। अर्थात् जो गाय चार सेर दूध देती है, उसका दाम आज कल ८०) हो गया है। दस सेर दूध देनेवाली गायका दाम २००) और १२ सेर दूध देनेवाली गायका दाम २४०) होता है।

इस ग्रन्थकारने कलकत्तेके चितपुर हाटसे एक मुलतानी गाय खरीदी थी, वह प्रति दिन १२ सेर दूध देती थी। उसके लिये २३२) देना पड़ा था।

युरोप अमेरिकामें गो दुग्ध और नवनीतकी प्रदर्शनियोंसे पदक प्राप्त गायें अधिक दामपर बिकतीं हैं। विशिष्ट वंशकी गायें सदैव ही अधिक दामोंपर बिकती हैं। कमेट नामक प्रसिद्ध साँढ़ १५०००) पर बिका था। कमेटसे उत्पन्न लौरा और लेडी नामक प्रसिद्ध गायोंसे उत्पन्न एक सालभरका बाछा और एक साल भरकी बछिया, यथाक्रम ४२००) और ३०००) की बिकी थी। हारकूईलिस और हुबे नामक प्रसिद्ध बैल

यथाक्रम तीस और पचास हजार रुपयेका बिके थे। अमेरिकाके न्यूया-र्कशायरके मि० केम्बवेल नामक गोपालकी "डचेजी आव जनेवा" नाम्नी क्षुद्रश्रृङ्गी गायको इङ्गलैण्डके ग्लोवेष्टरशायरके निवासी पेविनडेविस साहबने १, २१, ८००) देकर खरीदा था। (१)

विंश परिच्छेद ।

गोपालनके उपयोगी द्रव्य ।

युरोप, अमेरिका और इङ्गलैंडमें गोजातिकी उन्नतिके लिये असाधारण यत्न और चेष्टा हो रही है। समिति, कन्ट्रोलिङ्ग समिति, गो-प्रदर्शनी और मखन-प्रदर्शनी स्थापित होनेके कारण नाना प्रकारके तत्व आविष्कृत हुए हैं। उसीके साथ गोपालनके व्यवसाय सम्बन्धीय कितने ही वैज्ञानिक सामान भी तैयार हो गये हैं। वही सब चीज़ें गोपालनके लिये व्यवहारकी जाती हैं। हमारे देशमें मैदानसे घास काटकर लानेके लिये, खुरपा, हसिया और निरानेके लिये खुरपी और घासको टुकड़े टुकड़े करनेके गँड़ासा व्यवहार किया जाता है। गायोंको खिलानेके लिये मट्टीकी नांद, दूधकी ठिलिया और कहँतरी तथा गायोंको बांधनेके लिये पगहा, बस यही आवश्यकीय चीज़ें हैं।

किन्तु विलायतकी गोशालाओंमें इसके अतिरिक्त और भी नाना

---

(9) Of the sale by auction, ...the herd of Mr., Campbell of New york Mills, near Utica, when 108 animals realised £380,000 of these 10 were bought by British Breeder, 6 of which of the Duches family, averaged, £ 24,517, and one of them, English Duchess of Geneva was bought for Mr. Pavin Davies of Glovcestershire, and the unpre cedented price of £ 8120.

Encyclopaedia Britannica (9th., Edition) Page 387, 388

प्रकारकी चीज़ें व्यवहार होती हैं। विलायतमें, घास काटनेकी मेशीन, साइलेज काटनेकी मेशीन, और दूध दूहनेकी मेशीन, दूधका जांच करनेकी कल (लेक्टोमेटर) मक्खन उठानेकी कल,, खोवा और पनीर बनानेकी कल, दूध नापनेकी कल आदि बहुत तरहकी चीज़े बनी हैं और गोशालाओंमें व्यवहार की जाती हैं।

एकविंश परिच्छेद !

गायोंके शुभाशुभ लक्षण।

किसी किसी गायकी पीठमें एक चक्र चिन्ह होता है, उसे दल चिन्ह भी कहते हैं। इस चिन्हकी गाय खरीद कर लानेसे एक दल गायें हो जाती हैं। गायोंकी छातीमें दोनों रोयोंका चक्र होता है। यह चक्र यदि एक ही ओर हो तो बहुत ही अशुभ है। जिस गायको ऐसा चक्र होता है; वह जहां रहती है, वहां दूसरी गायें नहीं रह सकतीं। गायोंके सिरमें आँखके ऊपर भागमें माल्य चिन्ह हो तो, उसका खरीदार यदि विपत्नीक हो तो शीघ्र ही विवाहित हो जायगा और सपत्नीक रहनेपर पुनः स्त्री पानेकी सम्भावना रहती है। कूबड़के पीछे या ठीक सामने यदि चक्र चिन्ह हो तो बड़ा ही शुभ होता है। गायका यह चिन्ह उसके मालिकके लिये बड़ा ही शुभ होता है। पेटके बीचमें मूत्र नाली के ऊपर एक चिन्ह होता है, उसे नीर-चिन्ह कहते हैं। इस चिन्हकी गाय खरीदनेवालेका वंश नदीकी तरह बढ़ता है या भस्म हो जाता है। इसलिये इस तरहकी सन्दिग्ध लक्षणकी गायको खरीदनेसे लोग हिचकते हैं। यदि गायकी पीठको वेष्टन किये एक ऊपरकी ओर चक्ररहे तो वह खरीदार की भविष्य उन्नतिका सूचक होता है और यह चक्र यदि उर्द्ध मुखीन होकर निम्न मुखी हो तो खरीदारके लिये बड़ा ही अशुभ है।

गलकम्बल कुछ ऊपर गलेकी बगलमें यदि आवर्त्त हो तो उसे लक्ष्मी-चिन्ह कहते हैं। वह गोस्वामोके लिये अत्यन्त शुभ चिन्ह है। इस तरहकी चिन्हवाली गायें बहुत कम मिलती हैं। इस चिन्हके बैल भी बड़े शुभप्रद होते हैं। इस तरहके बैलोंका दाम बहुत ही अधिक होता है।

अशुभ चिन्ह ।

गायोंके ललाटपर यदि चक्र हो और वे मिलकर त्रिभुजाकारसे हो गये हों, तो ऐसे चिन्हको शिवका त्रिनेत्र कहते हैं। इस त्रिभुजका कोई कोना यदि खुला हो तो वह बड़ा ही अशुभ चिन्ह समझा जाता है। इस चिन्हवाली गायके सामने जो होता है, वही भस्म हो जाता है। गायके कपालमें एक चक्रके ऊपर यदि एक और चक्र हो तो

उसका पालक बार बार विपद्में पड़ा करता है। यदि किसी गायके पैरको मणिवन्ध रेखामें आवर्त्त भवँरी हो तो उसका मालिक जेल जाता है। पीठके बीचमें दोनों ओर भवँरी हो तो गोस्वामी शीघ्र मरता है। यदि गायके चूतर पर भवँरी हो तो उसका मालिक व्यवसायमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

शुभ लक्षण ।

होंठ, जीभ, और तालूका रंग ताम्र वर्ण, कान छोटा, पेट देखने सुन्दर, झोलीकी भांति लम्बी दुम और कम रोएँवाली, शरीरके रोएँ नरम नरम, और मनोहर, और दांतोंकी संख्या नौ या छ हो तो गोस्वामीके लिये शुभ होता है। दाँतोंकी संख्या ७ अशुभ है। जिन साँढोंकी आँखे काली और पीली मिली हुई होती हैं, शरीरका रङ्ग सफेद होता है, और सींग ताम्रवर्णकी होती वे शुभदायक होते हैं।

होंठ, तालू, जीभ काली हो तो अशुभ लक्षण समझना चाहिये। ऐसा बैल गृहस्थके लिये कष्टदायक होता है।

द्वाविंश परिच्छेद ।

गायोंके मिलनेका स्थान ।

बँगालके हर एक जिलेमें गायों और बैलोंका बाजार लगता है। किसान ऋणग्रस्त होने, पर गायों और बैलोंके दुबले और कमजोर हो जानेपर उन्हें बेंच देते हैं। मैमनसिंह जिलेमें इस तरहके हाट या बाजार १६ और चौबोस प्रगनेमें १६६५ हैं।

सके अतिरिक्त मेलोंमें भी गायों और बैलोंको खरीद-बिक्री होती है। इसके लिये रङ्गपुर तथा दिनाजपुरके मेले बहुत प्रसिद्ध हैं। गोव्यवसायी इन मेलोंमें पश्चिम प्रदेशोंसे गाय और बैल लाकर बेंचते हैं।

कार्तिक महीनेके अन्तमें, शीतऋतु आरम्भ होने पर बँगालमें मेले होते हैं। सोनपुरके मेलेके बाद बहुतसी गायें और बैल रेलगाड़ी द्वारा कटिहार जंकशन होकर ढाका, मैमनसिंह, कुमिल्ला और सिलहट आदि स्थानोंमें जाते हैं। इसलिये पहले राहमें रङ्गपुरमें और दीनाजपुर बड़े बड़े मेले होते हैं। सबसे पहले दिनाजपुरके आलवाखोया नामक स्थानमें नवेम्बरके अन्तमें एक मेला होता है। उसी समय रङ्गपुर देवटी (Dewti) नामक स्थानमें भी एक मेला होता है। दिसम्बरमें दिनाजपुरके माटुरिया और रङ्गपुरके बदरगंजमें और जनवरीमें मैमनसिंहके जमालपुर नामक स्थानमें मेला आरम्भ होता है। फरवरी महीनेमें दिनाजपुरके धोलदीघी और रङ्गपुरके दरवानी नामक स्थानमें तथा मार्चमें दिनाजपुरके हरिपुर, और अप्रेलमें नेकमर्द्दनका वृहत् मेला आरम्भ होता है। केवल नेकमर्द्दनके मेलेमें एक महीनेके भीतर २६००० गोजाति बिकती है। आलवाखोयामें १६०००, धौलदीघी और दरबानीमें बीस बीस हजार, और जमालपुरमें १३५०० गायें और बैल बिकते हैं।

साधारणतः पश्चिम देशके व्यवसायी, महाजनोंसे उधार रुपये लेकर सोनपुरमें हरिहरक्षेत्रसे, पुर्नियाके किशोरगंजसे, बेतियासे और पश्चिमोत्तर

प्रदेशके गोरखपुर नेपाल, और सिकिम आदिके मेलोंसे गाय आदि खरीदकर लाते हैं और इन मेलोंमें बेचते हैं। वहां जो गायें आदि नहीं बिकतीं उन्हें पवना, ढाका और मैमनसिंह आदि स्थानोंमें लाकर बेंचते हैं। नीचे बँगालके प्रधान मेलों और हाटोंकी सूची दी जाती है।

—:-※-:—

गायोंका मेला।

जिला	थाना	ग्राम	समय
”	कोतवाली	काशीडांगा	१५ से ३० फागुन तक
”	दिनाजपुर	विरुप	२० अगहनसे आधेपूस तक
”	नवाबगञ्ज	भादुरिया	१५ दिसम्बरसे १८ जनवरी तक
”	घोड़ाघाट	घोराघाट	आधे नवम्बरसे आधे दिसम्बरतक
”	कालियागञ्ज	कुकवामनी	८ से २० मई तक
”	ईटाहार	पुष्प्रति	१४ अप्रेलसे १३ मई तक
”	ठाकुर गाँव	हरनारायणपुर	११ दिसम्वरसे ११ जनवरी तक
”	”	गाविथा	१५ से ३० फागुन
”	”	शिवगंज	३ फरवरीसे २ मार्च तक
”	आतावथाबी	आलुथाखोवा	३३ नवम्बरसे २८ नवम्बर तक
”	पीरगंज	बोचागंज	२५ मार्चसे १० अप्रेल तक
”	वाणीशंकर	हरिपुर	१ से १५ मार्च तक
”	”	नेकमर्द्दन	१ से ३० अप्रेल तक
”	वीरगंज	धामधाभी	दीवालीके समय १५ दिन
”	फूलवाड़ी	चिन्तामणि	५ वैसाखसे ५ जेठ तक
”	गंगारामपुर	धोलदीधी	८ से २८ फरवरी तक
”	बालूरघाट	पतिराम	२५ जनवरीसे २० फरवरी तक
रङ्गपुर	पीरगंज	वेण्ड़ाबाडी	१६ जनवरीसे १५ फरवरी तक
”	”	लीलदीधी	जनवरीमें

”	बदरगञ्ज	बदरगञ्ज	२७ दिसम्बरसे ५ जनवरीतक
”	महीगञ्ज	देउती	१५ नवम्बरसे १२ दिसम्बर तक
”	डोमर	पाङ्गा	१४ जनवरीसे १२ फरवरीतक
रङ्गपुर	निलफामारी	दारवाणी	१७ फरवरीसे २० मार्च तक
”	जलढाका	किशोरीगञ्ज	१ नवम्बरसे १२ दिसम्बर
”	”	बड़भिटा	१ दिसम्बरसे ३० दिसम्बरतक
पाबना	सारा	अरुणथल	नवम्बरसे मई महीनेके (प्रत्येक मङ्गलबार)
मैमनसिंह	जमालपुर	जमालपुर	१ माघसे ३० चैत्र तक
गारोहिल		गारोबोधा	” ”

गायका बाज़ार ।

जिला	थाना	हाट	बार	प्रति हाटमें गो-संख्या
कलकत्ता		काशीपुर चित्पुर		
२४ परगना	दमदमा	गौरीपुर	सोमवार	५००
”	”	नागफा बाजार	मङ्गलवार	४००
जशोहर	सबेमा	बेनापोल	शुक्रवार	८००
खुलना	बागेरा हाट	चितलमारी	सप्ताहमें दो दिन	३००
बर्द्धमान	कुतुग्राम	पञ्चादि हाट	वृहस्पतिवार और रविवार	६००
बर्द्धमान	आसनसोल	लालगञ्ज	वृहस्पतिवार	१०००
मेदिनीपुर	दाँतन	धनगाछि	”	५००
”	खड़गपुर	टेङ्गराबिन्दा	रवि, वृहस्पति	४००
हावड़ा	उलुबेड़िया	गरुहाटा	शुक्रसे रविवार	३५०
बाँकुड़ा	कोटालपुर	कोटालपुर	शुक्रवार	४००

वीरभूम	साँइथिया	साँइथिया	शनिवार	६००
राजशाही	महादेवपुर	माताजीकी हाट	वृहस्पतिवार	४००
”	नन्दीग्राम	रामवाघा	शुक्रवार	६००
दिनाजपुर	चिरि वन्दर	विथिमुड़ी	”	१००० (१)
मालदह	तुलसीहाटा	तुलसीहाटा	रवि, मङ्गलवार	१५००
पावना	पावना	दोगाछी	रविवार	३०००*
”	”	एकदन्त	वृहस्पतिवार	४०००*
”	सारा (आउट)	अरुणखल	मङ्गलवार	२०००*
ढाका	नारायणगञ्ज	माधवदि	सोमवार	५००
”	मनोहरदि	चालाकचड़	सोमवार	१०००
”	रायपुरा	पुटिया	शनिवार	५००
मैमनसिंह	गफरगाँव	साएटीया	सोमवार	३५०
”	ईश्वरगञ्ज	लक्ष्मीगञ्ज	रवि, मङ्गलवार	५००
”	”	गोविन्दगञ्ज (रायबाजार)	सोम, शुक्रवार	१०००
”	”	गौरीपुर	मङ्गलवार	७००
”	टाङ्गाइल	करटिया	वृहस्पतिवार	५००
”	बाजितपुर	फतेहपुर	शनिवार	३५०
”	किशोरगञ्ज	इद्खाना	शुक्रवार	२५०
फरीदपुर	मादारपुर	कृष्णपुर	बुधवार	२०००(१)
वाखरगञ्ज	गौरनदी	टर्की	शुक्र, मङ्गलवार	३००
नोआखाली	सुधाराम	शान्तसीता	रवि, बुधवार	३००
त्रिपुरा	दाउद्कान्दी	इलियट्गञ्ज	वृहस्पति, शनिवार	८००

दारजिलिङ्ग, जलपाइगुड़ी और चट्टग्राममें कोई उल्लेख योग्य हाट नहीं। रङ्गपुरमें वर्षमें अधिकाँश महीनेमें मेला होता है, इसलिये अच्छा बाज़ार नहीं होता है।

(१) एक वर्षका * महीनेका

त्रयोविंश परिच्छेद ।

गो-प्रदर्शनी ।

बङ्ग देशमें गो-प्रदर्शनियाँ बहुत कम होती हैं ; परन्तु मद्रासमें बहुत होती है, परन्तु उसमें भी यूरोप या अमेरिकाकी भाँति प्रतियोगिताका भाव नहीं दिखाई देता । अधिक पुरस्कारका प्रलोभन रहे विना कोई भी बहुत दूरके स्थानसे गाय नहीं लाया चाहता ।

कैलिम्पाङ्गमें नवम्बर मासके अन्तमें और सुरीमें जनवरीके आरम्भमें एक अच्छी गो-प्रदर्शनी हुआ करती है। सुरीमें ३००—६०० तक गायें दिखाई जाती हैं । हेतमपुरमें भी प्रतिवर्ष बसन्तपंचमीके समय एक छोटी प्रदर्शनी हुआ करती है। १९१३ ई० में खुलनेमें एक गो-प्रदर्शनी हुई थी। मालदह, मुरशिदाबाद, मेदिनीपुर और फरीदपुरमें भी सामान्य भावसे गायें दिखाई जाती है। सन् १९१५ ई० की केटल सेन्सस रिपोर्टमें डिरेकृर आफ एग्रिकलचर मि० जे० आर० ब्लैकउड आई० सी० एस महोदयने गोजातिकी उन्नतिके लिये प्रत्येक स्थानमें गो-प्रदर्शनी करना गवर्नमेण्टका अवश्य कर्त्तव्य बताया है। (१) हमें आशा है, कि सरकार इस साधु उद्देश्यमें धन व्यय करनेमें कुण्ठित न होगी ।

—:※:—

(१) It is desirable, I think, for Govermnent to encourage such exhibitions for the purpose of educating the people by every possible means in the desirability and necessity of improving cattle.

A Survey and Census of the Cattle of Bengal.

by J. R. Blackwood L. L. B I. C. S. Page 39.

चतुर्विंश परिच्छेद ।

गो-संख्या गणना ।

पहले ही कहा जा चुका है कि भारतवर्षमें गो-जातिकी गणनाकी प्रथा अति प्राचीनकालसे प्रचलित थी। विराट राज महलमें और कुरु राजाओंके समयमें गो-गणोंको गणनाके सम्बन्धमें महाभारतमें लिखा है। शिक्का देवराज उदियारके राजत्वकालमें और टीपूसुलतानके शासन समयमें राजागण स्वयँ उपस्थित रहकर गायोंकी गिनती कराते थे। यह भी इतिहाससे मालूम होता है।

अँगरेज गवर्नमेण्टके समयमें वंगालको छोड़कर सब प्रदेशोंकी गो-जातिकी गणना पहले ही हो चुका थी। मध्य भारतके Director of agriculture मिस्टर लो साहवने १९१२ ई० में वङ्ग देशके अतिरिक्त अन्य स्थानोंकी गो-संख्या प्रकाशित कीं थी। १९१५ ई० में मिस्टर जे० आर ब्लैकउड एल० एल० बी० आई० सी० एस० साहबने वङ्गदेशोंकी केटल सेन्सस रिपोर्ट प्रकाशित की, उसमें वङ्ग देशकी गायोंके सम्बन्धमें बहुतसी आवश्यक वात लिखी हैं। उनको ३४ पृष्ठकी रिपोर्टके पहले तीस पृष्ठोंमें गो-सम्बन्धी और बाकी ४ पृष्ठोंमें भैंस सम्बन्धी बातें लिखी हैं। १६ परिशिष्ट ५५६ गाय भैसोंके चित्र हैं।

समस्त बँगालमें २४९१६५६३ गाये और ४३६२७५ भैस हैं। ये दोनों जातिके पशु मिलाकर कुल २५३५५८३८ हैं।

इस रिपोर्टमें लिखा है, कि पृथ्वीमें वङ्ग देशी अधिकांश गायें इतनी हीन अवस्थामें आ पहुँची है, कि कृषकोंको उन्हें भोजन देकर बचा रखना क्षतिजनक हो गया है। (१)

---

(१) The average cow is such a wretched specimen that the cultivator can not afford to feed her better than he does—

(१) When the union had been properly supplied with bulls the experiment might be tried of inducing the villagers to cast all the weedy bulls within the union. It is probable that the villagers would agree to this, provided that a sufficient supply of good bulls was available. The assistance of the panchayat would again be of the greatest value in getting this measure carried out. This measure has been carried out with the most satisfactory results in the Andaman Islands, p. 24 Cattle Census Reporter.

बङ्ग देशीय इस अधः पतित गो-जातिकी उन्नतिके लिये इस रिपोर्ट में प्रत्येक जिलेके प्रत्येक यूनियनमें गवर्नमेण्टको अच्छा साँढ़ रखनेकी सलाह दी गई है। और उनकी परीक्षा कर केवल साढ़ोंको बैल बना देनेसे ही फिर दुर्वल गोवंशकी वृद्धि रुक जानेकी बात कही गई है। ऐण्डामन द्वीपमें इसी तरह गो-जातिकी उन्नति हुई है (१) हम भी इस मतका पूर्ण समर्थन करते हैं।

इसी रिपोर्टसे मालूम होता है, कि निम्न बङ्गमें गो-खाद्य घासके अभावसे गो-जाति क्रमशः निर्मूल होती जा रही है। प्रत्येक वर्ष उत्तर पश्चिम और बिहार प्रदेशसे गाय-बैल लाकर बँग देशको खेतीका काम चलाया जाता है। हमलोगोंका यह बँगदेश गो-गणके लिये यमालयके समान हो गया है। यदि कोई कटिहार जंकशनमें नवेम्बर अथवा दिसम्बर मासके किसी दिन भी जाये तो वह देख सकेगा कि बिहार और उत्तर पश्चिम अञ्चलसे तथा बिहारसे एक गो-प्रवाह रङ्गपुर दिनाजपुर, वगुड़ा, ढाका, मैमनसिंहकी ओर वहा जा रहा है। और इधर आकर ही फिर वह निर्मूल हो जाता है। फिर दूसरे वर्ष वह क्रिया इसी तरहसे चला करती है। (२)

---

(२) If anyone stands on the platform of the Katihar Railway Station on any day during November and December one is likely to see many trains full of these bullocks going south. Sometimes they find their way to the various fairs, which are held chiefly in the Districts of Dinajpur and Rangpur. Sometimes the cattle however, are purchased directly at the Sonepur fair and go straight to the plough. P. 10.

पाँचवाँ खण्ड।

प्रथम परिच्छेद।

दूध।

दूध, मानव जीवनको पोषण करनेवाला श्वेत वर्ण अस्वच्छ, तरल पदार्थ है। पहले ही कहा जा चुका है, कि मानव जीवनको धारण करनेके उपयोगी सभी उपादान इस गो-दुग्धमें विद्यमान हैं। ये बड़े बड़े हाथी, बड़े बड़े घुड़सवार जो बड़े बड़े घोड़ोंपर सवार हो, युद्ध क्षेत्रमें जूझते और विचरते हैं वे, हाथी, घोड़े, योद्धा, सभी एक दिन माताके गर्भसे चैतन्य विशिष्ट जड़ पिण्डवत भूमिष्ठ हुए थे। पहले स्तनका दूध पीकर ही ये सभी पुष्ट और सुगठित जीवमें पतित हुए हैं। गोदुग्धमें बच्चेके जीवन धारणोपयोगी एनाबोलिक तथा मेटाबोलिक दोनों ही पदार्थ विद्यमान हैं (१।

दूधकी अस्वच्छताका कारण यह है, कि उसमें जलीय परमाणुके साथ घीके परमाणु ल्यूकोसाइटिस (Leucocytis) केसिन और केलासियमके परमाणु सभी इस तरह विद्यमान हैं, कि दूध अधिक देर तक रख देनेपर भी ये सब परमाणु जलीय परमाणुसे पृथक होकर नीचे जम नहीं जा सकते।

गो-दुग्ध ही इस ग्रंथका प्रतिपाद्य विषय हैं। सब स्तन पायी जीवोंका दूध कितने ही अँशोंमें एक समान रहनेपर भी उसमें किसी किसी विषयका विशेष प्रार्थक्य है।

गो-दुग्धका विशेषत्व दिखानेके लिये इस स्थानपर अन्यान्य स्तन पायी जीवोंके दुग्धके साथ गो-दुग्धकी तुलना दिखाई गई है।

दूधको चार श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है।

(१) गो-दुग्ध।

---

(१) Anabolic, Matabolic.

(२) मानुषी, घोड़ी और गधीका दूध।

(३) बकरी; भेंड़ी और भैंसका दूध।

(४) शिशुक और तिमि प्रभृति जलचर जन्तुका दूध।

किसी किसी विषयमें अन्य कोई दूध यदि अच्छा भी हो तो सब विषयोंपर दृष्टि डालनेसे गो-दुग्ध ही सबसे श्रेष्ठ मालूम होता है।

रासायनिक विश्लेषण द्वारा मालूम हुआ है, कि दूधमें नवनीत चीनी, केसिन एलबूमिनम धातव पदार्थ और घन पदार्थोंके परमाणु सभी न्यूनाधिक भावसे वर्त्तमान हैं।

यूरोपीय गोदुग्धमें साधारणतः नवनीन ३.५७ भाग, दुग्धकी चीनी ४.७५ भाग प्रोटिन ३.७५ भाग रहता है।

महीशूरके अन्तर्गत बङ्गालोरके डाक्टर श्रीनिवास रावने रासायनिक परीक्षा द्वारा विश्लेषणकर देखा है, कि भारतीय गो-दुग्धमें पूर्व्व लिखित उपादान विद्यमान हैं।

द्वितीय श्रेणीके दूधमें चीनीका भाग गोदुग्धसे कुछ अधिक रहने पर भी उसमें मक्खन और प्रोटिनका भाग गायके दूधसे कम रहता है। अतः गायके दूधसे उसमें छेना और मक्खन कम होता है।

तृतीय श्रेणीके दुग्धमें शर्करा-नवनीतका हिस्सा थोड़ा ज्यादा रहनेके कारण उसका दही अच्छा होता है, परन्तु गो-दुग्ध अपेक्षा प्रोटिनका हिस्सा कम होनेसे उसका छेना कम होता है।

चतुर्थ श्रेणीके दूधमें नवनीतका भाग अत्यन्त अधिक रहनेपर भी उसमें नवनीत और चीनीका भाग बहुत कम होनेके कारण वह वैसा सुखाद्य नहीं है। सामुद्रिक जीवोंके दुग्धके नवनीतमें ब्यूट्रिक एसिड विद्यमान हैं। अतः सब तरहसे जांच करनेपर भी गो-दुग्ध ही सर्वोत्कृष्ट है।

देशकाल, खाद्य और पात्र-भेदसे गो-दुग्धमें भी बहुतसा अदल बदल हो जाता है। नीचेकी जलमें डूब जानेवाली भूमिका घास खाकर जो गायें वहाँ बास करती है; उनके दूधसे खड विचाली इत्यादि घास

प्रथम श्रेणी—गो-दुग्ध

गायोंका विवरण	दूध	आपेक्षिक गुरुत्व	निरेट पदार्थ	एस् अर्थात् क्षार नामक पदार्थ	नवनीत	प्रोटीन	दुग्धशर्करा	पानी
महीशूर देशकी गाय	”	१०·२७	१३·११	·६९	४·५८	३·८१	४·०३	८६·८९
अजमेर	”	१०·२८	१२·५५	·७२	४·१[illegible]	३·६४	४·०३	८७·४५
बड़ोदा	”	१०·२८	१२·४४	·७	४·०२	३·६९	४·०३	८७·५६
दिल्ली	”	१०·२५	१२·९५	·६९	४·५१	३·५१	४·२४	८७·०५
इङ्गलिश	”	१०·२७	१३·४४	·७५	४·८९	३·७९	४·०१	८६·५६
नेलोर	”	१०·२७	१२·७९	·७२	४·४७	३·४९	४·११	८६·२७
सनिबल	”	१०·२४	१६·०८	६९	४·६७	३·३८	४·०४	८६·९२

द्वितीय श्रेणी

	पानी	नवनीत	शर्करा	प्रोटिन	एस
मानवी	८८·२०	३·३०	६·८०	१·५०	०·३
अश्वी	८८·८०	१ १७	६·८६	१·८४	०.३०
गर्दभी	६०·१२	१·२६	६·५०	१·६६	०.३६

तृतीय श्रेणी

बकरी	८६·०४	४·६३	४·२२	४·३५	०·७६
भैंस	८२·६३	७·६१	४·७२	४·१४	०·६०
भेंड़ी	७६·४६	८·६३	४·२८	६·६८	०·२७

चतुर्थ श्रेणी

शिशुक	४१·११	४८·५०	१·२३	८·५६	०·५७
तिमि	४८·६७	४३·६७	७·११	७·११	०·४६

खाकर ऊँची भूमिमें बसनेवाली गायके दूधमें जलका अँश कम रहता है और चर्बीका भाग अधिक रहता है। ऐसे ही ऐसे स्थानोंमें गो-दुग्धकी विभिन्नता दिखाई देती है।

वर्षा ऋतुके दूधकी अपेक्षा शीत ऋतुके दूधमें जलका भाग कम रहता है, नवनीतका भाग अधिक रहता है। इसी तरह विभिन्न ऋतुओंमें एक ही गायके दूधमें भी पार्थक्य दिखाई देता है। प्रातःकालके दुग्धकी अपेक्षा अपरान्ह कालके दूधमें नवनीतका भाग अधिक रहता है।

भाँति भाँतिके खाद्यके कारण भी गायके दूधमें हेर फेर दिखाई देता है। ईख, गुड़, चीनी खिलानेपर जो गाय दूध देगी, दूसरी गायोंकी अपेक्षा उसमें चीनीका भाग अधिक रहेगा, नीम और गुड़ भांग खिलानेसे गायका दूध कड़ुआ हो जाता है और उसमें चीनीका भाग कम रहता है। लहसुन या पियाज खानेवाली गायके दूधमें दुर्गन्ध रहती है।

भिन्न भिन्न जातिकी गायके दूधके गुणमें बहुत हेर फेर दिखाई देता है। पहले ही कहा है, कि भारतीय गो-दुग्धमें युरोपीय गो-दुग्धसे नवनीतका भाग अधिक रहता है। इनके अतिरिक्त एक जातिकी तथा एक ही स्थानकी अलग अलग गायोंके दूधमें भी बड़ा अन्तर रहता है।

लण्डन शहरमें सन् १९०० ईस्वीसे १९०९ ईस्वी तक ९ वर्षकी परीक्षामें जाना गया है, कि किसी किसी जातिकी गायके दुग्धका परिमाण और उस दूधके मक्खनका परिमाण अन्यान्य जातीय दुग्ध और मक्खनकी अपेक्षा अधिक रहता है।

एक शार्टहार्न जातीय गाय, जिसने २४॥ सेर नित्यके हिसाबसे दूध दिया था। उसके दूधमें सैकड़ा पीछे ३. ६६ भाग मक्खन था। जार्सी गाये, जो नित्य ६६। सेर दूध देती थी, उसके दूधमें सैकड़ा ५-०९ भाग मक्खन था। एक गारन्सी गाय, जो नित्य १६ सेर छः छटाक दूध देती थी, उसके दूधमें ३-४९ भाग मक्खन था। एक रेड पोल्ड गाय, जो नित्य १९ सेर १३ छटाक दूध देती थी, उसमें सैकड़े पीछे ३-६० भाग मक्खन था। एक केरी गाय, जो नित्य १६ सेर १४ छटाक दूध देती थी उसके दूधमें सैकड़ा पीछे ४-१० भाग मक्खन निकला था।

गायका दूध दूहनेके समय पहले अँशके दूधमें पीछे दूहे हुए दूधकी अपेक्षा नवनीतका भाग कम रहता है। बहुत जल्दी जल्दी दूहनेसे दूधमें मक्खनका भाग अधिक होता है। हाथसे गाय दूहनेसे दूधमें मक्खन अधिक पैदा होता है। दूध दूहनेवाली कलसे गाय दूहनेसे जो दूध मिलता है, उसमें मक्खन बहुत कम रहता है।

किसी किसी गायका दूध पीला और गाढ़ा होता है। उसमें नवनीतका भाग अधिक होता है। किसी किसी गायका दूध सादा और गाढ़ा होता है। इस दूधमें छेना अधिक होता है। दही अच्छा होता है। परन्तु इसमें नवनीतका भाग कम रहता है।

कोई कोई दूध पतला और नीला होता है। उसमें छेना और मक्खनका भाग कम रहता है।

दूध गरमकर रख देनेपर सहजमें नष्ट नहीं हो जाता। कच्चा दूध खूब ठंडी अवस्थामें अथवा बरफ देकर रखनेसे बहुत देर तक अविकृत अवस्थामें रह सकता है। जल मिलाकर दूधको हल्की आगपर चढ़ा देनेसे शीघ्र ही दूध नष्ट हो जाता है। कच्चे दूधमें बिचाली, खजूरका पत्ता अथवा दो चार खड़ा मिर्चा डाल रखनेसे दूध बहुत देरतक अच्छा रहता है।

दूधमें जल मिला देनेसे वह नीला दिखाई देता है। साफ काँचके गिलासमें ढाल देनेसे यह नीला रङ्ग और भी स्पष्टतर मालूम होता है। जल मिश्रित दुग्ध केवल दुग्धकी अपेक्षा विशेष स्वच्छ होता है। जीभ द्वारा स्वाद करनेग्रहण पर भी यह मालूम हो सकता है, कि दूध सच्चा है या नहीं। जल मिश्रित दूध स्वाद विहीन और रूखा होता है; परन्तु सच्चा दूध मीठा, कोमल और सुस्वाद होता है। तुरतकी बियाई हुई गायके दूधकी अपेक्षा अधिक दिनोंकी बियाई हुई गायका दूध विशेष गाढ़ा होता है। गायके खाद्यके तारतम्यके अनुसार दूधके गाढ़ापनमें न्यूनाधिक्य हो सकता है। तथा गुणमें भी हेर फेर हो जाता है। सच्चा

दुग्ध किसी पात्रमें कुछ देरतक रख देनेसे, दूधके ऊपरी भागपर मक्खनका अँश निकल आता है।

लेक्टोमिटर अर्थात् दूधका आपेक्षिक गुरुत्व निर्णयक यन्त्र द्वारा दूधके पवित्रताकी परीक्षा होती है।

लेक्टोमिटर यंत्र एक प्रकारका काँचका नल है। उसके नीचे छोटी कटोरीकी भाँति एक बल्ब (Balb) रहता है। उसमें पारा या सीसेकी छोटी गोली भरी रहती है। ऊपर भागके नलपर चिन्ह बने रहते हैं। एक स्थानपर W जलका चिन्ह और M दूधका चिन्ह बना रहता है और इन दोनोंके बीचमें १, २ और ३ इत्यादि भाग दिये रहते हैं। एक बड़े काँचके गिलासमें दूध रखकर पूर्वोक्त चिन्हित नल उसमें डुबा रखनेसे, यदि दूध सच्चा है तो M चिन्ह तक वह नल जलमें डूब जायगा और यदि केवल जल है तो W चिन्ह तक डूबैया। जल मिश्रित दूधको ग्लासमें भरकर नल डुबा देनेसे उसमें कितना पानी है, यह १, २, ३, इत्यादि अङ्कों द्वारा मालूम हो जाता है।

दूसरा परिच्छेद।

जमे हुए दूधको बनानेकी प्रणाली।

शुद्ध दूध और मक्खन निकाला हुआ दूध इन दोनों प्रकारके दूधों द्वारा ही यह दूध तय्यार किया जा सकता है। इङ्गलैंड आदि स्थानोंमें इन जमे हुए दूधमें चीनी नहीं मिलाई जाती। यह जमा हुआ दूध बहुत दिनों तक अच्छा रह सकता है। और जहाँ इच्छा हो वहाँ भेजा जा सकता है। यह जमा हुआ दूध नीचे लिखे तरीकोंसे तय्यार किया जाता है।

५ सेर दूधके साथ अढ़ाई पाव ईखकी चीनी मिलाकर उसे गरमकर चीनी दूधमें अच्छी तरह मिला दी जाती है। दूधको इतना गरम करना पड़ता है, कि यदि उसे वायुशून्य पात्रमें डाल दिया जाये तो उवला करे। उसके बाद उस दूधको वायुशून्य पात्रमें धीरे धीरे डाल दिया जाता है। इस पात्रमें ऊपरकी ओर काँचका ऐसा छेद रहता है जिससे उसके बीचका दूध दिखाई देता है अथवा उबाल आनेपर दूध गिर भी नहीं जाता। इसके बाद वायु निष्काशन यंत्र द्वारा गैस बाहर निकाल कर कण्डेन्सरके उवलते हुये जलमें यह पात्र रखकर उसमें गरमी पहूँचानी पड़ती है। इसके बाद लगभग एक तृतीयांश दूध कम जानेपर कन्डेन्सरमें ठण्डा पानी मिलाकर दूध-पात्रको धीरे धीरे ठण्डा करना पड़ता है और उस समय दूधके ऊपरके बुलबुले भी कम हो जाते हैं। उस समय पात्रका मुँह अच्छी तरह बन्द कर देनेसे यह जमा हुआ दूध प्रस्तुत होता है। ५ सेर दूधके २॥। सेर जमा हुआ दूध प्रस्तुत होता है। चीनी मिले हुए दूधका जलीय भाग आगकी गरमीसे बाहर निकाल कर इस हिसाबसे डिब्बा बन्द करना पड़ता है, जिससे उसमें वायु न प्रवेश करने पाये। बस, इसी तरह जमा हुआ दूध प्रस्तुत होता है।

एक भाग जमे हुए दूधमें ५ भाग जल मिलाकर बच्चेकी खिलाना पड़ता है। मक्खन निकाला हुआ यह जमा दूध बच्चोंको कदापि न खिलाना चाहिये (१)

— :-*-: —

(१) If Condensed milk is used for infant feeding, it should be mixed with not more than 5 Volumes of water to one of milk, and the whole milk only should be used; the condensed separated milk is not suitable for this purpose

S. C. M. Agriculture
Vol 4, P 23.

तीसरा परिच्छेद ।

दही ।

दूध जो दही बन जाता है, यह एक प्रकारके बीजाणुके कार्य हैं। ये बीजाणु वायुमें घूमा करते हैं। वर्त्तमान विज्ञानवेत्तागण यंत्र द्वारा इन बीजाणुओंको पकड़कर दूधमें छोड़ देते हैं और दूध दहीमें परिणत हो जाता है। । हमारे देशमें दूधमें जामन या दही मिलानेकी जो प्रथा है, उसका भी यही तात्पर्य्य है, कि बीजाणु मिले हुए पदार्थको दूधमें मिला देना।

मेच निकफ (MatchniKoffi) नामक फ्रेंच वैज्ञानिकने स्थिर किया है कि खटाई बढ़ानेवाले बीजाणु पुष्ट या वर्द्धित नहीं हो सकते। जो बीजाणु दूधको दहीमें परिणत करते हैं उनका नाम लेकटिक एसिड बेकिट्रया है (Lactic acid Bachtria) वह पाकस्थलीमें प्रवेश कर हमलोगोंके वार्द्धक्य उत्पन्न करनेवाले बीजाणु सब नष्ट कर देते हैं और शरीरको नीरोग और पुष्ट करते हैं।

इसी लिये यूरोपमें आजकल दहीका आदर बढ़ता जा रहा है। हमारे शास्त्रोंमें गव्य दधिकी प्रशंसा विशेष दिखाई देती है। हेमन्त, शिशिर और वर्षा ऋतुमें दही अधिकतर उपकारी होता है। (१) दधिकी मलाई अत्यन्त उपकारिणी होती है। ग्राम्य भाषामें यह कहावत प्रचलित है, कि तरुण बकरा, बूढ़ा भेंड़ा, दहीका अग्रभाग और मठाका अन्त।" दहीके ऊपरी भागमें मक्खनका अँश अधिक रहता है और मठेके अन्तिम भागमें जलका अंश कम रहता हैं। माँस और मत्स्य, दहीके साथ सिझा देनेपर वे अधिक मुलायम और सुखाद्य हो जाते हैं। ये पचनेमें विशेष सहायता पहुँचाते हैं। माँस भोजन कर लेने बाद इस देशके वृद्धगण विषम आहार समझकर दूध नहीं पीते; परन्तु पेट

---

(१) "हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते।"

भर मठा पी जाते हैं । ब्राह्मणगण खूब ठूंस ठूंसकर दही चूड़ा खानेपर भी विशेष दिवस तक जीवित रहते दिखाई देते हैं । दही और बेसनके संयोगसे दहिबड़ा नामक एक प्रकारका बड़ा ही सुख रोचक खाद्य पदार्थ प्रस्तुत होता है । पश्चिमके रेलवे स्टेशनोंमें वह बहुतायतसे मिलता है ।

चौथा परिच्छेद ।

दही तय्यार करनेकी प्रणाली ।

और

दहीका मात ।

इस देशकी भाँत युरोप प्रभृति पाश्चात्य देशोंमें दही नहीं जमाया जाता । वहाँ दही जमानेके लिये दूध पहले खूब गरम कर फिर ठंडा कर लेना पड़ता है, इसके बाद उस दूधको किसी पात्रमें रखकर कुछ गरम रहते हैं, थोड़ा दही मिला देते हैं । सर्दीके दिनोंमें दहीका बरतन कपड़ेसे ढककर रखना पड़ता है, जिसमें उसकी गरमी कम न हो जायें । अच्छी तरह जोड़न डालनेपर ४।५ घण्टेमें दही जम जाता है । कच्चा दही जमाना हो तो कच्चे दूधमें उसी तरह दही देकर बरतनको ढँक देना चाहिये । इस तरह ६—१० घण्टेमें दही तय्यार होता है । युरोपमें कच्चे दहीको (Curded MilK या Sour MilK) कहते हैं। कच्चा दूधमें जोड़न न देनेपर भी अधिक समय तक रखे रहनेसे वह आप ही आप जम जाता है । सब दहियोंमें गव्य दही ही श्रेष्ठ है । वैद्यकशास्त्रके मतानुसार यह मधुर, बलकारक, रुचिप्रद, पवित्र, भूख बढ़ानेवाला, स्निग्ध, पुष्टि कारक और वायुनाशक है । दही बहुत देर-

तक पड़ा रहनेसे खट्टा हो जाता है, उस समय दहीसे जलीय पदार्थ अलग हो जाता है। इस जलीय पदार्थको दहीका पानी कहते हैं। वैद्य-शास्त्रके मतसे यह पानी क्लान्तिनाशक, बलकारक, लघु, कफघ्न, पिपासा नाशक, वातहारक और तृप्तिजनक है। चीनी मिश्रित दही श्रेष्ठ होता है और वह तृष्णा, रक्तपित्त और दाहनाशक होता है। गुड़ मिला दही वातनाशक, शुक्रजनक, पुष्टिवर्द्धक, तृप्तिकारक और गुरुपाक है। रात्रिके समय दहीका खाना मना है (१) परन्तु रातमें चीनी और जल मिश्रित दही खानेसे दोष नहीं होता।

पञ्चम् परिच्छेद।

तक्र या मठा

पतले दहीको प्रचलित भाषामें मठा कहते हैं। यूरोपमें मठाका प्रचलन नहीं है। मलाईके साथ या विना मलाईके पानी मिले हुए दहीको मठा कहते हैं। और मलाई उतारा हुआ दही जल डालकर मथ डालनेसे उसे मथित कहते हैं। चतुर्थांश जलके साथ दहीको मथनेपर उसे तक्र और अर्द्धांश जलके साथ मथनेपर उसे उदश्वित कहते हैं और बहुत जल डालकर मथे हुए दहीको छाँछ या छच्छिका कहते हैं। वैद्य शास्त्रके मतसे मठा और मथित वायु और पित्त-नाशक है। चीनी मिला हुआ दही महोपकारी रसायन है। तक्र, धारक कषाय, अम्ल, मधुररस, लघु, उष्णवीर्य्य, अग्निदीपक, शुक्रवर्द्धक, तृप्तिजनक, कफ और वायुनाशक है। ग्रहणी रोगग्रस्त मनुष्योंके लिये बड़ा ही हितकर है। हलका रहनेके कारण धारक विपाकमें मधुर होजा है, इसीलिये वह पित्त-प्रकोपक नहीं है। उदश्वित कफ वर्द्धक बलकारक और श्रांति नाशक है। छाँछ, शीतवीर्य, लघु, कफकारक और वायु, पित्त, श्रम

(१) न रात्रौ दधि भुञ्जीत।

और पिपासानाशक हैं। नमक मिला देनेसे अग्नि-वर्द्धक होता है। मठा सेवन करनेवालेको कोई व्याधि या रोग भोग नहीं करना पड़ता। मठा नरलोकमें अमृतके समान हैं। जिस मठासे घी निकाल लिया जाता हैं, वह बड़ा ही हितकर और लघु होता है। जिस मठाका घृत थोड़ा निकाला जाता है, वह अपेक्षाकृत गुरु, शुक्रकारक और कफजनक होता है और जिस मठासे घी नहीं निकाला जाता है वह गाढ़ा, गुरु, पुष्टिकारक और कफजनक होता है।

वायुको शान्तिके लिये सोंठ और सैंधा नमक आलरसयुक्त तक्र हितकर है। पित्तको प्रशमन करनेके लिये चीनी मिला हुआ मधुर रसान्वित मठा व्यवहार करना चाहिये, कफको उपशम करनेके लिये त्रिकटू संयुक्त मठा पीना चाहिये! हींग जीरा और सैंधा नमक मिला हुआ मठा वायुनाशक, रूचिजनक पुष्टिकारक बलप्रद् और वस्तिगत शूलनाशक है। यह अर्श और अतिसारको नाश करनेवाला श्रेष्ठ पथ्य है। मूत्रकृच्छ रोगमें गुड़के साथ और पशुरोगमें चिताकी जड़के साथ मठा पीना चाहिये।

शीतकालमें, मन्दाग्निमें, वायुरोगमें और अरुचिमें मठा अमृतकी भांति काम करता है। यह कै विषमज्वर, पाण्डु, मेद, ग्रहणी, अर्श, मूत्राघात, भगन्दर, प्रमेह; गुल्म, अतिसार, शूल, प्लीहा, उदर, अरूचि, कोष्ठगत रोग, कोष्ठशोथ; पिपासा और क्रिमिका नाश करता है। क्षत रोगमें, ग्रीष्मकालमें दुर्बल व्यक्तिको और मूर्च्छारोगमें भ्रमरोगमें दाह रोगमें और रक्तपित्तमें तक्रका प्रयोग न करना चाहिये।

षष्ठ परिच्छेद ।

मलाई, बसौंधी या रबड़ी

दूधको उबालनेसे उसके ऊपर जो स्नेह-समन्वित गाढ़ पदार्थसा जम जाता है, उसे मलाई कहते हैं, दहीके ऊपरकी मलाईको दहीकी मलाई कहते हैं। वैद्यशास्त्रके मतसे दहीकी मलाई मधुररस, गुरुपाक और शुक्रवर्द्धक है। यह वायु और अग्नि-नाशक है। इस मलाईमें खटाई रहनेपर यह वस्ति-शोधक और पित्त तथा कफ-वर्द्धक हो जाती है।

कच्चा दूध किसी छिछले बरतनमें ठण्डी जगह रख देनेसे १२।१४ घण्टे बाद इस दूधके ऊपरवाले भागमें गाढ़ा कोमल मक्खन सा एक प्रकारका पदार्थ तैर आता है, उसे चम्मचसे उठा लेने बाद जो दूध बच जाता है, उसे अँगरेजीमें स्किम्ड मिल्क (Skimmed Milk) कहते हैं। भाषामें उसे मलाई उतारा हुआ दूध कहते हैं। इसमें मक्खनके सभी परमाणु वर्त्तमान रहते हैं; परन्तु उसमें मक्खनके सब परमाणु ऊपर तैरने न लगते हैं। कितने हो नीचे रह जाते हैं।

भारतवासियोंके लिये मलाई रसनाको तृप्त करनेवाला बड़ा ही उत्तम पदार्थ है। उससे मलाईका लड्डू, मलाईकी पूरी इत्यादि बड़े ही उपादेय, पुष्टिकर खाद्य पदार्थ तय्यार होते हैं, बादाम, पिश्ता और किशमिश प्रभृति मेवोंके संयोगसे बङ्गालके कृष्णनगरमें जो सरपुरिया बनती है, उसका बङ्गालके सभी स्थानोंमें आदर, प्रशंसा और व्यवहार है।

एक छिछले बरतनमें मिश्री मिलाकर दूध उबालनेसे उसपर एक पतली मलाई आ जाती है। इसे दूधसे उतार कर एक पात्रमें रख देनेपर फिर मलाई उत्पन्न होती है, उसे फिर पहलेकी तरह बारबार

उतारनेसे दूधका अधिकांश मलाईमें परिणत हो जाता है और जो बाकी दूध उस छिछले बरतनमें रह जाता है, वह क्षीर बन जाता है। उस समय सब मलाई क्षीरमें मिला देनेसे उसका नाम रबड़ी पड़ता है और वह बड़ी ही सुखाद्य और पुष्टिकर वस्तु है।

सप्तम् परिच्छेद ।

नवनीत या मक्खन ।

नवनीत या मक्खन बहुत तरहसे तय्यार होता है। इसके तय्यार करनेकी प्रणालीके अनुसार उसे दूधका मक्खन, दहीका मक्खन, क्रीमका मक्खन कहते हैं। दूधको उबालकर खूब हिला डुलाकर पहले उसे ठण्डा करना पड़ता है। उसे फिर मथनेसे उसपर मक्खन तैर आता है, उसीको दूधका मक्खन कहते हैं। मक्खन निकाल लेनेपर जो दूध बचता है, उसे मक्खन उतारा हुआ दूध कहते हैं। दही बनाकर उसे मथनेपर जो मक्खन तय्यार होता है, उसे दहीका मक्खन कहते हैं।

उबाले हुए दूध या दहीकी मलाई मथ डालनेपर जो मक्खन बनता है, उसे मलाईका मक्खन कहते हैं। यह मक्खन बड़ा ही सुस्वादु और सद्गन्ध युक्त होता है। मलाई मथी हुई बड़ा ही गुरुपाक है; किन्तु मुख-रोचक तृप्ति-कारक, सद्गन्ध युक्त और अत्यन्त सुस्वादु है। कच्चे दूधका क्रीम निकालकर उसे मथ डालने पर जो मक्खन बनता है, वह क्रीमका मक्खन कहलाता है, यही क्रीमका मक्खन पाश्चात्य देशोंमें प्रचलित है। वर्त्तमान कालमें वही क्रीम जमाकर उससे मक्खन निकाला जाता है। इङ्गलैण्ड प्रभृति पाश्चात्य देशोंमें कच्चा दूध और क्रीम मथकर मक्खन निकाला जाता है। दूध मथकर मक्खन निकाल

लेने बाद जो दूध बच जाता है, उसे सेपरेटेड मिल्क Seperated milk कहते हैं, हिन्दी भाषामें उसे मक्खन निकाला हुआ दूध कहते हैं। पाश्चात्य देशोंमें दहीका मक्खन प्रचलित है। कच्चे दूधकी अपेक्षा गर्म किये हुए दूधमें अधिक मक्खन निकलता है। क्रीम या कच्चे दूधका मक्खन नमक मिलाकर कई दिनोंतक न रखा जाये तो व्यवहार नहीं किया जा सकता है? गरम किये हुए दूधका मक्खन तय्यार होनेके साथ ही खाया जा सकता है और वह खानेमें स्वादिष्ट भी होता है, इस देशमें कच्चे दूधसे मक्खन नहीं तय्यार किया जाता। वैद्यक-शास्त्रके मतसे मक्खन हितजनक, पुष्टिकारक, बलकारक और अग्निवर्द्धक होता है। बालक और वृद्ध दोनोंके लिये बड़ा उपकारी है।

मक्खन, ठण्डे पानीमें रख, नित्य प्रति दो बार उसका पानी बदल देनेसे बहुत दिनोंतक ताजा अवस्थामें रखा जा सकता है। इङ्गलैण्ड आदि पाश्चात्य देशोंमें मक्खन पानी निचोड़कर नमक मिलाकर रख दिया जाता है। कहते हैं, कि ऐसा करनेसे भी मक्खन बहुत दिनोंतक अपनी ताज़ी हालतमें रह सकता है। किन्तु भारतमें मक्खनको ताज़ा रखनेका यह प्रकार प्रचलित नहीं है। इङ्गलैण्ड आदि देशोंमें परीक्षा द्वारा निश्चय किया गया है, कि मक्खनमें सैंकड़ा पीछे १६ भाग पानी होनेपर भी वह विशुद्ध मक्खन समझा जायगा। इससे अधिक जल होनेपर वह विशुद्ध मक्खन न समझा जायगा। ऋक्वेदका अवलोकन करनेसे मालूम होता है, कि अति प्राचीनकालसे भारतवर्षमें दही, दूधको मथकर नवनीत या मक्खन प्रस्तुत करनेकी प्रथा प्रचलित है। उक्त वेदमें चतुःश्रृङ्ग, दशश्रृङ्ग आदि दही मथनेके काममें आनेवाले यन्त्रोंका भी उल्लेख है। ३०--४० साल पहले भी इङ्गलैण्ड आदि पाश्चात्य देश मक्खन तय्यार करनेकी प्रणालीको भी न जानते थे। वहाँ कच्चा दूध किसी श्रेष्ठ और शीतल स्थानमें रख दिया जाता था। २-३ दिन बाद उसपर क्रीम जम जाती थी। बस इसी क्रीमको कुछ दिनोंमें सड़ाकर

उससे मक्खन निकाल लिया जाता था। यह खानेमें अरुचिकारक और अस्वाद् होता था। वहाँपर पहले नारियलकी कटोरी या बकरीके चमड़े की थैलियोंमें क्रीम भरकर उसे जल्दी-जल्दी सञ्चालन या हिला डुला कर मक्खन तय्यार किया जाता था। सन् १८७७ ई० में लारेन्स साहब नामके एक वैज्ञानिक पण्डितने सबसे पहले मक्खन निकालनेके यन्त्रकी सृष्टि की थी। अनन्तर क्रम समयमें उस यन्त्रकी यथेष्ट उन्नति हो गयी। आजकल यूरोपमें एक नहीं सैकड़ों प्रकारके मन्थन यन्त्रोंका आविष्कार हो गया। उनसे आसानीके साथ मक्खन तय्यार कर दिया जाता है।

ताज़ी क्रीमसे मक्खन नहीं निकाला जा सकता। यदि निकाला भी जाय तो उसका परिमाण अत्यल्प होगा, इसलिये क्रीमको पहले सड़ा लेने या गरम करनेकी प्रथा है। किन्तु अत्यन्त गर्म या अत्यन्त सड़ी हुई क्रीमसे भी अधिक मक्खन नहीं निकलता, क्रीमके अत्यन्त गरम या अत्यन्त सड़े होनेपर उसको मथनेके समय अधिक परिमाणमें बुलबुले पैदा होते हैं, उस समय क्रीम पानीद्वारा ठण्डी कर ली जाती है। फिर अत्यन्त शीतकालमें क्रीमके जमकर सख्त हो जानेपर उसे गरम पानी द्वारा पतला किया जाता है। पतली हो जानेपर इस क्रीममें सञ्चयद्वारा सड़न पैदा कर मक्खन निकाल लिया जाता है। सञ्चयको अङ्गरेजीमें स्टारटर (Starter) कहते हैं। इस संचयमें दुग्धाम्ल कीटाणु रहते हैं। भारतमें अति प्राचीनकालसे इस प्रकारके संचय द्वारा दही जमानेकी प्रथाका प्रचार है। अच्छी तरह साफ़-सुथरे ढँगसे मक्खन निकालने पर हमारे देशका मक्खन विदेशी मक्खनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और उत्कृष्ट होता है। अङ्गरेज लोग भी हमारे देशके मक्खनको विशेष आग्रह या चावके साथ व्यवहार किया करते हैं। युक्त प्रदेशमें बलदेवजी नामक एक दुग्ध विक्रेताका तय्यार किया मक्खन सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। बङ्गालके मैमनसिंह नगरमें केशव घोष नामक एक व्यक्ति अति उत्तम

मक्खन तय्यार किया करते थे। अङ्गरेज लोग विदेशी मक्खनोंको छोड़ उनके मक्खनका विशेष आदरके साथ व्यवहार किया करते थे। उक्त गोपका बनाया दही या मठा भी उस देशमें अति श्रेष्ठ समझा जाता था।

मिश्री मिला मक्खन अति उत्कृष्ट, बलकारक और रसायन है। ऐसे मक्खनका कुछ दिनों व्यवहार करनेसे कृश व्यक्ति भी स्थूलकाय और बलिष्ठ हो सकता है। यदि मक्खनको सिरपर मला जाय, तो मस्तिष्क बलवान् और यदि शरीरपर उसकी मालिश की जाय तो वर्णमें उज्ज्वलता और क्रान्ति आती है।

अष्टम् परिच्छेद।

घृत।

मक्खनको किसी बर्त्तनमें रख अग्निद्वारा तपानेपर घी बनाया जाता है। मक्खनमें गर्म करनेके समय बुलबुले पैदा होते हैं। एवं घीमें जो कुछ दूधका अंश होता है, वह नीचे पात्रकी तलीमें जम जाता है तथा इस प्रकार गर्म करनेपर जब नीचेके दूधके परमाणु पीले होकर उसमेंसे सफेद बुलबुले पैदा होते हैं, तब घी स्वच्छ और परिष्कृत जलकी भांति दीख पड़ता है। उस समय वह आग परसे उतार कर किसी वस्त्रमें छाना और दूसरे पात्रमें रख दिया जाता है। घी बहुत दिनोंतक अविकृत रहता है। यूरोप आदि पाश्चात्य देशोंमें घीका प्रचलन नहीं है। किन्तु भारतवर्षमें घीका व्यवहार अति प्राचीनकालसे होता आया है।

ऋग्वेदमें घृतका अनेक स्थानोंपर उल्लेख है, एवं यह बहुत उल्लेख

ही घीकी प्राचीनताका प्रमाण है। विकृत घीको शुद्ध बनानेके लिये, ऊपर कहे हुए ढङ्गसे उसे अग्निद्वारा गरम करने और उसे आगसे नीचे उतार अनन्तर कईएक नींबूके पत्ते, थोड़ासा दही, मट्ठा, या दूध डाल देना चाहिये! बस घी साफ और शुद्ध हो जाता है। घी, खानेमें स्वादिष्ट है ,उसमें अनेक गुण वर्त्तमान हैं। घी वीर्य्य, आयु और कान्ति बढ़ानेवाला है। आर्य्य शास्त्रोंमें अनेक स्थानोंपर "घृतमायुः पुरुषस्य"—अर्थात् घृत ही पुरुषकी आयु है—कहकर बहुउल्लेख किया गया है एवं विद्वानोंने उसकी यहांतक सिफारिश की है, कि—"ऋणंकृत्वा घृतं पिवेत्" यानी 'कर्ज लेकर घी पियो।'

घृत अति पवित्र पदार्थ है। यह हिन्दुओंके समस्त यागयज्ञ और पूजा-अर्चनामें व्यवहृत होता है। शास्त्रोंके मतानुसार बिना घी कोई भी क्रिया कलाप सम्पादित नहीं होता। पञ्च गव्यमें घृतकी गणना सर्व प्रथम और सम्मान सर्व प्रधान है। भारतवासियोंकी रसनाको तृप्त करनेवाले, जितने भी पदार्थ हैं, उनमेंसे अधिकांश घीद्वारा बनाये जाते या घीके संयोगसे तय्यार किये जाते हैं।

घीद्वारा मैदा, सूजी, चावल, चावलोंकी पिन्नी, बेसन आदिके कितने ही उपादेय देवभोग्य पदार्थ तय्यार किये जाते हैं।

गृहस्थोंमें घी और चीनीके निरन्तर रहनेसे गृहिणियाँ अनेक प्रकारके भोजन बना सकती हैं।

घीद्वारा अनेक प्रकारके वीर्य्यवान औषध भी तय्यार किये जाते हैं।

भारतवर्षीय वैद्य अनेकों दुरारोग्य कष्टसाध्य व्याधियोंके लिये अमृत प्राश, पंचतिक्त, हंसादि, च्यवनप्राश, गोधूमाद्य, अशोकघृत, पुष्टि घृत आदि ओषधियाँ तय्यार कर १) रुपयेका घृत ८, १६, ३२, ६४, यहां तक कि १००) रुपयेमें बेचते हैं। इन समस्त ओषधियोंके आश्चर्य्यमय गुणोंको देख यूरोपके प्रसिद्ध प्रसिद्ध चिकित्सक चमत्कृत और विस्मित हुए हैं।

पुराने घीको आकके पत्तोंके संयोगसे गरमकर कठिन खाँसी, निमोनिया आदि असाध्य रोगोंमें उसका सेक देनेपर सूखी खाँसी तर हो जाती है।

घृतके बाहरसे व्यवहार या मालिश करनेसे गरम मस्तिष्क शीतल हो जाता है।

नवम् परिच्छेद।

छाना और छानेका पानी।

छानाको अङ्गरेजीमें कर्ड छाना (Curd) कहते हैं। अच्छे दूध, क्रीम या मक्खन निकाले दूधसे छाना बनाया जाता है। कलकत्तेमें छाना सदा शुद्ध दूध द्वारा बनाया जाता है। कच्ची क्रीम या मक्खन निकाले दूधका बना छाना कोमल और स्वादिष्ट नहीं होता। गौ दूहनेसे बहुत देर बाद औटानेपर उसमें लेक्टिक एसिड बढ़कर दूध कभी कभी स्वयमेव पानी छोड़कर दहीमें परिणत हो जाता है। उस समय उस दूधको लोग फटा दूध कहते हैं। यह पीनेके काममें नहीं आता। किन्तु इङ्गलैण्ड आदि यूरोपीय देशोंमें इस प्रकारके दूध, मक्खन निकले दूध और क्रीम निकले दूधके छानाका विशेष व्यवहार होता है। छाना तय्यार करनेके लिये दूधको किसी पात्रमें रख अग्निद्वारा गरम करनेकी आवश्यकता होती है। जब दूधमें उफान आने लगता है, तब वह चूल्हेपरसे नीचे उतार लिया जाता है। अनन्तर उस दूधके ऊपरी भाग पर क्रमशः थोड़ा थोड़ा छानाका पानी या दहीका पानी अथवा मट्ठा छिड़कना पड़ता है। उस समय दूधके ऊपरी भागपर छाना जमने लगता है। अब एक लकड़ी या पौनेसे सारे दूधको घोल देना चाहिये,

ऐसा करनेपर नीचेके दूधका भी छाना जमने लग जायगा। थोड़ी देर बाद ही श्वेत वर्णका छाना हरिद् वर्णके जलसे अलग हो जाता है। उस समय उस छानाको कपड़ेमें कस किसी खूटी वगैरहमें लटका देनेपर उसमेंसे जलका भाग नीचे गिर जाता है और विशुद्ध छाना कपड़ेमें रह जाता है। अति उत्तम सेरभर दूधसे एक पाव विशुद्ध छाना तय्यार होता हैं। पानी मिले या साधारण दूधसे प्रायः सेर पीछे दो छटांक विशुद्ध छाना निकल सकता है। दूधके छानामें परिणत हो जानेपर उससे जो पानी निकलता है उसे छानाका पानी या दहीका तोड़ कहते हैं। भारतमें छानाका यह तोड़ साधारणतः काममें नहीं आता; उसे लोग फेंक देते या दहीके साथ ही व्यवहारमें ले आते हैं। किन्तु परीक्षा द्वारा प्रमाणित हुआ है, कि इसे मथनेपर २॥ मन तोड़से २५ सेर मक्खन निकाला जा सकता हैं अर्थात् इसमेंसे सैकड़ा पीछे २५ वां भाग मक्खन पाया जा सकता है। इङ्गलैण्डमें यह पानी गृह-पालित पशु और पक्षियोंको दिया जाता है। वहाँ छानेका जल या यह तोड़ लघुपथ्यके रूपमें क्रोम और चीनी मिलाकर बच्चे और लड़कोंको खाद्यरूपसे दिया जाता है। फुस्फुस या फैंफड़ेकी कमजोरी तथा उदर सम्बन्धी अनेक प्रकारके रोगोंमें छानाका पानी पथ्य है। चीनी और घीके संयोगसे बनाये हुए पदार्थ जैसे पुष्टिकर हैं, वैसे ही रुचिकारक भी होते हैं। छाना द्वारा इस देश अर्थात् बंगदेशमें कितने प्रकारके मीठे पदार्थ तय्यार किये जाते हैं, यह किसीको अविदित नहीं है। इतने द्रव्य भारतके अन्य किसी प्रदेशमें नहीं बनाये जाते।

पहले बिहार और पश्चिम भारतमें छानाका उपयोग करना कोई नहीं जानता था। वहाँ मावेसे ही कितने एक पदार्थ बनाये जाते थे। अब पश्चिम प्रवासी बंगालियोंकी देखा देखी वहाँ भी रसगुल्ले वगैरह बनाये जाने लगे हैं।

दशम् परिच्छेद।
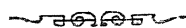
पनीर.

कच्चे दूध द्वारा जमे हुए दहीको पनीर कहते हैं। बङ्गालमें इसके जमानेकी रीति यह है, कि—कच्चे दूधको एक बर्त्तनमें रखकर उसमें नमक लिपटे बकरी या गायके अन्त्र Rennet को डुबो रखनेसे रासायनिक क्रियाद्वारा बर्त्तनका दूध चञ्चल हो उठता है और तत्काल जम जाता है। इस जमे हुए पदार्थको कपड़ेसे बाँधकर किसी ऊँची जगहमें लटका देनेपर उसमेंका सारा पानी टपक टपक कर निकल जाता है। इसके बाद उसे नमकके साथ एक बर्त्तनमें रखनेसे उसका बाकी रहा पानी भी अलग हो जाता है। अनन्तर यह फिर एक कपड़ेमें बाँधकर, बर्त्तनमें रख एवं उसपर किसी भारी वस्तुको रखनेद्वारा पूर्णतया जल शून्य कर लिया जाता है। जल-शून्य हो जानेपर यह दही एक पात्रमें कितने एक दिनतक छाया और हवामें सुखानेपर पनीरके नामसे पुकारा जाता है। यूरोपीय देशोंमें पनीरका खूब आदर होता है। सर्वश्रेष्ठ पनीर भैंसके दूधद्वारा बनाया जाता है। दूसरे शब्दोंमें पनीर बनानेके लिये भैंसका दूध ही सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु इससे यह न समझना चाहिये, कि—पनीर बनानेके लिये अन्य प्रकारके दूध काममें ही नहीं लाये जाते। गायके दूधसे भी पनीर बनाया जाता है। ढाका लालबागनिवासी श्रीकृष्णचन्द्र घोषकी महिष-शालामें बहुत पनीर बनता है। अङ्गरेज लोग कृष्णचन्द्रके पनीरका विशेष आदर करते हैं। उनमेंसे बहुतसे लोग विदेशी पनीरोंकी अपेक्षा इस पनीरके विशेष पक्षपाती हैं। वे इस पनीरको 'बाबू पनीर' कहते हैं।

हिन्दू लोग पनीरका व्यवहार नहीं करते। परन्तु यदि पनीर

बनाते समय अन्य Rennet रैनेटोंके स्थानपर बकरेका रैनेट व्यवहारमें लायें, तो उसमें कुछ हानि नहीं। इङ्गलैण्ड आदि देशोंमें पनीर बनानेके लिये अनेक प्रकारके यन्त्र बना लिये गये हैं। सच तो यह है, कि—परिष्कार-परिच्छन्नता द्वाराही गव्य जात पदार्थोंकी उत्कर्षता और उपादेयता सिद्ध होती है।

एकादश परिच्छेद।

चेड्डाका पनीर.

समेरसेट शायरके अन्तर्गत चेड्डा नामक ग्राममें एक प्रकारका पनीर तय्यार होता है, इसलिये उक्त ग्रामके नामानुसार यहांके बने पनीरको चेड्डाका पनीर कहते हैं। चेड्डाका पनीर खानेमें अति उपादेय है। यही कारण है, कि यूरोपियन लोग इसका विशेष आदर करते हैं। इस पनीरमें नवनीत, केसिन, जल, अल्प परिमाणमें शर्करा और धातव, पुष्टिकर, पदार्थ विद्यमान रहते हैं। इसे बनानेके लिये दूधको—या तो पहले संचयद्वारा अथवा अन्य प्रकारसे— दहीकी भाँति कुछेक जमाकर उसमें रैनेट डालना पड़ता है और बादको रैनेट निकाल देनेपर ही दूध जमकर उसका दधिभाग और पानीका भाग अलग अलग हो जाता है। उस समय उसे लम्बाई चौड़ाईके हिसाबसे और ऊपरी समानभागसे, मोटे और चौकोर आकारमें काटकर, किसी प्रकारके दबावसे उसमेंका सारा पानी निकाल, छाया तथा हवादार स्थानमें सुखा लिया जाता है। इस प्रकार ५, ७ दिन हवामें रख देनेपर वह रीत्यनुसार प्रस्तुत होकर खाद्यके उपयुक्त हो जाता है। इन पनीरोंका गठन और रंग सुन्दर होता

हैं। ये खानेमें स्वादिष्ट होते हैं। इसीलिये चेड्डाके पनीरकी ख्याति और आदर सर्वाधिक है चेड्डाका पनीर प्रस्तुत करनेका घर साफ और सुथरा होना आवश्यक है। उसकी जमीन या फ़र्श ऐसे उपादानोंसे बना होना चाहिये, कि जिससे वह जलद्वारा धोया जानेपर सहजहीमें साफ किया तथा सूखाया जा सके। घरमें ३ कोठरी होनी आवश्यक हैं। क्योंकि पहली कोठरीमें पनीर तय्यार किया जाता है। दूसरीमें उसका पानी निकाला जाता है एवं तीसरीमें पनीरको सुखानेके लिये हवा और छायामें रखा जाता है, इसलिये यदि यह तीसरी कोठरी ऊपरकी मञ्जिल में हो तो बहुत अच्छा है। इस कोठरीमें वायुके आने जानेके लिये काफ़ी हवादान या खिड़कियाँ होनी चाहिये। एवं इस बातका भी ध्यान रहना चाहिये, कि—इस कोठरीमें ताप या गर्मीकी भी समानता हो। अर्थात् पनीरके व्यवसायियोंको इस बातपर भी विशेष दृष्टि रखनी चाहिये, कि इस कोठरीकी हवा और गर्मी मानो सहजहीमें अत्यन्त उष्ण या अत्यन्त शीतल न हो जाय। यही कारण है, जो शीत प्रधान देशोंमें ऐसी कोठरियोंमें गरम जलका पाइप या भाफ रखनेका प्रबन्ध रहता है। इन उपकरणोंके सिवा इस तीसरी कोठरीमें पनीर रखनेके लिये अनेक आलोंका होना भी आवश्यक है। ये आले या ताख एक रेला अथवा एक श्रेणीमें होने चाहिये। ऐसे आले दीवारोंमें नहीं बनाये जाते वरन् एक प्रकारकी गोल तथा ऊंची लकड़ीपर स्थापित होते हैं, कि जिससे आवश्यकता पड़नेपर वे इच्छानुसार चारों ओर घुमाये जा सकें। पहली कोठरीकी जमीन एक ओरको कुछेक ढालू होनी चाहिये। और उसके एक ओर एक जमीनदोज नाँद होनी चाहिये जिससे पनीरका पानी इस नाँदसे बाहरकी नाँदमें जा सके।

द्वादश परिच्छेद ।

गोबर.

"गवां मूत्र पुरीषंच पवित्रं परमं मतम् ।"

बृहद् धर्म पुराण उत्तर खण्ड ।

गोबर हिन्दुओंके शुद्धिकार्य्यों में व्यवहृत होता है। यह फिनाइल-की भाँति दुर्गन्धहारक अथच सहज हीमें प्राप्त हो जाता है। खेतोंकी उर्वरता-शक्ति बढ़ानेके लिये यह साररूप या खाद्के स्थानपर इस्तेमाल किया जाता है। इसमें फासफोरिक एसिड, चूना, मैग्नेशिया और सेलिका नामक वैज्ञानिक पदार्थ मौजूद हैं। तिसपर भी फास्फोरिक एसिड और चूनेका भाग इसमें सर्वाधिक है। गोबरका परिमाण और गुण गायोंके खाये जानेवाले खाद्य और उनकी अवस्थापर निर्भर हैं। गोबरमें नाइट्रोजन भी हैं। गोबर घोड़ेकी लीद्से अधिक स्निग्ध होता है। गायके मलकी अपेक्षा सांढ़के मलमें लाइम इत्यादिका भाग अधिक है। बछड़ोंके मलमें ३० भाग, दूध देनेवालों गायके मलमें ७५ भाग और सांढ़के मलमें ६५ भाग नाइट्रोज़न हैं।

इस उत्कृष्ट खाद्का खेतोंमें व्यवहार करनेसे आलू, सलगम, गांठ-गोभी, फूलगोभी एवं कपास, धान्य और ईख आदि सब पैदा होते हैं, गोबर भारतमें जिस ढँगसे जमा किया जाता है, उससे उसका अधि-कांश सार भाग धूप और वर्षासे नष्ट हो जाता है। इङ्गलैण्डमें इस विषयमें "रायल ऐग्रिकल्चर सोसाइटी" ने परीक्षाद्वारा स्थिर किया है, कि गोबरको धूप और वर्षामें तीन मासतक रखनेसे उसका फीसदी २० वां भाग नष्ट हो जाता है। ४॥ मासमें फीसदी २५ भाग और ६ मासमें फी सदी ४० वां भाग नष्ट हो जाता है। गोबरको इस नाशसे बचानेके लिये एक उपाय है, वह यह कि—एक गढ़ा बनाकर उसमें

नित्य सुबह शाम गोबर डालते रहना चाहिये। जब यह गढ़ा भर जाय, तब थोड़ेसे पानीसे गोबरको पतला कर उसपर आध हाथ परिमाण मट्टी थोप देनी चाहिये और इस गढ़ेपर टीन या अन्य किसी छादक वस्तुको ढक देना चाहिये। ऐसा करनेपर गोबर तद्वत रहता है और उसका सारभाग कभी नष्ट नहीं होता है। गोबरको इधर उधर डाल रखनेकी अपेक्षा अन्ततः एक स्थानपर जमा करके रखनेसे भी नीचेका गोबर उतना अधिक नष्ट नहीं होता, कि जितना अस्तव्यस्त ढँगसे पड़े रहनेपर नष्ट हो जाता है।

अनेक स्थानोंमें, ईंधनके लिये लकड़ियोंका अभाव होनेपर किसान लोग गोबरके उपले तय्यार कर या गोले बनाकर और उन्हें धूपमें सुखाकर ईंधनके स्थानमें व्यवहार किया करते हैं। गोबरका यह व्यवहार देशके लिये क्षतिकारक है। क्योंकि गोबरसे जैसा बढ़ियां खाद तय्यार किया जा सकता है, उसे देखते उसका जलावनके रूपसे व्यवहार करना दुरुपयोग नहीं तो क्या कहा जा सकता है।

गोबर द्वारा कागज जोड़नेके लिये एक अति उत्तम मसाला तैयार किया जाता है। गोबर और कागजको मिलाकर कारीगर लोग भांति भांतिके खिलौने और मूर्त्तियाँ तैयार करते हैं। बङ्गालके मैमनसिंह प्रदेशके ईश्वरगञ्ज थानेके अन्तर्गत डौहाखला ग्रामनिवासी परलोक गत दुर्गाचरण दे नामके एक उद्योगी व्यक्ति ऐसे ही खिलौने और मूर्त्तियां तैयार कर एवं बादको उसीसे एक विस्तृत कारबार कर यथेष्ट लाभ-वान हुए थे।

गोबरकी भस्म शरीरमें मलकर योगी और सन्यासी प्रबल शीत-कालमें भी बिना वस्त्र रहा करते हैं। इसीसे आयुर्वेदमें गोबरके अन्यान्य गुणोंके साथ यह शीत निवारक भीं कहा जाता है। गोबरकी भस्मसे दांत मांजनेसे दांतोंका दर्द, दन्तमल तथा अन्यान्य दाँतसम्बन्धी रोग दूर होते हैं। इस भस्मके मञ्जनका व्यवहार करनेपर दांतोंकी जड़ें

मजबूत हो जाती हैं। गोबरकी भस्मको प्लीहा या तिल्ली नाशक होनेके कारण वैद्य लोग प्रायः इन रोगोंमें व्यवहृत किया करते हैं। यदि कोई ऊपरसे गिर जानेके कारण तकलीफ पा रहा है और उस समय यदि गोबरकी आगका धुआँ चोटके स्थानपर दिया जाय; तो वेदना यथेष्ट परिमाणमें दूर हो जाती है।

सूखे गोबरको उपला कहते हैं। इस उपलेकी आगसे भात राँधनेपर वह सहज पाच्य हो जाता है। यह भात उदरामय और हैजेके रोगमें विशेष पथ्य है। उपलेका सेक देनेपर बातव्याधिके रोगीको बहुत कुछ लाभ होता है। उपले द्वारा भारतके वैद्य और कविराज लोग स्वर्ण, रौप्य, लौह और मूंगे आदिकी भस्म तैयार किया करते हैं। हिन्दू गृहस्थ प्रायः ही नित्य प्रति गोबरसे अपने घरोंका आँगन लिपवाया करते हैं। कटे हुए घावपर ताज़े गोबरका लेप करने और ऊपरसे राँध देनेपर तत्काल खून गिरना बन्द हो जाता है। एवं कईएक दिन बाद कटा स्थान जुड़ जाता है। घावका नाम या निशान भी नहीं देख पड़ता। किन्तु खयाल रहे कटे घावोंपर तत्कालके गोबर का ही प्रलेप किया जाय, बासीका नहीं। बासी गोबर सड़ जाता है और उसमें अनेक प्रकारके जन्तु पैदा हो जाने सम्भव हैं। सड़े गोबरको घावपर लगानेसे घावको आराम न पहुँच कर हानि होगी अर्थात् घाव फैलकर सड़ जायगा।

त्रयोदश परिच्छेद।

गोमूत्र

गोमूत्र भी हिन्दुओंके शुद्धि कार्य्योंमें व्यवहार होता है। वैद्यक शास्त्रके मतानुसार गोमूत्र खारा, कड़ुआ, कषैला, रस, तीक्ष्ण, उष्णावीर्य्य, दीप्ति कारक, मेधाजनक और पित्तजनक है। सामयिक प्रयोगोंमें यह कफ, वायु, शूल, गुल्म, उदर, अनाह कण्डु, नेत्ररोग मुखरोग, खुजली, आमवात, वस्तिरोग, कोढ़, खांसी, श्वास, सूजन, पीलिया और पाण्डु नाशक है।

अन्य ग्रन्थोंमें इसके गुण इस प्रकार लिखे हैं—

अर्थात् गोमूत्र कषैला, तिक्तरस, तीक्ष्ण है, एवं यह प्लीहा, उदर-रोग, श्वास रोग, कास रोग, सूजन, कब्ज, शूलरोग, गुल्मरोग, आनाह, कमल और पाण्डुरोग नाशक है। गोमूत्रकी बूंदे कानमें डालनेसे कानका दर्द दूर होता है। (१)

---

(१) गोमूत्रं कटुतीक्ष्णोष्णक्षारं तिक्तकषायकम्।
लघ्वग्निदीपकं मेध्यं पित्तकृत कफवातहृत्त॥
शूलगुल्मोदरानहकण्डूक्षिमुखरोगजित्त।
किलासगदवातामबस्तिरुक् कुष्टनाशम्॥
कासश्वासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत्त।
कण्डु-किलासगदशूलमूखाक्षिरोगान् गुल्मातिसारमुदरामयमुत्ररोधान्।
कासं कुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान् गोमूत्रमेकमपि शीतमपाकरोति॥
सर्व्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम्।
अतो विशेषात् कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते॥
प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्च्चोग्रहापहम्।
शूलगुल्मरुजानाहकामलापाण्डुरोगहृत्।
कषायं तिक्ततीक्ष्णञ्च पूरणात् कर्ण शूल-नुत्॥

गोमूत्रमें फोस्फेट, पोटास, लवण, और नाइट्रोजन पदार्थ हैं। नाई-ट्रोजनमें यूरिया और यूरिक एसिड है। अन्नादिकी वृद्धिके लिये खाद रूपमें यह गोबरसे अधिक मूल्यवान् सार पदार्थ है। किन्तु इसे रख छोड़ना या इसकी रक्षा करनी बड़ी कठिन है। हमारे यहांके खेति-हरोंको गोमूत्रके खादका व्यवहार एक दम अज्ञात है। इसीसे वे गोमूत्रका गोबरकी तरह संग्रह और रक्षा नहीं करते, जिस समय गायें अपने झुण्डके साथ मैदानोंमें विचरण किया करती हैं। उस समय उनके मूत्रका संग्रह करना कठिन है। किन्तु गो-शालेकी नाली द्वारा एक चौबच्चेमें सारे गोमूत्रके गिर कर इकट्ठा होनेकी व्यवस्था कर देने पर, वह आसानीसे रक्षित रह सकता है। यहांसे जब जितने गोमूत्र की आवश्यकता हो, यथा स्थान पहुँचाया जा सकता है। गौशाला-ओंमें रातके समय गायोंके सोनेके लिये यदि विचाली या कुट्टी डाल दिया जाय, तो उस पर गायें आरामसे सो भी सकती हैं; और अगले दिन प्रातः काल उसे एक गढ़ेमें डाल कर उस पर गोबर डालते रहने पर यथा समय वह खादकी वृद्धि कर काममें भी लाया जा सकता हैं। गोशा-लाओंमें नित्य गायोंके नीचे थोड़ा थोड़ा बालू डाल देना चाहिये, क्योंकि रातको उस पर सारा गोमूत्र गिरेगा अतएव अगले दिन उसे एकत्रित कर और नित्य ऐसा करने पर वह भी खेतोंमें खाद रूपसे डाला जा सकता है। कहीं कहीं पर लोग गोमूत्र द्वारा मैले कपड़ोंको धोया और साफ किया करते हैं। गोमूत्रसे नित्य नेत्रोंको धोनेसे बुढ़ापे तक नेत्रोंकी ज्योति एकसां रहती है। गोमूत्रका पान करनेसे सब प्रकारके कोढ़ दूर हो जाते हैं। गोमूत्र तिल्ली रोगके लिये रामवाण है।

गोमूत्रमें हड़को भिजोकर उन्हें किसी लोहेके वर्त्तनमें पीस कर शरीर पर मालिश करने पर धवल रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है। गोमूत्रमें हड़ोंको भिजाकर उनसे अमृत हरीतकी तयार की जाती है। अमृत हरीतकी उदरामय, अरुचि और अजीर्ण रोगका नाश करती है।

गोमूत्रमें धानोंको भिजोकर, उन्हें भूंसीकी आगमें भूनकर बादको जो चावल निकाले जायँ, उनका भात कुष्ठके रोगीको खिलाने पर दुरारोग्य कुष्ट रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। केवल गोमूत्र पानकर अनेक कुष्ट रोगी आराम होते देखे गये हैं! गोमूत्रमें निर्गुण्डके पत्तोंको भिजोकर अथवा निर्गुण्डीके पत्तोंके चूर्णके साथ गोमूत्रका व्यवहार करनेसे भी अनेक प्रकारके कोढ़ आराम हो जाते हैं। मूल ग्रन्थकारका कोई परिचित कुष्ट रोगी नित्य प्रातः काल उठ कर गोशालाका गोबर उठा उठा कर दूसरे स्थान पर ले जाया करता था एवं एक ग्लास नित्य गोमूत्र पान किया करता था। आजकल उसके शरीरमें कोढ़का नामो निशानी नहीं देख पड़ता और तबसे आज तक सानन्द जीवन व्यतीत कर रहा है। अब भी वह नित्य गोमूत्रका उसी प्रकार व्यवहार करता है। उसे गोमूत्र पीनेमें तनिक भी कठिनाई नहीं मालूम होती।

षष्ठ खण्ड

गव्ययी (१)

प्रथम परिच्छेद ।

गोरोचना

कण्ठे ब्रह्मा गले विष्णुर्मुखे रुद्रः प्रतिष्ठितः ।
मध्ये देवगणाः सर्वे लोमकूपे महर्षयः ॥
नागा पुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टौ कुलपर्वताः ।
मूत्रेगङ्गादयो नद्यः नेत्रयोः शशिभास्करौ ॥
एते यस्यास्तनौ देवाः सा धेनुर्वरदास्तु मे ।

भविष्य पुराण ।

किसी किसी उत्कृष्ट गायके वक्षःस्थलमें पित्ताधार या फेंफड़ेके पास पीले रंगका शुष्क पित्त होता है, उसे गो-रोचन कहते हैं। वह इस देशमें अनेक प्रकारके जटिल रोगोंमें महोषधिके रूपमें व्यवहृत किया जाता है। परम पवित्र समझ कर हिन्दू लोग उसे गलेमें धारण किया करते हैं। तंत्रोक्त विधानानुसार पूजामें गोरोचन द्वारा यंत्रोंका निर्माण होता है। अवस्थासम्पन्न या धनी घरकी स्त्रियां इससे अपने केशोंका

(१) गोरिदं त्वक् इत्यादि विश्वकोष ।
गव्ययी त्वगभवति ऋक् (६।७०।७) गव्ययी गोमयी (सायन)

शृंगार किया करती हैं। पहले इसे पतला कर स्याहीके स्थान पर लिखनेके काममें लाया जाता था।

भाव प्रकाशके मतानुसार यह गुणोंमें शीतल, तिक्त, वश्यकारक, मङ्गल और कान्तिवर्द्धक है। एवं विष, दरिद्रता, ग्रहोंके कोप, उन्माद गर्भपात, घावसे रक्त गिरना आदि रोगोंका बाधक है। राज निर्घण्टके मतानुसार गोरोचन रुचिकर, पवित्र और वाजीकरण करानेवाला है। कृमि और कुष्ट रोग दूर होते हैं। मोहजनक और भूत व्याधिका नाश करता है।

द्वितीय परिच्छेद।

गायके सींग।

गायोंके सिरके दोनों ओर तीखी नोकवाले, कठिन और मजबूत दो खूटेंसे होते हैं, उन्हें ही गायके सींग कहते हैं। यह पूर्वकालमें गायों-को रक्षाके लिये बने थे। गो-जाति इनसे अपने शत्रुओंके आक्रमणसे अपनी और अपनी संततियोंकी रक्षा करती थीं। अब भी जब गायें बियाती हैं और उस समय यदि कोई उनके बच्चेको छूने जाय, तो वे उसे मारने दौड़ती हैं। बैलोंके सींग गायोंकी अपेक्षा मोटे और मज़बूत होते हैं। गायोंकी अपेक्षा बैल या सांड़ क्रोधी भी अधिक होते हैं। ये सींगों द्वारा प्रायः ही तुल्यबलशाली अन्य साँड़ोंके साथ मरण पर्य्यन्त लड़ते रहते हैं।

गाय, बकरी और हिरनके सींगोंको अंगरेजीमें 'केविकार्निया' (Cavicornia) कहते हैं। सींगके तीन भाग होते हैं। प्रथम-आरंभिक भाग या (Basal part) दूसरा मध्यभाग, तीसरा उसका

ऊपरी भाग। हरिणोंके सींगोंके मध्य और ऊपरी भागका अंश प्रति वर्ष गिर जाता है। गायोंके सींगोंके गोल चिन्ह द्वारा उनकी अवस्थाका निर्णय होता है। गायोंके सींगोंका चूरा भी खादके काममें आता है। यह प्रायः अंगूरोंकी बेलके नीचे दिया जाता है। इस चूर्णमें फी सदी १४-१६ भाग नाइट्रोजन होता है एवं १६ भाग एमोनिया होता है। इनके अच्छे सींग द्वारा घड़ी और छड़ियोंकी मूठें तथा बटन बनाये जाते हैं। सींगोंके खराब भाग या सरासर खराब सींगोंको गला कर सरेस तय्यार की जाती है। सींग टूटनेके सिवा उनमें और किसी प्रकार की खराबी कभी नहीं आती। किन्तु सींगोंका अग्र भाग जोकि तीक्ष्ण होता है, कभी टेढ़ा हो कर गायोंके माथेमें लग वहाँ की अस्थिको तोड़ देता है। सींग टूट जाने पर उसके जड़से कभी बहुत खून गिरा करता है। उस समय कार्बोलिक तैल, अथवा लोहा गरम करके यदि यह भी संभव न हो तो पारक्लोराइड आव आयरन, जहां घाव हुआ हो, वहां लेपकर देना चाहिये। ऐसा करदेनेपर उस घावमें किसी प्रकारका दोष वा सड़न न पैदा होगी। कहते हैं आजकल गायें अपने सींग आत्म रक्षाके लिये व्यवहारमें नहीं लातीं वरन् उत्पात और उपद्रवके लिये। इसीसे विलायतके ग्वाले गायोंके सींग काटकर या आरम्भमें ही किसी ओषधिसे सींगको पैदाइशका ज़रिया बन्द कर देते हैं।

तृतीय परिच्छेद ।

गो-रक्त ।

गो-रक्त अति सहजहीमें परिवर्त्तित होकर तरल नाइट्रोजन बन जाता है। सूखे गोरक्तमें फीसदी १० भाग नाइट्रोजन और कितना एक नमक तथा पोटास होता है। इङ्गलैण्डमें यह अन्य द्रव्योंके संयोगसे सारस्वरूप अथवा खादके बदले व्यवहारमें लाया जाता है। इससे शराब और चीनी साफ की जाती है एवं 'प्रूसियनब्लू' नामक लिखनेकी स्याही तय्यार होती है।

चतुर्थ परिच्छेद ।

गो-अस्थि ।

गायकी हड्डियाँ, उसके शरीरकी मूल-भित्ति हैं। गायकी हड्डियों-का चूर्ण अति उत्तम खाद है। इसमें चूना, नमक, केलसिकम, फास्फेट, कार्ब्बोनेट और क्लोराइड नामक पदार्थ होते हैं। भारतके अनेक स्थानोंमें मरी गायें मैदान या सूखी जमीनोंमें डालदी जाती है। वे कुछ ही दिन बाद मैदानमें पड़ी पड़ी अति उत्तम खादके रूपमें परिणत हो जाती हैं। किन्तु आजकल ऐसा रिवाज नहीं देखा जाता। आजकल मैदानोंमें गायोंकी हड्डियां ढूँढे भी नहीं मिलतीं। कारण जबसे यहाँ यूरोपीय अङ्गरेज व्यापारी आने लगे, तबसे वे उन हड्डियोंको एकत्रित कर विलायत भेज देते हैं और वहां 'बोनमिलों' में उन्हें पिसवा कर खूब नफेके साथ बेच डालते हैं। एवं वही चूर्ण खाद रूपमें इस देशके व्यापारी खरीदते और काममें लाते हैं।

समस्त हड्डियोंका संग्रहकर पहले उनसे चर्बीका अंश निकाल लिया जाता है। वह अंश बंद लोहेके बर्त्तनमें गरम कर जलाया जाता है। गर्मीसे चर्बी अलग और अस्थियाँ अलग हो जाती हैं, साथही हड्डियोंका चूर्ण भी हो जाता है। अनन्तर चर्बीका पतला भाग चुआ चुआकर अलहदा कर लिया जाता है। इस भागमें एमोनिया लिकर (amonia liquor) और अस्थि निर्य्यास (Bonstar) तय्यार होता है। एमोनिया लिकरमें अस्थिका नाइट्रोजन अंश ही अधिक होता है। इससे एमोनिया साल्ट प्रस्तुत होता है। अस्थि-निर्य्याससे भी अनेक प्रकारके द्रव्य तय्यार किये जाते हैं। उसका अवशिष्ट प्राणीज अङ्गार है। बारंबार जलानेपर इसका रंग सादा या सफेद हो जाता है। इससे चीनी साफ़ की जाती है। इसे बारंबार पतली चीनीमें डुबोनेपर चीनीकी लाली दूर हो जाती है और वह सफ़ेद तथा मनोहरसी दीखने लगती है। चीनीको बारंबार साफ करनेसे उसकी सारी जान निकल जाती है। किन्तु अङ्गरेज लोग उसे तबतक साफ़ करते हैं, कि जबतक उसमें साफ होनेकी गुञ्जायश रहती है। जब वह खूब साफ़ हो जाती है, तब उसे जलाते हैं और बादको सार स्वरूप या खादके रूपमें बाज़ारमें बेचते हैं। चीनी जितनी साफ़ की जाती है, उतनी उसमें कार्बनकी वृद्धि होती है। उस समय उसमें फ़ी सदी २० भाग कार्बन, थोड़ा सा नाइट्रोजन और फास्फेट रहता है।

आजकल अस्थिसार या हड्डियोंका सार जैसा बेशकीमत और गुणकारी समझा जाता है वैसा कोई भी खाद गुणकारी नहीं समझा जाता। इसके इतना आदरणीय होनेके तीन कारण हैं। एक तो यह यूरोपमें बहुत दिनोंतक व्यवहारमें लाया जाकर लाभवान साबित हुआ है। दूसरा इसके व्यवहारके बाद वर्षभर तक किसी दूसरे खादकी जरूरत नहीं होती। तीसरा किसान लोग इसके खादके सुफलके सम्बन्धमें निश्चिन्त रहते हैं।

इंगलैण्डमें यह अस्थि चूर्ण-सार संसारके भिन्न भिन्न प्रदेशोंसे लाया जाता है। इसका अधिकांश भारतवर्षसे ही भेजा जाता है। सन् १९०५ ई० में ४७३४६ टन गायकी हड्डियाँ इंगलैण्ड भेजी गयी थीं। इंगलैंडमें भाँति भाँतिके प्रकारोंसे हरसाल प्रायः १ लाख टन यह अस्थि चूर्ण व्यवहारमें लाया जाता है। (१) भारतीय अस्थि चूर्ण ही अधिक सारवान हैं।

हाड़ोंके भीतर जो चर्बीका भाग (Marrow) होता है, वह हड्डियोंके खादकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान् पदार्थ समझा जाता है। इस चर्बीके द्वारा मोमबत्ती, ग्लाईसरीन (Glyesrine) नामक औषध और साबुन तयार किये जाते हैं।

---

(१) We import bones from a great many different parts of the world and the chief sources of supply are the East Indies and the 'Argentine Page 183. Vol II. S. C. M. Agriculture.

पञ्चम् परिच्छेद ।

गो-चर्म ।

भारतमें गो-चर्म पहले अति विशुद्ध समझा जानेके कारण विवाह, और उपनयन आदि शुभ कार्य्योंमें काममें लाया जाता था। यहाँतक कि ब्रह्मचारी भी उपनयनके समय चर्म्म पादुकाओंका व्यवहार किया करते थे। अब क्रमशः अनेक प्रकारके कुसंस्कारोंके प्रभावसे गो-चर्म अपवित्र समझा जाने लगा। (१)

गो-चर्म्मसे जूता, ज़ीन, गद्दी, अनेक प्रकारके बजाने योग्य बाजे, बैठनेके आसन, बैग, सन्दूक और तलवारोंके म्यान आदि अनेक मूल्यवान् सामग्रियाँ बनायी जाती हैं। इस कामके लिये प्रति वर्ष भारतवर्षसे करोड़ों रुपयोंका चमड़ा विलायतमें भेजा जाता है। वहांपर सब चमड़ोंको साफ़ करते हैं एवं फिर उनके अनेक प्रकारके द्रव्य बना बना कर भारतवर्षमें भेज खूब मुनाफ़ेके साथ बेचते हैं।

चमड़ेको भी खेतोंमें गाड़ देनेसे खादका काम निकलता है।

गो-चर्म्म इङ्गलैंड जाकर चर्म्मइन्सपेक्टर द्वारा ३ भागोंमें विभक्त हो जाता है। प्रत्येक भागपर १।२।३ के निशान डाल दिये जाते हैं एवं इन्हीं निशान या अङ्कोंके अनुसार उनकी कीमत कमोवेश समझी जाती है।

---

(१) सामवेदीय विवाह पद्धतौ—

प्राग्ग्रीवास्तृतलोहित वृषचर्म्मणि अविधवाः पुत्रवत्यो ब्राह्मण्यो वधुमुपवेशयेयुः इति। अत्रगोभिलसूत्रम्। गृहगताम् पतिपुत्रशीलसम्पन्ना ब्राह्मण्येऽवरोप्यानडुहेचर्म्मण्युपवेशयन्ति इति।

उपनयन पद्धतौ—

अनेन मन्त्रेण चर्मपादुकायुगुलं पादौ निदध्यात् ॥

अत्र गोभिलसूत्रम्। नेत्रौ स्थो नयत मामित्युपानहौ।

अस्यार्थः आवध्नीत इत्यनुवर्त्तते। उपानहौ चर्म्मपादुकायुगुलं योग्यत्वात् पादयोः ॥

अत्रगोभिलः

अपरेणाग्निमानडुहः रोहितः चर्मप्रागग्रीवमुत्तरलोमास्तीर्णं भवति ॥

षष्ठ परिच्छेद ।

चमड़ेको साफ करनेकी रीति ।

—:*: —

क्रोम ट्रेनिङ्ग

"कषाय चर्म चेलवत्"

India possesses an extensive series of excellent tanning materials, such as acacia, pods and bark cutch, Indian sumach, tenner's cassia, mangroves, myrabolans and others.

I. G.

Vol. II. page 189.

The imports of boots and shoes have for some years been increasing rapidly. In 1886-7 the supply was valued Rs 11,30000 and in 1903-4 at Rs. 2790000 lacs.

Imperial Gazetteer.

Vol. III page 190.

पहले भारतमें कषैले द्रव्योंके संयोगसे चर्म परिशोधन या 'टेन' करनेका विधान था। यह 'चर्म कौषेय वस्त्रकी भाँति शुद्ध समझा जाता था।

भारतमें चमड़ा साफ़ करनेके लिये सब प्रकारके माल मसाले होते हुए भी यहाँके लोग अब वैज्ञानिक प्रणालीसे चमड़ा साफ़ करना भूल गये। इसका परिणाम हमको यह भोगना पड़ रहा है, कि भारतका १०००,०००० दश करोड़ रुपयेका चमड़ा पाँच करोड़ रुपयेमें बेच फिर हम उसे २०००,०००० बीस करोड़ रुपयेमें खरीदते हैं। बूट, स्लीपर और अन्यान्य प्रकारके जूते, घोड़ेके साज़, बक्स, बैग, पुस्तकोंकी जिल्द बाँधनेका चमड़ा आदि सैकड़ों आवश्यकीय चमड़ेकी बनी वस्तुएं हम विदेशसे मंगाकर व्यवहारमें लाया करते हैं। सन् १८७६ और १८७७ में

एक करोड़ तेरह लाखके जूते और बूट विदेशसे आये थे। सन् १६०३ में २७६०००० रुपयेके जूते विदेशसे आये ।

सन् १८६३ में भारतमें ४४ टेनरियाँ थीं। उनमें ३८०४ मज़दूर काम करते थे। सन् १६०३ में ४३ टेनरी और हो गयीं, जिनमें ७,००१ मनुष्य काम करते थे। इन ४३ में ३१ मद्रासमें खुली थीं।

संसार भरमें चमड़ेमें अतिविस्तृत व्यवसाय हो रहा है। सन् १६०५ में भारतवर्षसे ५ करोड़ ३० लाख रुपयेका चमड़ा विदेश गया। हमारे देशमें नितान्त मूर्खोंकी भाँति पशुओंका चमड़ा तयार किया जाता है एवं वह आधे मूल्यमें बेच दिया जाता है। वैज्ञानिक प्रणालीसे पशुओं-का चमड़ा न निकालनेसे संभवतः १० करोड़ रुपयोंका चमड़ा ५ करोड़में बेच दिया जाता है। आयर्लैण्ड और इङ्गलैंड आदि देशोंमें भी पहले वैज्ञानिक रीतिसे पशुओंका चमड़ा नहीं निकाला जाता था। हाँ आजकल जिस ढङ्गसे वहाँपर चमड़ा निकालनेकी रीति है, उससे कहीं काटने या घावका चिन्ह नहीं होता।

चमड़ेसे जूतेके तले, कमरबन्द, घोड़ेके साज़ तय्यार होते हैं। एक बढ़िया गो-चर्मका मूल्य प्रति पौंडके हिसाबसे ७॥ पेनी अर्थात् एक सेर चमड़ेका मूल्य १ शिलिङ्ग ३ पेंस ॥≈) आना होता है। एक अच्छे चमड़ेका वजन ७० पौण्ड मान लेनेपर उसका मूल्य ३२ रुपयेसे अधिक हो सकता है। किन्तु हमारे देशमें वही अच्छा चमड़ा ३।४ रुपयेमेंही बेच दिया जाता है। यदि एक पशुके सिरसे लेकर पूंछ तकके चमड़ेका मूल्य निर्धारित किया जाय, तो इससे भी अधिक होगा। अमेरिकामें प्रत्येक टेनरी या चमड़ा निकालनेके कारखानोंमें एक इन्सपेक्टर रहता है। वहाँ पर जो आदमी अच्छे ढङ्गसे चमड़ा नहीं निकाल सकता, इन्सपेक्टर उसे तत्काल बर्खास्त कर देता है एवं उसके स्थानपर किसी अच्छे कार्यदक्ष आदमीको नियुक्त कर देता है। कारण, कि—ख़राब ढंगसे चमड़ा निकालनेपर देशके करोड़ों रूपयोंकी हानि होती है। ऐसा रिवाज वहाँ

पर केवल देशके धन भण्डारमें धन वृद्धिके लिये ही है। किन्तु हाय! भारत तो इस व्यापारमें बर्बाद हो रहा है, गोचर्मको टैन या विलायती चर्म बनानेके लिये जो प्रयत्न किया जाता है, उससे जातीय धन भाण्डार की असीम उन्नति होती है। प्राचीन कालसे प्रायः समस्त देशोंमें मनुष्य अनेक प्रकारसे गोचर्मका व्यवहार करते आते हैं। अब साय-न्सकी रीतिसे इस चर्मको पक्का, चिकना और सुरञ्जित बनानेकी चेष्टा हो रही हैं।

इस व्यवसाय या उक्त चेष्टासे देशको करोड़ों रुपयोंका लाभ हो सकता है। चमड़ेमें दो प्रकारके पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। एक रोम और दूसरा रोमविहीन चर्म्म। रोम, शृङ्ग और खुर ये एक ही उपादानोंसे गठित होते हैं। चमड़ेमें रोमोंकी जड़में छोटे छोटे छिद्र होते हैं। इन छिद्रों द्वारा ही चमड़ेके नष्ट होनेकी आशङ्का रहती है, इसलिये चर्म व्यवसायी विशेष सतर्कतासे उसकी रक्षा करते हैं। चर्ममें निम्नलिखित उपादान हैं।

कार्ब्बन	४६—५६ भाग।
नाइट्रोज़न	१५—१६ भाग।
हाइड्रोज़न	६॥—७॥ भाग।
आक्सिज़न	१७—२६ भाग।
गन्धक	बहुत थोड़ा।
फास्फोरस	बहुत थोड़ा।

इस चमड़ेको सड़नेसे बचानेके लिये प्रायः ३ उपाय काममें लाये जाते हैं:—

(१) चमड़ेको सुखाकर रखना, (२) नमकका लेप करके रखना, (३) और नमकके संयोगसे सुखा लेना।

सूखा हुआ चमड़ा ही सिकुड़कर नष्ट हो जा सकता है। इसलिये उसे नमकके लेप करके सुखानेकी प्रणाली ही ठीक है। चमड़ेके भी

तरी भागमें अर्थात् मांसवाले भागमें उसके वजनके अनुसार फ़ी सदी २५ भाग नमकका लेप करनेसे ही चमड़ेकी उत्तम प्रकारसे रक्षा होती है। अमेरिकाके चिकागो नामक नगरमें चमड़ेकी रक्षाके लिये यही उपाय काममें लाया जाता है। दक्षिण अमेरिकामें भी चमड़ेको सुखानेकी यही रीति प्रचलित है। पहाड़ी प्रदेशोंमें जो पशु विचरण किया करते हैं, उनका चर्म वैज्ञानिकोंने सर्वोत्कृष्ट माना है। नीचेकी जलपूर्ण भूमिकी बहुतसी दुधारु गायोंका चमड़ा अच्छे चमड़ेकी दृष्टिसे देखनेपर ठीक नहीं जंचता।

बछड़ोंका चमड़ा भी अच्छा माना जाता है, किन्तु बैलोंका चमड़ा अच्छा नहीं होता।

चमड़ेका मूल्य उसके निकालनेकी उत्तमता पर निर्भर होता है। मांस और चर्बीहीन अथवा सरासर एक होनेपर वह ज्यादः दामोंमें बिकता है। धूपमें सुखानेके समय छुरेका दाग, छुरीका दाग या हाथ पाँवके चिह्नों तथा जीवित पशुके अन्य किसी प्रकारके दागोंका निशान होनेपर चमड़ेकी कीमत ठीक नहीं उठती। विशेषकर गायोंके दागनेके चिन्हसे चमड़ेको बहुत हानि पहुँचती है। जोवित गायोंके शरीरमें प्रायः दो पङ्खवाले छोटे छोटे कीड़े पैदा हो जाते हैं। वे चमड़ेके भीतर छेदकर उसमें अपने घर बना लेते हैं। इन कीड़ोंको नष्टकर चमड़ा सुखाने और उसे बेचनेपर चमड़ेका मूल्य बहुत कम हो जाता है। ऐसा कि दागी चमड़ा बहुत कम कीमतमें बिकता है। अतएव गोपालकोंको चाहिये, कि वे इस बातपर सदैव दृष्टि रक्खें, कि उनके पशुओंके शरीरमें उक्त प्रकारके कीड़े पैदा न हो सकें।

बिना रोमका चमड़ा तौलकर ख़रीद फरोख्त होता है, एवं जितना भारी होता है, उतने अंक चमड़ेके पूछ स्थानपर लिख दिये जाते हैं। जो चमड़ा वजनमें जितना भारी होता है, वह उतना ही अच्छा समझा जाता है।

इङ्गलैंडके हेरिफोर्ड आदि स्थानोंका और स्विटजलैंण्ड, हालैंड आदि देशोंके चमड़े भी श्रेष्ठ समझे जाते हैं। ऊपरी कामोंके लिये भारत-वर्षीय चमड़ा ही अति श्रेष्ठ माना जाता है। (१)

चमड़ेको टेन या साफ़ करनेके लिये पहले चमड़ेको भिजोकर उसमें जो गोबर और मट्टी भरी होती है, उसे साफ़ किया जाता है। चमड़ेमें जो नमक लगाया जाता है, उसे भी इस समय साफ़ किया जाता है। तिसपर भी यदि चमड़ा अधिक दिनोंतक पानीमें रक्खा जाय, तो उसके सड़ जानेका भय रहता है। इसीसे उसे शीघ्र ही साफ़कर लेना चाहिये। सूखे चमड़ेको नरम करना ज़रा कठिन काम है। तथापि आजकल कास्टिक सोडेके पानीमें या ०'१ शक्ति रखनेवाले सोडियम सलफाइटके पानीमें भिजोकर साफ़ किया जाता है।

चमड़ेको दूसरे प्रकारसे लोमहीन या साफ़ करनेकी रीति—चमड़ा दो प्रकारसे साफ़ होता है, (१) एक उसे उत्तप्तकर अर्थात् वायु बन्दकर ७०° एफ्० से ८०° एफ्० तक गर्म घरमें ४ से ६ दिनतक रखनेसे रोमोंकी जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं। उस समय चमड़ा आसानीसे ही साफ हो सकता है। (२) चमड़ेको चूनेके पानीमें भिजा कर।

चूनेके पानीमें सोडियम सलफाइड (Na_2S, $9H_2O$) मिला कर उसमें चमड़ा भिजोकर रखनेसे वह सहज हीमें लोमहीन हो जाता है। चूनेके पानीमें आर्सेनिक सलफाइड (Realgar, $As_2 S_2$) या केलसियम हाईड्रोसेलफाइड ($Ca (SH)_2$) मिलाकर उस पानी-में चमड़ा भिजो देनेसे भी वह आसानीसे लोमहीन यानी साफ हो जाता है। ऐसा करनेपर केवल चमड़ा लोमहीन नहीं होता वरन् उसमेंका अवशिष्ट चर्बीका अंश भी दूर होकर साफ हो जाता है। चमड़ेके भीतरकी ओर जिस ओर मांस होता है, उधर भी उपरोक्त औषध

(१) East India Kips are very suitable for upper leather.

S. C. M. A, Vol. VIII page 46.

मिश्रित जल देना चाहिये। इस प्रकार इसके साफ होनेकी अवधि अवस्थानुसार एक सप्ताहसे लेकर ३ सप्ताहतक है। एक टेढ़े ढङ्गसे लटके काष्ठ खण्डके ऊपर चमड़ा रखकर एक दो धारी छुरीसे उसे कमानेपर चमड़ेके सारे लोम गिर जाते हैं। चमड़ेमें लगी चर्बी भी इसी छुरीसे साफ कर दी जाती है।

तीसरी रीति—चूनेकी प्रति क्रिया और भीजा चमड़ा जो प्रायः फूल जाता है, उस दोषको दूर करना तथा चमड़ेको मुलायम बनाना।

कुत्तेके विष्ठेके साथ जल गरम कर, इस जलमें चमड़ेको भिजोनेसे चमड़ेका चूना दूर हो जाता है। और इसीसे उसका फूला हुआ अंश साफ़ हो जाता है। इस घृणित कार्य्यके सिवा यह प्रक्रिया अन्य किसी वैज्ञानिक उपायसे सम्पादन करनेकी चेष्टा वैज्ञानिक लोग कर रहे हैं; किन्तु अभीतक कोई भी वैज्ञानिक सफल मनोरथ न हो सका है। तथापि पतले चमड़ेका चूना दूर करनेके लिये कुत्तेके मलके बदले कबूतर और मुर्गीकी बीटका व्यवहार किया जा सकता है।

भूसीको जलमें पकाकर उसमें चमड़ा भिगोकर रखनेसे यह भूसी चूनेकी प्रति क्रियाकर चमड़ेसे चूनेका सारा अंश दूर कर देती है। मोटा चमड़ा अधिक दिनों तक चूनेमें भिगो रखनेसे लेकटिक् (Lactic) ऐसेटिक् (Acetic) बोरिक (Boric) ऐसिडके पानीसे वह दूर हो जाता है। अनन्तर उपरोक्त टेढ़े काठपर उसे सुखाने तथा दो धारी छुरीसे कमानेसे अन्य दोष भी दूर हो जा सकते हैं। इन क्रियायोंके बाद ही चमड़ेको असली ढंगसे साफ़ करनेका कार्य्य आरम्भ हो जाता है। चमड़ा अनेक प्रकारसे साफ़ किया जाता है। उनमें भी उद्भिद पदार्थों द्वारा, धातव पदार्थों द्वारा और तैल द्वारा साफ करनेकी रीति अधिक प्रचलित अतएव उल्लेख योग्य है।

ओक (Oak) गूलर (Dumur) पाईन (Pain) हेमलक (Hemlock) गैम्बियर (Gombiar Wattle) Mimosa, Berch,

Larch, Mangrove, Malac इन सब वृक्षोंकी छालें जलमें भिगोकर रखनेसे, उसके सड़नेपर जो सिरका तय्यार होता है, उसका नाम अङ्गरेजीमें "टैनलिकर" है। बाज़ारमें भी यह पदार्थ खरीदनेसे पाया जाता है। सर्च (Surch) गॉम्बियरके पत्तोंसे एवं मैरोबेलस, (Marobalous) बेलोनिया (Valonia) वृक्षके फलोंसे भी टैनलिकर तय्यार होता है। यह टैनलिकर जितना भी पुराना होगा, उतना ही अपने काममें अव्यर्थ साबित होगा। उसमें हल्का चमड़ा और मोटा चमड़ा इस क्वालिटिके अनुसार छै माससे एक साल तक भिजो रखनेसे चमड़ा साफ और मज़बूत हो जाता है।

धातव प्रक्रिया द्वारा चमड़ा साफ करना—फिटकरी, नमक, अण्डेका छिलका, (Yolk) जालपाईका तैल और मैदा द्वारा भी चमड़ा साफ किया जाता है। तथापि आजकल क्रोम द्वारा साफ करनेकी प्रथा ही सर्वापेक्षा अधिक आदरणीय और प्रचलित होरही है। क्रामिक साल्ट (Chromic Salt) Cr (OH) SO_4 इनमें सोडा मिलाकर "क्रोमएलम" तय्यार होता है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Hydrochloric Acid) के साथ पोटासियम डाइक्रोमेट (Potassium dichromate) मिलाकर ($Cr\ O_3$) उसमें भिजो क्रमशः उसकी शक्ति बढ़ानेसे चमड़ा मजबूत हो जाता है।

तैल द्वारा साफ और पक्का करनेका नियम—कड मछली या अन्य किसी सामुद्रिक मछलीका तैल चमड़ेमें पोत देनेसे तथा एक घण्टेतक चमड़ा पीटकर एक दिन बन्द रखना चाहिये, जबतक चमड़ा सख़्त न हो जाय, तबतक इसी प्रकार बारंबार तैल पोतने और बारंबार पीटकर इसी प्रकार एक एक दिन टांग टांग कर सुखा लेना चाहिये।

अन्तिम क्रिया—अनन्तर चिकना पत्थर ब्रास और सिलकर (Slicker) द्वारा अच्छी तरहसे घिस कर उसके ऊपरका सारा

मैल दूरकर, फिर सुखा तथा उत्तम रूपसे रूल द्वारा घिस कर, ब्रस कर तैल लगाकर रखनेसे ही चमड़ा भले प्रकारसे साफ और मजबूत हो जाता है। ड्रेसिंग चमड़ेमें अधिक तैल और चर्बी देनी चाहिये, ऐसा करनेसे चमड़ा और मुलायम होता है और पानीसे गल नहीं सकता।

सप्तम् परिच्छेद ।

गो-रोम ।

स्तन्यपायी जीव मात्रोंके ही शरीरपर थोड़े बहुत रोम होते हैं। ह्वेल, सिन्धु-घोटक और हाथी आदिका चमड़ा मोटा होता है, उनके शरीरपर रोम थोड़े होते हैं। किन्तु गाय आदि पशुओंका सारा शरीर सूक्ष्म रोमोंसे परिपूर्ण होता है। रोमों द्वारा इनका शरीर शीत और तापसे रक्षा पाता है। रोमके निचले भागका नाम लोमकूप है। पशुओंके सींग खुर आदि मजबूत और कड़े होते हैं, अतएव उनमें रोम नहीं होते। सब प्रकारके रोम सफेद, काले, लाल और भिन्न भिन्न रङ्गोंके होते हैं। वसन्त कालमें जिस समय प्रकृति नवीन साजसे सज्जित होती है, वृक्ष और लतायें पुराने पत्तोंको दूरकर नव-पल्लवित होती हैं। उस समय पशुओंका भी रोम-समूह परिवर्त्तित होता है। रोम शरीरके आभ्यन्तरिक रक्त द्वारा बढ़ते तथा पुष्ट होते हैं। शरीरके भीतर रक्तके दूषित हो जानेपर या गो-शरीरके भीतर किसी क्षयकारक रोगके हो जानेपर बाहरके रोमोंपर भी उसका प्रभाव पड़ता है। उससे कहीं कहींपर रोम उड़ जाते हैं। इसलिये समस्त शरीरके रोमोंको सदा खरेरे द्वारा साफ रखना चाहिये। साधारणतः गायोंको पूछके रोम शरीरके अन्यान्य रोमोंकी अपेक्षा लम्बे होते हैं। चमरी नामक गायके पूछके रोम बहुत लम्बे और प्रायः सफेद अथवा काले होते हैं। उस पूंछके रोमोंका चमर बनाया जाता है।

अष्टम् परिच्छेद ।

गो-दन्त ।

पहले ही कह आये हैं, कि एक पूर्ण वयस्क गायके मुँहकी नीचेकी पंक्तिमें २० और ऊपरकी पंक्तिमें १२ सब ३२ दांत होते हैं। इन बत्तीसो दांतोंमेंसे नीचेके २० दांत, जिन्हें चर्वण या दूधके दांत कहते हैं वे अपने निश्चित समय पर गिरकर फिर पैदा हो जाते हैं।

वैज्ञानिक परीक्षा करनेपर दांत गायकी हड्डोकी भांति ही पदार्थ विशेष सिद्ध होते हैं। उन्हें चूर्ण करनेपर भी वे अस्थिकी भांति खाद तथा अन्यान्य रूपसे काममें लाये जा सकते हैं। गोदन्तके चूर्ण का किसी पके घाव पर लेप करने पर वह बिना किसी प्रकारकी चीर फाड़ किये ही फट जाता है।

नवम परिच्छेद ।

गायकी आंतें ।

गायकी आंतसे एक प्रकारकी डोरीसी बना कर भारतीय धुने उसका अपने रूई धुननेके यन्त्रमें व्यवहार करते हैं। इसके सिवा बेला, ढोलक आदिक यन्त्रोंमें भी व्यवहार की जाती है।

भारतके अनेक गोप-गृहोंमें भी गायकी आँत दूधमें मिलाकर पनीर बनानेके काममें लायी जाती है। गायकी आंतसे पेपसिन नामक दवा तयार की जाती है। कलकत्तेके म्यूनिसिपेल बाजारमें जो नित्य अनेक गायें मारी जाती हैं, उनकी आंतोंको कीमत खूब उठायी जाती है

दशम परिच्छेद।

गो-मांस।

यूरोपमें गायका मांस खाद्य रूपमें बहुत कुछ व्यवहार होता है। वहां गरीबोंके लिये पेट भरनेको सस्ती वस्तु एक मात्र गो-मांस ही समझा जाता है। इस लिये ग्रेट ब्रिटेन और योरपके अनेक स्थानोंमें तथा अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि प्रदेशोंमें गायें रीत्यानुसार पाली जाती हैं; हमारे देशमें भी मुसलमानोंको गो मांस खाद्य-रूपमें व्यवहार करते देखा जाता है।

तथापि भारतमें हिन्दू, बौद्ध, जैन और सिख गौओंको उनके महोपकारका स्मरण कर मारना और उनका मांस भक्षण करना महापाप समझते हैं।

वेद और स्मृति आदि धर्म्म शास्त्रोंमें भी गोवधकरना महापाप बताया गया है। इसीसे गायका एक नाम अघ्न्या (१) (अर्थात् मारनेके अयोग्य) लिखा है। विशेष कर गो मांस इस ग्रीष्म प्रधान देशके लोगोंके लिये विषतुल्य है। गोमांस खानेसे गलित कुष्ठादि दुरारोग्य व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

---

(१) अघ्न्या (मारनेके अयोग्य)—ऋक वेद।

सप्तम् खण्ड

प्रथम परिच्छेद ।

गोजाति के रोगोंको दूर करनेके उपाय ।

गो जातिकी परिपाक शक्ति अति प्रबल होती है ।

रहड़, उड़द और अन्यान्य अनाजोंके छिलके, भूसी आदि जोकि मनुष्य जातिके लिये अखाद्य हैं, अतएव परित्यक्त हो जाते हैं, गायें उन्हें खाकर अनायास हजम कर जातीं हैं ।

अतएव यह सहजहीमें अनुमान किया जा सकता है कि गायोंको यदि यत्नके साथ रक्षा कर उत्तम रूपसे अहार द्रव्य दिये जायँ, तो उनका बीमारी होना एक असंभव बात है ।

नीचे लिखे कितने एक विषयोंकी ओर ध्यान रखनेसे गायोंके शरीरमें किसी प्रकारका भी रोग पैदा नहीं होने दिया जा सकता ।

गौशाला आदि स्थानोंमें एक गायको किसी प्रकारकी बीमारी या संक्रामक रोग हो जाने पर अन्यान्य गायोंको वहांसे तत्काल हटा देना चाहिये ।

गायोंको खराब भोजन, अल्पाहार और अत्यधिक आहार देने पर ही बीमारी होती है ।

गो ग्रास, विचाली, चूनी और भूसी समयानुसार संग्रह करके रखनेपर अति वृष्टि, अनावृष्टि अथवा जलप्लावन आदिके कारण गायें पीड़ित नहीं होती ।

अनाहार क्लिष्ट या भूखी गायोंको छोड़ देने पर वे खाद्य स्वरूप जो भी कुछ खानेको पाती हैं, उसीको खा लेती हैं । अतः उनके सन्मुख

पड़ने वाली वस्तुओंमें कभी कोई कुखाद्य खालिया गया, तो गायें तत्काल या कुछ समय बाद बीमार हो जाती हैं। यदि गायोंको समय उपयुक्त आहार दिया जाय, तो वे कभी बीमार न हों।

तलैटीके अनेक देश और बंग प्रदेशमें वर्षाके अधिक होनेसे जल मग्न स्थानोंको सड़ी घास खाकर गायें बीमार हो जाती हैं। अतएव गायोंको वहांकी घासें न खिलानी चाहिये।

उपरोक्त स्थानोंका गदला और कीचड़ मिला पानी पी कर भी गायें बीमार हो जाती हैं।

गरमियोंकी प्रखर धूप पौष और माघ मासकी भीषण सर्दी एवं वर्षा कालकी प्रवल जल वर्षासे सुरक्षित न होने पर गायें बीमार हो जाती हैं। इन सब त्रुटियोंको दूर करना चाहिये।

गीले, दुर्गन्ध, पूर्ण वायु वाले स्थानोंमें निवास करनेसे गायें पीड़ित हो जाती हैं। अतःएव गायोंको ऐसे स्थानोंपर न रखा जाय, उन्हें किसी प्रकार भी रोग न हों, इत्यादि विषयोंपर ध्यान रखना चाहिये।

द्वितीय परिच्छेद।

गायोंके रोग और चिकित्सा

गोचिकित्सा प्रणालीके सम्बन्धमें स्थूल ज्ञातव्य विषय।

चिकित्सा ग्रन्थ लिखनेसे पहले एक विषय पर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये और वह यह कि पीड़ित गायोंकी चिकित्सा कर आरोग्य करनेकी अपेक्षा, उन्हें बीमार ही न होने देना अच्छा है।

रुग्न पशुको पहले अति सहज लभ्य अनिष्टशंकाहीन और सामान्य औषध द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

पशुओंको साफ़ और सुथरे, सूखे और शुद्ध हवादार स्थानोंमें रखनेसे, विशुद्ध जल और विशुद्ध वायु सेवन करानेसे, अपर्य्याप्त पुष्टिकर आहार्य्य द्रव्य देनेसे एवं शीत, धूप और वृष्टिसे रक्षा करनेपर पशु शरीरमें सहज ही कोई रोग प्रवेश नहीं कर सकता। सड़ा दुर्गन्धियुक्त पानी और ऐसे पानीमें पैदा हुए जलज पदार्थ पशुओंको खाने न देनेसे पशुओंपर रोगोंका आक्रमण होता बहुत कम देखा गया है।

पतली ओपधि ही पशुओंको खिलाना सुविधाजनक है। अदरख, सोंठ, राई या सरसोंके चूर्ण आदि सामान्य उत्तेजक पदार्थोंके संयोगसे औषध प्रयोग करनेपर पहली तीनों औषधियां पाकस्थलीमें सहज ही प्रवेश कर जाती हैं। गायोंके लिये दी जानेवाली दवाओंकी मात्रा घोड़ों-की औषध मात्रासे दुगुनी होनी चाहिये। एप्सम साल्टका सेंधानमक गो जातिके लिये अति उत्कृष्ट विरेचक पदार्थ हैं।

रोगी पशुकी चिकित्सा करते समय निरोग अवस्थामें उसके शरीर का उत्ताप, नाड़ीकी गति और श्वासप्रश्वास सम्बन्धी बातोंकी अभिज्ञता आवश्यक है। पूंछकी जड़ अथवा पहले पंजरेकी मध्यस्थ हड्डीकी परीक्षा करना सुविधा जनक है।

गायोंकी नाड़ी और उनके जबड़ोंको परीक्षा की जाती है। क्योंकि—शरीरके भीतरसे एक नाड़ी जिसे अंगरेज़ीमें (Submaxilary artey) कहते हैं। दाँतोंके आरंभिक स्थान द्वारा मुँहमें चली गयी है। तर्जनी और मध्यमा एक ओर और अंगूठा एक और मुँहमें छु आनेसे ही नाड़ी मिल जाती है

वयसके व्यतिक्रमके अनुसार नाड़ीकी गति पहचानी जाती है। अल्पवयसवाली गायकी नाड़ीकी गति प्रतिमिनट ५५ से ६५ वार, मध्य वयसवाला गायकीं नाड़ीको गति ४५ से ५० वार, बूढ़ी गायकी ४०-४५ वार स्पन्दित होती है।

श्वास और प्रश्वासकी संख्या और उनकी गतिकी प्रकृतिका लक्ष्य

रखना भी उस समय आवश्यक है। गायके वक्षस्थलपर कान लगानेपर श्वासोंका निर्णय हो जाता है। गायके श्वास प्रश्वासोंकी क्रिया उसकी छातीके उत्थान-पतनकी गणना कर स्थिरकी जाती है।

श्वास प्रश्वासकी संख्या प्रति मिनटमें साधाणातः १० से १५ वार होती है।

नाड़ीकी गतिके अनुसार श्वास-प्रश्वासकी संख्याका अनुपात १ :– ४-१/२ होती है। (१)

मनुष्यको जो रोग होते हैं, गायोंके शरीरमें भी प्रायः वे ही रोग होते हैं। इन रोगोंके अलावा और भी २।३ रोग गायोंको हुआ करते हैं।

जब गायें मनुष्यके रोगोंसे पीड़ित होजायँ, तो उनकी चिकित्सा भी मनुष्यकी चिकित्साकी भांति ही करनी चाहिये। उसीसे फायदा होगा।

मनुष्यकी चिकित्सा और गायकी चिकित्सा एकसांह करनेपर सुपरिणाम होनेके कई एक कारण हैं।

पहला कारण-गोदुग्ध पानकर मानव शरीर अति सुन्दर रूपसे बर्द्धित और पुष्ट हो सकता है।

दूसरा कारण—पशुओंमें गायें ही मनुष्य जातिकी भांति ६ मास १० दिनमें सन्तान उत्पन्न किया करती हैं।

तीसरा कारण—गोवसन्तके बीज द्वारा टीका देनेपर मानव शरीरमें रीत्यनुसार वसन्त या चेचक प्रकट हो जाती है।

चौथा कारण—प्रबल रक्त आमाशयमें आक्रान्त एक गायको (गो-चिकित्सक और गो-उपयोगी औषधके अभावमें) मनुष्योंको दी जाने-वाली ओषधिसे आराम होता देखा गया है। और विकारग्रस्त गायको केवल मकरध्वज द्वारा विकारसे मुक्त होते देखा गया है।

पांचवा कारण-बहुतसे विज्ञ चिकित्सकोंका भी यही मत है, मनुष्यके रोगोंमें दी जानेवाली ओषधियोंका प्रयोग करनेपर गाये आरोग्य प्राप्तकर सकती हैं।

(१) Farmers Encyclopeadia by D. Managei page 375.

तृतीय परिच्छेद।

गो शरीरकी गरमी।

मनुष्य शरीरकी स्वाभाविक उत्ताप फोरेन हीट थर्मामीटरकी ९८'४ डिग्री है। गो शरीरको स्वाभाविक गर्मी इस थर्मामीटरके अनुसार १०१'८ है। गो शरीरमें यह गर्मी और भी बढ़ जानेपर समझ लेना चाहिये कि उसे ज्वर होगया है।

गायके लिये दी जानेवाली ओषधिकी मात्रा मनुष्यकी ओषधि मात्रासे ६ से १० गुणी है।

मझोले आकारकी गौको मनुष्यकी औषधिसे आठ गुनी, औषधिसे देनेसे लाभ होता है।

बङ्गालकी छोटी गायको छगुनी और हान्सी, नेलोर प्रभृति बड़ी बड़ी गायको मनुष्यकी ओषधिकी दसगुनी दवा देनी चाहिये।

एक मासले छै मास तककी उम्रवाले बछड़ेके लिये दी जानेवाली ओषधिकी मात्रा पूर्व अवस्थावाली गायकी मात्रासे आधी होती है।

एक माससे भी कम उम्रवाले बछड़ेको दी जानेवाली ओषधिकी मात्रा पूर्णावस्थावाली गायकी ओषधिसे चौथाई होती है।

ओषधि खिलानेकी रीति—

(१) यदि औसधिके साथ मीठी चीज़ मिला करके केला या बांसके पत्तेसे ग्रास तय्यार कर यह ग्रास गायको खिलाया जाय, तो गाय उसे सहजहीमें खा लेती है।

(२) पतली दवाई भी यदि मीठी चीज़के साथ खाने दी जाय तो, तो गाय उसको चाट लेती है।

(३) यदि इन दोनों ढगोंसे भी गाय अपने रोगकी ओषधि न खाये तो सीधी और पतले मुँहवाली बोतलमें अथवा बांसकी नलीमें ओषधि भरकर दो जने गायके मुँहको फैलावें और तीसरा आदमी उस

दवाको उसके मूँहमें ढालदे, बस दो घूटँमें गाय उस दवाको निगल जायगी। इस ढंगसे दवा खिलानेमें भी इस बातपर विशेष सतर्कता रखनी चाहिये, कि-दवा गायकी नाकमें प्रवेश न कर सके।

गायपर जोर जबर्दस्ती न कर सहज ही में दवा खिलाना और भी अच्छा है।

नल या बांसका चोंगा बनानेके समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये, कि-उसका मुख टेढ़ा हो, साथ ही उसके मुँहकी कोरें चिकनी हो जो गायके मुँहमें छिद न सकें।

चतुर्थ परिच्छेद।

संक्रामक रोग।

गोजाति अनेक प्रकारके संक्रामक और मारात्मक रोगों द्वारा आक्रान्त होकर अति शीघ्र मृतासो मालूम होने लगती हैं। गोमांस भोजियों द्वारा जितना गोवंश नष्ट होता है, उससे अधिक गोमरी द्वारा होता हैं। अतएव गोपालकोंको चाहिये, कि चेष्टाकर वे अपने अपनी गायोंको मारात्माक रोगोंसे बचावें। एवं यदि उन्हें कोई मारात्मक और संक्रामक रोग हो जाय, तो शीघ्र ही सावधानीके साथ उन्हें नीरोग करनेका प्रयत्न करें। रोगिणी गायका रोग प्रकट होते ही तत्काल उसे अन्यान्य गायोंके सहवाससे अलग कर दो। और एकान्त स्वच्छ स्थानमें स्पर्श विहीन अवस्थामें औषध पथ्यादि दो।

हमारे देशके प्राचीन ऋषियोंने गो चिकित्साके अनेक ग्रन्थोंका प्रयन किया था। इस समय वे ग्रन्थ (१) "पराशर संहिता, (२) वृह

---

(१) अ ४: पर गृहस्थस्य ३ श्लोक (२) पराशरः प्राह बृहद्रथाय इत्यादि (षष्ट श्लोक)

त्संहिता, (३) शार्ङ्गधर संहिता (४) अग्निपुराण और (५) गरुण पुराणके नामसे प्रसिद्ध हैं। उन ग्रन्थोंके अनेक स्थानोंपर गो चिकित्साका उल्लेख है। इस विषयके अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थ इस समय अलभ्य हैं। चिकित्सा ग्रन्थ प्रणेता महामहोपाध्याय सुश्रुतके गुरुका बनाया पहले एक अति उत्तम गो-चिकित्साका ग्रन्थ था।

शीतला Rinderpest

यह व्याधि गोजातिके लिये सर्वापेक्षा संक्रामक और मारात्मक है। विगत वार दक्षिण अफ्रिकामें जो भीषण गोव्याधि फैली थी अथवा चेचकका जोर हुआ था, उसमें प्रायः प्रति सैंकड़ा ८० से ६० तक गायें मर गयी थीं। केवल एक ट्रान्सवालमें ८ लाख गायें बसन्त या चेचक रोगसे मरी थीं एवं ढाई लाख इस रोगसे अकर्मण्य हो जानेके कारण मार डाली गयी थीं। तुर्की और रूमानियामें भी प्रति सैंकड़ा ७० से ८० तक गायें इस व्याधि द्वारा मर गयी थीं।

रिण्डर पेस्ट नाम जर्मनीमें चेचककी ही भांति एक व्याधि विशेषका है। इस व्याधिकी उत्पत्ति और फैलनेका कारण अभी तक स्थिर नहीं हो सका है। दक्षिण आफ्रिकाके डाकृर कोचने इस

---

(३) पशुलक्षण अस्ताबिलरुन्नतो ४११ पृष्ठ (४) २६२ अध्याय २२ श्लोकसे। (५) लखनऊ राजकीय पुस्तकालयमें गोचिकित्सा विषयक एक फारसी ग्रन्थ पाया गया है। यह संस्कृतका अनुवाद है। गयासुद्दीन मोहम्मद साहबके आदेशसे इस ग्रन्थका अनुवाद हुआ था। यह दुर्लभ ग्रन्थ सन् १३८१ ई० में अनुवादित हुआ था। मूल संस्कृत ग्रन्थकर्त्ता सुश्रुतके शिक्षागुरु थे ऐसा उसमें कहा गया है।

मुगल वंश १६३ पृष्ठ

रामप्राण गुप्त प्रणीत,

इन सब ग्रन्थोंके जानने योग्य विषयोंका विवरण इस पुस्तकके परिशिष्ट भागमें देखिये।

विषयकी खोज की थी ; तथापि कोई परिणाम नहीं निकला * किन्तु यह निश्चित हो गया, कि रोमकूप, मुख, नासिका, नेत्र और स्तनछिद्रों द्वारा, नेत्रजल, कफ, और दूध आदिके साथ इस रोगके बीजाणु शरीरमें प्रविष्ट होते हैं। चौथी पाकस्थलीमें और आँतोंमें इसका प्रकोप अधिक होता है।

पागुर करने वाले समस्त पशुओं पर इस व्याधिका आक्रमण होता है। तथापि गोजाति पर इस रोगकी विशेष कृपा होती है। गायसे लेकर बकरी, भेड़, हरिण, ऊंट, चमरी और कृष्णसार आदि तथा मनुष्योंमें भी इस रोगकी व्याप्ति देखी गयी है।

६से ६ दिन तककी अवधिमें यह व्याधि संक्रामक रूप धारण कर पूर्ण विकाश प्राप्त होती हैं। शरीरकी गर्मी या ज्वर ३६ घन्टेसे ४८ घन्टोंमें बढ़ जाता है।

भारतीय इम्पीरियल बैक्टेरियोलजिस्ट डाक्टर लिङ्गार्ड (Dr. Lingard) का यह मत है, कि सन्तानके साथ, उनकी माता और पिताका संयोग न होने देने पर गो जाति इस मारात्मक रोग द्वारा आक्रान्त नहीं होती।

इस रोगके होते ही पीड़ित गायको अन्य गायोंसे अलाहदा कर लेना चाहिये। पर पहले तो रोग पहचानना ही एक कठिन बात है।

लक्षण—

इस रोगमें पहले शरीरका ज्वर या गर्मी बढ़ती है। अर्थात् शरीरकी गर्मी १०५ से १०७ डिग्री हो जाती है। शरीरमें फुन्सियोंका निकलना आरम्भ होने पर गर्मी घटने लगती है। नाड़ी चञ्चल और दुर्ब्बल हो जाती है एवं प्रति मिनट ६० से १२० बार आघात करने लगती है।

---

* S. C. M. agriculture Vol 10 p. 123.

पहली अवस्था :—

रोगकी पहली अवस्थामें पशुको आलस्य, कम्प, मुख गरम हो जाता है। उसमेंकी श्लेष्मिक झिल्लीके रक्त सचालनमें बाधा पड़ती है। गाय 'खस खस' करके खांसती है। उसके कान झूल जाते हैं। मेदा बंध जाता है। गोबर कफ सयुक्त होता है। भूख कम हो जाती है। प्यास प्रायः अधिक और हरसमय लगतो रहती है। अनेक अंगोंमें, विशेष कर पीठ, कंधे अथवा मांस पेशियाँ संकुचित हो जाती हैं। पीठ टेढी हो जाती है। चारों पाँव एक स्थान पर ज्यों के त्यों रहते हैं। धीरे धीरे एवं अनियमित रूपसे दांत करकराती और जम्हाई लिया करती है। पीठ पर हाथ रखना उससे नहीं सहा जाता। उससे दर्द होता है। नाड़ी खूब तेज चलती है। शरीरके सारे रोम खड़े हो जाते।

दूसरी अवस्था :—

सींग और पेट तथा अङ्गोंके अन्यान्य अंशोंका ताप स्थिर नहीं रहता। ये स्थान कभी कभी गरम और कभी कभी ठण्डे हो जाते हैं। श्वास खूब जोरसे चलता है। क्षुधामंद हो जाती एवं पागुर नहीं करतो। नेत्रोंमें थोड़ी थोड़ी पीप सी आजाती है। पीठके डण्डेमें वेदनाकी वृद्धि होती है। पेटके बीच माथा डालकर पड़ जाती है। ज्वर अधिक और प्यास प्रबल होती है। घूंट भरनेमें कष्ट होता है। मांस पेशियोंका खिंचाव अधिक मालूम नहीं होता। नाड़ी खूब वेगसे चलती है, किन्तु उसकी वह गति विशृंखलहोती है। हिलते डुलते कष्ट होता है। शरीरके अधिकांश अङ्ग, विशेष कर गालोंकी झिल्ली लाल हो जातीहैं। जिह्वापर कांटेसेहोजाते है। कोठा बन्द हो जाता हैं। गोबरकी गठलियोंमें कफ और रक्तके फुटके चिपटे होते हैं। मल द्वार और मूत्रद्वार दोनोंकी झिल्लियां अत्यन्त रुद्ध और सूखी सी हो जाती हैं। मल

त्यागके समय काँखना पड़ता है। कभी कभी मल और मूत्रका द्वार नीचेकी ओर झूल जाता है। मुँहके भीतरका हिस्सा लाल हो जाता है।

तीसरी अवस्था।—

मुख, चव, नेत्र और नाकके छिद्रोंसे लगातार अत्यन्त गाढ़ा गाढ़ा कफ़ श्वासमें दुर्गन्ध आती है। गालके भीतरका चमड़ा, मुंहका निचला हिस्सा और जीभ अथवा कभी नाकके छेद और नेत्रोंके पलकोंके भीतरकी खाल उड़ जाती है। कभी कभी बेशी ढंगसे पीली फुन्सियोंसे यह स्थान ढक जाता है। सामनेके दांत हिलने लगते है। इस समय पेटमें रोग पैदा हो जाता है। पहले गोबरमें छोटी छोटी सख्त गुठलियाँ होती हैं। वे गुठलियां खून कफ और जलकी भांति तरल मलसे छिपी होती हैं। बादको श्लेष्मा और लाल फुन्सियोंके रस युक्त गांठके साथ केवल जलकी भांति अत्यन्त दुर्गन्धित दस्त होता है। किसी किसी स्थान पर नेत्रोंके नीचेका स्थान फूल जाता है। जब दबा दिया जाता है, तब बैठ जाता है। पशु अत्यन्त दुर्बल हो जाता है एवं उसे प्यास लगती है। घूंट भरनेमें कष्ट होता है और उस समय वह खाँसने लगता है। चमड़ा, सींग, कान पांव और मुखादि अङ्ग ठण्डे हो जाते हैं। यदि गर्भ हो, तो वह इस समय गिर जाता है। पशु हर समय लेटा रहता है, उसमें खड़े होनेकी शक्ति नहीं होती। हरदम गों गों करता रहता है, श्वास लेनेमें कष्ट मालूम होता है। आप ही आप रक्तमय पतला दस्त होता है, नाड़ी डूब जाती है। इस रोगसे पशु २ से ६ दिन तकके बीचमें मर जाता है। कोई कोई २४ घण्टेमें ही मरजाता है। ऐसे भी पशु देखे गये हैं, जो इस रोगकी निश्चित अवधिमें न मर १५।१६ दिन तक जीवित रहते हैं। अनन्तर मर जाते हैं। रुग्न पशुके शरीरके किसी किसी स्थल पर जैसे गलेका गलकम्बल, अगली दोनों टांगोंके बीचमें लटका हुआ

गोला, पेटकी तलैटी, कंधे और पंजरेके चमड़ेपर गोटियाँ दिखाई देती हैं। गोटियाँ होनेसे कभी-कभी पशु आराम भी हो जाते हैं। चमड़ेपर छोटी छोटी फुन्सियां देख पड़ती हैं। फुन्सियोंके निकलने पर पशुके रोगका नाम उस समय 'साध्य बसन्त' होता है। फिर पाक स्थली, और पेटकी झिल्लीका रोग हो कर उसमें रक्त श्लेष्मा और पीब पड़ जाने पर उस समय रोगको अन्तर बसन्त कहते हैं। जिस समय बसन्त रोग एकाएक आक्रमण करता है, उस समय पशु पीड़ासे छटपटा जाता है और बादको अज्ञान हो कर मर जाता है।

विशेष लक्षण—

इस रोगके विशेष प्रसिद्ध लक्षण ये हैं, कि आँख, नाक और मुखमें छाले पड़कर उनमें पीब पड़ जाती है। गलफुये और मुखके भीतरी भागोंमें तथा कभी कभी शरीरके विशेष स्थानोंमें फुन्सियां सी होजाती हैं। मल रक्तामाशयकी भांति हो जाता है। अनन्तर सारे शरीरमें फुन्सियां हो जाती हैं। याद रखना चाहिये समस्त, अवस्थाओंमें रोगके सारे लक्षण प्रकट नहीं होते। जिस समय फुन्सियां निकल आती हैं एवं उनका परिमाण अधिक होता है, उस समय रोगके आराम होनेकी अधिक संभावना होती है।

व्यवस्था—

जब तक शरीरके सारे दूषित पदार्थ बाहर नहीं हो जाते, तब तक पशुको आराम नहीं होता। शरीरमें फुन्सियां अर्थात् चेचक अधिक होने पर आरोग्य होनेकी संभावना ही अधिक होती है, इस लिये शरीरके दूषित पदार्थोंको बाहर निकालनेके लिये जो स्वाभाविक उद्योग होता है; उसमें सहायता करना भली भांति यत्न और सुश्रुषा करना तथा सुपथ्योंसे पशुको सुबल रखना उचित है।

रोगकी प्रथम अवस्थामें कोष्ठबद्ध या कब्ज होनेके लक्षण देख पड़े

तो जब तक पेट नरम न हो जाय, तबतक बराबर दिनमें एक बार अथवा दो बार तीन से छः छटाक नमक या 'एपसिम सल्ट' आदि लवणमय रेचक द्रव्य देने चाहिये। दिनमें दो या तीन बार गरम जल और तैल द्वारा पिचकारी भी दी जा सकती हैं। किन्तु याद रहे, इस रोगमें किसी समय कोई भी सख्त जुलाब न देना चाहिये। क्योंकि उससे पशु निस्तेज हो जाता है।

रेचक और रक्त तथा कफ २४ घण्टेकी अवधिसे अधिक समय तक निकलते रहने पर पेट साफ करनेके लिये निम्न लिखित दोनों ओषधियोंमेंसे चाहे जो ओषधि, अथवा जो अनुकूल पड़े उसे ही खिलाना चाहिये।

(१) कपूर ।।।) बारह आना भर,

(२) सोरा ।।।) बारह आना भर,

(३) धतूरेके बीजोंका चूर्ण एक चवन्नी भर (कच्ची तौल)

चिरायता ।।।) बारह आना भर।

शराब आधा पाव।

पहले चारों ओषधियोंको एकत्रकर सबको पीस और भातके माँड़में सान लेना चाहिये तथा रोगी पशुको पिला देना चाहिये।

यदि चौबीस घण्टेसे अधिक समय तक बराबर दस्त होना जारी रहे, तो पौन तोलासे २ तोलातक माजूफल पीसकर उक्त समस्त ओषधियोंके साथ खिलाना चाहिये, कफ आदिका निकलना बन्द न होने तक १२ घण्टेके बाद यह ओषधि खिलाना चाहिये।

दूसरी ओषधि—

(१) चाखड़ीका चूर्ण पौनेचार तोला।

(२) पलाशके बीज बारह आना भर।

(३) अफीम छः आना भर।

(४) चिरायतेका चूर्ण सात तोला।

इन सब ओषधियोंको अच्छी तरहसे चूर्ण कर एक छटांक शराबमें १ सेर भातका माड़ मिलाकर पशुको देना चाहिये। यह ओषधि धारक और अम्ल नाशक है।

नुसखा!—

चेचककी एक और ओषधि सेमलके बीज है। चेचक निकलना आरंभ होनेसे पहले इनका व्यवहार कराना चाहिये। चेचक निकलने या उसकी मौजूदगीमें यह ओषधि न देनी चाहिये। सेमलके बीजको गुड़के साथ तीन दिनतक सेवन कराना चाहिये। यह ओषधि अव्यर्थ फल देनेवाली हैं।

इसके व्यवहार करनेकी रीति—

पहले दिन एक बारमें २५ बीज, दूसरी बार १८ बीज, तीसरी बार ३।४ घण्टेके अन्तरसे दोनों दफे १० बीज; दूसरे दिन पहली बार १५ बीज, दूसरी बार दोनों दफा १० बीज, १२ घण्टेके अन्तर पर; तीसरे दिन एकबार मात्र १० बीज, चेचकके पकनेसे पहले खिलाना चाहिये।

कुम्भीरका अण्डा चेचक रोगकी अन्यतम अदोषधि है, ५।७ रत्ती कुम्भीरका अण्डा, ७ से २८ कालीमिर्चोंके साथ प्रयोग करने पर व्याधि निश्चय ही आराम होगी। चेचक निकलनेके लक्षण प्रकट होनेसे पहले प्रतिदिन तीन बार, आरोग्योन्मुख अवस्थामें प्रतिदिन २ बारके हिसाबसे ७।८ दिन तक उक्त ओषधिको खिलाना चाहिये।

भारतीय किसान और एक ओषधि बसन्त रोग ग्रस्त पशुओंको देते हैं।

(१) चिर चिरी की जड़ ४ तोला।

(२) जयवालताकी जड़ ४ तोला।

(३) सेमलके कांटे ४ तोला।

इन सबको एकत्रकर खलमें डालकर चूर्ण कर पूर्ण बय वाली गाय-

को दिनमें २० ग्रेनके हिसाबसे तीन वार सेवन कराना चाहिये। इस प्रकार उक्त ओषधिका सेवन लगातार ३ दिन तक कराना चाहिये।

वैद्योंके मतानुसार चिकित्सा—

ज्वर होते ही पीड़ित गायको निर्ज्जन स्थानमें रखना चाहिये। जल-पान या खाना पीना छुड़ाकर सारे अंगमें जयन्तीके पत्तोंका चूर्ण मल देना चाहिये एवं पत्र समेत जयन्ती (जैती) की डालसे गायका शरीर झाड़ना चाहिये।

रुद्राक्षका चूर्ण और मरिच चूर्ण बासी जलके साथ पीड़ित गायको पिलानेसे वह शीघ्र ही आरोग्य लाभ करती है।

चेचकके लक्षण प्रकट होते ही पीड़ित पशुको या तो जुलाब देना चाहिये, अत्यन्त दुर्बल रोगी गायके लिये ये दोनों क्रिया ही उपयुक्त नहीं है। अतएव इनका प्रयोग उसपर न करना चाहिये।

परबलके पत्ते, नीमके पत्ते, कुटजके पत्ते—इनमेंसे प्रत्येक १ छटाक १॥ सेर पानीमें पकावे और जब आधा सेर रह जाय, तब उसमें इन्द्रजौ और मुलैठी आधी आधी छटांक पीस कर डाल दे और इस काढ़ेको पिला दे। पिलानेपर तुरत वमन होगा। वमन होनेपर चेचकका प्रकोप शान्त हो जाता है।

हल्दीकी गांठें १ छटांक और करैलेके पत्तोंका रस आधा पाव एकत्र कर पीड़ित पशुको बारंबार खिलाना चाहिये। इससे पशु शीघ्र ही आरोग्य हो जाता है।

शियालकाटेकी जड़, हल्दी, इमलीके पत्ते और मरिच इन सबको पीसकर शीतल जलके साथ पान करानेसे गाय-भैंसोंका चेचक रोग शान्त हो जाता है।

परवलके पत्ते, गिलोय, नागरमोथा, अडूसेकी छाल, चिरायता, नीमकी छाल, पित्त पापड़ा और कुटकी इनमेंसे प्रत्येक १-१ तोला ले

कर २ सेर पानीमें पकावे और जब पकते पकते वह आधा सेर रह जाय तब उतारे। इस काढ़ेको पिलानेसे चेचक रोग दूर हो जाता है।

सातोनाकी (छतिवन) छाल, अडूसेकी छाल, गिलोयकी छाल, परवलकी बेल, खैरकी छाल, नीमकी छाल, बेतकी छाल, छिलका भरी हरिद्रा, इनमेंसे प्रत्येक १-१ तोला लेकर २ सेर पानीमें पकाना चाहिये, और जब आधा सेर पानी रह जाय, तब उसे उतार ले। इस काढ़के सेवन करानेसे चेचकका रोगी पशु शीघ्र ही आरोग्य लाभ करता है।

आमला एक छटांक, हरड़ १ छटांक, बहेड़ा १ छटांक सबको २ सेर पानीमें पकावे और आधा सेर रहते रहते उतारकर पिलानेसे सब प्रकारका चेचक रोग शान्त हो जाता।

नीमकी छाल, अड्सेकी छाल, गिलोय और कटेरीके कांटेका काढ़ा पिलानेसे और इसी काढ़ेसे पशुको नहलानेसे चेचककी सब प्रकारकी अवस्थाओंमें लाभ पहुँचता है। कण्टकारी भी इस रोगकी महौषधि है।

बीमार गायको हेलञ्चकी शाक खिलानेसे, वह रोगीके लिये औषध और पथ्यका काम देता है।

बिना फूल सहित कटेरीकी जड़ और ८४ गोल मरिच इन दोनोंको पीसकर रोगीको और रोग होनेसे पहले गायको खिलानेसे चेचककी व्याधिसे छुटकारा मिलता है।

होमियोपैथीके मतानुसार चिकित्सा—रोगका पहला लक्षण प्रकट होनेपर "एकोनाइट नेफ" (Aconitum Naf) आर्सेनिक एलब (Arsinicum Alb) इन दोनोंकी १०।१० बूँदे लेकर दिनमें तीन तीन घण्टे बाद रोगी पशुको देनी चाहिये। जब फुन्सियां निकल आवें, तब ऐण्टीमोनियाम टार्ट तीन घण्टे बाद सेवन कराना चाहिये।

गोटियोंके दब जानेपर स्पिरिट केम्फर १० से ५० बूँद १०।१५ मिनटके अन्तर पर पिलाना चाहिये। दानोंके दब जानेपर खुजली होनेपर गन्धक (Sulphur) सेवन कराना चाहिये। होमियोपैथिक

औषधियां भी इस रोगमें अच्छा गुण करती हैं।

सावधानी—रोगकी प्रथम अवस्थामें अत्यन्त अस्थिरता प्रकट करने पर पशुको पानी पिलाया जा सकता है। किन्तु पेट नरम होकर रेचन आरम्भ होनेपर पीड़ित पशुको कभी जल न देना चाहिये। प्यास होनेपर केवल भातका माड़ थोड़े परिमाणमें एक एक बार देना चाहिये। अच्छा हो यदि उस माड़में थोड़ासा नमक भी मिला दिया जाय। दस्त बन्द होनेपर फिर दवा न देनी चाहिये।

पथ्य—चावल, और उड़द उत्तम प्रकारसे पकाकर उसका गाढ़ा माड़ देना चाहिये। थोड़ीसी कच्ची ताजी घास और कच्ची लताओंके पत्ते दिये जा सकते हैं। माड़के साथ थोड़ासा नमक मिला देना चाहिये। पथ्य ठण्डा करके देना चाहिये, कोई भी वस्तु गरम अवस्थामें न देना चाहिये।

चेचक रोग शान्त होनेपर सख्त और सूखा तथा भारी द्रव्य खानेको न देना चहिये। कारण, कि उससे अजीर्ण और पेटका दर्द हो जा सकता है एवं उस रोगसे पीड़ित पशुकी मृत्यु भी हो जा सकती है।

चेचक रोगमें जो बुखार होता है, यदि वह बढ़ जाय तो दिनमें दो वार निम्न लिखित औषध सेवन कराना चाहिये।

सोरा सवा तोला।
रसौल या काला शुर्मा आधा तोला।
कालानमक एक छटांक।
गन्धक सवा तोला।
भूसीकी आगमें पकाया जल २ सेर अथवा
देशी शराब आधा पाव।

आनुषङ्गिक व्यवस्था—गायके पीड़ित हो जानेपर उसे पुराने स्थानसे कुछ दूरके दूसरे स्थानपर अलग रखना चाहिये। वह स्थान

साफ होना चाहिये। जिससे रोगी पशुको साफ और ताजी हवा मिल सके। गोबर, गो-मूत्र, साफकर यदि गाय दुधारु हो—तो उसके दूधको दुहकर जमीनमें लीप देना चाहिये। वह दूध बछड़ेको न पीने देना चाहिये।

प्रतिषेधक—निम्न लिखित औषधियां खिलानेसे पशुपर रोगका आक्रमण नहीं हो सकता। औषधियां होमियोपैथिक है।

(१) सलफर टिञ्चर २० बूंद प्रतिदिन प्रातःकालको ३ रोज तक खिलानेसे रोग दूर हो जाता है।

(२) कच्ची हल्दी ४ तोला और गुड़ ४ तोला नित्य ३ वार ५।७ दिनतक खिलानेसे चेचकका आक्रमण नहीं होता।

(३) चार बिना फूलकी कटेरीकी जड़ें, २१ गण्डा गोल मरिचके साथ ३ से ७ दिनतक खिलानेसे बसन्त या चेचक रोग नहीं होगा।

(४) गधीका दूध आध पावसे १॥ पाव तक २ सप्ताह पिलानेसे चेचक रोग न होगा।

(५) प्रतिदिन आधा पाव करैलेके पत्तेका रस ७ दिनतक खिलानेसे चेचक रोग नहीं होता।

पंचम् परिच्छेद ।

शोथ ज्वर ।

भाव—यह रोग खूनकी खराबीसे होता है। यह अत्यन्त संक्रामक रोग है। गला, जिह्वा, या उनके समीपका कोई भी अंग फूल जाता है। फूला हुआ अंग वायुसे भरा हुआ मालूम होता है। हाथसे दबानेपर चड़चड़ाता है।

यदि इस स्थानको कोई मनुष्य स्पर्श करे, तो उसके भी शरीरमें सांघातिक फुंसियां हो जा सकती हैं, और यदि उस पशुसे कोई दूसरा पशु छू जाय, तो उसके भी यह रोग हो जा सकता है।

कारण—यदि कोई गाय कितने एक दिनतक निकृष्ट जल भूमि या गीली जमीनमें पैदा हुई घासको खाय अथवा कितने एक दिन घास शून्य सूखे मैदानमें विचरण कर वहांसे निकलकर सहसा किसी अच्छे स्थानमें चरने लगे वा उत्तम चारा खाने लगे, तो गायोंको यह रोग हो जाता है। इस समय पशुके शरीरका रक्त गाढ़ा हो जाता है बूढ़े पशु-की अपेक्षा पूर्ण वयस्क, वलिष्ठ और और हृष्टपुष्ट पशुके इस रोगसे सहज ही आक्रान्त होनेकी आशङ्का अधिक होती है। विशेषतः दुर्बल और क्षीणकाय पशु यदि हठात् हृष्ट पुष्ट हो, तो उसके ऊपर इस रोगका प्रवल आक्रमण शीघ्र होता देखा जाता है। जिस समय दिनमें अत्यन्त गर्मी और रात्रिमें अत्यन्त शीत मालूम होता है, उस समय ही इस रोगका प्रकोप होता है।

रक्तके गाढ़ा हो जानेपर वह दूषित हो जाता है एवं शरीरके कोमल मर्मस्थान जैसे गला, जीभ और उनके समीपका कोई अंग फूल उठता है।

इस देशमें जलपूर्ण भूमि अधिक है। अतएव वहाँकी घास खाकर वहुतसी गायोंको इस रोगसे आक्रान्त होते देखा जाता है।

लक्षण—इस रोगके लक्षण एकाएक प्रकट हो जाते हैं। जो गाय अधिक सुस्थ अवस्थामें चरती फिरती है, क्षण भरमें इस रोगके चिह्न प्रकाशित होकर २।१ घण्टेके भीतर ही वह म्लान और शक्तिहीन हो जाती है। पाँव उठानेमें कष्ट होता है। थोड़ीसी देरमें ही शरीरका कोई स्थान गला, जीभ आदि फूल उठता है।

किसी गायकी छाती, पेट या मज्जामें इस रोगका आक्रमण हुआ देखा जाता है। इस रोगसे शरीरका रक्त दूषित हो जानेसे शरीरमें एक प्रकारकी ज्वाला पैदा हो जाता है। गले और फेंफड़ेमें रोग हो जानेपर श्वास लेनेमें कष्ट होता है। यदि रोग मस्तिष्कपर आक्रमण करे तो, पशु बेहोश हो जाता है। यदि रोग पेट और प्लीहामें हो, तो पशुके पेटमें पीड़ा और बाहरी अंगोंमें वेदनाके चिह्न प्रकट होते हैं। यदि रोग पैरमें आक्रमण करे, तो पैर तत्काल अवश हो जाते हैं। पशुको उठाना तक दुश्वार हो जाता है, और कुछ दिनों बाद वह एक दम लंगड़ा हो जाता है। निर्जीव पुतलीकी भांति ठीक एक ही स्थानपर निश्चल भावसे खड़ा रह जाता है। सहसा बन्दूककी गोलीसे जिस प्रकार शरीर क्षण भरमें प्राणहीन हो जाता है, उसी प्रकार इस रोगमें भी मुहूर्त्तभरमें निर्जीव हो जाता है। इससे इस रोगका नाम "गोली" है।

क्षण क्षणमें जोरसे श्वास चलता है। पशु बारम्बार काँखता है। नाड़ी दुर्बल हो जाती है एवं क्रमशः क्षीण हो जाती है। पशु दुर्बल हो जाता है। फूला स्थान अत्यन्त फूल जाता है, एवं कितने एक घण्टोंमें ही पशु प्राण त्याग देता है।

रोगका स्थिति काल—दोसे चौबीस घण्टेतक यह रोग रह सकता है। किन्तु सचराचर २ से ६ घण्टेतक रहता है।

चिकित्सा—किसी स्थानके फूल उठनेके पहले गायकी पीड़ाका परिचय पानेपर तत्क्षण निम्नलिखित औषध द्वारा जुलाब देना चाहिये।

पहला नम्बर—

तीसीका तैल एक पाव।

गन्धकका चूर्ण आधा पाव।

सौंठका चूर्ण सवा भरी।

ये सब आधा सेर भातके माड़में मिलाकर खिलाना चाहिये।

दूसरा नम्बर—

नमक डेढ़ पाव।

मुसब्बर आधी छटाक।

गन्धकका चूर्ण एक छटाक।

सौंठका चूर्ण आधी छटाक।

ईखका गुड़ आधा पाव।

गरम जल १ सेर।

इन सबको एकत्रकर खिलानेसे पेटका सारा मल निकल जाता है। जबतक दस्त न हो, तबतक ८।१० घण्टेके अन्तरसे उक्त दवायें बराबर देते रहना चाहिये।

इसके सिवा भातके माड़के साथ शराब एक छटाक, कपूर एक तोला—इन दोनों चीजोंको खिलानेसे भी पीड़ित पशुकी शक्ति अक्षुण्ण रहेगी।

कोई कोई इस रोगमें खून निकालनेकी सम्मति दिया करते हैं। किन्तु इस रोगमें खूनके गाढ़े हो जानेसे फस्त खोलनेसे भी खून बाहर नहीं निकलता। इसलिये रोगकी अति आरंभिक अवस्थामें खून न निकालनेसे बादको खूनका निकालना असम्भव होता है।

पीड़ित गायको बीच बीचमें नमक मिला पानी पिलाना चाहिये।

गायके गलेकी लटकती खालमें धारदार छुरीसे एक इञ्च लम्बा घाव कर वहांसे दो इञ्चकी दूरपर फिर एक वैसा ही घाव करे और एक मोटी लकड़ीपर घोड़ेकी पूंछ या घोड़ेके गलेपरके वालोंसे उनके दोनों

सिरोंको टानकर बांध देना चाहिये, इन कटे हुए स्थानोंमें एक सादा और लम्बा चीथड़ा भर देना चाहिये। फिर इस चीथड़ेको बाहर निकाल घाव और उसके चीथड़ेका बीच बीचमें साफ कर देना चाहिये।

आनुषङ्गिक व्यवस्था—गोखाने या गोशालाकी एक गायको यह रोग होनेपर अन्य समस्त गायोंको यह सब रोग होनेकी यथेष्ट सम्भावना है। इसलिये उन समस्त गायोंको ही जुलाबके लिये नीचे लिखी औषधियाँ देनी आवश्यक हैं।

नमक आधा पाव।
गन्धक चूर्ण डेढ़ छटांक।
सोंठका चूर्ण पाव छटांक।
गुड़ डेढ़ छटांक।

इन सब चीजोंको दो सेर गरम जलके साथ कुछ गरम या सुहाती सुहाती हालतमें देना चाहिये। गो-शालाकी अन्य गौओंके गलेकी खालमें ऊपर लिखी रीतिसे एक पलीता भर देना चाहिये।

पीनेके योग्य जलमें नमक मिलानेपर पिलाना चाहिये। खानेके लिये ऐसी घास देनी चाहिये, जो सहज.हीमें पच जाय एवं गायें बीमार न हों इन समस्त बातोंकी भी व्यवस्था कर देनी चाहिये।

मरनेके बाद रोगी गायके लक्षण—इस रोग ग्रस्त पशु-की मृत्युके बाद अंग विच्छेद करनेपर देखा जाता है, कि शरीरका सारा रक्त जमा हुआ होता है। और फूले हुए स्थानपर बहुतसा काला रक्त जमा हुआ रहता है।

रक्त जम जानेसे मृत्युके बाद ही रक्त और मांसका सड़ना शुरू हो जाता है। मृत पशुका रक्त परीक्षकके शरीरके रक्तके साथ स्पर्श न हो, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। गो जातिके इस रोगसे मनुष्य शरीरमें सांघातिक फोड़े पैदा होते देखे गये हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा—रोगकी प्रथमावस्थामें ऐमोनियम कास्टिकम IX और एकोनाइट नेप IX ८ बूँदतक एकके पीछे एक १५।१५ मिनटके बाद देना चाहिये। यदि १ घण्टा या १॥ घण्टेमें कोई लाभ होता न देखा जाय, तब बेलेडोना और एकोनाइट नेप IX या आर्सेनिकम एलब पर्यायक्रमसे एक ८ बूँद एक एकके बाद देना चाहिये। यदि पिछले पैरोंकी ओर आक्रमण हो, तो आर्सेनिकम एलब IX ब्रायोनिया IX के साथ एकके बाद एक आध आध घण्टेके अन्तरसे दिया जा सकता है।

ग्लेइन।

मारात्मक और संक्रामक व्याधि।

कारण—दूषित वायुके लगने या विष मिले खाद्यका आहार करनेसे ग्लेइन नामक रोग पैदा होता है। कहीं कहीं मृत पशुके मुँहसे निकले कफ या अन्य तरल पदार्थोंके अच्छे पशुके शरीरमें प्रवेश कर जानेसे भी यह पीड़ा पैदा होती देखी गयी है।

लक्षण—ग्लेइनका आक्रमण होते ही गायस्फूर्त्ति हीन और जड़वत् हो जाती है। उससे उस समय खाया—पिया नहीं जाता। जुगाल भी नहीं होता। मुखसे गन्ध विहीन सफेद लार निकलती रहती है। माथा और गला क्रमशः अत्यन्त फूल उठते हैं। श्वास कष्टसे लिया जाता है। मुखसे निकलने वाला यह श्लेष्म स्राव बादको गाढ़े रक्तसे मिला और दुर्गन्ध युक्त हो जाता है। जीभ सूज जाती है। उसके दोनों ओर सूजन हो जाती हैं, और अन्तमें फट जाती है, ज्वर भी आने लगता है और सारी जीभ फूल जाती है। पशु यन्त्रणासे अस्थिर होकर मर जाता है।

स्थितिकाल—कुछ घण्टोंके बाद ही रोग सारे शरीरमें फैल जाता है।

चिकित्सा—जीभके दोनों ओर अस्त्र प्रयोग करना चाहिये। दिनमें तीन बार मुख कार्बोलिक एसिड और गरम जल द्वारा अथवा केण्डिस-फ्लुइड (Candy's fluid) नामक औषध और जलसे धो देना चाहिये। नीमके पत्तों द्वारा औटाये पानीसे भी मुखको धोनेसे फायदा पहुँच सकता है।

मार्कुरियस आयड ५ ग्रेन और बेलाडोना ८ बूँद-दोनों दो दो घण्टेके अन्तरसे एकके बाद एक खिलानेसे विशेष उपकार होता है।

संयुक्त उपाय—पशुको साफ सुथरे वायुपूर्ण स्थानमें रखना और मुँह, जीभको साफ रखना चाहिये।

भोजन—भात, जौ या कच्चे चनेके आटेका माड़ थोड़ा थोड़ा देना चाहिये। यदि पशु उसे न निगल सके, तो हाथसे निगलवा देना चाहिये।

पीड़ित पशु और उसकी सुश्रूषा करनेवालेको अन्य पशुओंसे स्वतन्त्र रखना चाहिये।

गलाफूला।

मुख और कंठमें सांघातिक घावोंका होना।

यह रोग शोथज्वरकी भाँति होता है। अनेकांशमें इसके लक्षण और शोथ ज्वरके लक्षण एकसे होते हैं। इस रोगमें जीभ और मुखमें घाव हो जाते हैं। कण्ठ और गल नालीके उपरी भागके सब स्थान शीघ्र फूल उठते हैं।

इस रोगमें प्रवल ज्वर होता है। रोगी पशुको घूँट भरने और श्वास लेनेमें कष्ट होता है।

लक्षण—गल फूला रोगके होते ही ज्वर होता है। कण्ठ, कान और मुखके तालुके समीपवर्त्ती जितनी ग्रन्थियां होती हैं, वे सब फूल जाती हैं। मुखसे अनवरत लार निकलती रहती है। नासिकाके छिद्र और आँखोंके पलक लाल हो जाते हैं। यह रोग एकदम प्लेग और शोथ ज्वर सा मालूम होने लगता है। यह एक भयानक संक्रामक और सांघातिक व्याधि है। रोगका जितना प्रसार होता जाता है, उतना ही श्वास लेनेमें कष्ट होता है। गलेमें घर्र घर्र शब्द होने लगता है। मुखसे दुर्गन्ध निकलने लगती है। जीभ बाहर निकल पड़ती है एवं उसमें कालापन तथा घाव हो जाते हैं। देखनेमें पीव भरे और उभरे हुए चिह्न देख पड़ते हैं।

श्वास कष्ट कुछ ही देरमें बढ़ जाता है एवं क्रमशः बन्द हो जानेसे पशुकी मृत्यु हो जाती है।

स्थितिकाल—रोगका स्थितिकाल एक घण्टेसे लेकर तीन दिन तक। मृत्यु संख्या सौमें ८०।

चिकित्सा—रोग होते ही पूर्व अध्यायमें लिखे अनुसार एक तेज जुलाब देना चाहिये। जिससे कण्ठरोध और श्वास बन्द न हो। इन बातोंके प्रति विशेष दृष्टि रखनी चाहिये।

एक कानके पाससे दूसरे कानके निकटतक गलेके ऊपर और जबड़ेके नीचे तपे हुए लोहेसे दो-दो इञ्चके फासिलेपर ३।४ बार दाग देना चाहिये।

६ भाग तीसीका तैल और ६ भाग मोम इन दोनोंको मिलाकर आगपर गलाकर उसमें एक भाग तेलचट्टा डाल कर एक प्रकारका मरहम तय्यार कर लेनी चाहिये और यही रोगी पशुको

लगाना चाहिये। अथवा जमालगोटेका तैल पाव छटांक और तीसीका तैल आधा पाव इन दोनोंको उत्तम रूपसे एकत्र मिलाकर उसकी गले और जवड़ेपर मालिश करनी चाहिये। इससे रोगीका विशेष उपकार होता है, एवं उपकार होनेपर रोगी पशुके बचनेकी सम्भावना देख पड़ती है।

एक तोला फिटकिरी और थोड़ासा गुड़ इन दोनोंमें जल डाल, फिटकरीका पानी तय्यार कर इस जलसे पीड़ित पशुका मुख बारम्बार धोनेसे विशेष उपकार होता हैं। दो सेर गरम गरम जलमें साबनके झाग उठाकर उसमें एक छटांक सरसोंका तैल डालकर बादको यदि वह बाँसकी नली या पिचकारीसे पशुकी गुदामें प्रवेश कराया जाय, तो दस्त होकर पीड़ित पशु नीरोग हो जा सकता है।

धतूरेके बीजोंका चूर्ण छः आना भर, कपूर बारह आना भर शराब आधा पाव—इन सबोंको एकत्रकर भातके माड़में मिला लेना चाहिये और उसमें थोड़ा नमक डालकर पशुको देना चाहिये। इससे भी पशुको विशेष लाभ पहुँचता है।

लोहेके बर्तनमें, पीड़ित गायके सामने गन्धक या अलकतरेको जलाकर धूनी देनेसे भी इन सब रोगोंमें विशेष उपकार होता है। खयाल रखना चाहिये, इस धूनीको पशु नाक द्वारा ग्रहण कर ले। साथ ही जिस घरमें पशुको यह धूनी दी जाय, उसमें धुयेंके अलावा विशुद्ध वायुका संचार होते रहना भी आवश्यक है। यदि घरमें हवा न हुई और यह धुआं ही हुआ, तो पशु उस धुयेंसे घुटकर मर जा सकता है।

अस्त्र चिकित्सा—जब पशुका गला अत्यन्त फूलकर दम बन्द हो जाय और उससे मर जानेकी आशङ्का हो, तो फूले स्थानके नीचे दो एक स्थानोंकी कण्ठनाली चीरकर उन छिद्रोंसे श्वास प्रश्वास होनेका प्रबन्ध करा देना चाहिये। दो एक गायें इस कृत्रिम उपायसे श्वास प्रश्वास ग्रहण करनेके कारण बच जाती हैं।

घावकी चिकित्सा—कपूर एक भाग, तीसीका तेल चौथाई भाग, सरसोंका तैल ४ भाग इन सबको एकत्र कर उस कटे स्थानपर लगानेसे घाव लाल लाल हो जाता है। उस समय उसमें तूतियेका चूर्ण लगा देनेसे घाव बहुत जल्द आराम हो जाता है। और फिर यही एक घाव नहीं, इस क्रिया द्वारा ढोरोंके अन्य सब घाव भी आराम हो जा सकते हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा—वेलेडोना और मार्क्यूरियस आयोडीस—इनकी पाँचसे दस बूँदतक दो-दो घण्टे बाद एकके बाद एक व्यवहार करानेसे रोगी पशुका विशेष उपकार होता है। यदि उक्त दोनों दवाओंसे कोई विशेष उपकार होता न देखा जाय, तो वेप्टेसिया और आर्सेनिक एलब दो-दो घण्टेके बाद एकके बाद एक देना चाहिये इससे लाभ मालूम होगा।

मृत्युके बाद शरीरके लक्षण—जीभ और मुँहका पिछला भाग तथा गलनालीका ऊपरी भाग अत्यन्त स्फीत और अत्यन्त लाल हो जाता है एवं स्थान स्थान पर घाव देखे जाते हैं, और उनसे लार बहती है।

जिस प्रकार शोथ ज्वरके रोगीकी मृत्यु हो जानेपर उसके शरीरकी जो हालत हो जाती है, इस रोगमें भी मृत्युके बाद शरीर वैसा ही दीख पड़ता है।

संयुक्त उपाय—यदि गले फूलेका यह रोग गोखाने या गौशालाके पशुको होता देख पड़े, तो तत्काल अन्य गायोंसे उस रोगीको अलग कर लेना चाहिये।

सावधानी—यह रोग अक्सर पशुओंसे मनुष्य शरीरपर भी आक्रमण कर सकता है।

गलनाली रोध।

(Choking)

भाव—गलनाली रोधमें खाना निगलनेमें पशुको कष्ट होता है।

कारण—गायके किसी सख्त चीजको शीघ्रतासे निगलनेकी चेष्टा करने पर, कील, किसी प्रकारका कांटा, काठका टुकड़ा या मांस-का टुकड़ा अथवा ऐसे ही किसी अखाद्य, तीखे और कठोर चीजके खा लेनेसे वह गायकी गलनालीमें जाकर अटक जाता है, तभी इस रोगकी उत्पत्ति होती है।

लक्षण—जब यह रोग हो जाता है, उस समय पशु खांसने लगता है। उसके मुंहसे लार गिरने लगती हैं। पानी पीने पर, वह नाकसे निकलने लगता है। पशु बेचैन रहता है मुख पर यन्त्रणाके चिन्ह देख पड़ते हैं। गलेमें जो चीज अटक जाती है, उसे खखार द्वारा बाहर निकालने या निगल जानेमें बड़ा कष्ट होता है। मुख गह्वरके केवल नीचे-की ओरसे सहारा देने पर हाथ लगानेसे पता लगता है और एकदम नीचा कर देने पर हाथसे टटोलनेपर पशुके रोगी होनेकी बातका पता चल जाता है।

औषध—तीसी, तिल या सरसोंका तेल आधपाव ले और उसे गरम कर थोड़ा थोड़ा पिलानेसे गलेमें अटकी चीज चिकनी होकर गलेके नीचे चली जाती है।

संयुक्त उपाय--यदि गायका मुख थोड़ा नीचा कर उसमें हाथ डाल कर गलेमें अटकी हुई चीज निकाल ली जाये, तो बहुत ही अच्छा हो। यदि यह भी न हो सके तो गायका मुँह नीचा कर बाहरसे अटकी हुई चीजका स्थान निर्णय कर उसे हाथसे दबाया जाय, तब भी अटकी हुई चीज बाहर आ जाती है। यदि अटका पदार्थ गलेमें न हो

कर छातीके किसी स्थानमें हो, तो एक बेतके सिरे पर रुई, सन, कपड़ा या अन्य कोई नरम चीज लपेट कर एक अण्डे जैसी पोटली तयार करके खूब मजबूतीके साथ बाँध देनी चाहिये। तेल या घीके साथ केलोंको मिला कर उससे पोटलीको अच्छी तरहसे भिगोकर लिपटा लेना चाहिये। अनन्तर दो मनुष्य रोगी गायके मुंहको पकड़ें और एक आदमी उक्त बेतको गायके गलेमें डाल दे और धीरे धीरे उसे चारो-ओर आघात करे, उससे अटकी हुई चीज स्थान च्युत हो जाती हैं किन्तु सावधान, बेत और उसके आगे बँधी पोटलीसे गायको किसी प्रकारकी तकलीफ न हो।

यदि इस उपायसे भी गलनालीमें अटकी वस्तु नीचे नहीं जाये, तो गलनालीको चिरवा देना चाहिये। इस कार्य्यके लिये कोई अच्छा सर्जन होना चाहिये।

गलनाली रोध वाले पशुको रुग्नावस्थामें भातका माड़ या कच्ची कच्ची नरम घास खिलानेसे उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता।

पहले ही कहा जा चुका है, कि गो जातिके पशु अर्थात् गाय बैलोंके शरीरमें चार पाकस्थली होती है। पहले पाक स्थलीमें वायुकी वृद्धि हो जाने पर वह फूल उठती है, और उसीसे यह रोग होजाता है।

कारण--इस रोगको उत्पत्ति अनिपमित आहारसे होती है। अर्थात् सहसा भोजनमें परिवर्त्तन हो जानेसे यह रोग पैदा होता है। अनेक स्थानोंपर गरमीके मौसिममें कितने एक दिन गायोंको यथा रीति भोजन नहीं मिलता, इसके बाद बर्षाकालके आरंभमें वृष्टि हो जाने पर नरम घास और भाँति भाँतिकी लतायें पैदा हो जाती हैं, गायें उन्हें खूब चाव और तृप्तिके साथ खाती हैं। इसीसे यह रोग पैदा होजाता है।

यह रोग भी संक्रामक है। इससे चेचक हो जानेकी संभावना रहती है।

लक्षण--पेटका बायें हिस्सेका पिछला भाग फल उठता है। यदि

अंगुलिसे उसी स्थानको बजा कर देखा जाय, तो यह स्पष्ट रूपसे मालूम हो जाता है, कि उसमें वायु भरी है। इस रोगमें गायको श्वास प्रश्वास लेते छोड़ते समय कष्ट होता है। सिर हर वक्त सीधा किये रखती है, मुंहसे हरदम गों-गों शब्द निकला करता है। निर्जीवकी भांति निश्चेष्ट भावसे खड़ी रहती है। पेटका फूलना दिन पर दिन बढ़ता जाता है। गाय लेटकर श्वास-प्रश्वास नहीं ले सकती, इससे वह सदाखड़ी ही रहती है, क्रमशः श्वास-प्रश्वासका कष्ट बढ़ता ही जाता है। यहां तक कि पशुको फिर खड़ा रहना तक दुश्वार हो जाता है। तब एकाएक जमीन पर गिर पड़ता है एवं श्वास बन्द हो जानेपर मृत्यु हो जाती है।

स्थितिकाल--एकसे तीन घण्टेके बीचमें ही मृत्यु हो जाती है।

व्यवस्था---श्वास-प्रश्वास लेनेकी सुगमता कर देनेपर ही पशुको जीवन-रक्षा हो सकती है।

औषध---आधपाव शराब, एक छटांक सोंठका चूर्ण और पाव छटांक गोलमरिच इन सबको गरम पानीके साथ खिलानेसे पीड़ित पशु ढकार लेने लगता है। जितनी ढकार आती हैं, उतनाही श्वास कष्ट दूर होता जाता है। ऐसा होनेसे ही पशु बच जा सकता है।

यदि उक्त औषधिसे उपकार न हो, तो गायके पञ्जरकी आखरी हड्डी, और जांघके सँधिस्थलमें बायाँ ओर जो दो हड्डियां जुड़ी होती हैं वहांकी आखरी हड्डी और जांघके सन्धिस्थल तथा कटिभागकी बगल-वाली हड्डीसे लेकर पाकस्थलीके ऊपर तक एक समान रेखा छुरी द्वारा काट देनो चाहिये एवं इस रेखामें पाकस्थलीके ऊपरी भागतक छिद्र कर देने चाहिये। अनन्तर इस छिद्रसे कनिष्ठ अंगुलीके बराबर मोटी, छः इञ्च लम्बी बाँसकी एकनलीको प्रवेश करादेनेसे रुकी हुई वायु निकल जायेगी। उस नलीके सिरे पर एक लकड़ीका टुकड़ा टेढ़े ढंगसे बांध देना चाहिये, जिससे यह नली गायके पेटमें न जा सके।

संयुक्त उपाय:--पहले कहे ढंगसे तीसीके तेल या नमक द्वारा जुलाब दे देना चाहिये ।

रोगके समय और कुछ काल बादको भी कच्ची घास थोड़ी थोड़ी खिलानी चाहिये ।

गोशालाकी एक गायको यह रोग होते ही, उसे तथा अन्यान्य गायोंको नित्यकी अपेक्षा कम आहार देना चाहिये एवं सामान्य मात्र कच्ची घास खिलानी चाहिये ।

होमियो पैथिक चिकित्सा--पीड़ा मालूम होते ही नक्स वमिकाकी दस बूंदे ठण्डे पानीके साथ प्रत्येक घण्टेमें खिलानी चाहिये

यदि पशु अत्यन्त यन्त्रणाका भाव प्रकाशित करता हो तो नक्स वमिका देनेसे पहले रूबिनरकेम्फरकी ४० बूंदे पिलानी चाहिये ।

दो सेर गरम पानीमें आधापाव ग्लाइसरीन मिला कर उसकी पिचकारी देनेसे विशेष उपकार होता है ।

पेट फूल जानेपर वेलेडोनाकी ८-१० बूंदे पिलानेसे विशेष उपकार होता है ।

पाकस्थलीका फूल उठना

या पेट फूलने Hovenका रोग ।

भाव--अत्यन्त पक्के, सख्त, और मोटे अथवा दुष्पाच्य द्रव्य खा-लेनेसे बड़ी पाकस्थली फूल उठती है । कभी कभी बहुत दिनों तक भूखे रहने और एक फिर अधिक परिमाणमें स्वादिष्ट चीजे खाजानेपर पाकस्थली फूल उठती हैं । एक साथ बहुत सा अन्न खाजाने पर भी यह रोग पैदा हो जाता है ।

कारण--उपयुक्त जल न पानेसे भी अथवा साफ पानी न मिलनेपर पड़ा-पड़ा या खराब जल पीलेनेसे भी कभी कभी पशुओंको यह रोग होता देखा गया है। पाकस्थलीको अधिक भर कर भोजन करनेसे पहले पाकस्थलीका कार्य्य शिथिल हो जाता है और बादको क्रमशः वह एक दम विवश हो जाती है।

लक्षण--पशु पहले लाल होता है; इसके बाद पागुर करना बन्द कर देता है। बायें ओरका संधिस्थल फूल उठता है। अंगुलीसे दबाने पर वह गढ़े जैसा मालूम होता है। ग्रेनसिक रोगकी भांति पेटमें नगाड़ेको तरह शब्द नहीं होता। दस्त बन्द हो जाता है और कई एक घण्टेमें ही बुरे लक्षण देखने लगते हैं। आंखें लाल हो जाती हैं, आँखोंकी पुतलियां बाहर निकल पड़नेकी कोशिश करने लगती हैं। श्वास खींचनेके लिये नाक ऊपरकी ओर उठा लेती है। हांफने और गों-गों करने लगती है। मुँहमें झाग देख पड़ने लगती हैं। सोनेके समय दायें अंगपर भार देकर सोया करती है। थोड़ी देर सोनेके उपरान्त श्वास लेनेमें कष्ट होने लगता है, अतएव पशु फिर खड़ा हो जाता है। एकबार श्वास लेते ही काँखने और दांत कड़कड़ाने लगता हैं। इस समय पाकस्थलीमें जमे हुए द्रव्योंमें खमीर पैदा होने लगती है। नाड़ी क्षीण और दुर्बल हो जाती है। पशु जमीन पर गिर जाता है एवं श्वास-प्रश्वास बन्द हो जानेसे उसकी मृत्यु हो जाती है।

स्थितिकाल—एक दिनसे तीन दिन तक।

चिकित्सा—पहलेसे ही पेट फूला रोगके पशुको निम्न लिखित रूपसे एक तीव्र जुलाब दे कर उसके पेटको साफ़ कर देना चाहिये।

नमक डेढ़पाव, मुसब्बर एक छटांक, तीसीका तेल आधापाव, सोंठका चूर्ण एक छटांक और देशी शराब एक छटांक।

उक्त चीजोंको दो सेर गरम पानीमें मिलाकर गरम गरम पिला देना चाहिये ।

गरम पानीमें साबुनके झाग उठाकर उसमें डेढ़ छटांक सरसोंका तेल या काष्टर आयल मिलाकर मल द्वारमें पिचकारी देनी चाहिये ।

गरम पानीमें कम्बल भिगोकर उसका सेंक देना चाहिये एवं सरसोंका तेल और तार्पीनका तेल एक जगह मिला कर पीड़ित पशुके पेट पर उसकी मालिश करनी चाहिये । अनन्तर नीचे लिखे उत्तेजक पदार्थ देने चाहिये ।

देशी शराब आधापाव, सोंठका चूर्ण पाव छटांक; गोलमरिच पाव छटांक, गुड़ डेढ़ छटांक, तीसीका तेल एक छटांक, यदि १५ घण्टेके बीचमें इस जुलाबका असर न हो, तो फिर ऊपर लिखी जुलाबकी दवायें देनी चाहिये । पशुके बेहोश होनेके लक्षण देख पड़नेपर पूर्व लिखे ढंगसे दोबारा भी उत्तेजक द्रव्य दिये जा सकते हैं । उत्तेजक ओषधियां देकर पशुकी बल रक्षा करनी चाहिये । इसके लिये गरम जल या तीसीका पतला माड़ इच्छानुसार पशुको पिलाया जा सकता है ।

दस्त शुरु होनेपर उक्त समस्त बुरे लक्षण दूर होने आरंभ हो जायेंगे । पीड़ित पशुका श्वास कष्ट कम होकर वह आरोग्य लाभ करने लगेगा इस अवस्थामें कई दिन तक तीसीका माड़ या भूसीका लबदड़ा दिया जा सकता है । इसके बाद भी कई दिन तक केवल नरम और कच्ची घास देनी उचित है । कारण, कि अधिक खाने या पौष्टिक चीजोंके देनेपर पशुपर फिर इसी रोगका आक्रमण हो जा सकता है ।

यदि दस्तोंका होना शुरू न हो, तो पञ्जरकी आखिरी अस्थि और जांघके सन्धिस्थलके बीचमें छुरी द्वारा चीरा देना चाहिये ।

कमरकी टेढ़ी अस्थिसे प्रायः दो इञ्च दूरकी, जगहसे नीचेकी ओर चीरना आरंभ कर उदरके ऊपर वाले मांसको पांच या छ इञ्च तक काट और पाकस्थलीके आवरणको भेदकर उस स्थानके सारे द्रव्य

हाथ द्वारा निकाल लेने चाहिये। अनन्तर उसी छिद्रमें दो या एक सेर तीसी अर्थात् अलसीका माड़के साथ तीसीका तेल, एक पाव गंधक तैल आधा पाव और सोंठका चूर्ण पाव छटांक इन रेचक ओषधियोंको डाल दे। बादमें पाकस्थलीका यह छेद और पञ्जरका उपरोक्त चीरा हुआ स्थान सी देना चाहिये। फिटकरीके मरहम और कपूरका तेल इन दोनोंको बराबर लगाते रहनेसे और उसपर पट्टी बांधने रहनेसे थोड़े दिनोंमें ही घाव सूख जायेगा। उपरोक्त अस्त्रक्रिया विशेषज्ञ डाकृरके सिवा और किसीसे न करानी चाहिये।

होमियो पैथिक चिकित्सा—रोगके लक्षण प्रकट होते ही ४० बूंद रूबिनर केम्फर अर्थात् कपूरके अर्क एक ग्लास पानीमें पन्द्रह २ मिनटके बाद दो बार खिलाते ही विशेष उपकार होता है।

दो सेर (१०३ डिग्री) गरम पानीमें आधा पाव ग्लाईसरीन मिला कर उसकी पिचकारी देनेसे दस्त होते हैं और बादको पशु आरोग्य हो सकता है।

इस अवस्थामें पशुका मुंह शुद्ध जल द्वारा रोज धो देना चाहिये।

पथ्य—पशुको आराम होता देखकर खूब पतले भातका माड़ और हरीहरी दूब खिलानी चाहिये। किन्तु जब तक पेट फूला रहे, तब तक कोई भी चीज न खाने देना चाहिये।

Faradel bound

अर्थात् तीसरी पाकस्थलीका फूल उठना,

भाव—सख्त और सूखे तथा दुष्पाच्य द्रव्योंके खानेसे पशुको उपरोक्त रोग होता है। ये खाये हुए द्रव्य पाकस्थलीके प्रत्येक पर्दे पर

इतने कठोर भावसे जम जाते हैं, कि पाकस्थलीकी प्राकृतिक काम कर-नेकी शक्तिमें थोड़ी बहुत रुकावट आ जाती है।

समय—जिस ऋतुमें सुन्दर पीने योग्य पानी और घास दुष्प्राप्य हो जाती है, साधारणतः यह रोग उसी समय पैदा होता है। उस ऋतुमें ढोर भोजनके अभावसे भूखसे बिल-बिलाकर पेड़की डालें, पात आदि जो कुछ पाती हैं, उसे ही खालेती हैं। किन्तु ये कठिन खाद्य तीसरी पाकस्थलीमें जाकर नहीं पचते। फलतः वे वहीं धीरे धीरे जमकर सख़्त हो जाते हैं।

लक्षण—इस रोगमें पशुकी भूख कम हो जाती है। पागुर करना बन्द हो जाता है एवं वह लम्बे लम्बे श्वास छोड़ने लगता है। इस समय रोगी पशु प्रायः गों-गों शब्द किया करता है। कभी कभी मल निक-लना बंद हो जाता है, और कभी कभी वह पतले रूपमें निकलता है। पतले मलके साथ गोबरके चकत्ते भी निकलते हैं। वे बड़े सख़्त होते हैं। मूत्र लाल रंगका होता है। क्रमशः गों-गोंका शब्द अधिक सुनायी देता है। दांत कड़ कड़ करते हैं। मुखपर यन्त्रणाके चिन्ह स्पष्ट दृष्टि गोचर होते हैं। मुख, सींग और कान छूनेपर ठण्डे मालूम होते हैं। नाड़ी अतिक्षीण हो जाती है। उसकी गति प्रत्येक मिनटमें ८५ से १०० बार होती है। दस्तके साथ अतिशय दुर्गन्धयुक्त पतला मल और उसमें कितनी एक सख़्त गुठलियां सी निकलती हैं। गोबर करते समय गोंगों शब्द थम जाता है और काँखनेका शब्द सुनायी देने लगता है। आखिर पशु बेहोश हो जाता है एवं उस समय यन्त्रणाके मारे तड़फा करता है।

स्थितिकाल—५ दिनसे लेकर १५ दिन तक।

चिकित्सा—इस रोगमें सबसे प्रथम पूर्व अध्यायके लेखानुसार तीव्र जुलाबकी औषधियां देनी चाहिये। अलसी या तीसीकी तेल आधा

सेर गरम माड़के साथ एक छटांक देशी शराब मिलाकर ५-६ घण्टेके अन्तरपर दी जा सकती है। केवल तीसी या भातके माड़को पिलानेपर भी जुलाबके जैसा असर पशुकी तीसरी पाकस्थलीमें जमा हुआ कठिन मल क्रमशः नरम होनेसे बाहर निकल जाता है। यदि २४ घण्टेके अन्दर दस्त न हो, तो आधी मात्रामें उक्त तीव्र जुलाब देना चाहिये। मल न निकलने तक देशी शराब और तीसीका माड़ ही बराबर खिलाते रहना चाहिये एवं पूर्व अध्यायमें लेखानुसार पेट पर गरम सेक देना चाहिये। कभी कभी जमे हुए कठिन मलके निकलनेमें बहुत दिन लग जाते हैं। जब तक गोबरके साथ गुठलियां बाहर न हों, तब तक यदि बराबर भातकी माड़ी दी जाये, तो बड़ा फ़ायदा हो सकता है। जब दस्त हो जायें और पशु धीरे धीरे आरोग्य होने लगे, तो उसे खानेके लिये कच्ची और नरम घास देनी चाहिये।

जानने योग्य विषय—यदि गोशालाकी किसी एक गायको भी यह रोग हो जाये तो अन्य गायोंको सख़्त घास न खिलानी चाहिये।

होमियोपैथिक चिकित्सा—आध या एक पाव इस समय इपसम फ्रूट साल्ट १ सेर गरम पानीके साथ १५–१५ मिनटके बाद दो बार पिला देना चाहिये और उससे आध घण्टेके बाद नक्सवभिका IX और बेलेडोना IX एक एक घण्टेके बाद एकके बाद एक खिलानेसे विशेष लाभ होता है।

फेफड़े में रोग या प्लूरिसिस Plurisis

भारतके उत्तर पश्चिम प्रदेशोंमें, जैसे पंजाब, सिन्ध और बम्बई आदिमें उक्त फेंफड़ेकी बीमारी विशेष रूपसे होती है एवं अन्यत्र इसका प्रकोप कम देखा जाता है।

लक्षण—यह रोग भीतरकी झिल्लीमें पैदा होता है पहले पशु खूब स्वस्थ देख पड़ता है और हृष्ट-पुष्ट भी हो जाता है, किन्तु कुछ ही दिन बाद उसके शरीरमें कम्पकी सृष्टि होती है। नाड़ीका वेग भी बढ़ जाता है। मुंह गरम और ओठ सूखेसे देख पड़ते हैं। खांसी और अरुचि पैदा हो जाती है। दुधारू गायका दूध कम पड़ जाता है।

दो एक दिन बाद ही ज्वरके लक्षण देख पड़ते हैं। शरीर बारम्बार सिहुरने लगता है। कफात्मक झिल्ली सूखने लगती है। मुख अत्यन्त गरम हो जाता है। श्वासमें बू आने लगती है। खांसी या धोंस बढ़ जाती है। श्वास लम्बे और शीघ्र-शीघ्र चलते हैं। उनके लेने और छोड़नेमें कष्ट होता है। नाड़ी प्रतिमिनटमें ८० से १०० बार चलने लगती है। श्वासको सहजहीमें निकालनेके लिये पशु हरदम नाक को ऊपर उठाये रखता है। प्रत्येक बार श्वास छोड़नेके समय कांखता है। नाकके छेद फूल जाते हैं। बारम्बार श्वास बाहर निकलता है। खड़े होनेके समय टांगे टेढ़ी हो जाती हैं। सोनेके समय गुड़मुड़ी हो-
करते ~ है, जिससे छाती चित रहे। आंख और नाकसे थोड़ा थोड़ा
लगता है। ा रहता है। चारो पांव और सींग ठण्डे पड़ जाते हैं।
मारे तड़फा दुर्गन्धिमय हो उठता है। बारम्बार आहिस्तासे खांसता
स्थिति खांस सकता, शायद कष्टकी अनुभूति होती है; शरीर
चिकि न्त सूखने लगता है। यहां तक, कि कुछ ही दिन बाद
तीव्र जुलाबकी स्थिचर्म अवशिष्ट रह जाती है।

..द पशुके पञ्जरेको अंगुलीसे दबावो तो उसे कष्ट होता

है। वह कीँखने लगती है। रोग जब सीमापर पहुँच जाता है, तब पेटमें पीड़ा होने लगती है। इस रोगमें सदा सर्वदा थोड़ा बहुत ज्वर रहता हैं। जब ज्वर कम पड़ जाता है, तब भूख बढ़ जाती है। किन्तु रोगके समानावस्थामें रहनेसे क्रमशः फेंफड़ा बंद हो कर भारी पड़ जाता है एक श्वास लेनेमें भीषण कष्ट होता है; खून यथेष्ट साफ़ नहीं रहता इससे क्रमशः पशु कमजोर और अन्तमें मर जाता है। यदि रोगका आक्रमण कठिन हुआ, तो वह पहले फेंफड़ेके एक भागमें दिखायी पड़ता है। अतः छातीके एक भागमें रोग रहनेसे दूसरी ओरके फेफड़ेमें सहज ही स्वाभाविक कार्य्य होता रहता है।

स्थितिकाल—यह रोग भावानुसार थोड़े या बहुत दिनों तक रहता है, यदि उत्कट हुआ, तो शीघ्रतासे बढ़ कर सप्ताह या दश दिनोंमें ही अपना रूप भयानक कर लेता है, और पशु मर जाता है। हां यदि रोग हलकी अवस्थामें हुआ, तो पशु दो, तीन यहाँतक कि छः मास तक जीता रहता है।

व्यवस्था—इस रोगके होने पर गायकी रक्षा करनी कठिन है, यह रोग जैसा मारात्मक है, वैसा ही संक्रामक है। पहले इस रोगके संक्रामक होनेमें लोगोंको सन्देह था। अब युरोपीय डाक्टरोंने भले प्रकार-से परीक्षायें करके यह स्थिर सिद्धान्त कर लिया, कि वास्तवमें यह रोग भयानक संक्रामक है। यदि गोशालाकी एक गायको यह रोग हुआ, तो धीरे धीरे अन्य गायें भी इसीको शिकार हो जाती हैं। उस समय जहां एक गाय पर इस रोगका आक्रमण हुआ, कि पासकी बँधी दूसरी गायमें भी यही रोग देख पड़ने लगता है। यही सब देखकर वर्त्तमान चिकित्सकोंने भी इसे निःसन्देह रूपसे संक्रामक रोगके रूपमें स्वीकृत कर लिया। तथापि रोग संक्रामक हो या न हो, इस व्याधि ग्रस्त गायको अन्य गायोंसे अलग रख कर एक निर्ज्जन घरमें उसकी

यत्न-पूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये। जिस घरमें उक्त रोगवाली गाय रखी जाये, वह सदा काफी रूपमें साफ और सुथरा रखना चाहिये।

पथ्य—ऐसी पीड़ित गायको ताज़ी कोमल और दस्तावर चीजें तथा हरी रही दूब एवं भातका माड़ देना चाहिये। पीनेके लिये साफ और शुद्ध पानी देना आवश्यक है।

कुपथ्य—उक्त पशुको सूखी बिचाली या अन्य शुष्क खाद्य देनेसे अनुपकार होगा।

ज्वरकी हालतमें औषध प्रयोग—१० तोला शराबमें १ तोला कपूर मिलाकर बारह आने भर शोरा और छः आने भर धतूरेके बीजोंका चूर्ण एकत्र मिला कर आध सेर भातके माड़में खिलाना चाहिये।

कब्जकी हालतमें—एप्सम साल्ट या नमक दो आने भर, गन्धकका चूर्ण आध आनेभर, सौंठका चूर्ण १। तोला, गुड़ आध आने भर ये सब चीजें दो सेर गरम पानीमें मिलाकर कुछ गरम हालतमें देना आवश्यक है।

ज्वर उतर जानेपर—कसोसका चूर्ण ।≠) आना भर ले जलमें भिगो दे और बादको या कुछ देर बाद छान कर अवशिष्ट जलको भातके माड़में मिलाकर दिनमें दो बार खिलाना चाहिये, ऐसा करने पर सहज हीमें जठराग्निमें वृद्धि होगी और पशु पुष्ट या ताकतवर हो जायेगा।

पशुको श्वास लेनेमें कष्ट होनेपर—खूब गरम जलमें फ्लानेल या कम्बल भिगो और बादमें उसे निचोड़ कर गायके पेट पर और छाती पर सेंक देना चाहिये।

सरसोंका तेल ४ भाग, और तारपीनका तैल २ भाग एकत्र कर और उसमें थोड़ासा कपूर मिला कर पशुकी छाती और पेट पर

मालिश करनेसे श्वास कष्ट दूर हो जाता है। यदि यह भी न होसके तो आकके पत्ते पर पुराना घी लगा गरम करके छाती पर सेंक देनेसे भी लाभ होता है। पशु धीरे धीरे रोग मुक्त हो जाता है।

कब्जकी शिकायत शुरू होती हो—एक छटांक गुड़, एक छटांक नमक और डेढ़ पाव तीसीका तेल, सब मिला कर धीरे धीरे गरम किया जाय और वही यदि पशुको पिलाया जाये, तो अति शीघ्र कब्ज की शिकायत दूर हो जाती है।

पीड़ित गायके अत्यन्त दुर्बल हो जाने पर—एक छटांक शराबके साथ २ सेर भातका माड़ प्रातः काल और सायं-काल बराबर पिलाते रहने पर पशु शीघ्र ही पुष्ट हो जाता है।

आनुषङ्गिक उपदेश—(१) गोशालाकी एक गायको यह रोग हो जाने पर उसे तत्काल अन्य गायोंसे अलग कर देना चाहिये। पीड़ित गायकी जो ग्वाले सेवा करें, वे अन्य गायोंके पास भी न जायें।

(२) मृत गायके फेफड़ेकी पीबसे अन्य गायोंके शरीरमें टीका लगा देने पर भविष्यत्‌में यह रोग सहजमें नहीं होने पाता। यदि होगा, तो लोगोंको विश्वास है, कि उसका आक्रमण उतना सांघातिक न होगा।

उक्त रोगसे मरे पशुके फेंफड़ेका वजन ५ सेरसे ७॥ सेर तक होता है। साधारणतः गायके फैंफड़ेका वजन २॥ या तीन सेर होता है।

खयाल रखना चाहिये, कि यह रोग अति सांघातिक है। इस रोगके रोगी बहुत ही कम संख्यामें अच्छे होते हैं।

संयुक्त उपाय—पशुको गरम, सूखे, साफ और सुथरे विशुद्ध वायु युक्त घरमें रखना चाहिये। गरम जलमें वस्त्र भिगो कर सेक देना चाहिये और गरम या मोटे कपड़ेसे ही शरीर ढके रहना चाहिये। आकके पत्ते पर पुराना घी लगाकर और आगपर गरम कर उसका सेक देनेसे भी विशेष उपकार होता है।

होमियोपैथिक चिकित्सा—यदि पीड़ित पशुकी नाड़ीकी गति शीघ्र गामिनी और कठिन हो, और श्वास प्रश्वासकी क्रिया भी कम हो एवं कातरता, या व्याकुलताका रह रह कर प्रकाश करता हो, काँखे, मुंह फाड़े रहे एवं मुंहमें शुष्कपना और गरमी हो, शरीर बार-म्बार कांपे और ठण्डा रहे, तो ऐसी अवस्थाओंमें एकोनाइट IX की ८ बूंदें तीन तीन घण्टे बाद देनी चाहिये ।

यदि पशुको थोड़ी थोड़ी खांसी रहे, और उस खांसीसे पशुको तकलीफ होती हो अतः वह खांसनेमें अनिच्छा या उसे दबाता हो, तो उस समय पशुकी श्वास प्रश्वास क्रिया अल्प परिमाणमें होती है एवं उस थोड़ी श्वास क्रियासे भी पशुको यन्त्रणा होती है, पञ्जरोंके समीप वर्त्ती हाड़ोंको अंगुलसे दबाने पर कष्ट होता है, पशु केवल एक ही स्थान पर निश्चल भावसे खड़ा रहता है। छातीमें व्यथा होती है। ऐसे समयमें ३-३ घण्टे बाद ब्रायोनिया IX की ८ बूंदें पानीके साथ देनेसे विशेष लाभ होता है।

यदि गायको श्वास कष्ट अत्यधिक हो एवं सायँ सायँ शब्द करती हो, यन्त्रणाके विशेष चिन्ह देख पड़ें, श्वासोंको संख्या कम हो, खांसी हो और गल नालीमें कफ भरा रहे, अत्यन्त दुर्बलता रहे, कष्ट और क्लान्ति देख पड़े, नाड़ीकी गति शीघ्र किन्तु क्षीण हो, अत्यन्त कम्प हो, शरीर शुष्क और गरम रहे तब ऐमोनिया कार्ष्टिकम IX की आठ बूंदें तीन तीन घण्टेके बाद देनी चाहिये ।

यदि श्वास कष्ट हो, नाड़ीकी गति क्षीण अथच शीघ्र गामिनी हो, अत्यन्त दुर्बलता और अरूचि हो, दांत परस्परमें कड़ कड़ाते हों, शरीर शीतल हो, पसीना आता हो, थोड़ी थोड़ी देर बार क्षण स्थायी खांसी हो, मल पतला आता हो, तो पूर्वोक्त रीतिसे आर्सेनिक IX ८ बूंद देनी चाहिये ।

यदि श्वास कष्ट हो, पशु छटपटाता हो छातीमें तकलीफ हो,

श्वास-प्रश्वासकी क्रियामें विशेष कष्ट अनुभूत हो, पंजरके हाड़ोंमें यन्त्रणा हो, थोड़ी थोड़ी देर बाद हो खांसी आती हो, कफ अधिक परिमाणमें निकलता हो एवं उसके साथ कभी कभी खूनके फुटके भी आते हों, तब फास्फारस IX की ८ बूंदें उक्त रीतिसे ही देनी चाहिये।

यदि पीड़ित पशुके समस्त दुश्चिन्ह दूर हो कर आरोग्य होनेके लक्षण देख पड़ें, तब सालफरकी ६ डाइल्यूशन की ८ बूंदे ३-३ घण्टेके बाद देनी चाहिये।

खुरोंका पक जाना।

Epizootec Aphtha or foot and mouth disease.

यह रोग बहुतसी गायोंको होता देखा जाता है।

भाव—यह रोग एक प्रकारका साधारण ज्वर है। इसमें ज्वरके साथ मुंह और खुरोंमें फुन्सियां हो जाती हैं। यदि इस रोगसे रुग्न दुधारू गायका दूध पी लिया जाय, तो मनुष्यको भी यही रोग हो जाता है।

निदान या कारण—अनेक अवसरोंपर यह रोग छूतसे होता देखा गया है। और अक्सर स्वयं भी हो जाता हैं। जब स्वयं होता है, तब उसका कारण होता है, गायोंका गलीज और कीच भरी जगहोंमें विशेष खड़े रहना।

अनेक स्थलोंपर इस रोगकी उत्पत्तिके कारणोंको ढूंढ निकालना कठिन होता है। किन्तु यदि गायको साफ रखा जाये और अन्यान्य बाहरी गायोंके साथ उसे न चरने दिया जाये, तो यह रोग प्रायः ही नहीं होता। इस रोगके परमाणु ढोरोंके शरीरमें एक दिनसे तीन दिन तक रहते हैं। किन्तु अक्सर ३६ घण्टे या डेढ़ दिन रह कर भी प्रकट हो जाते हैं।

लक्षण—इस रोगका पहला लक्षण यह है, कि शरीरमें कम्प हो कर बुखार आता है; मुँह, सींग, और चारो पांव गरम हो जाते हैं। मुंह लाल हो जाता है। अनन्तर मुँह और पावोंमें फुन्सियां हो जाती हैं। यदि यह रोग गायको हुआ, तो उसके स्तनोंमें भी फुन्सियां हो जाती हैं। ये फुंन्सियां सेमकी बीजोंके बराबर होती हैं।

कभी कभी ये फुन्सियां नाकके भीतर भी दिखायी देती हैं। ये १८ या २४ घण्टेके भीतर ही फटकर लाल रंगके घावसे देख पड़ते हैं। यदि ये शीघ्र आराम न हो जायें तो परस्परमें मिल कर बड़े हो जाते हैं।

मुँहमें अन्य स्थानोंकी अपेक्षा ये फुन्सियां जीभमें ही अधिक होती हैं। कभी कभी दाँतोंकी जड़, तलुए और गालके भीतर भी हो जाती हैं।

पावोंमें फुन्सियां होने पर खुरके साथ जो स्थान चमड़ेसे जुड़ा रहता है, वहां और खुरोंके जोड़पर होती हैं। मुखमें फुन्सियां और साथ ही ज्वर होनेपर पशु खाना छोड़ देता है और जिस पांवमें घाव होते हैं, उसे उठाये रखता है। यदि यह रोग बैलको हुआ और उससे नित्यका काम लिया गया, तो उक्त समस्त लक्षण अति शीघ्र विकाश पा जाते हैं। उसका पांव फूल जाता है। प्रायः खुर खिसक पड़ता है। कभी कभी पाँवमें फोड़ासा हो जाता है। स्तनोंके स्थान पर फुन्सियां होने पर वे फूल जाती हैं और उस समय यदि उन्हें छुआ जाये, तो अत्यन्त तकलीफ होती है। इस रोगसे रुग्न दुधारु गायका दूध यदि उसका बछड़ा पिये, तो उसे भी यह रोग हो जाता है। दुधारू गाय इस रोगमें दुही जानेके समय बारम्बार सिसकती है। यदि गाय न दुही जाये तो स्तन फूल उठते हैं और उनमें जलन होने लगती है। ग्वाले लोग ऐसी गायको दूह कर यदि अच्छी तरहसे हाथ न धोयें, तो जिन अन्यान्य स्वस्थ्य गायोंको वे दूहेंगे, उनको भी यह रोग हो जा

सकता है। रोगी गायके प्रति उपयुक्त प्रयत्न और उपचार किये जायँ, तो ३-४ दिन बाद ज्वर उतरता है एवं गायके अधिक कृश न होने पर वह १०-१५ दिनमें सुस्थ हो जाती है। किन्तु खयाल रहे, यदि उपयुक्त प्रयत्न न किये जायेंगे, तो ज्वर अत्यन्त अधिक हो जायेगा। भूख कम लगने लगेगी, खुर और पावोंमें नाली घाव हो जाकर खुरोंके अलग हो जानेकी भी संभावना रहती है। साथ ही पांव फूल उठेगा और बादको १०-१२ दिनमें ही पशु या गाय मर जाती है।

व्यवस्था—यह रोग अन्य रोगोंकी भांति मारात्मक नहीं है, किन्तु यन्त्रणा दायक है। यदि रोगीकी ठीक चिकित्सा न की जाये, तो यह रोग मारात्मक हो जाता है।

रोगी पशुको घरमें साफ रखना चाहिये और घरकी जमीन या फर्श विशेष रूपसे परिष्कृत रखनी चाहिये। साथ ही घरमें वायुके आवागमनके लिये भी यथेष्ट व्यवस्था होनी आवश्यक है। दिनमें २-३ बार गरम जलसे मुख धुलाकर बादको औषधिके पानीसे मुंह साफ़ करना चाहिये। दिनमें दो बार गरम पानीसे पांव धो कर सारा मैल विशेष कर खुरके जोड़ोंमें जमा हुआ मैल सावधानीके साथ बाहर निकाल कर वहां सेक देना चाहिये, एवं समस्त घाव नीचे लिखे नं० १ और नम्बर २ का मरहम लगाकर ऊपरसे पट्टी बांध देनी चाहिये। स्तनादि जिन जिन स्थानोंमें घाव हों उन्हें साफ रखना और बारम्बार उक्त नं० १।२ के मरहमोंको लगाकर उनपर पट्टी बांध देना उचित है। ऐसा होनेपर उनमें मक्खी न बैठनेसे कीड़े न पड़ सकेंगे। स्तन या मुख पर मक्खी बैठते देखी जायँ, तो नित्य प्रति एक बार या दो बार कपूर मिले तेलसे मुख धो देना आवश्यक है।

ज्वरके अधिक होनेपर नीचे लिखी नम्बर ३ की ज्वर नाशक ओषधि (फिटकरीका पानी) दिनमें दो बार देना चाहिये।

पथ्य—हरी हरी दूब या मटरकी कोमल घास आदि नरम और ताजी चीज़े इस रोगमें पथ्य हैं। भातका पतला माड़ इस समय अधिक पिलाना चाहिये। उसमें दो एक बार चोड़ा गुड़ डेढ़ छटांक और साँभर नोन आधी छटांक ये चीजें भी मिला कर दी जासकती हैं।

बङ्गालमें ऐसी रुग्न गायोंके पावोंको घुटने तक पानी या कीचड़में डुबो रखते हैं। ऐसा करनेसे घावोंमें कीड़े नहीं पड़ते। किन्तु कभी कभी रुँए और खुरोंके जोड़ोंमें किरकिरी तथा कींचड़ भर जानेसे खुर खिसक पड़ते हैं।

निवारणके उपाय—अनेक स्थलोंपर यह रोग छूतसे ही होता देखा गया है। इसलिये गायोंको परस्पर मिलनेका अवसर न देना चाहिये।

मरहम या लेप नं० १—कपूर १ भाग तार्पीनका तेल चौथाई भाग। तीसीका तेल ४ भाग इन सब चीज़ोंको अच्छी तरहसे मिला कर घावोंपर लगाना चाहिये। यदि घावोंमें सड़ा हुआ मांस बढ़ रहा हो, तो उसमें तूतियेका थोड़ासा चूर्ण और मिला लेना चाहिये

मरहम नं० २—कार्बोलिक ऐसिड ४ ड्राम, ग्लासरीन १ औन्स पानी एक पाइण्ट।

ज्वर दूर करने वाली दवा नं० ३

फिटकरी १। तोला, पानी आधा सेर।

यह ओषधि मुंह आदि धोनेके लिये है।

(१) रोग प्रकट होते ही आर्सेनिक एलब को IX ८ बूंदें पानीमें मिला कर ३-३ घण्टे बाद देनी चाहिये।

(२) रोगके विशेष रूपसे देख पड़ने पर आर्सेनिक और बेलेडोनाकी ८-८ बूंदे ३-३ घन्टेके अन्तरसे एकके बाद एक देनी आवश्यक हैं।

पीड़ित गायका दूध पीकर मनुष्यके मुख और अन्यान्य स्थानों पर

पीव युक्त फुन्सियां होती देखी गयी हैं। नीमके पत्तोंको जलमें पका कर उस जलसे पीड़ित स्थान धोदेनेसे रोग शीघ्र आराम हो जा सकता है।

अनुभूत प्रयोग—नीमके पत्तोंको तिलोंके तेल या नारियलके तेलमें भिगोकर जो तेल तयार हो उसका प्रयोग करनेसे भी घावोंको आराम होता है।

गेंदेके फूलोंकी पंखडी तिलके तेल या नारियलके तेलमें भिगोकर उसका जो एक नया तेल तयार हो उसे इस्तेमाल करानेसे भी विशेष लाभ होता है। गेंदेके फूलोंकी पंखडियोंका खालिस रस पीड़ित स्थान पर लगानेसे पीड़ा शान्त हो जाती है।

सोनालूके पत्ते कांजीमें पीस कर उसका लेप करनेसे यह रोग शान्त हो जाता है।

तिलके फूल, सैंधा नमक, गोमूत्र कड़वा तेल ये सब चीजें एकत्र मलकर एक लेप बनाले। और उस लेपको घावोंपर लगा दे। ऐसा होने पर भी रोग शीघ्र आराम हो जाता है। भकरा सिन्दूर और मरिच चूर्ण इन दोनोंको भैंसके माखनके साथ मिला कर घावों पर लेप करनेसे भी यह रोग शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

गरम पानी और साबनसे छालोंको सर्वदा साफ़ करके धो देना चाहिये।

गायके फोड़े ।

यह छुतहरण रोग है, परन्तु मारात्मक नहीं है। तथापि यदि इस रोगवाले पशुके साथ लापरवाही दिखायी जाये, तो गायकी दूध देनेकी शक्ति कम हो जाती है एवं बादमें मृत्यु भी हो जा सकती है। यह रोग गायके जीवन भरमें केवल एक वार होता है।

कारण--रोग संक्रामक है—अतः किसी एक पशुपर इसका आक्रमण होते ही इसके बीज चारों ओर फैल जाते हैं।

लक्षण—गायके दुग्धाधार एवं उसके स्तनोंके अगले और आरंभिक भागमें छोटे छोटे फोड़े हो जाते हैं एवं ये फोड़े जब फैलकर अपनी पूर्वावस्थामें पहुंच जाते हैं, तब इनका आकार एक चवन्नीके बराबर होता है। थोड़े दिनों बाद ही रोग खूब फैल जाता है। गो जातिसे भिन्न अन्य पशुओंको यह रोग होनेपर भी इसके लक्षणोंको सहसा पहचानना कठिन है।

फोड़े दुग्धाधार और स्तनोंमें ही होते हैं। अतः ऐसी गायका दूध पीने या बछड़ेके चोखानेके काममें न लाना चाहिये। इस समय गाय बेताब रहती है। फोड़े गोलाकार, बीचमें पचके और चारों ओरसे ऊँचे तथा लाल हो हैं, उनमें पीव भरी होती है। कुछ दिनों बाद ही फोड़े फूट जाते हैं और पीव बहने लगती है। इस समय दुग्धाधार फूल जाता है दूध सूख जाता है। यदि इस समय विशेष सावधानी न रक्खी जाये, तो गायके एकदम निकम्मी हो जानेका डर रहता है।

किसी किसी गायके सारे शरीरमें चक्राकार फोड़े हो जाते हैं।

व्यवस्था—रोगका आक्रमण होते ही पीड़ित गायको अन्य गायों-से अलग रखना चाहिये। नीमके पत्तोंको पानीमें पकाकर उस जलसे दुग्धाधार धोना और बादको एक साफ कपड़ेसे पोंछ देना चाहिये। अनन्तर नीमके पत्तोंको, तिल्लीके तेलमें भिजोकर उसका जो एक नया

तैल तयार हो—उसे दुग्धाधारपर मल देना चाहिये। अथवा माखन या घीको पानीसे बारम्बार धोकर उसे घावोंपर लगा देना चाहिये। घाव बहुत जल्द आराम हो जायेंगे।

जिस तरह भी हो रुग्नवस्थामें गायके दुग्धाधारसे दूध निकाल लेना चाहिये। यदि गाय सहजमें अपना दूध न निकलवाये, तो उसके पिछले दोनों पाँव एक रस्सीसे बाँध फोड़ों तकका प्रविष्ट दूध निकाल लेना चाहिये।

होमियोपैथिक चिकित्सा—एकोनाइट IX और आर्सेनिक IX की ८।८ बूँदें पानीके साथ ४।४ घण्टेके बाद पिलानी चाहिये। दुग्धाधारके विशेष फूल उठने पर आर्सेनिकके बदले बेलोडोना IX की ८ बूँदें देनी चाहिये।

सहकारी उपाय—गायको सदा साफ सुथरी हालतमें रखना चाहिये।

प्लेग।

प्लेग रोगके लक्षण वे ही हैं, जो गला फूला रोगमें होते हैं। इसमें अन्यान्य जोड़ोंकी जगहें भी फूल उठती हैं। ज्वर प्रबलतासे होता है। इसके सिवा सारा शरीर लाल हो जाता है। सारे रोम खड़े हो जाते हैं। पशु बेताब रहता है एवं क्रमशः अत्यन्त अस्थिरता दिखाने लगता है। २४ घण्टेमें ही मृत्यु हो जाती है। यह रोग अत्यन्त संक्रामक है।

इस रोगको दूर करनेके उपाय भी वे ही हैं, जो गला फूलाके हैं।

पहले ही दस्त या बमन कराकर पेटके—खाद्य द्रव्योंको निकलवा देना चाहिये।

भांगका चूर्ण १ तोला, कपूर १ तोला, चिरचिरा १ तोला, सैंजिनेके

बीज १ तोला, एरण्डके बीज १ तोला, तेजबलका चूर्ण १ तोला, पीपलका चूर्ण १ तोला—इन सब चीजोंको एकत्रकर तीसीके माड़के साथ दिनमें तीनवार पिलाना चाहिये।

लेप धतूरेके पत्ते २ भाग, बन तुलसीके पत्ते १ भाग, समन्दर फ़ेन १ भाग—इन सबको पीसकर और गरमकर फूले हुए स्थानोंपर लेप कर देना चाहिये।

संक्रामक रोगोंका प्रभाव रोकनेवाले उपाय।

१—गायको बाज़ार-हाटसे खरीदनेके समय जहांसे वह आयी है, वहाँ कोई संक्रामक रोग तो नहीं है, इसकी खोज कर लेनेके बाद खरीदना चाहिये एवं गायको भी किसी प्रकारका रोग तो नहीं है, इसकी भी परीक्षा कर लेनी चाहिये।

(२) गाय खरीदकर उसे घर ले जानेके लिये, रास्तेमें या रातको विश्राम करनेके स्थानमें वहाँकी अन्य गायोंके साथ खरीदी हुई गायको मिलने न देना चाहिये।

(३) बे-जाने स्थानसे खरीदकर लायी हुई गायको एक या डेढ़ मास तक गोशालाकी अन्य गायोंसे अलग रखकर खाना देना चाहिये।

(४) विदेशसे घरमें गायको लाते ही विशेष रूपसे उसकी परीक्षाकर लेनी चाहिये, कि रास्तेमें गायको कोई संक्रामक रोग तो नहीं हो गया है? यह परीक्षा हो जानेके बाद भी कुछ दिनों गायको एक स्वतन्त्र स्थानमें रखना चाहिये।

(५) गोशालाकी किसी गायको कोई संक्रामक रोगसे ग्रस्त हुई देखते ही तत्क्षण उसे अलग रखनेकी व्यवस्था कर देनी चाहिये।

(६) सब गायोंको एक जगह न रखकर पहलेसे ही अलग रखनेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

(७) पीड़ित गायको भिन्न स्थानमें रख, उसको बाँसोंके वाड़ेसे घेर देना चाहिये।

(८) पीड़ित गायकी सेवा करनेवाले या तीमारदारको अपने वस्त्र अन्य गायोंके पास न ले जाना चाहिये।

(९) पीड़ित गायके खानेसे बचे द्रव्य अन्य किसी गायको न खाने देने चाहिये।

ऐसे द्रव्य पृथक् स्थानपर एक गढ़ेमें डाल उसपर थोड़ा सा चूना और १। हाथ ऊँची मट्टी डलवा देनी चाहिये।

(१०) यदि पीड़ित गायके पास कोई कुत्ता आता-जाता हो, उसे अन्य गायोंके पास न जाने देना चाहिये।

पीड़ित गायका निवास स्थान अति यत्नके साथ २।३ बार साफ कर देना चाहिये एवं वहाँ फिनाइल, चूना या सुरखी मट्टी बिछा देनी चाहिये।

(११) पीड़ित गायके रहनेकी जगहमें नित्य एक घण्टा गन्धककी धूनी देनी चाहिये। गन्धक जलानेके समय केवल वायु जानेकी जगह छोड़ अन्य सब खिड़की और दर्वाजोंको बन्द कर देना चाहिये।

(१२) पीड़ित गायके स्थानपर अधिक मक्खियाँ न आयें, इसका, यथोचित प्रबन्ध कर देना चाहिये। मक्खियाँ रोकनेके लिये गायके रहनेकी जगहके सामने आग जला रखना आवश्यक है।

(१३) पीड़ित गायको भातका माड़ या हरी दूब खिलानी चाहिये। इससे गायको पतला दस्त आवेगा। अतः रोग विशेष रूपसे न फैल सकेगा। पीड़ित गायको कभी सूखी घास न खिलानी चाहिये।

(१४) पीड़ित गायके आरोग्य होजानेपर डेढ़ मास बाद उस गायका रोग अन्य पशुओंपर आक्रमण नहीं कर सकता। अतएव इस अवधिमें नित्य कार्बोलिक साबुन और गरम पानी अथवा १ छटांक कार्बोलिक साबुन और गरम जल, या एक छटांक कार्बोलिक एसिड ४ सेर गरम पानीमें मिलाकर पीड़ित पशुको स्नान कराना चाहिये।

(१५) संक्राम रोगसे मरे हुए पशुका मृतदेह २॥ हाथ ज़मीनके

नीचे चूना या फिनाइल अथवा अन्य कोई दुर्गन्धि-हारक चीज़से लिपवा या पुतवा देना चाहिये ।

(१६) पीड़ित पशु-गृहकी ज़मीनकी कितनी एक मट्टी कुदालसे खुदवाकर उसे एक अलग गढ़ेमें भरवा देना चाहिये और ऊपरसे मट्टी डलवा देनी चाहिये । खुदी हुई जगहमें आग सुलगा कर रखना चाहिये । ईंट या पक्का फर्श होनेपर चूने या कार्बोलिक एसिड और फिनाइल द्वारा धुलवा देना चाहिये ।

(१७) संक्रामक रोग द्वारा पीड़ित पशुके व्यवहारमें आनेवाली चीजे भी उत्तम रूपसे दुर्गन्धिहारक द्रव्योंके संयोगसे धोकर साफ कर देनी चाहिये ।

(१८) चेचक, वात, घाव और शोथज्वर आदि संक्रामक रोगोंसे आक्रान्त पशुओंके शरीरमें रोगके बीजाणु ४ सप्ताह तक अप्रकट अवस्थामें रह सकते हैं । अतएव इन सब रोगोंमें एक मास बाद निःसन्देह हुआ जा सकता है। फेंफड़ेके रोगमें उसके बीजाणु छः सप्ताह तक गुप्त भावसे शरीरमें रह सकते हैं, अतएव इससे डेढ़ मास बाद निशंक हुआ जा सकता है ।

षष्ठ परिच्छेद ।

गोजातिके साधारण रोग ।

ज्वर ।

मनुष्योंकी भांति पशुओंको भी बुखार आता है। साधारणतः पशुओंके शरीरकी गरमी ०३८, होती है। इससे अधिक गरमीका परिमाण होनेपर उसे बुखार समझना चाहिये।

लक्षण—बुखारमें पशुकी नाड़ीकी गति शीघ्र, मुखका भीतरी भाग गरम और शरीरके सारे रोएँ खड़े रहते हैं। कोठा कठिन और बंद हो जाता है। पेशाब लाल रंगका, आँखोंके पलक और नाकका भीतरी भाग लाल हो जाता है। यदि गाय दुधारु हुई तो उसका दूध कम हो जाता है। पागुर करना बन्द होजाता है। खानेमें अरुचि और प्यास अत्यधिक होती है।

व्यवस्था—बेलके पत्ते, अदरख और पित्तपापड़ा मिलाकर औटाया हुआ पानी मधु या गुड़के साथ पिलाना चाहिये। ज्वर दूर हो जायेगा।

खिरैटीके पत्ते, सौंठ, लाल चंदन, पित्तपापड़ेको मिलाकर औटाया हुआ पानी गुड़ मिलाकर देनेसे पशुका बुखार आराम हो जाता है।

निम्न लिखित औषधियोंके देनेसे भी ज्वर दूर हो जाता है।

(१) कपूर बारह आना भर सोरा पाव छटांक और नमक आधी छटांक। शराब ढाई पाव इसमें कपूरको गलाकर और सोरा डाल कर एक सेर पानीके साथ पिलाना चाहिये।

(२) चिरायतेका चूर्ण आधा छटांक और ढाई पाव गुड़—ये आधा सेर पानीमें मिलाकर पिलाना चाहिये।

(३) कपूर बारह आना भर, सोरा बारह आना भर, धतूरेके बीजोंका चूरा छः आना भर, शराब १० छटांक इन सब चीजोंको शराबमें मिला कर आधा सेर पानीके साथ पशुको पिलाना चाहिये ।

(४) नमक पाव छटांक, अदरखका रस पाव छटांक, गुड़ आधा पाव ये सब १। सेर पानीमें मिला कर सेवन कराना चाहिये ।

(५) विशालकरणी वृक्षकी जड़ १ तोला और कालाजीरा २ तोला इन्हें पीस कर खिलानेसे भी ज्वर रोग दूर हो जाता है ।

सहकारी उपाय—गायके रहनेकी जगहमें पोवाल बिछा देना चाहिये । गायको ठण्डसे बचाना चाहिये । गायके रहनेकी जगहमें भी सरदी न रहे । यदि गायको इस रोगमें सर्दी हो जायेगी, तो उसे निमोनिया या ब्रोङ्काइटिस हो जा सकता है । ज्वरमें गायको गरम पानी पिलाया जाये एवं पीड़ित गायको कम्बल, दरी या भारी कपड़े-से ढक कर रखना चाहिये ।

पथ्य—इस समय बांसके पत्ते और मसूरके छिलकेकी भूसी पानीके साथ पकाकर खिलानी चाहिये ।

आजमूदा नुसखे—(१) धतूरेकी जड़ १ तोला, गोलमरिच ४ तोला एक जगह पानीमें पीसकर नलकीसे पिलानी चाहिये ।

(२) बिछवा घासकी जड़, ८४ गोलमिरचोंके साथ पीस कर उसका चूर्ण गायकी नासिकामें बुकनीसे फूंक दे । इससे भी ज्वर दूर हो जाता है ।

(३) कन्दूरी लताकी जड़, हल्दी, कालाजीरा ये सब दो-दो तोला ले और पीस कर सेवन कराना चाहिये ।

(४) घीमें गोलमरिचका चूर्ण मिलाकर उसका नस्य देना चाहिये ।

(५) नासिकाके दोनों ओर गरम लोहेका दाग देना चाहिये ।

(६) सोंठ, चिरायता, गोलमरिच, अजवायन और नमक इनमेंसे प्रत्येक ५ तोला ले कर और सबका चूर्ण कर भातके माड़के साथ देना चाहिये ।

होमियोपैथिक—ऐकोनाइट की ८ बूंदें, ज्वरकी प्रथमावस्थामें पिलानेसे विशेष उपकार होता है।

सोंठ, चिरायता, गोलमरिच, अजवायन और नमक इनमेंसे प्रत्येक १ छटांक ले कर १ सेर भातके माड़के साथ दिनमें दो बार खिलानेसे ज्वर और खांसी आराम होते हैं।

गलेके आस पासका कोई स्थान फूल जानेपर धतूरेके पत्ते और चौराईका शाक इन दोनोंको एक जगह पीसकर उस फूले स्थानपर इनका लेप देना चाहिये। फूला हुआ स्थान शीघ्र ही पिचक जायेगा।

प्लीहा—ज्वरसे कभी कभी गायको प्लीहा या तिल्ली बढ़ जाती है। इस तिल्लीकी चिकित्सा मनुष्यकी तिल्ली बढ़ जानेपर जिस तरहसे चिकित्सा की जाती है, उसी प्रकारसे करनेपर फायदा होगा। कुम्मीरके दांत या नाभि शंख घिसकर पानीके साथ पिलानेसे भी विशेष उपकार या तिल्लीका बढ़ना बंद हो जाता है।

कास या खांसीका रोग।

भाव—श्वास नाली और उसकी जो शाखायें फेफड़ेमें प्रवेश करती हैं, उनमें दाह होनेसे ही यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

कारण—बछड़ेके खानेकी चीजोंके साथ सूतकी भांति क्षुद्र कीड़ोंके बीजाणु श्वासकी नालीमें जाकर इस रोगको उत्पन्न कर देते हैं। पूर्ण अवस्थावाले और वृद्ध पशुओंको वृष्टिमें भोजन या शीतके समय ओसमें खड़े रहनेपर अथवा सहसा गरमीके बाद ठण्ड लग जाने पर ये रोग होता है।

लक्षण—इस रोगके समय पशु सदा सर्वदा खांसा करता है, गलेमें घर घर शब्द होता है। बछड़ेके गलेमें सूतकी भांति पतले क्रिमि पैदा हो जाने पर वह खांसने द्वारा उन्हें निकाल देनेकी इच्छा

करता है। पशु इस रोगमें क्रमशः कृश होने लगता एवं साधारणतः दो तीन सप्ताह बाद ही मर जाता है। यह रोग बछड़ोंके लिये संक्रामक है।

औषधियां—गलेके नीचे नीचे लिखी ओषधियोंको मालिश करनेसे फायदा होता है।

तेलचट्टा १ भाग, तीसीका तेल ६ भाग और मोम ६ भाग। मोमका तेल और तीसीका तेल एकत्र गरम कर उसमें तेल कीट मिला लेनेसे ही यह मालिश तयार हो जाती है।

तार्पीनका तेल १ छटांक। तीसीका तेल ३ छटांक। ये दोनों तेल गरम पानीके साथ पिलानेसे विशेष लाभ होता है।

भात, तीसी या भूंसीके माड़के साथ कसोसका चूर्ण छः आना भर और चिरायतेका चूर्ण पाव छटांक मिला कर खिलानेसे भी फायदा होता है।

बछड़ेके गलेमें कीड़ों द्वारा खांसी होती है, उसे दूर करनेमें तारपीनका तेल अव्यर्थ है। बछड़ेको इस अवस्थामें भातके माड़के साथ थोड़ासा नमक मिलाकर देनेसे भी कीड़े मर जाते हैं।

गन्धककी धूनी देनेसे पशुकी खांसी शान्त हो जाती है। खांसी वाले पशुको पोवाल पर सुलाना चाहिये।

होमियोपैथिक चिकित्सा—प्रातःकाल एकोनाइट नेप IX और सायंकालको नक्सवमिका ६से८ बूंदें तक देनेसे पशुको खांसी शीघ्र ही आराम हो जाती है। कृमिद्वारा हुए खांसी रोगमें सिना २०० की चार या छः बूंदें पिलानी चाहिये।

पथ्य—बांसके पत्ते हैं। जिस प्रकार मनुष्यके लिये खोवे और बिस्कुट हैं, उसी प्रकार गायोंके लिये बांसके पत्ते लघु पथ्य हैं।

सर्दी और खांसी ।

बछड़े और दुधारू गायें इस रोगके अनायास शिकार हो जाते हैं ।

कारण—ठण्ड लगने, वर्षामें भींगने, स्नान कराकर शरीर न पोंछ देने, शीतवाले स्थानमें खड़े रहने, शीत, वायु और धूपको बचानेवाले आवरणसे शून्य खुली जगहमें रहने, प्रबल ठण्ड और प्रबल हवामें खड़े रहने अथवा अत्यन्त धूलके उड़ने और उसके नाकमें घुस जानेसे या बहुतसे ढोरोंके साथ वास करनेसे यह रोग होता है ।

लक्षण—आँख और नाकसे जल या लाल पानी निकला करता है । पशु घास खाना छोड़ देता है । जड़ पदार्थकी भांति निश्चल भावसे खड़ा रहता है । थोड़ा-बहुत ज्वर भी निरन्तर रहता है ।

चिकित्सा—पहले, जिस कारणसे रोग हुआ है, उस कारणको खोजकर उसे दूर करना चाहिये । शीतसे बचानेके लिये टाट, कम्बल या और कोई भारी तथा मोटा कपड़ा उसपर डाल देना चाहिये । भीगें और ठण्डे स्थानसे हटाकर अन्य किसी गरम स्थानमें ले जाना चाहिये । इस अवस्थामें पशुको एक दिन भी शीतल या तरल पदार्थ न खिलाना चाहिये । गरम चायका पानी चीनी या नमकके साथ मिलाकर देना चाहिये ।

गोलमरिच, कबाबचीनी, सोठ, जेठीमध ये सब एक एक तोला ४ तोला मिश्रीके साथ मिलाकर सवेरे और तीसरे पहर सूखा घासके साथ पिलानेसे विशेष लाभ होता है । इस समय पशुको बांसका पत्ता, भूजां चावल, भूंजा उड़द खिलाना उचित है ।

अड़ूसा, अदरख, प्याज और मरिच प्रत्येक एक छटांक लेकर और पीसकर गरम जलके साथ खिलानेसे सर्दी-खांसी दूर हो जाती है । ये औषधियाँ प्रातः और सायंकाल—दोनों समय देनी चाहिये ।

तोरईको जलाकर उसकी धूनी देनेसे भी गायकी सर्दी-खांसी-को आराम पहुँचता है। किन्तु धूनी ठीक नाकके सामने देनी चाहिये।

सूखी मूली, चीतेकी जड़ और छोटी पीपल, ये सब समान भाग लेकर और चूर्णकर गुड़के साथ खिलानेसे भी यह रोग आराम हो जाता है। मुलैठी, पिण्ड खजूर, पीपल और मरिचोंका चूर्ण समान भाग लेकर गुड़के साथ खिलानेसे सर्दी-खांसी दूर हो जाती है। बहेड़ा, वहंएटा और कटेरी तथा अडूसा इनका काढ़ा गुड़ या चीनीके साथ देना चाहिये।

शठी, केला, कटेरी, सोंठ और चीनी इन सबको एकत्र कर घीके साथ सेवन कराना चाहिये।

अदरखका रस शहदके साथ सेवन करानेसे भी सर्दी-खांसी दूर हो जाती है।

ब्राङ्काइटिस वा ठण्ड हो जाना।

कारण—शीत और वृष्टिमें बाहर रहनेसे अथवा सहसा ऋतु-परिवर्त्तनसे अथवा सर्दी-खांसीमें उपेक्षा करनेपर या कभी अन्य गायोंके द्वारा यह रोग अपना आक्रमण करता है।

लक्षण—इस रोगके लक्षण साधारणतः सर्दी खांसीसे मिलते जुलते होते हैं। नाक और मुँहसे पतला कफ निकला करता है, खांसी होती है और धीरे धीरे उससे तकलीफ होने लगती है। गल नालीमें कफ जम जाता है और श्वास कुछ एक गहरा, कष्टदायक और गरम होता है। शरीरकी गरमी बढ़ जाती है। पशु बहुत हिलना-डुलना नहीं चाहता। खानेमें अरुचि होती है। धीरे धीरे पशु सूखता जाता है। अन्तमें प्राण भी त्याग देता है।

चिकित्सा—अदरख एक छटांक और प्याज एक छांट—इन दोनोंको मिलाकर प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल देना चाहिये। रोग शीघ्र ही शान्त हो जायगा।

कुलथी, उड़द और मूली पानीमें पकाकर इनके रसमें छोटी पीपलोंका चूर्ण एक छटांक, जवाखारका चूर्ण एक छटांक—इन्हें मिलाकर पान करानेसे सर्दी-खांसी दूर हो जाती है।

पीपल, पीपरामूल, चव्य, चीतेकी जड़ सोंठ ये सब एक एक छटांक लेकर कूट ले एवं पानीमें पकाकर गुड़के साथ खिलावे। फलस्वरूप कफ, खांसी, श्वास और ज्वर दूर हो जा सकता है।

कायफल, कूढ़, सोंठ और छोटी पीपल ये सब एक एक छटांक ले और २ सेर पानीमें पकावे, जब पानी पकते पकते २ सेरके स्थानपर आधा सेर रह जाये, तब उतार कर सुहाता सुहाता पशुको पिला दे। फलतः सर्दीका बुखार दूर हो जायेगा।

अदरखका रस १ छटांक, गोल मरिचोंका चूर्ण एक छटांक—ये दोनों गुड़के साथ खिलानेसे सर्दी, खांसी और ज्वर दूर हो जाता है।

अडूसेके पत्तोंका रस आधा पाव गुड़के साथ एकत्र कर दो बार खिलानेसे कठिनसे कठिन सर्दी खांसी आराम हो जाती है।

अडूसेको पत्तोंको आगपर सेक उनका रस निकाल लेना चाहिये अथवा पहले रस निकाल कर बादको उस रसको ही गरम कर लेना चाहिये।

कटेरी एक छटांक १ सेर पानीमें पकाकर आधा सेर रह जानेपर नीचे उतार ले एवं उसमें पोपलोंका चूर्ण मिलाकर पशुको पिला दे। सर्दी-खांसी आराम हो जायगी।

चीतेकी जड़, एक छटांक, सूखी मूली एक छटांक और छोटी पीपलोंका चूर्ण एक छटांक—ये गुड़के साथ मिलाकर खिलानेसे खांसी आराम हो जाती है।

होमियोपैथिक — एकोनाइट IX ब्रायोनिया IX इनकी ८।८ बूंदें ३-३ घण्टेके अन्तरसे देनी चाहिये। इससे सर्दी-खांसी और ज्वर आराम होता है।

यदि आंखोंके पलक फूल उठे हों, आंखें, मुंह और नाकसे पानी गिरता हो, तो एकोनाइट IX और आर्सेनिक IX की ८।८ बूंदें ३-३ घण्टेके अन्तरसे देनी चाहिये।

यदि पानीका गिरना अत्यधिक हो, तो मार्कूरियससल IX या मार्कूरियस आइड IX एकोनाइटके साथ एकके बाद एक उक्त रीतिसे ही देनी चाहिये। फायदा पहुंचेगा।

सरसोंका तैल १। छटांक और कपूर एक छटांक एकत्र कर छाती-पर मालिश करनेसे विशेष लाभ होता है।

पथ्य—चावलका माड़ और बांसके पत्ते।

पशुको गरम स्थानमें कपड़ेसे ढककर रखना चाहिये।

कृमि या कीड़ोंसे पैदा हुआ ब्राङ्काइटिस—

यह रोग अत्यन्त संक्रामक है। प्रायः गाय बछड़ोंमें अधिक देख पड़ता है।

कारण— छोटे और सफेद कीड़े कण्ठनाली और नासिकामें प्रवेश कर गलेमें रेंगते रहते हैं, बस इसीसे खांसी होती है। सड़ी हुई चीजोंके खाने, खराब पानी पीने और गलीज दुर्गन्ध युक्त तथा सड़ी हुई हवाके लग जानेसे यह रोग पैदा होता है।

लक्षण—सामान्य तरल पदार्थ नाकद्वारा निकलते हैं, किन्तु खांसी सूखी और बड़ी भयानक होती है। पशु जड़ और निर्जीव हो जाता है। खानेमें अरुचि होती है। सूखकर डांगा हो जाता है। अन्तमें मर जाता है।

चिकित्सा—कृमि रोगमें जो ओषधियाँ और पथ्य लिखे गये हैं, इस रोगमें भी उन्हींका प्रयोग करना चाहिये।

कृमियोंको जितना जल्दी हो, दूर कर देना चाहिये।

उदरामय।

(पतला दस्त आना)

भाव—इस रोगमें बारम्बार दस्त होते हैं।

कारण—हेय खाद्य द्रव्य और जहरीले घास-पत्तोंको खानेसे ही यह रोग पैदा होता है। वर्षाके बाद कीचड़ और सड़े जलवाले स्थानमें जमी घासको खाकर भी पशु उदरामय रोगद्वारा आक्रान्त हो जाते हैं। फेफड़ेमें दाह होने एवं रक्त दोष जनित रोगकी अन्तिम अवस्थामें भी यह रोग होता देखा गया है। अत्यन्त शीतकाल अथवा गरमीके बाद सहसा ठण्डी वायुके लगनेसे भी यह रोग होता देखा गया है। धूपकी अत्यन्त गरमीसे सताया हुआ ढोर भी इस रोगका शिकार बन जाता है।

लक्षण—पहले बहुत समयतक पेट भारी रहता है।

बादको बारम्बार पतले दस्त होने लगते हैं। सामान्यतः भूख बदस्तूर रहती है। दीर्घकाल तक पेटमें पीड़ा रहनेसे क्रमशः पेटकी व्यथा बढ़ जाती और गोबरके साथ खून निकलने लगता है।

व्यवस्था—पहले रोगकी उत्पत्तिका कारण स्थिरकर उसे दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। पेट भारी होनेपर कचिया हल्दी, अजवायन ये दोनों एक एक छटांक, गुड़ आधा पाव सेंधानमक पाव छटांक एकत्र कर खिलानेसे यह रोग सहज हीमें आराम हो जा सकता है।

रोग कठिन हो जानेपर, नीचे लिखी ओषधियोंका व्यवहार करना चाहिये।

सफेदा दो आना भर, चाक मट्टीका चूरा आधी छटांक अफीम बारह आना भर–ये सब गाढ़े माड़के साथ दिनमें दो बार देने चाहिये।

पीनेके लिये साफ जल देना चाहिये। रोग साधारण होनेपर हरी हरी दूब देनी चाहिये। यदि ऐसा न हो सके, तो भातका माड़ देना चाहिये। उक्त दवासे कुछ फल न निकलनेपर नीचे लिखी दवायें देनी चाहियें।

चावलका चूरा १ छटांक, खैरका चूरा आधी छटांक, सोंठका चूरा पाव छटांक, अफीम दो आना भर, देशी शराब एक आना भर–इन सबको अच्छी तरहसे मिलाकर पिलाना चाहिये।

यदि पशु दुर्बल और कृश हो जाये, तो नीची लिखी दवाओंका व्यवहार करना चाहिये।

सोंठका चूरा पाव छटांक, चिरायतेका चूरा पाव छटांक, जइनका चूर एक छटांक नमक एक छटांक –इन सब चीजोंको पीसकर उसके चौथाई भाग गुड़ मिला गरम माड़के साथ खिलानी चाहिये। अथवा नमक आधा भाग, कसीसका चूर्ण दो आना भर गुड़के साथ मिलाकर दिया जा सकता है।

तूतियेका चूरा छ आनेसे लेकर बारह आनातक, पानी आधा सेर, सफेदा दो आना भर, चाककी मट्टीका चूरा २॥ तोला और अफीम बारह आना भर—गायोंको उदरामय और आमाशय रोग होनेपर गाढ़े माड़के साथ उक्त ओषधियां दिनमें दो बार देनी चाहिये।

कच्चे बेलको जलाकर, कपड़ेमें छान गुड़के साथ खिलानेसे भी उदरामय रोग शान्त हो जाता है।

कच्चे बेलको तोड़ उसमें अम्बष्ठालताके पत्ते भर बेलके टूटे स्थानको फिर बन्द कर आगमें जलाये और बादको खिलाये तो पेटकी सारी शिकायतें दूर हो जा सकती हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा—आर्सेनिक एल्ब IX की ८ बूंदें साफ़ जलमें मिलाकर दो दो घण्टेके बाद देनेसे विशेष उपकार होता है। पेटमें वेदना होनेपर और गोबरके साथ खून निकलनेपर मार्क्युरियस कर IX की ४ बूंदें दो दो घण्टेके बाद देनी चाहिये।

रक्तामाशय।

:*—*—*:

भाव—यह रोग आंतोंकी झिल्लीको रोगसे उत्पन्न होता है। कभी कभी उसमें घाव भी हो जाते हैं। बारम्बार पतले दस्त होते हैं। उन दस्तोंके साथ आंव, रक्त और पीव निकलती है।

लक्षण—कभी पेटमे दर्द होनेसे ही आमाशयका होना जाना जाता है। कभी सहसा बुखारमें ही आम आने लगती हैं। आंवके दस्तमें आँव और खून जाता है। कभी कभी सड़े हुए अण्डेके भीतरी भागकी भांति भी दस्त होता है।

आमाशय रोगकी प्रवलतामें आंतका भीतरी कोई कोई स्थान दस्तके साथ निकलने लगता है। ऐसे दस्तमें अत्यन्त दुर्गन्धि आती है। ऐसे आमाशयको 'सेफ्रिङ्ग' आमाशय कहते हैं। यह रोग बेहद मारात्मक है।

इस रोगमें पेटमें दर्द होता है, बारम्बार काँखना भी पड़ता है। मुखमें छाले, आंखोंके पलक और चर्म पीले पड़ जाते हैं। उनमें खूनका दौरा नहीं होता।

कारण—भोजनके दोषसे, प्रवल शीतके लग जानेसे अत्यन्त पेटके दर्दकी पारिणति से यह रोग उत्पन्न होता है।

औषध—तीसीका तेल १ पाव और १≤) भर अफीम मिलाकर भातके माड़के साथ दिनमें दो बार खिलानेसे आमाशय रोग शान्त हो जाता है।

अथवा—धतूरेके बीज़ोका चूर्ण छः आना भर कपूर बारह आना भर देशी शराब आधापाव। शराबमें कपूर डुबा कर उसमें धतूरेके बीजाका चूर्ण मिलादे और भातके माड़के साथ खिलाये।

सफेदा छः आना भर, चाकको मट्टीका चूर्ण आध छटांक अफीम बारह आना भर। ये सब चीज़े भातके माड़के साथ दिनमें दो बार खिलानेसे आमाशय रोग आराम हो जाता है।

भातका माड़ १ सेर अफीम बारह आना भर ये दोनों चीज़ें अच्छी तरह मिला कर मल द्वार में इनको पिचकारी दे। विशेष फायदा होगा।

ग्लासरीन, बोरेसिक ऐसिडका चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर मल द्वारमें पिचकारी देनेसे आतोंका दूषित मल बाहर हो जायेगा और घाव सूख जावेंगे।

संयुक्त उपाय—गरम पानीमें कम्बल भिगोकर पेट पर सेंक देनेसे भी आमाशय रोगमें विशेष फायदा होता है।

पेट पर लोहा गरम कर उसका दाग देने पर भी उपकार होता है। यदि गाय विशेष कांखे, तो एक मजबूत रस्सीसे उसकी कमर बांध देनी चाहिये।

पथ्य—जब तक गाय गोबर न करे, तब तक भातके माड़में नमक डाल कर या तीसी पकाकर, उड़द पकाकर बेल पका कर उसका आधा हिस्सा माड़के भातके साथ देना चाहिये। जब तक गाय पूर्ण रूपसे आरोग्य न हो जाये, तब तक सहज हीमें पच जानेवाली हरी दूब

पशुको रातके समय नंगा न रक्खे, उसे भारी कपड़ेसे ढका रक्खे। विशेष कर पेट ठण्डसे अवश्य बचाना चाहिये।

होमियो पैथिक चिकित्सा—मार्क्यूरियस IX की ५ बूंदें दो-दो घण्टेके बाद देनी चाहिये। यदि दस्त, अधिक परिमाणमें हों, तो, आर्सेनिकम एलब IX की ८ बूंदें दो दो घण्टेके बाद मार्क्यूरियसके साथ मिलाकर देनी चाहिये।

आजमाये हुए नुसखे—आमड़ा, आम, जामुन और आंवलेके कच्चे पत्ते छेद कर उसका रस गुड़ या बकरीके दूधके साथ खिलानेसे प्रवल आमाशय रोग शान्त हो जा सकता है।

चोराईका शाककी जड़ ८ तोला गुड़के साथ पीसकर खिलानेसे आम रक्त या खूनवाली आंव आराम हो जाती है।

काले तिल आधी छटांक एक छटांक गुड़के साथ मिला कर और पीसकर खिलानेसे भी रक्तामाशय रोग शान्त हो जाता है।

बेला सोंठ, नागरमोथा, धायेके फूल, सोंठ ये सब चीजें ४–४ तोले ले कर गुड़ और मट्ठेसे साथ खिलानेसे खूनवाली आंव आराम हो जाती है।

ऐरण्डके रस की ३२ बूंदें थोड़ेसे गुड़के साथ खिलानेसे ढोरोंका आँव रोग दूर हो जाता है।

अनारके पत्ते और छाल एक छटाँक, कूड़ची एक छटाँक इन दोनोंके कूट पीसकर १॥ सेर पानीमें पकावे और जब वह पानी ढाई पावके अन्दाजसे बाकी रह जाये तो उतार कर एक छटाँक गुड़के साथ पिला दे। ढोरोंका दुःसाध्य आंव रोग भी आराम हो जायेगा।

चिकित्सा—रोगका स्थान गरम जल अथवा फिनाइल मिले जलसे धो कर साथ रक्खे और नीचे लिखी दवाओंका सेवन करायें।

१ शत मूलीका काढ़ा; तीसीका काढ़ा, गिलोयका काढ़ा अथवा

मेंहदीके पत्तोंका काढ़ा ये सब थोड़े थोड़े परिमाणमें सेवन कराने चाहि रोग आराम हो जायेगा।

२ कबाब चीनीका चूर्ण १ तोला, सोरेका चूर्ण १ तोला चन्दनव तैल आधा तोला ये सब ठण्डे भातके माड़के साथ दिनमें दो वा अर्थात् प्रातः काल और सायंकालको देने चाहिये। रोग आराम हो जायेगा।

रक्त-प्रस्राव।

भाव—यह रोग खूनके खराब हो जाने पर होता है। खाने योग्य पदार्थोंके दोषसे खाई हुई चीज अच्छी तरहसे नहीं पचती एवं इसीसे समस्त स्वाभाविक उपादानोंका अभाव हो जाता है और उससे रक्त निस्तेज तथा पतला पड़ जाता है। फलतः इस रोगकी उत्पत्ति हो जाती है।

इस रोगसे पशु अत्यन्त दुर्बल और क्षीण काय हो जाता है। कठिन रोग होने पर पशु एकदम अस्थि चर्मसार हो जाता है। बहुतसी गायोंको तो यह रोग प्रसव होनेके बाद हो घेर लेता है। यदि किसी गायको भांति भांतिके घृणित उपायोंका अवलम्बन कर अधिक दूध दुहा जाये, तब भी यह रोग पैदा हो जाता है।

कारण—गीली या सोली अथवा रुके हुए सड़े जलमें पैदा हुई घासको खानेसे ही प्रायः पशु इस रोगके शिकार हो जाते हैं।

ऐसे स्थानकी घास बेसवाद और अपकारी होती है। यदि ऐसे स्थानोंमें रुका हुआ पानी निकाल कर खादवाले गोबरसे वहां घास पैदा की जाये और यही घास पशुओंको सदा खिलायी जाये, तो उक्त रोग कभी नहीं हो सकता। बंद स्थानोंमें सड़ा हुआ अतएव सड़ा पानी पीनेसे भी रक्त प्रस्राव रोग आक्रमण कर लेता है।

लक्षण—इस रोगमें पहले पशु कमजोर होते देखे जाते हैं। इस बाद वे पागुर करना बन्द करदेते हैं। यदि यह रोग किसी दुधारु गायको होता है, तो वह दूध देना बन्द कर देती है। उनका शरीर शिहर उठता है। शरीरका वर्ण हलदी जैसा हो जाता है। वह अन्य पशुओंके साथ रहना छोड़ अकेली रहना चाहती है। पेटके दर्दके भी लक्षण प्रकट होने लगते हैं, कितने एक दिन तक पतला दस्त होता रहता है। इसके बाद कोठा कड़ा हो जाता है। कोठा कड़ा हो जाते ही पेशाबका रंग खराब हो जाता है एवं इसके बादही क्रमशः रक्त प्रस्राव होने लगता है। ४-५ दिन दस्त बन्द रहनेसे गाय बेरंगका पेशाब करने लगती है। पेशाब करते समय कष्ट होता है। पेशाब दुर्गन्ध रहती है; पशु क्रमशः दुर्बल होने लगता है; मुंहके कोर और आंखोंके पलक सफेद हो जाते हैं। आंखें अन्दर बैठ जाती है। मुंह काला और पांव ठण्डे हो जाते हैं। नाड़ी दुर्बल हो जाती है। श्वास प्रश्वास अति शीघ्र होने लगते हैं। गाय एकदम सूखकर अन्तमें मर जाती है।

स्थितिकाल—५ दिनसे लेकर ५५ दिनतक।

चिकित्सा---रोगके लक्षण प्रकट होते ही खाने पीनेमें परिवर्तन कर देना चाहिये एवं जुलाब देकर जितना भी पेटमें मवादा भरा हो, उसे बाहर निकाल देना चाहिये। इसके बाद उत्तेजक और बलकारक औषधियां देनी चाहिये।

पथ्य---कलमीशाक खूब खिलाना चाहिये जितनेसे पूरा पेट न भरे। यह औषधि और पथ्य दोनोंका कार्य्य करेगा।

तीसी या भातका माड़ और नरम घास या हरी दूब भी दी जा सकती है। जैसे ही पतला गोवर होने लगे, वैसे ही नीचे लिखी धारक दवायें खिलानी आवश्यक है।

चाक मट्टीका चूरा आधी छटांक, खैरका चूरा आधी छटांक, सोंठ-का चूरा पाव छटांक, अफीम छः आना भर और पानी आधा सेर ।

पशुको सबल रखनेके लिये नित्य भातका माड़ देना चाहिये। भातके माड़के साथ चाक मट्टीका चूरा और थोड़ासा सोंठका चूरा भी मिला देना चाहिये। इससे फायदा होगा। उक्त भातके मांड़के साथ तार्पीन या तीसीका तैल भी मिलाया जा सकता है। इससे भी लाभ होगा।

होमियोपैथिक चिकित्सा---एकोनाइट IX ब्रायोनिया IX और नक्सवमिका—इन सबकी आठ आठ बूंदें, दो-दो घण्टे बाद दी जा सकती हैं। ऐसा होनेसे लाभ होगा।

मृत्युके समय शरीरके लक्षण—चमड़ेसे ढका कङ्कालमात्र बाकी रह जाता हैं।

प्रतिषेधक व्यवस्था—किसी एक पशुको यह रोग होते ही अन्यान्य पशुको, पहले जुलाब देकर पेटका दूषित मल बाहर निकाल भातका माड़ या हरी हरी दूब आदि सुस्वादु और पुष्टिकर खाद्य देने चाहिये। पशुको एकसे दूसरे स्थानपर ले जाते ही प्रायः यह रोग आराम होता देखा जाता है।

वातरोग ।

भाव---इस देशमें प्रायः बहुतसे स्थानोंमें यह रोग सर्वदा होता देखा जाता है ।

साधारण लक्षण—पशुको हिलते डुलते, खड़े होते और सोनेमें अत्यन्त कष्ट होता है । पैरके सन्धिस्थान फूल उठते हैं एवं रोग पुराना हो जानेपर बुखार आने लगता है ।

चिकित्सा—यदि ज्वर हो, तो ज्वर नाशक ओषधि देनी चाहिये । सबसे पहले जुलाबकी ओषधि देनी चाहिये ।

फूले हुए स्थानोंपर लोहा गरम कर उसका दाग देना चाहिये अथवा एक छटांक जमालकेगोटे बीज पीसकर एक पाव सरसोंके तेलमें मिलाकर और गरम कर इसकी मालिश करनी चाहिये ।

रोगके पुराने पड़ जानेपर ५ ग्रीन 'आयोडाउड् आफ पोटास' दिनमें सेवन कराना चाहिये । अथवा दो आना भर अफीम देनी चाहिये ।

फूले हुए स्थानोंपर—कान्थेराइडिन १ भाग, तीसीका तेल ५ भाग देशी मोम ५ भाग—इन सबको एकत्र कर कूंची द्वारा लगावे । जब घाव या फुन्सियां पड़ जायें, तो लगाना बन्द कर दे ।

रोग कठिन हो जानेपर---अनन्तमूल, १ तोला, तोपचीनी १ तोला, सोंठ १ तोला, चिरायता १ तोला, गोलमरिच १ तोला, लौंग १ तोला, सेंधा नमक १ तोला और ईखका गुड़ आध छटांक—इन सबको एकत्र कर गरम मांड़के साथ सेवन कराना चाहिये ।

सैजिनेकी छाल दो आना भर, शम्भालू (सेहरू) वृक्षकी छाल दो आना भर, अदरख दो आना भर, इन सबको चूरकर एरण्डके पत्तेमें रखे और उसकी पोटली बनाकर गरम कर ले तथा पीड़ित स्थानोंपर लगाये । रोग अति शीघ्र आराम हो जायेगा ।

मसूर गरम कर अथवा बालू गरम कर—इसका सेक देनेपर भी विशेष उपकार होता है।

गोवर गरम कर और उसे जलाकर—उसीकी आगमें पानी गरम करे तथा उस पानीकी भाफ़ फूले स्थानोंपर देनेसे भी विशेष उपकार होता है। अथवा निरा गरम गोबर लगानेसे भी लाभ होता है।

पथ्य---रसवाली चीजें न खाने दे। सूखी घास, भूसा, खली और तीसीका माड़ खिलाये।

रोगके कारण---सीली और ठण्डी जगहमें रहने, शीत और नंगी रहने, ग्वालोंके कीचड़दार घरोंमें रहने, अभक्ष्य और सड़ी चीजें खानेसे ही गायोंको यह रोग होता है।

होमियोपैथिक चिकित्सा---ऐकोनाइट IX और रास-टौक्स IX की ८।१० बूंदें तीन तीन घण्टेके बाद उलट-फेरके साथ देनेसे विशेष लाभ होता है। इस रोगमें ब्रोयोनिया भी विशेष फायदा देता है। रासटेक्स मदर टिंचरका बाहरी प्रयोग भी फायदेमन्द है।

संयुक्त उपाय—गायको हवादार और गरम स्थानमें रखना चाहिये। शरीरको एक गरम कम्बलसे ढककर रखना चाहिये। पीड़ित स्थान कदमके पत्तोंसे बांध उसपर फिलानेलका गरम कपड़ा बांध देना चाहिये। इस समय खाने पीनेके लिये भी गरम जल और गरम भोजन देना चाहिये। सावधान! ठण्डी चीजें या ठण्डा पानी किसी प्रकार भी न दिया जाये।

पक्षाघात रोग ।

लक्षण—शरीरका कोई अंश या एकाधिक भागमें एकदम जड़वत् हो जाता है ।

कारण—किसी प्रकारके आघात विशेष कर मस्तिष्कमें आघात लग जानेसे, बोझ उठानेवाले पशुपर कभी अधिक बोझ लाद देनेसे, निरन्तर सीली जगहमें रहनेसे अत्यन्त प्रबल शीत या गरमीके लग जानेसे अथवा कोई अखाद्य चीजके खा लेनेसे यह रोग पैदा होता है ।

इस रोगमें पशु सहसा एक दिन गिर जाता है। पाँव ऊपर नहीं उठा सकता, उठ बैठ नहीं सकता, नाड़ी वायु पूर्ण और धीरे धीरे चलने लगती है। खानेमें अनिच्छा और मल-मूत्रका निकलना बन्द हो जाता है। अथवा जब कभी होता है, तो अनजान अवस्थामें होता हैं ।

चिकित्सा---पहले तीव्र जुलाब देना चाहिये। मसूर, किवाँचके बीज, एरण्डमूल, खिरैटी—ये सब एक एक छटांक ले और परस्परमें मिलाकर १ सेर पानीके साथ पकाने चाहिये और जब पाव भर रह जाये, तो उसे उतारकर उसमें हींग और सेंधा नमक डालकर पिलाना चाहिये। फलतः रोग दूर हो जायगा।

गोबर पकाकर उसका धुआँ देना चाहिये। मसूर या बालूका सेंक देनेसे भी विशेष लाभ होता है।

पीड़ित स्थानपर माखनको मालिश करनेसे शीघ्र ही फायदा पहुँचता हैं। नीमके पत्ते पकाकर नमकके साथ मालिश करनेसे भी विशेष लाभ होता है।

एकोनाइट IX और नक्सवमिका IX की ८।१० बूंदें तीन तीन घण्टे बाद देनेसे भी उपकार होता है।

———

मृगीरोग ।

कारण—थोड़ी उम्रवाली हृष्ट-पुष्ट गायोंको कभी कभी यह रोग धर दबाता है। गर्भावस्थामें गायको अत्यधिक परिमाणमें खली वगैरह उत्तेजक चीज़ें खिलानेसे उसके बछड़ेको भी यह रोग होता देखा गया है।

लक्षण—पशु सिर घूमनेसे सहसा गिर पड़ता है। बड़ी दर्दनाक आवाजसे चिल्लाता है। शरीरके समस्त अंग और प्रत्यङ्ग काँपते हैं। दांत परस्परमें कड़ मड़ शब्द करते हैं। मुंह बन्द हो जाता है। जबड़ा दृढ़तासे बन्द हो जाता है। दांतसे दांत कट कटाने लगता है। मुँहसे कभी कभी झाग गिरते हैं। पूंछ मुड़ जाती है। श्वास-प्रश्वासकी संख्या अधिक और गहरी होती है। देखनेसे ऐसा मालूम होता है, मानो पशुके दोनों अङ्ग खराब हो गये हैं। गोबर और पेशाब करनेका ध्यान ही नहीं रहता। क्रमशः रोगकी तीव्रता कम होने लगती, जड़ता दूर हो जाती और पशु सुस्थ होकर खड़ा हो जाता है, मानों पहले उसे कोई रोग ही नहीं थी।

चिकित्सा—इस रोगमें गोमूत्रका नस्य देनेसे फायदा होता है। अन्य तीव्र नस्य या हुलासोंसे भी लाभ होता है। तेलके साथ लहसुन, दूधके साथ सतावर, शहदके साथ ब्राह्मीशाकका रस पिलानेसे तत्काल मूर्च्छा दूर हो जाती है।

पीड़ा उपस्थित होनेके दो-चार दिन पहलेसे वेलेडोना और नक्स वमिका IX की ८।८ बूंदें एकके बाद एक प्रातः काल और सायंकाल को खिलानेसे विशेष उपकार होता है। धतूरेके पत्तोंका धुआं नाकमें देनेसे भी लाभ होता है। विशेष कर पत्ते यदि सूखे हों, तो और भी अधिक फायदा पहुँचता है।

संन्यास रोग।

अंशुघात।

भारतीय गायोंको यह रोग बहुत कम होता है।

रोगके कारण—अत्यन्त सूर्य्यकी गरमीसे गरम हो सहसा ठण्डे स्थानमें जानेसे, अत्यधिक परिणाम या अत्यधिक भोजनसे यह रोग पैदा हो सकता है। मस्तकमें अत्यधिक रक्त संचालन हो कर वहां दवाब पड़कर खूनको बहाने वाली नसें छिन्न या आहत हो जाती हैं। तभी यह रोग पैदा होता है।

लक्षण—पशु सहसा संज्ञाहीन अचेतन अवस्थामें पड़ कर निश्चल निर्जीवकी भांति हो जाता है। रोगका आक्रमण अति शीघ्र होता है। आक्रमणके साथ ही साथ निश्चलता या जड़ता आनी शुरू हो जाती है। श्वास घने और मंद हो जाते हैं। आंखोंके विवर फैल जाते हैं। नाड़ी भारी और मंद पड़ जाती है। मुखसे झाग गिरने लगता है। शरीर शीतल हो जाता है। आंखोंका रंग सफेद हो जाता है। पाकस्थली जड़ हो जाती है। थोड़े समयमें ही तकलीफ जाती रहती है और कुछ देरमें ही पशु मर जाता है।

स्थितिकाल—१ घण्टेसे लेकर १ दिन तक।

व्यवस्था—छायायुक्त, हवादार, सुगन्धि वाले, एकान्त और भिन्न स्थानमें सुलाकर, ताड़के पंखेकी हवा और शीतल जलके छींटें एवं थोड़ा थोड़ा शीतल जल पिलाना चाहिये।

अधिक पानी न पिलाना चाहिये। ठण्डे पानीमें कपड़ा भिगोकर पशुका सारा शरीर ढक देना चाहिये।

ऊंचे स्थानसे सहस्र धारा पातसे स्नान करानेसे यह रोग अति

शीघ्र दूर हो जाता है। जमाल गोटेका तेल सेवन कराकर इस रोगमें एक तीव्र जुलाब देना चाहिये।

होमियो पैथिक चिकित्सा—उत्ताप जनित पीड़ा होने पर बेलेडोना IX और ऐकोनाइट नेप IX की ८ बूंदे एकके बाद एक आध आध घण्टे बाद देनेसे फायदा होता दीखने लगता है जब रोगमें कुछ कम हो जावे तब बजाय आध आध घण्टेके दो दो घण्टे बाद देना चाहिये।

अधिक आहार जनित होने पर बेलेडोना और नक्स वमिका IX की ८।८ बूंदें उपरोक्त रीतिसे देनी चाहिये।

दो सेर गरम पानी और आधा पाव रेड़ीका तेल या ग्लाइसरीन मिला कर पिचकारी देनेसे भी फायदा होता है।

पथ्य—केवल भातका माड़ और हरी हरी दूब।

संयुक्त उपाय—पशुको अधिक हिलने डुलने न दे। चुपचाप एक स्थान पर रहने दे।

धनिया २ तोला, अलसी या तीसी २ तोला, ईसबगोल ४ तोला, सोनालुके पत्ते ४ तोला, बिट् नमक १ तोला ये सब चीजें पीसकर भातके माड़के साथ देनी चाहिये।

शूल वेदना ।

कारण—अत्यन्त शीतल और ठण्डी हवाके लगनेसे, सड़ी चीज़ें खानेसे, भूसी आदिको बिना गरम किये ही खिलानेसे एवं मुरगी आदिकी बीट खाजानेसे यह रोग होता है ।

छोटी और बूढ़ी गायोंकी अपेक्षा जवान गायोंको यह रोग अधिक होता है अन्य गायें इस रोगकी शिकार प्रारब्धसे ही होती है ।

लक्षण—पाकस्थीमें व्यथा होती है । पशु अस्थिरता और व्याकुलता प्रकाश करता है । पिछले पांव और सींगोंसे जमीन और दीवार की मट्टी खुरेदता है । दांत परस्परमें कड़ मड़ करते हैं । चारों पैर एकत्र कर पेट फुलानेकी चेष्टा करता है । पेटके बल सोता है ।

पास्थलीमें वायु भर जानेसे बायाँ अङ्ग फूल जाता है । मुख और मल द्वार से अपान वायु निकलती है ।

चिकित्सा—सबसे पहले तीव्र जुलाब द्वारा पेटका मल निकाल देना चाहिये ।

पटुआ शाकके पत्ते ४ तोला, विटनोन १ तोला, मिश्री १ तोला इन सबको पीस कर दिनमें दो बार सेवन कराना चाहिये ।

हींग १ तोला, भांग २ तोला और जीरा १ छटांक ये सब एकत्रित कर गरम पानी के साथ दिनमें दोबार सेवन कराना चाहिये ।

अफीम दो आना भर हींग आधा तोला, मिर्चा आधा तोला ये सब एकत्रित कर उपरोक्त ढंगसे सेवन कराना चाहिये ।

संयुक्त उपाय—मट्टीको पानीमें घोल अग्निपर गरम करे । जब पानी जल जाय और मट्टी लबदड़ेसी होजाये, तब उसे कपड़ेसे बांधकर गरम रहते रहते शूल स्थानोंको सेके ।

विधारा १ छटांक, विटनोन १ छटाँक, सैंजिनेके बीज १ छटांक

हरड़ १ छटांक; बाय बिडङ्ग १ छटाँक, आंवलेका चूर्ण १ छटाँक, सालई १ छटाँक, ये सब ३ सेर पानीमें पका कर डेढ़ पाव रहने तक उतारले और उसका काढ़ा शराबके साथ पिलाया जाये। फलतः शूल नष्ट हो जायगा।

निम्न लिखित ओषधियोंका प्रयोग करने पर भी विशेष फायदा होता है। शराब १ पाव, सेंधा नमक या बिटनोन आधी छटाँक, सौंठका चूर्ण आधी छटाँक, गोलमरिच आधी छटाँक, कपूर पाव छटाँक और अफीम २० ग्रेन ये सब एकत्रितकर एक खुराकमें देनी चाहिये।

हींग, अमलवेत, छोटी पीपल, संचर नोन, अजवायन, जबाखार, हरड़; और सैंधव नमक ये सब समान भाग ले, चूर्ण करले एवं ताड़ी या भातके माड़के साथ खिलाये, तो शूल रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है।

काला नमक १ भाग, इमली २ भाग, कालाजीरा ४ भाग, गोलमरिच २ भाग ये सब एकत्रित कर जमीरी नीबूके रसमें मले और १॥ तोले परिमाणकी गोली तोड़कर पशुको खिलायी जाय, तो उसका शूल रोग नष्ट हो जाता है।

होमियो पेथिक चिकित्सा।—२० से ४० बूंद तक रुबिनीर केम्फर १ १ या २ २ घण्टे बाद देना चाहिये एवं १ या २ घण्टे बाद बेले डोना I X और नक्स वमिका IX की आठ बूंदे एकके बाद एक देनी चाहिये।

खराब पानी पीनेसे भी यह रोग होता है, अतः वेलेडोनाके स्थान पर आयोनिया दिया जा सकता है।

दुग्ध ज्वर ।

भाव—अत्यन्त उत्कृष्ट और खूब हृष्ट पुष्ट गायको यह रोग होता है। इस रोगमें फी सदी, ७५ गायें मर जाती हैं।

कारण—गर्भावस्थामें या प्रसव होनेके बाद अधिक दूध पानेकी आशासे अत्यधिक भोजन करानेसे, सहसा ऋतुके परिवर्त्तन होनेपर, पानीमें भींगने या ठण्ड लग जानेसे, दीर्घ पथ अतिक्रम करनेसे अथवा दूसरे पशुके संसर्गसे गायोंको यह रोग हो जाता है।

लक्षण—प्रसवके बाद चार पांच दिनके भीतर ही रोगके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। सींग और नाक गरम हो जाते हैं। दृष्टिमें स्थिरता आ जाती है। सिर नीचेको झूल जाता है। भोजनमें अरुचि होती है। मल और मूत्र कम होता है। नाड़ी वायुपूर्ण और उसकी गति मन्द पड़ जाती है। श्वास-प्रश्वास गहरे आने लगते हैं।

दूध सूखने लगता है। आँखोंके पलक सफेद पड़ जाते हैं। गाय व्याकुलता और चञ्चलता प्रकट करने लगती है। बादको पिछले पाँव फैला देती हैं। नाड़ी क्रमशः क्षीण होने लगती है। भोजन भी क्रमशः बन्द हो जाता है। दुग्धाधार फूल जाता है और बड़ा हो जाता है। क्रमशः श्वासमें कष्ट होने लगता है। पशु हर समय मुँह फैलाये रखता हैं। मुंहसे बराबर लार टपकती रहती है। जमीनपर लोटने लगता है और बादको मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—होमियोपैथिक चिकित्सा ही इस रोगमें विशेष फायदा करती है।

ऐकोनाइट IX और बेलेडोना IX की ४-४ बूंदें एकके बाद एक हर एक घण्टेमें दो बार देनी चाहिये।

यदि इससे फायदा न हो, तो आर्सेनिक ऐलब IX और एण्टिमो-

निया कोष्ट्रिकम IX उपरोक्त रीतिसे आध आध घण्टे बाद देनी चाहिये ।

यदि ऊपर लिखी ओषधियोंसे कुछ फायदा होता देखा जाय, तो दवाओंमें परिवर्त्तन कर दे अर्थात उस समय ऊपरकी दवायें देनी बन्द कर नक्सवमिका IX और ब्रायोनिया IX की खुराकें ऊपर लिखे ढङ्गसे २-२ घण्टे बाद देनी चाहिये ।

अनन्तर आधी बोतल इन्सफ्रूट साल्ट १ सेर गरम पानी और एक पाव नमक एकत्र कर खिलानेसे विशेष उपकार होता है ।

संयुक्त उपाय—पशुको गरम स्थानमें रखना चाहिये । शरीरको कम्बल या मोटे वस्त्रसे ढंक रखना चाहिये । खयाल रहे, उस घरमें वायुके आवागमनके लिये काफ़ी सुभीता होना चाहिये ।

गरम भातका माड़ या गरम पानी पिलाना और बांसके पत्ते ही इस अवस्थामें खिलाना अधिक उचित होगा । कटेरीका पेड़, गिलोय और पित्त पापड़ेको छोटा छोटा काटकर खिलाना चाहिये ।

दुग्धधार गायके ऐनमें जमा हुआ दूध यत्नपूर्वक निकाल लेना चाहिये ।

अन्यान्य नवप्रसूता गायोंको पीड़ित गायके पास न जाने दे । क्योंकि यह रोग भयानक संक्रामक हैं ।

दुग्धाधारका फूल उठना ।

भाव—गायके दुग्धाधारमें यह रोग उत्पन्न होकर उसके चारों २ या १ थनको निकम्मा कर देता है । कभी कभी सारा ऐन सड़कर नष्ट हो जाता है ।

यह रोग दूधवाली गायको विशेष कर जो गायें अधिक दूधवाली होती हैं उनको ही अपना शिकार बनाता है । साधारणतः प्रसव होनेके

बाद कभी देश भेदके अनुसार प्रसव होनेसे पहले ही इस रोगका आक्रमण होता देखा जाता है।

हमारे देशमें इस रोगका नाम नज़र लगना या दृष्टिपात होना कहते हैं। लोगोंका विश्वास है, कि दुष्ट लोगोंकी दृष्टिसे ही यह रोग पैदा होता है। वास्तवमें गायका ऐन एक अति कोमल स्थान है। यदि उसमें अधिक दूध उतर आये तो, वह फट जाता है। किन्तु ज़ैसे ही दूधसे ऐनको भरा हुआ देखा जाये, वैसे ही उसमेंका समस्त दूध निकाल लेना चाहिये। अन्यथा प्रायः ही दूध जमकर ऐनको सड़ा डालता है।

अक्सर ऐनके रोमवस्थानमें अत्यधिक ठण्ड लग जाने, गरमीके बाद ठण्ड लग जाने, अथवा ऐनमें चोट लग जाने या गायके किसी संक्रामक रोगके आक्रमण होनेसे, गर्भावस्थामें अत्यधिक आहार देनेसे यह रोग उत्पन्न हो सकता है। कभी कभी दूधको अधिक समय तक न दूहनेसे भी यह रोग पैदा होता देखा गया है।

इस समय गायके शरीरमें गरमी बढ जाती है। ऐन गरम और उसमें वेदना पैदा हो जाती है। अतः वह फूल उठता है! सख्त हो जाता है। यहां तक कि गाय उसे छूने भी नहीं देती। बछड़ेको भी दूध नहीं पीने देती। लात मारती है। गाय कभी कभी लँगड़ा कर चलती है। उसके दूधका परिमाण घट जाता है। किसी प्रकार दुह लेने पर गायके ऐनसे और स्थानों द्वारा तोड़ या दहीके पानीकी भांति अथवा रक्त मिला पतला दूध निकलता है। शीघ्रता पूर्वक, आरोग्य न होनेपर पूर्वोक्त सख्त स्थान पर पीब पैदा हो जाती है एवं उसमें क्रमशः घाव हो जाते हैं। यहां तक कि कभी एक, कभी दो और कभी चारों थन बेकार हो जाते हैं। अथवा कभी सादा ऐन एक दम सड़ जाता है।

संयुक्त उपाय—किसी प्रकार ऐनमें दूध न जमने देना चाहिये अथवा जमे हुए दूधको दुहकर निकाल लेना चाहिये। इससे रोग आराम हो जा सकता है। यदि यह रोग ठण्ड लगनेसे हुआ हो तो ऐन फ्लानेल या कम्बल यदि गरम कपड़ेसे बांध देना चाहिये। फायदा होगा।

चिकित्सा—यदि यह रोग सहज हीमें आराम न हो, तो पहले एक जुलाब दे गायका शरीर हल्का कर देना चाहिये।

तोला भर सोरेको पानीमें भिगोकर पशुको पिलाना चाहिये, काफी फायदा होता दीखेगा। ऐनको सेकनेसे भी लाभ होगा। अण्डका पत्ता आग पर गरम कर उसे ऐन पर बांधनेसे बिशेष उपकार होता है। आकके पत्ते पर पुराना घी लगाकर उसे गरम कर बांधनेसे ही अच्छा फायदा पहुँचता है।

नीमके पत्तोंको पानीमें पकाकर उस गरम पानीकी भाफसे सेक देनेसे भी विशेष लाभा होता है। अथवा नीमके पत्तोंको पानीके साथ गरम कर उससे ऐनको धोनेसे रोगके दूर होनेमें सहायता पहुँचती है।

नीमके पत्ते और धतूरेके पत्तोंको समान भागमें ले कर एक साथ पानीमें पीसे और उसका पीड़ित स्थानपर लेप दे। विशेष फायदा होगा। मूछी लताके पत्ते और मैदा एकत्र पीस कर उसकी पुल-टिस बनाये और ऐन पर उसे लगाये, तो विशेष लाभ होता है।

डाकात लता या घा लता और अदरख एकत्र पीस कर पीड़ित स्थानपर लगानेसे विशेष लाभ होता है।

चूना और हल्दी एकत्र कर एवं उसे गरम कर पीड़ित स्थानपर लगानेसे विशेष फायदा होता है।

एकस्ट्रैक्ट आफ बेलेडोना लगा देने पर भी यह रोग आराम हो जाता है।

यदि थन पक कर पीव पड़ जाये, तो किसी अस्त्र द्वारा उस पीवको बाहर निकाल देना चाहिये एवं बादको नीमके पत्तोंके साथ औंटाये पानीसे उसे धो देना चाहिये। फिर नीमके पत्ते तिलके तेलमें भूंज कर यह तेल घावों पर लगाना चाहिये। फलतः घाव अति शीघ्र आराम हो जायँगे।

गरम पानी और साबुनसे धोने, बादमें एक भाग कार्बोलिक एसिड और आठ भाग नारियलका तेल एकत्रित कर थन पर लगानेसे भी घाव सूख जाते हैं।

थनके घाव सूख कर सख्त हो जाने पर भी फूल जायें तो, टिंचर आयोडीन और बेलेडिना एकत्र कर लगानेसे उनकी सूजन दूर हो जाती है। ऐकोनाइट IX और ब्रायोनिया IX की ८।८ बूंदें तीन तीन घण्टे बाद देनी चाहिये। यदि सूजन अधिक हो, तो बेलेडोना तीन तीन घण्टेके बाद देना चाहिये। यदि घावोंमें पीव अधिक पैदा हो जाये, तो हेफर सल्फर और तिन IX एक ग्रेन ले कर ऊपर लिखी रीतिसे देनी चाहिये। शीघ्र ही लाभ पहुँचेगा।

संयुक्त उपाय—इङ्गलैण्डमें इस रोग वाली गायका समस्त दूध दूहकर फेंक दिया जाता है। बछड़ेको अलग दूध दिया जाता है। वहां पर यह रोग बहुत कम होता है। थनका सारा दूध निकालनेसे और सरसोंका तैल तथा कपूर इन दोनोंको एकत्र कर थन पर मालिश करनेसे, इस रोगके आक्रमण की आशङ्का नहीं रहती। यदि दुग्धाधार अत्यन्त बड़ा और भारी हो जाये तो एक काले कपड़ेके टुकड़ेसे थन पीठके साथ बांध देना चाहिये। फलतः थन फूलना, रोगकी आशङ्का नहीं रहती। नज़र या दृष्टि पात भी अपना कोई असर नहीं करते।

शुक्र सम्बन्धिनी पीड़ायें।

प्रमेह।

प्रमेह रोग बहुतसे पशुओंको होता है। पेशाबके साथही वीर्य्य पात होता है। यदि यह रोग सांढ़को हुआ, तो वह अति शीघ्र, दुर्बल और निस्तेज हो जाता है। उस समय तम्बाकूके पत्ते और जलकुम्भीकी जड़ बराबर भागमें ले और एक दिन तक उसे जलमें भिगो बादको उसका काढ़ा बनाया जाये और आधापावके हिसाबसे नित्य प्रातःकाल दिया जाये।

कारण—साफ सुथरे न रहने, बारंबार गायके साथ सहवास करनेसे, पीड़ित गायके साथ सांढ़के सहवास करनेसे एवं रोगी गाय बैल आदि को खायी पी हुई चीज़ोंके व्यवहार करनेसे यह रोग पैदा होता है।

लक्षण—सांढ़को पेशाब करते समय जलन होती है। उस समय वह पूंछको बारम्बार हिलाता और पिछली टांगोंको फेंकता है। अत्यन्त कष्ट होने पर गों-गों शब्द करता है एवं दांतसे दांत कड़कड़ाता है। गायके पेशाबके समय गाँठके समान सफेद या पीले रंगका दुर्गन्धि युक्त एक प्रकारका पदार्थ निकलता है। मूत्र द्वार पर घावसे हो जाते हैं। उस समय गाय संगमकी इच्छा अत्यधिक करती है। किन्तु गर्भ धारणमें असमर्थ होती है।

चिकित्सा—पीड़ाका स्थान गरम जल या फिनाइल मिले पानीसे धो कर साफ रखना चाहिये एवं नीचे लिखी ओषधियाँ सेवन कराना चाहिये।

१ शतमूलका काढ़ा, तीसीका काढ़ा, गिलोयका काढ़ा अथवा मेहदीके पत्तोंका काढ़ा अल्प परिमाणमें सेवन करानेसे यह रोग शीघ्रही आराम हो जाता है।

२. कबावचीनीका चूरा १ तोला, सोरा १ तोला, चंदनका तेल १ तोला ठण्डे भातके माड़के साथ दिनमें दो बार अर्थात् प्रातःकाल और संध्याके समय सेवन कराना चाहिये, फलतः यह रोग आराम हो जाता है।

कच्चे सेमरकी जड़का रस १ छटांक, आंवलेका रस १ छटांक गिलोयकी जड़का रस १ छटांक ये सब चीनी या गुड़के साथ खिलानेसे विशेष उपकार होता है।

आधापाव सफेद चन्दन दो सेर पानीमें पका कर आधा सेर रहने तक आग परसे उतार ले और उसे पशुको खिलाये, विशेष लाभ होता है। एक सेर दूधमें एक सेर पानी मिला कर देनेसे भी फायदा होता है।

यदि पेशाब होना बन्द हो जाये, तो पाखानभेदी लताके पत्तोंको पीस कर उसका मूत्र स्थान पर लेप करे। इससे तत्काल पेशाब होगा।

होमियोपोथिक चिकित्सा—कैन्थाराइडिस IX की ८ बूंदे तीन तीन घन्टेके अन्तरसे प्रयोग करनेसे भी इस रोगमें विशेष लाभ होता है।

पेटके रोगसे उत्पन्न हुए

साधारण रोग।

(क) रोमोंकी विवर्णता और लोमहीनता।

यह रोग भी पेटके रोगसे ही उत्पन्न होता है। यह रोग नहीं, वरन् रोगका चिन्ह है। रोओंका स्वाभाविक सुन्दर वर्ण लुप्त हो कर छोटे छोटे और खराब रङ्गके हो जाते हैं। वे देखनेमें अस्वाभा-

चिक्से प्रतीत होते हैं। कभी कभी शरीर लोमहीन सफेद धब्बोंसे भग देख पड़ता है। क्रमशः शरीरके सारे रोम गिर जाते हैं। पशु आलसी और जड़ः प्राय सा हो जाता है। उसे भोजनमें अरुचि हो जाती है एवं शरीरका सारा बल नष्ट होकर वह एकदम अस्थिचर्म्माव-शिष्ट हो जाता है। पशु क्रमशः दुर्बलसे दुर्बलतर हो कर जमीन पर गिर पड़ता है। और कुछ ही दिन बाद उसकी मृत्यु हो जाती है।

व्यवस्था—सोंठ, मरिच, लौंग, काला नमक, जैन, चिरायता, इनमेंसे प्रत्येक चीज १-१ तोला ले और पीस कूट कर उनकी बड़ी बड़ी गोली बनाये तथा प्रातः काल और सायंकाल ईखके गुड़के साथ खिलाये; फलतः जठराग्निकी वृद्धि होगी और भोजनमें रुचि हो जायेगी।

होमियो पैथिक चिकित्सा—एको नाइट IX और आर्सेनिक एलब IX सलफर IX इन सबकी ८-८ बूंदे ले और पानीके साथ ४-४ घण्टेके बाद ८।१० दिन तक खिलाये। पशुको क्रमशः भोजनमें रुचि और शरीर पुष्टि होगी। पेटके रोग दूर हो जायँगे। जब जीवनी शक्तिका ह्रास होता देखा जाय, तब आर्सेनिक देना चाहिये।

संयुक्त उपाय—सरसोंका तैल, आधी छटांक गन्धकका चूर्ण १ छटांक, कपूर (स्पिरिट टार्पेण्टाइन) १ छटांक, पाव छटांक भिनाइल सब एकत्र कर पशुके शरीरमें मलना चाहिये, फलतः उपकार होगा। इस ओषधिका प्रयोग करनेसे पहले, अवस्थानुसार गरम पानी और साबुनसे शरीरको धो डालना चाहिये।

(ख) बछड़ोंकी क्षीणता।

भाव—साधारणतः बछड़ोंको भोजनमें यथेष्ट रुचि होती है। एवं उनमें सदा काफो फुर्त्ती रहती है। किन्तु जब उनको आहारमें अरुचि होती और अग्निमान्द्य देख पड़ने लगता है, तब समझना चाहिये, कि इनको कोई रोग हो गया है।

संयुक्त उपाय--साधारणतः उक्त अवस्थामें बछड़ोंके आहार में परिवर्त्तन करके देखना चाहिये। ऐसा करनेसे भी लाभ हो सकता है। किन्तु उससे कुछ सुफल न फलता देख नीचे लिखी औषधियां देनी आवश्यक हैं।

व्यवस्था—गोलमरिच, लौंग, सोंठ, चिरायता और काला नमक समान भागमें चूर्ण कर ईखके गुड़के साथ मिलाकर बड़ी बड़ी गोलियां बनाले, और उनमेंसे नित्य प्रति एक गोली खिलाये। लाभ होगा।

होमियो पैथिक—नक्स वमिका IX की ४ बूंदे पानीमें मिला कर २-२ घण्टे बाद पिलानेसे भी विशेष लाभ होता है।

यदि इससे भी कुछ लाभ न हो, तो इस बातकी खोज करनी चाहिये, कि उसे कृमि रोग तो नहीं हुआ? यदि निदानमें कृमिरोग साबित हो जाये, तो तत्काल उसीकी चिकित्सा करनी आरम्भ कर दे।

(ग) मुख और जीभके रोग।

गो-जातिके मुंह और जीभमें कांटे होते हैं। ज़ब वे बढ़ जाते हैं, तो पशुसे आहार नहीं किया जाता। मुंहका भीतरी भाग पीला पड़ जाता है। मुखमें दुर्गन्ध आती है। यदि इस रोगकी उपेक्षा की गई तो पशु क्रमशः दुर्बल हो कर मर जाता है। यह रोग पेटकी पीड़ाओंसेही पैदा होता है। अतः थोड़ीसी फिटकिरी गरम पानीमें भिगो कर उसी से मुंहका भीतरी भाग धोनेसे उक्त रोग दूर होजाता है। नित्य नमकको मुँह और जीभमें घिसनेसे भी यह रोग दूर हो जाता है।

जइन, नमक, गन्धक और गोलमरिच इनमेंसे प्रत्येक २-२ तोला लेकर और पीसकर खिलानेसे पशु शीघ्र ही आरोग्यता लाभ कर लेता है।

नक्सवमिका IX की ६ बूंदे पिलानेसे भी पशु आरोग्य होता है। इस रोगमें पशुओंको पतली चीज़ें खानेके लिये देनी चाहिये, कि

जिससे उन्हें निगलनेमें कष्ट न हो । भात या जौका माड़ प्रचुर परिमाणमें खिलाना चाहिये । यदि पशु माड़को सहजहीमें खाना न पसन्द करे, तो चोंगेसे पिला देना चाहिये ।

(घ) दांतोंके मसूढ़ोंका फूल उठना ।

इस रोगमें पशुओंके दांतोंकी ऊपर वाली पंक्तिके मसूड़े फूल उठते एवं वे सूजे हुए मालूम पड़ते हैं । यह रोग इतनी तकलीफ देता है, कि गाय घास खाना एक दम बन्द कर देती हैं । वैसे भी यदि कोई मनुष्य उन मसूड़ोंको छू कर देखे, तो सचमुच सूजेसे मालूम होते हैं । गायें उन पर सहज हीमें हाथ धरने नहीं देतीं ।

कारण—पेटका रोग हो इस रोगका मूल कारण है ।

चिकित्सा—नक्सवमिका IX की ८ बूँदे, पानीके साथ प्रातः-काल और सायंकालमें देनी चाहिये । कण्डिसन पाउडर आधी छटांक ले कर प्रति दिन प्रातः कालके समय देना चाहिये ।

चिरचिरेकी जड़ जलाकर फूले स्थानों पर पीस कर घिसनेसे, नमक और तैल मिलाकर सूजी जगह पर मलने या आमके पत्तोंके उपलोंको जला कर उन पर लगानेसे पशुको बहुत कुछ आराम मिलता है एवं सूजे हुए स्थानोंसे कितना एक लाल लाल पदार्थ निकल कर पशु क्रमशः सुस्थ हो जाता है ।

पथ्य—माड़ वगैरह पतले पदार्थ ।

(ङ) अत्यन्त रक्तस्राव होना ।

जब गायके शरीरमें उक्त रोग देख पड़े, तो उसे शान्त भावसे सुला रखना चाहिये । भीजे कपड़ेसे पेट बांध देना चाहिये । कमर और पेशाबके स्थान पर भी और एक दूसरा कपड़ा शीतल जलमें भिगो कर रख देना चाहिये । ठण्डे पानीसे ही पेशाबके द्वारपर पिचकारी

दी जासकती है। जब खून काले वर्णका और दुर्गन्धि युक्त हो, तब सिकेली IX की आठ बूंदे प्रति घण्टेमें देनी चाहिये। स्रावका रक्त लाल हो, तो सेवाइना IX की ८ बूंदे प्रति घण्टेमें देनी चाहिये। बल रक्षाके लिये बीच बीचमें चायना IX की ८ बूंदे पानीके साथ पिलानेसे विशेष उपकार होता है। लाल कमलकन्दके फूल और लाल अतारूके बीज इनमेंसे प्रत्येक एक तोला ले और शीतल जलमें पीसकर खिलानेसे रक्तस्राव दूर हो जाता है। इसके लिये लाल चन्दनके बीज भी उपकारी हैं।

इस बात पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये, कि गाय सदा शान्त भावसे रहे।

गर्भाधानकी स्थान भ्रष्टता।

यह रोग अधिक अवस्था वाली गायों और कमजोर गायोंको होता है। हमारे देशमें इस व्याधिकी कोई भी चिकित्सा नहीं की जाती। साधारण जानकार लोगोंको इस रोगकी चिकित्साके विषयमें कुछ भी नहीं मालूम। इस व्याधिसे शिकार बनकर गाय तकलीफ उठा कर प्राण त्याग कर देती है।

कारण—प्रसव कालीन या प्रसवके अन्तमें खूब जोरसे काँखनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। प्रसव द्वारमें हाथ डालकर प्रसव करानेसे भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

लक्षण—पिछले दोनों पायोंके बीचमें गर्भाधार निकल कर झूलने लगता है।

चिकित्सा— गरम पानीमें आधा पाव या आधी छटांक फिटकिरी भिजो कर उस जलसे गर्भाधारको धोकर उसे खूब साफ कर देना चाहिये। अनन्तर फिर इसी ढंगसे ठण्डे पानीमें आधी छटांक फिटकिरी मिलाकर गर्भाधार धोना और अति सावधानीसे अत्यन्त

सतर्कतासे उसे प्रसव द्वार द्वारा भीतर प्रविष्ट करा देना चाहिये। किन्तु सावधान! यह कार्य्य करते समय किसी प्रकारकी जोर जबर्दस्ती न करनी चाहिये उक्त ढंगसे गर्भाधार यथास्थान पहुँच जाये, तो कुछ देर तक अपना हाथ वहीं रखे रहना चाहिये।

ये सब कार्य्य शीघ्रतासे करने चाहिये, अन्यथा देरी हो जाने पर वसका पुनः यथा स्थान स्थापन होना कठिन है। इसके बाद प्रसव द्वार एक मोटे और ४।५ अंगुल चौड़े कपड़ेसे मज़बूतीके साथ बांध देना चाहिये।

इस समय गायको बैठने न देना चाहिये। यदि यन्त्रणासे परेशान हो जाये और नेत्रोंका वर्ण विवर्णसा प्रतीत हो, तो किसी सुयोग्य चिकित्सकको बुलाकर चिकित्सा करा देनी चाहिये।

आर्निकर मदर टिञ्चरकी १० बूंदें या बेलेडोना मदर टिञ्चरकी ५ बूंदे दिन भर प्रति घण्टेमें देनेसे लाभ होगा।

गायको भातके माड़के सिवा और किसी प्रकारका गरम या उत्ते-जक पदार्थ न देना चाहिये।

इस समय गायको अति शान्त और स्थिर भावसे रखना चाहिये।

सप्तम परिच्छेद ।

गायोंके विशेष रोग ।

गर्भ स्राव या गर्भ पात

(संक्रामक रोग)

भाव—इस रोगमें गायका गर्भ अवधिसे पहले ही गिर जाता है। विशेष कर यह काण्ड ५ वें माससे लेकर आठवें मासके भीतर ही हो जाता है।

कारण—चोट लगना, गिर पड़ना, कूदना, खूब तेज दौड़ना, अन्य प्रकारके कष्ट उठाना या चेचक रोग होनेसे, ज़हरीले द्रव्योंके खानेसे, जलमें डूबे स्थानपर पैदा हुई घासके खानेसे, सड़े और बन्द पानीको पीनेसे, गर्भावस्थामें सांढसे संयोग करने या मरे हुए पशुकी खालकी गन्धके नाकमें प्रवेश करनेसे, अत्यन्त भोजन करने अथवा उग्रवीर्य्य और उत्तेजक द्रव्योंके खानेसे तथा अनाहार रहने और अन्य पशुओंसे लड़नेसे गायोंका गर्भ गिर पड़ता है।

लक्षण—लक्षणोंके प्रति विशेष दृष्टि रखनी उचित है। यदि पहली ही सूचना पर ध्यान न दिया जायेगा, तो गर्भपातकी विशेष आशंका है।

यदि सहसा गर्भिणी गाय जड़वत् हो जाये, आहार करना बन्द करदे, पागुर करना छोड़ दे, पेटका निचला भाग फैल जाये, चलने फिरनेमें असमर्थ हो, श्वास अधिक संख्यामें बाहर होते हों, पेशाब द्वारा हरे रङ्गका तरल पदार्थ निकलता हो, ज्वर आने लगे, गाय बारम्बार कातर शब्द करती हो, तो समझ लेना चाहिये, कि वह प्रायः अन्तमें जीवित या मृत बछड़ा प्रसव करेगी।

चिकित्सा—यदि स्रावका तरल पदार्थ दुर्गन्ध युक्त हो, तो समझ लेना चाहिये, कि गायके गर्भका बच्चा मर गया है।

उस समय पल सेटिला IX की ८ बूंदे पानीके साथ प्रत्येक घण्टेमें देना आवश्यक है।

यदि यह मालूम पड़े, कि पेटका बच्चा जीवित है, तब कमर पर शीतल पानीका तर्रा देना चाहिये और सिकेली IX की ८।८ बूँदे देनी चाहिये।

गर्भ पात हो जाने पर सिकेली IX की ८।८ बूंदे १५।१५ मिनटके बाद देनी चाहिये।

यदि अत्यन्त लाल रंगका रक्तपात हो, तब सेवाइन IX की ८ बुंदे १५।१५ मिनटके बाद देनी चाहिये।

यदि किसी प्रकारको चोट लगनेसे गर्भपात हो, तो अर्निका सालट IX की ८।८ बूंदे उपरोक्त ढंगसे देनी चाहिये।

जिस गायको गर्भपात हुआ हो, उसे गोशालासे अलग रखना चाहिये। एवं वह स्थान यथेष्ट शुद्ध वायु पूर्ण हो। खानेके लिये भातका माड़ और विशुद्ध पानी पीनेके लिये देना चाहिये।

गर्भ स्राव और गर्भ संबन्धी बाहर निकले हुए समस्त पदार्थ एक गढ़ेमें डाल कर उसपर मट्टी डाल देनी चाहिये।

स्तनोंमें घाव हो जाना।

भीजे रहने पर, प्रबल शीत या वायुके लग जाने पर अथवा साफ न रहनेसे गायके स्तनोंमें घाव होजाते हैं। अतः गायके स्तनोंको सदा सर्वदा साफ रखना चाहिये।

(१) ऊपर लिखी चिकित्सा स्तनोंके घावोंके लिये भी फलदायक है। तथापि यदि किसी एक बाँटमें घाव हो जाये, तो गरम पानीसे धो कर उसपर मखन मल देना चाहिये। घाव आराम हो जायेंगे।

(२) यदि उक्त रीतिसे घावोंको आराम न पहुँचे, तो नीमके पत्तोंके साथ औटाये हुए पानीसे स्थनोंको धो कर और नीमके पत्ते मिले तिलके तैलको उन पर लगाना चाहिये।

२ तोला मोम और १ छटांक घी एक जगह गला कर सफेदा १ आना भर और फिटकरी दो आना भर एकत्र उत्तम रूपसे मिलाकर जो एक प्रकारका मरहम बन जाये, उसीको घावों पर लगाना चाहिये। घाव आराम हो जायेंगे।

कर्पूरादि मरहम लगानेसे भी विशेष उपकार होता है। सौ बार धुला हुआ घी लगानेसे भी घाव सूख जाते हैं।

सौ बार धोया हुआ घी और धूपका चूर्ण एकत्र कर लगानेसे भी ये घाव शीघ्र ही आराम हो जाते हैं।

सावधानी—गायको इस रोगमें सदा साफ सुथरी हालतमें रखना चाहिये और दूध दूहनेके बाद थनोंको साफ कपड़ेसे पोंछ देना चाहिये।

थनका मारा जाना।

यदि किसी थनसे दूध निकलना बन्द हो जाये, तो उस निकम्मे हुए थनको किसो मोटी और छोटी नलीमें भरके चूसना चाहिये। दूध निकलने लगेगा और निकम्मा हुआ थन ठीक हो जायेगा।

प्रसव विपत्ति।

(एक सांघातिक रोग)

यदि प्रसव द्वार पर बछड़ेका पिछला भाग आगे देखा जाये, या एक पांव बाहर निकलता देखा जाये, अथवा एक पांव और सिर बाहर निकले, तो समझना चाहिये, कि गर्भ खराब हो गया है। यदि प्रसव द्वार की संकीर्णता मालूम हो, या बछड़ा खूब मोटा ताजा और लम्बा

चौड़ा हो, या गायको सूजन हो, तो किसी होशियार डाक्टर द्वारा प्रवस कराना चाहिये।

प्रसव वेदना दीर्घ काल व्यापी होने पर—

गर्भकी वेदनासे गायके छटपटानेपर या यदि वह कभी बैठती और कभी उठती हो, तो होमियो पैथिक जेलसियम IX की दश बूँदे प्रति घण्टेमें दो बार देने या ५० ग्रेन कुनाइन २।२ घण्टेके, अन्तरसे देने पर विशेष लाभ हो सकता है।

प्रसवकी अन्तमें वेदना—प्रसवके बाद गायके वेदनासे छट पटाने पर आर्निक मदर टिंञ्चर दो घण्टेके अन्तरसे देनेपर विशेष उपकार होता है।

फूलके गिरनेमें विलम्ब होनेपर— पेलसेटिला IX की दश बूंद पानीके साथ पिलानेसे फूल बाहर गिर पड़ता है। यदि यह ओषधि बारह घन्टेमें कोई फायदा न करे, तो सिकेली IX की ८।१० बूँदें पानीके साथ १ बार देनी चाहिये। फूल गिर जायेगा।

ताराके पेड़ गायके गलेमें बाँध देनेसे, जूँ, या थुहीका चूर गायके सिरमें बांध देनेसे फूल तत्काल गिर जाता है।

(फूलकी गिरानेकी विस्तृत चिकित्सा इसी पुस्तकके तीसरे खण्डके सत्रहवें परिच्छेदमें विशद् भावसे लिख दी गयी है।)

प्रसव द्वारके फटजाने पर—नारियलका तेल १ छटांक, ४ लहसुनके साथ पकाकर सोहाता सोहाता प्रसव द्वारपर लगाना चाहिये। यदि एक बारमें कुछ फल नहीं तो दिनमें ३ बार लगाना चाहिये।

मास्तिष्कका फूलना और प्रदाह ।

कारण—सींग टूटजानेपर, सिरमें भारी चोट लग जानेसे, तथा अन्यान्य कारणोंसे भी यह रोग पैदा हो जाता है।

लक्षण—इस रोगमें पशु जड़वत हो जाता है। नेत्रोंकी दृष्टि अस्वाभाविक हो जाती हैं। श्वास प्रश्वास खूब आने लगते हैं। नाड़ी वायु पूर्ण और मंथर गतिसे चलने लगती है। जो सामने जाता है; उसे ही मारने दौड़ती है। पूछको उठाकर सिर नीचा कर भागती हैं। सींग और पैरेसे जमीन या दीवार कुरेने लगती है। खूब डकरती है। अन्तमें क्लान्त हो जमीनपर गिर पड़ती और प्राण त्याग देती है।

चिकित्सा—पशुको अच्छी तरहसे खूंटेसे बांध उसके सिरपर पानीकी धारा देना चाहिये। यदि धारा न दी जाय सके, तो तर कपड़ा सिरपर रखना चाहिये। बादको थोड़ीसी कस्तूरी, मकर ध्वज अथवा स्वर्ण सिन्दूर मनुष्यकी खुराकसे छे गुन अधिक परिमाणमें थोड़ेसे शहदके साथ खलमें पीसकर देना चाहिये। पशु नीरोग हो जायेगा।

होमियो पैथिक चिकित्सा—ऐकोनाइट नेप IX बेलेडोना IX की ८।१० बूंदें एकके बाद एक दो घण्टेके अन्तरसे देनी चाहिये।

आर्निका IX और जेलसिनम IX इसी प्रकारसे देनेसे विवेष उपकार होता है।

पथ्य—दूर्वाघास, मसूरकी पकी हुई भुँसी और बांसके पत्ते इन तीनों खाद्योंके सिवा इस रोगमें और कोई खाद्य न देना चाहिये।

यदि इस रोगमें यत्नके साथ उत्कृष्ट रूपसे पशुकी चिकित्सा न की जाये, तो इसका बचना कठिन हो जाता है।

पीठ और कन्धोंपर घाव या

दादोंका होना।

कारण—गायोंको पीठ या कंधोंपर जो घाव हो जाते हैं, उसका कारण यह है, कि घावोंके भीतर कीड़े पैदा हो जाते हैं। पशुके शरीर विशेष कर शरीरके उस भागमें जहां पर वह चाट नहीं सकती वहांका रक्त गरम रहता है। और उस रक्तमें कीड़े पैदा हो कर घाव कर देते हैं। यद्यपि गरम रक्त गायके समस्त शरीरमें रहता है, किन्तु जिन स्थानोंको गाय जीभ द्वारा चाटती रहती है, वहांके रक्तके कीड़े पाक-स्थलीमें चले जाते हैं और बादको वे मलके साथ बाहर निकल जाते हैं। ये कीड़े और उनके अण्डे पीले रङ्गके होते हैं। ग्रीष्म प्रधान स्थानोंमें वा अन्य विशेष स्थानोंमें भी ये कीट गायोंके शरीरमें प्राय ही पैदा होते रहते हैं। वे चमड़ेके नीचे अपना वासस्थान बना कर चमड़ेमें जगह व जगह छेद कर देते हैं। एक बार परीक्षा द्वारा देखा गया था, एक लाख चमड़ोंमेंसे साठ हजार चमड़े उक्त रोगसे दूषित थे।

समय—ग्रीष्म प्रधान देशमें, ग्रीष्म कालीन गरम दिनोंमें यह कीड़े पशुओंपर अपना आक्रमण करते हैं।

चिकित्सा— पीठ या कन्धेके घावोंको दो अंगुलियोंसे दवा कर उन पर बरफके पानीका तर्रा देना चाहिये। इस तर्रेसे कीड़े मर जायेंगे, क्योंकि वे सर्दीको नहीं सह सकते। फिनाइलके पानी या कपूरके अर्ककी पिचकारी देने पर भी ये कीड़े मर जाते हैं। गन्धकका लेप कर देनेसे भी वे मर जाते हैं। अलकतरा (चारकोल) क्रियोजोट और ट्रेइन तेल (Train Oil) या गन्धकका मरहम लगानेसे भी कीड़े मर जाते हैं।

खानेकी चीजोंके साथ नमक और पाव छटांक गन्धकका चूर्ण

नित्य प्रति पशुको खिलानेसे भी उस रोगके कीड़े मर जाते हैं। बिशुल्फाइड कारबन (Bishulphide Carban) की गोलियाँ इस रोगकी परीक्षित महौषधि है। मार्क्युरियस आयेण्टमेण्ट अंगुलिपर लगाकर उसे घावोंपर घिसनेसे भी उक्त कीड़े मर जाते हैं।

गायके शरीरमें जितने भी घाव या दाद होते हैं, वे काड नामक मछलीका तेल लगानेसे दूर हो जाते है। इस तेलके लगानेसे घावोंपर मक्खी भी नहीं बैठ सकती, एवं घाव भी अति शीघ्र आराम हो जाते हैं। हंसपदी लताके पत्ते अथवा जुही फूलोंको पीस कर घावोंपर लगाने घाव दूर हो जाते। तूतियेकी भस्म आधी छटांक, पत्थरका चून एक छटांक, तम्बाकूके पत्तोंका भीगा पानी १ छटांक और सरसोंका तेल आधी छटांक सबको थोड़ेसे खैरमें मिला कर मरहम बनाना चाहिये ये मरहम गायोंके शरीरमें होनेवाले इन घावोंको अति शीघ्र आराम कर देते हैं। गेंदेके फूलोंकी पंखड़ियोंका रस और नीमके पत्तोंके साथ तिलका तेल घावोंपर लगानेसे या बोरेसिक आयण्ट मेण्टको घावोंपर लगानेसे वे तुरत आराम हो जाते हैं।

संयुक्त उपाय—साबुनका पानी, नीमके पत्तोंके साथ पकाया हुआ पानी अथवा फिनाइल मिले पानीसे घावोंको सदा साफ रखना चाहिये।

नाली घाव या करह।

ये घाव गायके कन्धोंमें होते हैं। कौवेके ठोंठ मारने अथवा पेड़से कन्धा रगड़नेके कारण ये घाव खूब बड़े बड़े हो जाते हैं।

चिकित्सा—(१) उन पर काड या ह्वेल मछलीके तेलमें सोहागेकी खीलोंका चूर्ण मिला कर देनेसे करहके घाव आराम हो जाते हैं

(२) मोतीहारी तम्बाकूके पत्ते मिला जल पहले गरम करना चाहिये

और जब वह गाढ़ा हो जाये, तो उसमें सरसोंका तैल मिला कर घावों पर लगाना चाहिये। फलतः घाव आराम हो जावेंगे।

(३) मोतीहारी नामक तम्बाकूके पत्ते आग पर सेककर उनका चूर्ण बना लेना चाहिये एवं इस चूर्णको १ छटाँककी अन्दाजसे लेकर उसमें मुर्दासंख आधा तोला, कपूर चार आना भर ले और एकत्र कर हुक्केके पानीमें मिलाले। फिर उसमें थोड़ासा सरसोंका तेल डाल कर मरहम बनाले। इस मरहमके करहके घावोंपर लगानेसे वे बहुत ही शीघ्र आराम हो जाते हैं।

नाली घावोंपर नील या अलकतरा लगानेसे भी वे अति शीघ्र आराम हो जाते हैं।

यदि घावोंमें कीड़े पड़ जायें, तो उन पर नीचे लिखी दवाइयां लगानी चाहिये।

१ सरसोंका तैल आधा पाव

पत्थरका चूना १ तोला

तूतियेकी भस्म आधा तोला

मोतीहार तम्बाकूके पत्ते आधी छटांक

इन सबको एकत्र मिलाकर गरम करले। तेलके गरम हो जाने, और तम्बाकूके पत्तोंके जल जाने पर उन्हें उतार ले और सबको हाथसे भले प्रकार मथकर घावोंपर लगावे, फलतः कीड़े मर जायँगे।

२ सुराज नामक तेलके लगानेसे भी कीड़े मर जाते हैं।

३ आता फलके कच्चे पत्तोंको पोतनेवाला चूनेके साथ पीसकर घावों पर लगानेसे कीड़े मरजाते हैं। पाटके बीजोंको घावोंपर लगा नेसे भी सुफल होता है।

गायोंके अति सामान्य कतिपय रोग

और उनकी चिकित्सा।

जीभके घाव

प्राय: देखा जाता है, कि गायोंकी जीभोंपर और उनके नीचे घाव हो जाते हैं। इससे उन्हें घास खानेमें कष्ट होता है। पागुर करते समय खांसी आती है। बीच बीचमें आधी चबाई हुई घास निकाल देती हैं। जीभको बाहर निकाल, उसे उलट कर देखनेसे मालूम होता है, कि जीभके नीचे गढ़ोंकी भांति घाव हैं और जीभ स्थान-स्थानपर फट रही है। उस पर कांटेसे जम आये हैं। उस समय चीतल नामक मछलीके कांटे जलाकर उसके भस्म घावपर लगाये और गायके मुंहपर ३।४ घण्टे तक एक पट्टी बांध रखनी चाहिये। इस समय गायको गरम पानीही पिलाना चाहिये। पीपलकेपेड़की छालकी भस्म भी घावों पर लगानेसे, वे आराम हो जाते हैं। जिह्वाको खींच, बाहर निकाल, नीमके पत्तोंके साथ पकाये पानीसे उसे धोकर सरसोंके तेलके साथ हल्दीका चूर्ण मिला कर उसे लगानेसे भी उक्त घाव अति शीघ्र आराम हो जाते हैं।

नाकके घाव।

इन घावोंको पीनस कहते हैं।

लक्षण- इस रोगकी प्रथमावस्थामें खूब जोरसे सांस निकलते हैं। कुछ दिनों बाद घर्र घर्र शब्द होता है और नासिकासे खून और पीव निकला करती है।

औषधि—कसेरुका रस १ छटांक, घोड़ेका मूत्र १ छटांक मटिया सिन्दूर आधा तोला ये सब एक जगह मिला कर एक शीशीमें

२ दिन रख, बादको क्षत स्थानों पर लगा देना चाहिये। शीघ्र घाव आराम हो जायेंगे।

रोहेका रोग।

गायकी आंखोंमें रोहे पड़ जानेपर तम्बाकूके पत्तोंसे भीगा हुआ पानी या नमकका पानी आंखोंमें डालनेसे रोहेका रोग दूर हो जाता है। एक आस्त खलिसा मछलीको भून कर उसका भस्म आँखोंमें आंजनेसे भी रोहेका रोग जाता रहता है।

चत्ता या घूंटी रोग।

यह रोग बछड़ोंको अधिक होता है। इसमें बछड़ोंके शरीर परसे जगह ब जगह रोम उड़ जाते हैं। पहले पहल मुंह और गलेके रोम उड़ते हैं। यह भी एक प्रकारका दाद रोग है। कभी कभी रोमहीन स्थान फट जाता और घाव होजाता है। इस रोगके हो जानेपर ग्रामवासी ढोरके गलेमें जूतेकी तली या थोड़ासा चमड़ा एक डोरेमें बांधकर लटका देते हैं एवं पीड़ित स्थानों पर गोबरकी राख मल देते हैं। इन सब क्रियाओंसे भी रोग आराम हो जाता है।

नीचे लिखी दोनों ओषधियां इस रोगमें विशेष उपकारी हैं।

१ केली कदम्ब वृक्षकी छाल और कचिया हल्दी हुक्केके पानीमें पीस कर लगानेसे रोग आराम होजाता है।

२ सोहागेका लावा, गंधक, सरसोंका तेल ये सब एकत्र कर पीड़ित स्थानोंपर लगानेसे विशेष उपकार होता है।

आकस्मिक रोग
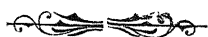
सींगका टूट जाना

कारण—अन्य पशुके साथ लड़ाई करने या चोट लग जानेसे पशुका सींग गिर जाता है और उसमें बेहद तकलीफ होती है।

सींग टूट जानेपर निम्न लिखित तीन प्रकारके उपायोंको काममें लाना चाहिये।

(१) यदि सींगके भीतरकी हड्डी टूट गयी हो और ऊपरकी सींग बदस्तूर हो, तो उसे अच्छी तरहसे बांधकर आर्निका नामक होमियोपैथिक ओषधि मिले पानी, या फिनाइलसे भिगो रखना चाहिये।

सींग टूट जाने पर उस पर अन्ने उपलेकी राखको बांध देना चाहिये अथवा उसमें मछलीका तेल लगाये।

(२) यदि सींग टूट जाये और नीचेकी हड्डी निकलकर उसमेंसे खून निकलने लगे, तो आर्निकाके पानीमें रुई भिगो कर उसे टूटे स्थान पर रख ऊपरसे मजबूतीके साथ कपड़ा बांध देना चाहिये।

(३) यदि सींग और हाड़ दोनों ही टूट जायें, तो टूटे स्थानसे रक्त अत्यधिक निकलनेकी संभावना है। अतः उससे मस्तकमें रोग पैदा हो जा सकता है। दांत से दांत लग जा सकता है और उससे ग्रेंग्रिन नामक रोग हो जा सकता है।

व्यवस्था।—टूटे स्थानसे सींग और उसका आरंभिक भाग काट देना चाहिये।

चिकित्सा—हरी हरी दूबका रस, मुसली शाकके पत्ते, चिरचिरेकी जड़का रस अथवा गेंदेके फूलोंकी पंखड़ियोंके रसको लगाकर खून बन्द कर देना चाहिये।

अनन्तर आइडोफ़ार्म छिड़ककर घावोंको बांध देना आवश्यक है।

एकोनाइट IX या आर्निका IX की छः बूंदें एकके बाद एक ४।४ घण्टेके अन्तरसे पिलाने पर फायदा होगा ।

कंधेका फूल उठना ।

गाड़ी या हल खींचनेसे अकसर बैलोंका कंधा फूल उठता है, उस समय शामुख (घोंघे) के पानीको फूले स्थान पर मालिश करनी चाहिये। लाभ होगा। मेंहदीके पत्तोंको पीसकर उन्हें गरम कर लगानेसे भी यह रोग दूर हो जाता है। दुधारू गायके स्तनोंके फूल उठने पर भी मेंहदीके पत्तोंको पीस और गरम करके लगानेसे उपकार होता है। इसके सिवा अन्यान्य फूले हुए स्थानोंपर लोहा गरम कर दाग देनेसे फायदा होता है।

नाभिमूलका रोग ।

इस रोगसे छोटे बछड़े बहुत तकलीफ पाते हैं। असतर्कता या लापरवाहीसे नाभीकी नाड़ी काटने पर यह रोग पैदा होकर बछड़ोंको प्रायः विशेष कष्ट होता है।

इस समय हरी दूबका रस, अम्बष्ठो लताका रस या गेंदेके पत्तोंका रस पीड़ित स्थानपर लगानेसे वहांसे खून गिरना बन्द हो जाता है।

यदि घाव हो जाये तो घावकी दवा देनी चाहिये।

पांवमें घाव हो जाना ।

पांवके खुरोंके भीतर प्रायः कांटा, हड्डीका टुकड़ा, पत्थरका टुकड़ा या ईंटकी कंकड़ीके लग जानेसे गाय बैल लंगड़ाने लगते हैं। उस समय उनके पांवकी गांठ फूल उठती है। घावमें पीव पैदा हो जानेसे पैर एकदम बेकार हो जाता है।

इस अवस्थामें पहले पांवका कांटा या कंकड़ी आदि बाहर निकाल घावसे पीव बाहर कर, उसे नीमके पत्तोंके साथ गरम किये पानीसे

धो देना चाहिये। यदि धोनेका यह उपकरण साध्य न हो, तो साबुन या फिनाइलसे साफ कर देना चाहिये। अनन्तर मैदा या भूसीकी पुल्टिस बांध कर घावके भीतरका पीव निकाल देना कर्त्तव्य है। इसके बाद तिलके तेलमें नीमके पत्तोंको पकाकर उससे जो तैल तय्यार हो, वह घावोंपर लगानेसे, अथवा यदि वह साध्य न हो, तो छुई मुई लताके पत्तोंका रस और तिल तैल या गेंदेके पत्तोंका रस और तिलका तैल एकत्र कर और गरम कर घाव पर लगानेसे विशेष उपकार होता है।

८ बूंदे साईलेसिया IX का प्रयोग करनेसे भी यन्त्रणा दूर हो जाती है। पीड़ित स्थानको सदा साफ सुथरा रखना चाहिये।

दांतोंको जड़में घाव या दांत हिलना।

दांतोंकी जड़में सूजन हो जाती है। दांत परस्परमें कट कटाते हैं। अच्छी तरहसे आहार नहीं कर सकता। पानीको चूस चूसकर पीता है। सारांश कि उस समय अच्छी तरह पानी भी नहीं पी सकता।

चिकित्सा—दांतोंके जड़में फूले हुए स्थान पर लोहा गरम कर दाग दो एवं फूले स्थानपर पपीतेका लवाब देनेसे फूले हुए स्थानसे पीव और खून बाहर निकल जानेसे एक दम आराम हो जाता है। चूना, तम्बाकूके पत्ते और सरसोंका तैल ये सब एकत्रित कर खूब मले और बादको उसे दांतोंके फूले स्थान पर लगाकर ऊपरसे रूईसे बांध दे। ऐसा होने पर शीघ्र ही दांतोंकी सूजन कम हो कर पीड़ामें शान्ति होगी।

फिटकिरीके पानीसे दांतोंका फूला हुआ स्थान धोकर उसपर कार्बोलिक लोशन लगानेसे दांतके घाव सम्बन्धीय समस्त रोग आराम हो जाते हैं।

सहकारी उपाय—सरसोंके तेलमें रुई भिगोकर दांतोंके

फूले स्थानपर लगाये, बादको गरम लोहेसे दाँतोंपर आहिस्ता आहिस्ता आघात देनेसे दाँतोंकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं।

दांतोंकी जड़ोंमें स्राव हो जाने पर अथवा दाँतोंके सड़ जाने पर उन्हें जड़ समेत उखड़वा देना चाहिये।

स्फोटक।

-:०—०:-

फोड़े या फुन्सियां।

यदि गायके शरीरमें किसो स्थान पर फोड़े या फुन्सियां हो जायें, तो एक केतलीमें नीमके पत्तोंको पानीके साथ पकाकर उसकी भाफसे नित्य २।३ बार सेकना चाहिये। विशेष लाभ होगा।

सैंजिने की छालका लेप और उसके काढ़ेसे धोनेपर भी फुंसियां और फोड़े आराम हो जाते हैं। गेहूंको पकाकर और पीस कर उसके लेप करनेसे भी फायदा होता है।

सैंजिने की जड़ की छालके काढ़ेमें हींग और सेंधा नमक डाल कर पिलानेसे फोड़ोंके रोगमें फायदा होता है।

बेलेडोनाको फोड़ोंपर लगा और उस पर पुल्टिस बांध देनेसे फोड़े पक जाते हैं। पक जानेपर उनमें पीव हो जाती है, उस समय चीरा देकर पीव निकाल देना चाहिये। अनन्तर नीमके पत्तोंके साथ गरम किये पानीसे घावको धो कर आइडोफार्म छिड़ककर कपड़ेसे बांध देना चाहिये। घाव अति शीघ्र आराम हो जायेंगे।

बेलेडोना IX की ५ बूँदे प्रातः काल और सायंकाल थोड़ेसे पानी में मिला कर पिलानी चाहिये।

आगमें जल जाना।

इस देशमें प्रायः सर्वत्र ग्वालोंके घरोंमें धुएंसे मच्छरोंको उड़ानेका रिवाज है। इस धुएंकी आगसे प्रायः ही अनेक गाय और बछड़ोंके शरीरमें आग लग जानेसे वे जल जाते हैं।

आगसे जले हुए स्थान पर ताजा गोबर लगा देने पर यंत्रणा कम हो जाती है। नारियल, तिल या सरसोंका तैल लगानेसे भी उपकार होता है। हंसके अंडेका पीला पीला भाग जले हुए स्थान पर लगानेसे यन्त्रणा शान्त हो जाती है। चौराईकी साग पीसकर लगानेसे भी पीड़ा शान्त हो जाती है।

नारियलका तेल और चूना एकत्र कर उसमें झाग पैदा करनी चाहिये और उन झागोंको दग्ध स्थान पर लगानेसे विशेष फायदा होता है। उसकी जलन शान्त हो जाती है।

तिल भस्म, जौ भस्म ये दोनों एकत्रकर लगानेसे ज्वाला दूर हो जाती है। तिलके तेलके साथ जौकी भस्म मिला कर उसका लेप करनेसे भी ज्वाला शान्त होती है।

आगसे जले स्थान पर शहद लगा उस पर जौका चूर्ण छिड़क देनेसे भी जलन शान्त हो जाती है। आलूको पीस कर लगानेसे ज्वाला दूर और घाव आराम हो जाते हैं।

भैंसके दूधका मखन और दूधके साथ तिल पीस कर उसका लेप करनेसे भी जलन दूर होती है।

जल-पीपलकी जटा अथवा छप्परके जीर्ण तिनकोंका चूर्ण जले हुए स्थानपर लगानेसे भी विशेष उपकार होता है।

किसी पशुके लोम, खुर, सींग और हड्डी जलाकर उसकी राखके साथ तेल मिलाकर लेप करनेसे घावोंपर फिर रोएं आने लगते हैं।

चर्म्म रोग।

:—०—:

अर्थात् खुजली खसरा और जलन।

Mange—यह तीन प्रकारका है। इसमें कभी रोयें गिरने लगते हैं, चमड़ेमें कीड़े पड़ जाते हैं। चर्म रोग पशुके मैले रहनेसेही पैदा होता है।

इसे शान्त करनेके लिये एक छटांक नमक और एक छटांक गन्धकका चूर्ण नित्य प्रति खानेके साथ देना चाहिये।

ओषधियां—नारियलका तैल १ छटांक, तार्पीनका तैल १ छटांक, कपूर आध छटांक, गन्धक चूर्ण एक छटांक, फिनाइल पाव छटांक ये सब चीजें मिला कर पीड़ित स्थानपर लगानी चाहिये। विशेष उपकार होगा।

सलफर IX की ८।८ बूंदे नित्य प्रातः काल और सायंकालके समय देनी चाहिये। इससे पशु अति शीघ्र आरोग्य प्राप्त करलेता है।

सावधानी—एक पीड़ित पशुको अन्य पीड़ित पशुके साथ नहीं रखना चाहिये। अथवा एकके काममें आया हुआ कपड़ा दूसरेके काममें न लाना चाहिये; क्योंकि यह अत्यन्त संक्रामक व्याधि है।

जोंक लग जाना।

जोंकें गायोंको बहुत दिक करती है। ये कभी गायोंके मल द्वार या मूत्र द्वार पर चिपट कर अथवा कभी कभी इन्हीं मार्गोंसे भीतर प्रवेशकर गायोंका खून चूसने लगती हैं। अतः उन्हें चिमटेसे निकाल कर क्षत स्थान पर चूना या तम्बाकूके पत्ते अथवा इन दोनोंको मिलाकर लगाना चाहिये। फलतः खून बन्द हो जाता है। यदि जोंक मुंह

वगैरहमें लग जाये तो तम्बाकूके पत्तेकी धूनी देनी चाहिये। उससे जोंक अपने आप गिर पड़ेगी।

पागुर बन्द होना।

यदि पशु पागुर करना बन्द कर दें, तब समझना चाहिये, उसे शीघ्र ही कोई रोग होने वाला है। लेकिन कौनसा रोग होगा, इसका, पता सावधानीके साथ सूक्ष्म रूपसे लगाना चाहिये। क्योंकि पागुर बन्द होना कोई रोग विशेष नहीं, वह किसी रोगकी पूर्व सूचना है। खैर जब तक किसी रोगका पता न चले, तब तक प्रातः काल और सायं-काल अदरख, सोंठ, और थोड़ासा नमक तथा थोड़ासा गन्धकका चूर्ण खिलाना चाहिये अथवा नित्य प्रति दो बार एकोनाइट IX की ८ बूँदें, या अजवायन, गोलमरिच और नमक पीस कर देनेसे फायदा होता है।

चोट लगना और घाव होना।

यदि चोट मामूली हो तो गोबरको घोलकर और गरमकर लगानेसे उपकार होता है। अधिक चोट लगने पर नौसादर और सोरा समान भाग ले जलमें घोल कर उसकी जल पट्टी या तर कपड़ा लगाना चाहिये। तकलीफ कम हो जायेगी। यदि किसी स्थानकी हड्डी उतर जाये या टूट जाय तो, पहले उसे यथास्थान बैठा देना चाहिये, अनन्तर चूना, हल्दी, लहसुन, अदरख और इमली तथा सोरा ये सब चीजें एकत्र पीस कर गरम कर लेप करना चाहिये। लेप पर आकके पत्ते आगपर सेक कर चोटके स्थानपर भले प्रकारसे बांध देना चाहिये। यदि मांस फट कर खून गिरता हो, तो बबूरकी गोंदका प्रलेप करके जलसे तर कपड़ा बांध देना चाहिये।

यदि खून बन्द न हो, तो आमड़ेके पत्ते पीस कर बांध देना चाहिये अथवा शियाल मूत्रीके पत्तोंका रस लगा बादको वे ही पत्ते कपड़ेसे कसकर बांध देने चाहिये।

जख्मी स्थानपर पीपलके जड़की छाल जलमें पकाकर उसका तरा देनेसे विशेष उपकार होता है ।

आर्निका IX की ८ बूंदे प्रातः काल पानीके साथ देकर और आर्निका लोशनसे घाव या चोट धोनेसे लाभ होता है ।

इस बात पर विशेष सर्तकता रखनी चाहिये, कि घावपर मक्खी बैठकर उसमें अण्डा न दे दे । मक्खियोंकी रोकके लिये आर्निका लोशन या फिनायलसे घावको रोज धो देना चाहिये ।

मोच आना Sprain

पांव, पांवके गट्टे या अन्य किसी जोड़में यदि मोच आ जाये, तो तत्काल स्प्लिण्ट या बैन्डेज कर देना चाहिये एवं उस स्थानको अर्निका लोशनसे भिगोये रख दिनमें ४ बार आर्निका IX की ६।६ बूँदे देनी चाहियें ।

मोच यदि साधारण लगी हो, तो चूना हल्दी गरम करके लगा बादको उस पर रेंड या आकके पत्ते पर पुराना घी चुपड़ उसे सेककर मोच पर लगा देना चाहिये । विशेष लाभ होगा ।

यदि इससे भी फायदा न हो तो बरुणके पत्ते या हाथा जोड़ीको काट कर पीड़ित स्थान पर लगाना चाहिये । इससे विशेष लाभ होगा ।

गोबरको गरम कर उसे लगानेसे अथवा गोबरको पानीके साथ औटाकर उसकी भाफ देनेसे भी फायदा होता है ।

हड्डीका जोड़ अलग हो जाना।

(Dislocation)

यदि ऐसा अवसर आपड़े, तो पहले अलग हुई हड्डी यथा स्थान लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यदि चेष्टा करके भी सफलता न मिले, तो किसी सुयोग्य डाक्टर द्वारा यह काम करना चाहिये। यदि कहीं डाक्टर न मिले तो, मोच लगनेके प्रकरणमें कही गयी, चिकित्सा करनी चाहिये। इन दोनों आपत्तियोंमें ही पशुको स्थिर करके रखना चाहिये।

यदि पशुको जलमें तैराया जाये, तो मोच और हड्डी अलग होना ये दोनों रोग आराम हो जा सकते हैं।

विष भक्षण।

पशु शरीरमें तीन प्रकारका विष प्रवेश कर सकता है। प्राणिज, खनिज और उद्भिज। इन विषोंको पशु खानेके साथ भी खा जा सकता है और कोई कोई दुष्ट व्यक्ति जानकर भी खिला सकते हैं।

लक्षण—विष खा लेने पर पशु सहसा ही पीड़ित हो जाता और कांपा करता है। पेटमें अत्यन्त वेदना होती है। सींग और पिछले पावोंसे पेटमें आघात करता है। बारम्बार पञ्जरको देखता और मुखसे झाग गिराता है। पानीके लिये छटपटाता रहता है। धनुष्टङ्कार नामक रोग जैसे सारे लक्षण देख पड़ने लगते हैं। पायखाना बराबर होता रहता है। खून भी निकलता है। पशु दोसे लेकर चार घण्टेके भीतर ही मृत्यु मुखमें जा पड़ता है।

चिकित्सा—नीचे लिखी विरेचक ओषधिसे दस्त कराकर विष बाहर निकाल देनेसे अथवा कै करा देनेसे विष पशुकी कुछ भी क्षति नहीं कर सकता।

एक सेर अलसीके तैल या जल पाईके तेलको प्रत्येक घण्टेमें पशुके गलेमें नली द्वारा ढालकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है।

पथ्य—थोड़ीसी उड़द पकाकर भूसीको बिचालीके साथ खिलानी उचित है। अन्य प्रकारकी घासें या सूखी भुसी आदि कठिन चीजें २ दिन तक न खिलानी चाहिये।

विरेचक औषधियां—(नम्बर १) गन्धक चूर्ण पाव छटांक, अलसीका तैल आध छटांक, भातका मांड आध सेर ये सब भले प्रकार से मिला कर सेवन कराना चाहिये।

(नम्बर) २ सोंठका चूर्ण १ तोला, अलसीका तैल १ पाव, गंधक चूर्ण आध पाव, भातका मांड आधसेर सब मिला कर सेवन कराना चाहिये।

(नम्बर ३) सर्वजयाकी जड़ १ छटांक ले कर कूटे और भातके मांडके साथ पकाले अनन्तर गरम रहते सेवन करावे।

विशेष ध्यान रखने योग्य बातें—जब तक पेटमें तकलीफ रहे, अथवा दस्त होने बन्द न हो जायें, तब तक पशुको पानी न पीने देना चाहिये। अत्यन्त प्यास होने पर अलसीका मांड या उड़द पकाकर उसके साथ भूँसीका मांड दिया जा सकता है। २ दिन बाबद कच्ची घास देनी चाहिये।

बहुत बार यहांके चमार या गोचर्मके व्यवसायी निर्दिष्ट समयमें निर्दिष्ट संख्यामें चर्म संग्रहकर देनेके लिये कुछ रुपया अग्रिम लेलेते हैं और चमारोंकी सहायता अथवा अन्य जातिके लोग भी गाय बैलोंको अनेक उपायोंसे विष खिलाकर मार दिया करते हैं और जब पशु मर जाता है तब उसका चमड़ा निकलते हैं। क्योंकि इस देशमें गो-रखनेवाले गो-चर्म नहीं बेचते। मरी हुई गायको गोहाड़में फेंकवा दिया करते हैं। चमार लोग वहांकी गायोंका ही चमड़ा एकत्रित कर बेचा करते हैं।

सांपका काटना ।

सांपके काट लेनेपर प्रायः वेही लक्षण प्रकट होते हैं, जो विष प्रयोग के समय। उस समय निःश्वास और प्रश्वास शीतल हो जाता है। पांव की नसें फूल उठती हैं। शरीर पर हाथ फेरनेसे बहुतसे रोएँ टूट पड़ते हैं।

एक कलमी शाककी डएठो पशुकी पूंछसे मुंह पर्य्यन्त नाप कर खिलानेसे फायदा होता है।

आमड़ेकी छाल ४।५ तोला खिलाने और दांरपाके पत्तोंका रस नाकमें चुआनेसे विष नष्ट हो जाता है। उक्त रसके नाकमें देनेसे गायको हिचकियाँ आती हैं। उससे विशेष फायदा होता है।

पागल कुत्ते या गीदड़का काटना ।

पागल कुत्ते या गीदड़के काटलेनेपर विष पशुके शरीरमें प्रवेश कर जाता है। उस समय गाय बैल व्याकुलताके साथ देखते और अत्यन्त चंचल हो उठते हैं। इस रोगमें यदि पशु जल देख कर डरे, तो चिकित्सा करना व्यर्थ होगा। इस अवस्थासे पहले ही चिकित्सा करनी चाहिये।

इस रोगमें नीचे लिखी ओषधियोंका व्यवहार कराना चाहिये।

फिटकरी २ तोला, घसघसकी जड़का चूर्ण आधा पाव, गरम पानी एक पाव इन सब चीजोंको एकत्र कर जब तक पशु आराम न हो, तब तक बारम्बार खिलाते रहना चाहिये।

वैद्यराज वृक्षकी छालका रस, आधा पाव, अदरखका रस आधापाव, साची चीनी आधापाव, इन सब चीजोंको एकत्रकर तीन बार खिलानेसे गाय बारम्बार वमन करती है और सहज हीमें आरोग्य लाभ कर लेती है।

धतूरेके पत्तोंका रस एक छटांक चीनीके साथ तीन दिन तक खिलानेसे यह विष नष्ट हो जाता है।

भेंड़के रोम केलेके साथ सात दिन तक खिलानेसे गीदड़ और कुत्तेका विष नष्ट हो जाता है।

काटनेके बाद ही काटा हुआ स्थान विनिगार और पानीसे धो सुखा कर फिर इस स्थान पर थोड़ासा म्यूरिएटिक ऐसिड की कितनी एक बूंदे देनेसे विष नष्ट हो जाता है। मदर टिञ्चर आफ बेलेडोनाको ८ बूंदें नित्यप्रति प्रातः काल सायंकालको सेवन करानी चाहिये।

सहकारी उपाय—गायको कितने एक दिन तक घी खिलानेसे भी यह विष नष्ट हो जाता है।

सावधानी—पागल कुत्ते या पागल गीदड़को काटी हुई गायका दूध नहीं पीना चाहिये।

चींचड़ियोंको नष्ट करनेवाली ओषधियां।

:—०—:

गायके शरीरमें जुएं या चीचड़ी हो जानेपर उन्हें बीन बीन कर फेंक देना चाहिये। गायको फिनाइल मिले पानीसे नहलाकर ब्रुशसे साफ करनेसे सारी जुएं और चीचड़ियां नष्ट हो जाती हैं। नीचे लिखी ओषधियोंका प्रयोग करनेसे भी फायदा होता है।

सरसोंका तेल १ पाव, गन्धक २ तोला, गर्ज्जन तैल १ तोला (यह तैल वैद्य और कविराजोंके पास मिलता है) तार्पीन १ तोला, कपूर १ तोला ये सब चीजें एकत्रकर मिलाकर पकावे और तुलीसे चीचड़ियों पर लगाये।

भुनगोंका काटना।

लक्षण—भुनगोंके काटनेसे पशु पूंछ उठाकर एकदम निस्तब्ध हो जाता है। सारे शरीरमें कांटे कांटेसे हो जाते हैं। मुंहसे लार गिरने लगती है। और बारम्बार कांखता है।

औषधि—पथरिया शाकके पत्ते, सरसोंका तेल १ छटांक खीढ़ा गुड़ आध छटांक, अजवायन १ तोला ये सब चीजें एक जगह कूट पीस कर सेवन करनी चाहिये।

सांपकी केचुली खाना।

सांपकी केचुली खानेसे पशुके शरीरमें चकत्ते हो जाते हैं, शरीर फूल उठता और रोए गिर जाते हैं।

औषधि—पाव छटांक बैगनकी डण्टी ढाई मिरिचोंके साथ पीस कर दहीके साथ खिलानी चाहिये।

घासका कीड़ा खाना।

यह कीडा प्रायः घासमें छिपा रहता है। इसके खाजानेसे कानोंकी जड़ें और गला फूल जाता है। हिलना डुलना बन्द हो जाता है और मुंहसे झाग गिरने लगती है।

औषधि—दोनों कानोंकी जड़ोंको थोड़ासा काट कर वहांसे थोड़ासा खून निकाल देना चाहिये।

आंखोंसे पानी गिरना।

फिटकिरीके पानीसे आंखोंको धो देनेसे पानी गिरना बन्द हो जाता

हैं। १ भाग फिटकरीमें १० भाग पानी मिला कर फिटकिरीका पानी तयार होता है।

आंखोंका फूल उठना ।

कारण—अत्यन्त ठण्डा और अत्यन्त गरमीमें अथवा किसी प्रकारके आघात लग जानेसे एवं किसी कीड़े या मच्छरके काट लेनेसे यह रोग हो जा सकता है।

लक्षण—आँखोंसे पानी गिरता है। आंखोंके पलक फूल उठते हैं। प्रकाश नहीं सहा जाता।

व्यवस्था—आंखोंको साफ कर फिटकरीके जलसे धो कर हलदीसे रंगा कपड़ा ढांक देना चाहिये।

औषधि—एकोनाइट IX की ८ बूंदे, बेलेडोनाकी आठ बूँदे प्रातः काल और सायं कालको देनी चाहिये।

कोष्टबद्ध या कब्ज ।

ढोरोंके कोष्ठ बद्ध या कब्ज़से विशेष गुरूतर पीड़ा एंव रोग उत्पन्न हो जा सकता है।

कारण---सूखे, कठिन और दुष्पाच्य द्रव्योंके खानेसे यह पीड़ा होती है।

चिकित्सा—केष्टर आयल द्वारा या अलसीके तैलसे जुलाब दे या आधा पाव इन्सफ्रूट साल्ट एक पाव जलके साथ दो बार खिला कर गरम भातके माड़ या भातके माड़के साथ १ सेर गरम पानी पिलाना चाहिये।

जब दस्त होने लगे, तो कच्ची घास या अन्य लघुपाकी द्रव्य देने चाहिये।

कृमि रोग।

सदासे मनुष्योंके जो तीन प्रकारके कीड़े पैदा होते हैं, गायोंमें भी यही तीन प्रकारके कीड़े होते देखे जाते हैं। छोटे और सफेद कृमि; गोल केंचुएकी भांति कृमि और फीतेकी भांति कृमि। सफेद और छोटे कृमियोंका वासस्थान गुदाके समीपवर्ती स्थान पर होता है। अन्य दोनों प्रकारके कीड़े पेटमें रहते हैं।

कारण—सड़े सड़े द्रव्योंके खाने, केला आदिका अधिक परिमाणमें आहार, सड़ा और बन्द स्थानका पानी पीना और संक्रामक रूपसे यह रोग पैदा होता है।

लक्षण—पशु दांतोंको कड़ कड़ाता, खांसता और प्रायः ही मट्टी खाता है। उसे खानेमें अरुचि होती है। पेटमें दर्द होता है। कान नीचे झूल जाते हैं। पेटमें व्यथा होती है। सफेद आंवकी भांति दस्त होता है। उसके साथ कृमि भी बाहर निकलती हैं। यह कृमि दस्तके साथ या खांसने पर मुख द्वारा भी निकलती हैं।

चिकित्सा—सफेद और छोटी कृमि हो जाने पर गुदामें नमकके पानीकी पिचकारी देनेसे कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

पलाशके बीज पीसकर मट्ठेके साथ खिलानेसे सारे कृमि नष्ट हो जाते हैं। खजूरके पत्तोंका काढ़ा बासी कर अगले दिन शहदके साथ खिलानेसे सारे कृमि नष्ट हो जाते हैं।

तितलाउ बीज (तितलौकीके बीये) १ छटांक मट्ठेके साथ पीस कर खिलानेसे सारे कृमि नष्ट हो जाते हैं। तोरईके बीज १० मट्ठेके साथ पीसकर खिलानेसे सारे कृमि बाहर निकल आते हैं। बराबर परिमाणमें बाय बिडंग, पलासके बीज, नीमके बीज, तुलसीके पत्तोंकी भस्म इन्दुरकर्णी (मूसाकानी) लताके रसमें मलकर खिलानेसे सारे कृमि मर जाते हैं।

स्पिरिट आफ टार्पेण्टाइन, २ दो ड्राम, स्पिरिट आफ केम्फर ४ बूंदें, केस्टर आयेल ३ आउन्स, फिनाइल आधा ड्राम, गन्धक १ आउन्स ये सब चीजें एकत्रित कर उत्तम रूपसे मिलाकर खिलानी चाहिये। यदि यह रोग बछड़ोंको हो, तो उक्त दवाएं आधी मात्रामें देनी चाहिये। उक्त दवायें खिलानेके बाद केस्टर आयेल या अन्य किसी उपाय द्वारा जुलाब देना चाहिये। ऐसा होने पर पेटके मृत कृमि बाहर निकल आयेंगे।

होमियो पैथिक—सिना २०० डाईल्यूशन और सल्फर १०० डाइल्यूशन ८ बूंदोंके हिसाबसे एक सप्ताह तक प्रातः काल और सायंकाल खिलानेसे कृमि दूर हो जाते हैं।

सहकारी उपाय—पशु और पशु-गृहको साफ रखना और जिन कारणोंसे रोगकी उत्पत्ति होती है, उन सब कारणोंसे बचना चाहिये।

पेटका भारी होना।

यह रोग अतिसाधारण है और खाना न पचनेसे होता है। यदि इस रोगकी प्रथमावस्थामें ही चिकित्सा न की जाये तो बादको पेटके रोग पैदा हो जा सकते हैं।

कचिया हल्दी, १ छटांक, अजवायन १ छटांक, ईखका गुड़ आधा पाव, सैंधा नमक पाव छटांक ये सब चीजें एकत्र कर खिलानेसे सहजहीमें यह रोग दूर हो जा सकता है।

पेटमें ऐंठन।

लक्षण—इस रोगमें पशु यातनासे अस्थिर रहता है। कभी कभी सो जाता और तत्क्षण जाग उठता है। अथवा कभी कभी सो जाता है, किन्तु उठनेका सामर्थ नहीं रहता। पांव फैला देता है और

छटपटाता रहता है। आंखोंसे पानी गिरता है मानों पशु मारे यन्त्रणाके रोता हो।

औषधि—(१) आँखोंमें चौपतिया सागके पत्तोंका रस देनेसे लाभ होता है। ईखका गुड़ १ छटांक, कदमके पत्तोंका रस आधा पाव ये दोनों चीजें एकत्र कर खिलानेसे पेटकी ऐंठन दूर हो जाती हैं। कोठे को खुलासा रखनेके लिये नारियलका पानी एक सेर गरम कर सेवन कराना चाहिये।

(२) कंटाई वृक्षकी जड़की छाल ३ तोला, सोमराज २ तोला, इन्द्रजौ २ तोला ये सब चीजें एकत्रित पीस कर ३ बार खिलानी चाहिये।

(३) यदि कृमि हो जानेसे पेटमें ऐंठन हों, तो वायविडंग ४ तोला कच्ची खजूरके पत्तोंके रसमें पीस कर सेवन करानेसे लाभ होता है।

अजीर्णके कारण पेटमें ऐंठन होता हो तो—

(४) अजवायन ४ तोला, चीनी ४ तोला, सैंधा नमक ४ तोला, बीट नमक २ तोला ये सब चीजें जभीरी नीबूके रसके साथ मिलाकर खिलानेसे फायदा होता है।

यूरोपीय चिकित्सा प्रणालीके अनुसार समस्त संक्रामक रोगोंमेंही इस रोगके वीजाणुओं द्वारा टीका दिया जाता है। उससे ये रोग पशु शरीरमें नहीं हो सकते।

———

संक्रामक रोग।

पशुओंको क्षय या यक्ष्मा रोग।

Tuberculosis

पशुओंका यह रोग अति भीषण संक्रामक और मारात्मक है। इस रोगको रोकनेके लिये कोई कार्य्य न किया जानेसे यह क्रमशः विस्तृत हो जाता है। इस रोगसे रोगी पशुका दूध या मांस खानेसे यह रोग मनुष्योंको भी हो जाता है। पीड़ित गायके मुंहसे निकला कफ, खांसी, श्वास और प्रश्वास इत्यादिसे भी अन्य गाय और मनुष्योंमें यह रोग संक्रामक हो जाता है। अपनी भीषण संक्रामताके कारण यह गोजातिसे मनुष्य जातिमें प्रविष्ट हो कर भीषण क्षय रोगका सूत्रपात कर देता है। यह बेसिलस (Bacillus) से उत्पन्न होता है। यह समस्त अङ्गोंमें ही पैदा हो सकता है, विशेष कर फेंफड़े और उसके समीपवर्त्ती स्थानोंमें। अक्सर इस रोगका प्रकोप मल द्वार और मूत्र द्वारके गह्वरोंमें भी देखा जाता है। जो पशु अपनी जीवितावस्थामें रोगहीन ठहराये जाते हैं, मृत्युके बाद विशेष परीक्षा द्वारा उनमें भी इस रोगके बीजाणु पाये जाते हैं। इस रोगके होने पर थोड़ा थोड़ा ज्वर, खांसी, क्रमशः दुर्बलता और गलेका फूल उठना आदि लक्षण दृष्टि गोचर होते हैं। इस देशमें विलायती दूध या काण्डेन्स्ड मिल्ककी आमदके स्त्रोतके साथ इस भीषण मारात्मक रोगसे यह देश प्लावित हो रहा है। हम आंख मूंदे बैठे हैं, अपने आप बिलायती दूध पीते और बच्चोंको भी पिलाते हैं। इस रोगका प्रतिकार चिकित्सा द्वारा नहीं होता, योरोपमें इस रोगके रोगी पशुको मारकर फैकने द्वारा क्षय रोगके विस्तारको रोकनेकी चेष्टाकी जाती है।

परिशिष्ट !

अग्नि पुराणके मतानुसार गोचिकित्सा ।

(२९२ वां अध्याय)

गायोंका महात्म कह दिया गया ; अब सब लोग उनकी चिकित्सा श्रवण करो। गायोंको शृङ्ग रोग हो जानेपर शृङ्ग वेर, खिरैटी और मांस कल्कके साथ पकाकर समाक्षिक तैल और सैंधें नमकके साथ देना चाहिये। सब प्रकारके कर्णशूल रोगोंमें, मजीठ, हींग और सैंधे नमकके साथ पका हुआ तैल तथा लहसुनके साथ देना चाहिये। बेलकी जड़, चिरचिरा, धाय और कुटज ये सब द्रव्य पीस कर दांतोंकी जड़में लगानेसे दन्तशूल नष्ट हो जाता है। समस्त दन्तशूल नाशक ओषधियोंको घीके साथ पका कर वही मुख-रोगोंमें दी जा सकती हैं। जिह्वाके रोगोंमें सैंधा नमक विशेष उपयोगी है। गलग्रह रोगमें शृङ्गवेर, दोनों प्रकारकी हल्दी और त्रिफला हितकर होता है। हृदय शूल, बस्ति शूल, बात और क्षय रोगमें गायोंको घी मिला त्रिफला देना लाभप्रद है। अतिसारमें दोनों प्रकारकी हलदी और पिठवन देनी चाहिये। सब प्रकारके कोष्ठके सम्बन्धी रोगोंमें, सब प्रकारके उदर सम्बन्धी रोगोमें शृङ्गवेर और भार्जी (बम्हनैटी) देनेसे रोग नाश होता है। टूटे हुए स्थानोंको जोड़नेके लिये नमक मिला प्रियगु देना चाहिये।

बात रोगमें एकत्र योगसे तैल, पका हुआ शहद, और मुलेठी, कफके रोगोंमें शहदके साथ त्रिकुट, और रक्त सम्बन्धी रोगोंमें पुष्ठक सहित रजः देना चाहिये। भग्न क्षत रोगमें, तैल घी और हरताल देनी चाहिये। उड़द, तिल गेहू गोदुग्ध और घृत इन सबकी खिचड़ी बनाकर नमक मिला कर देनेसे वछड़े पुष्ट होते हैं। विषाणा (जीवक) बलप्रच्छा और धूपक कुग्रहोंके बिनाशके लिये श्रेष्ठ है।

देवदारू, बच, मेषशृङ्गी, जटामांसी, गिलोय, हींग, सरसों, इन सबकी

धूप ग्रहादि दोष नाशक और गायोंके लिये हितकारी है। इस धूपसे २॥ घंटा प्रधूपित करनेसे और असगंध और सफेद तिल खिलानेसे गायें दूधवती होती हैं। जो बैल निरन्तर घरमें बंधा रहनेसे मत्त हो जाता है, पिणाक (अबरख) उसके लिये परम रसायन है।

वृहत्संहिताके मतमें

गायोंके लक्षण ।

(६१ वां अध्याय)

"पराशर मुनिने वृहद्द्रथको गायोंके जो लक्षण बताये थे, उन्हींमेंसे थोड़ेसे लक्षण संक्षेपके साथ तथा शास्त्रोंसे संग्रह कर मैं यहां कहता हूँ। मलयुक्त विशेष रुखी आँखें और चूहेके समान नेत्रोंवाला पशु श्रेष्ठ नहीं होता। गायकी नासिका विस्तृत, सींग प्रचलन शील, वर्ण गदहे की भांति, देह करटाके समान होनेसे अशुभप्रद होती है। जिस गायके सत्रह या चतुः संख्यक दांत हो, मुण्ड और मुख लम्बा, पीठ झुकी, ग्रीवा ह्रस्व और स्थूल, गति मध्य, खुरे फैले हों, वे गायें अशुभ होती हैं। जो गाये' कृष्ण पीत वर्णयुक्त जिह्वावाली, अति सूक्ष्म या अति स्थूल गुल्फाकी रखनेवाली, ऊंचे कंधेवाली, कृश शरीर, हीनांग वा दोहरे वदनकी नहीं होती, वे गायें अच्छी नहीं होती। (श्लोक १०४)

उक्त लक्षण युक्त बैल भी अच्छे नहीं होते और जिस बैलके अण्ड-कोष स्थूल और अत्यन्त लम्बे हों, पिछली दोनों टांगोंके समीपका पेट बहुतसी नसोंसे भरा हुआ हो। गण्डस्थल स्थूल, शिराव्याप्त हो एवं बैल तीन स्थानोंसे मूत्र त्याग दे, वह बैल भी शुभदायक नहीं है। बिलाव की भांति आंखोंवाला, कपिल वर्ण बैल और करट जातिका बैल ठीक नहीं होता। किन्तु ब्राह्मणोंके लिये लाभदायक है। ओठ, तालु और जिह्वा

ये काले रङ्गके होने पर एवं उस गाय बैलके स्वास अत्यधिक जाते हों, तो अपने समूहका नाश करनेवाले होते हैं। जिसकी विष्ठा, मणि और सींग, उदर श्वेत वर्ण और सारे शरीरका रंग कृष्ण सार मृगकी भांति, वह बैल घरमें पैदा होनेपर भी त्याज्य है। क्योंकि उसके होनेसे समूह नष्ट होगा। जिसका अङ्ग श्यामक पुष्प व्याप्त, खाकी और लाल हो, बिलावके जैसे नेत्र हों, वह बैल मुफ्तमें पाया हुआ होनेपर भी भी शुभदायक नहीं होता। जो बैल हल और गाड़ीमें जुतनेपर कीचड़से निकलनेके लिये पांव उठाता है, वह कृश ग्रात्र, कातर नयन, हीन बैल पीठ पर बोझा उठाने योग्य नहीं होते हैं। जिन ढोरोंके ओठ लाल रंगके, मृदु और संहत होते हैं। मुख विवर अप्रशस्त, जिह्वा और तालु ताम्रवर्ण, कर्ण छोटे और ऊँचे होते हैं। कोख सुन्दर और जंघा स्पष्ट होती है, जिनके खुर कुछेक ताम्रवर्णके, वक्षस्थल विपुल और विस्तृत होता है, कन्धा वृहद् होता है, शरीरकी त्वचा स्निग्ध होती है, रोम मनोहर एवं सींग ह्रस्व और ताम्रवर्णके होते हैं। जिनकी पूंछ खूब लम्बी—जमीनको स्पर्श करनेवाली, नेत्र रक्तआभा पूर्ण, एवं उच्छ्वास महान् स्कन्ध सिंहोंके जैसे पतले और अत्यन्त गल कम्बल होता है, उन बैलोंका नाम सुगल होता है, वे सर्व पूजित और आदरणीय होते हैं (श्लोक ५–१२) बैलकी जङ्घा बायीं ओर बामावर्त्त और दक्षिणमें दक्षिणावर्त्त होनेसे वह शुभ होता है। यदि उसकी टांगे मृगकी भांति हुईं, तो और भी मङ्गलप्रद होता है। जो बैल बैदूर्य्य, मल्लिका और बुलबुलोंकी भाँति दृष्टि सम्पन्न होता है, स्थूल नेत्र वर्मान्वित अस्फुटित, पर्ष्णियुक्त हों, वे सब बोझा उठानेमें यथेष्ट समर्थ होते हैं एवं प्रशस्त फलप्रद होते हैं। जो बैल सूंघनेके उद्देश्यसे छिद्रा नासिका युक्त, बिलावके मुखकी भाँति मुखवाला, दक्षिण भागमें श्वेत वर्णवाला, कमल, उत्पल और लाखके समान आभायुक्त लोमोंसे युक्त, सुन्दर पूंछवाला घोड़ेकी भाँति शीघ्रगामी, लम्बे सींगवाला, मेघकी भाँति उदर

सम्पन्न एवं जिसकी गोद संकुचित हो, उस बैलको बोझा ढोनेमें समर्थ, गतिमें अश्वके समान और प्रशस्त फलप्रद समझना चाहिये। जो बैल सफेद वर्णवाला, पिङ्गलवर्णकी आँखोंवाला, तांबेकी भाँति सींग और दृष्टि विशिष्ट बृहद् बदन सम्पन्न हो, उसे हँस नामक वृष कहते हैं, यह बैल शुभ फलदायक और विशेष रूपसे सुख बढ़ानेवाले हैं।

जिस बैलको बालभरी पूंछ भूमि स्पर्श करे मस्तकका ऊपरी हिस्सा ताम्र वर्ण हो, उस ताम्रवर्ण गुम्बज युक्त श्वेत-कृष्ण मिले वर्णवाले बैल अपने स्वामीको शीघ्र ही लक्ष्मी सम्पन्न कर देंगे। जो बैल एक श्वेत चरण विशिष्ट, अन्यान्य अङ्गोंमें यथेष्ट वर्णयुक्त हो, वह भी विशेष शुभ फलदाता है। यदि बैल सरासर शुभ भलदाता न हो, तो मिश्र फल-दाता अवश्य होता है। (इस विषयमें बृहद् संहिताका ६२ अध्याय देखना चाहिये।)

गायोंके इशारे।

जो गायें दीनभावसे अवस्थित होती हैं, वे राजाके लिये अमङ्गलका कारण होती हैं। यदि गायें अपने पैरसे भूमि खोदती हों, तो समझना चाहिये, कि रोग होगा, आँखोंमें आँसू भरे रहें, तो मृत्यु और चिल्लायें तो अपने मालिकको चोरोंका भय दिखाती है। यदि गाय रात्रिको अका-रण शब्द करे, तो वह भयका इशारा करती है। किन्तु यदि बैल ऐसा करे तो कल्याण ही होता है। यदि गायें मक्खी और कुत्तों द्वारा छेड़ी जायें, तो समझना चाहिये, कि शीघ्र वृष्टि होगी। नयी आयी हुई गाय यदि अन्य गायोंमें मिलकर रंभावे, तो समझना चाहिये, कि वह अपना झुण्ड बढ़ायेगी। गीले अङ्गवाली अथवा प्रसन्न लोम विशिष्ट गायें धन्य और उत्तम कही जाती हैं। भैंसोंको भी इसी प्रकार फल-दायक समझना चाहिये।

गो-धन पर सम्मतियाँ।

("कृषि सम्पद्" भाद्र और आश्विन बंगला सन् १३२२)

चालीस वर्षसे कुछ अधिक समय हुआ। मयमनसिंह सुसंगके स्वर्गीय राजा कमल कृष्णसिंह बहादुरने गो-पालन नामक एक ग्रंथ लिखा था। यही बंग-भाषामें गोपालन विषयक सबसे पहला ग्रन्थ हुआ। एवं ज्ञात होता है, कि वह बंगीय कृषि साहित्यका भी आदि ग्रंथ है। गोपालन, सिर्फ एक बार प्रकाशित हुआ था। किन्तु थोड़ेसे समयमें ही इसके खतम हो जानेपर इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। फलतः 'गोपालन' आजकल एक प्रकारसे दुष्प्राप्य ही है। इसके बाद सच्चिदा-नन्द अतुलकृष्णरायकी गो-जातिकी उन्नति विषयक गो चिकित्सा एवं प्रभासचन्द्र बन्द्योपाध्यायका 'गोजीवन' ये तीन पुस्तकें और प्रकाशित हुईं थीं, किन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है, कि उक्त तीनों पुस्तकें एक एक बार छपकर फिर प्रकाशित नहीं हुईं। गत सन् १९०८ ई० में श्रीयुत रघुनाथदास महाशयकी 'पशु-चिकित्सा' नामक पुस्तक पहलीवार प्रकाशित हुई। वर्त्तमान वर्षमें इस पुस्तकका तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है। 'पल्ली चित्र' नामक पत्रके सम्पादक श्रीयुक्त विधु भूषण महाशयका लिखा 'गोधन' नामक एक प्रबन्ध विगत १९१३ ई० में पहलीवार पल्ली चित्रमें प्रकाशित हुआ था, एवं इसके बाद वही ग्रंथाकारमें भी प्रकाशित हुआ। हाईकोर्टके वकील श्रीयुक्त प्रका-शचन्द्र सरकार बी० एल० महाशयका 'गोपाल बान्धव' नामक ग्रंथ इस गोधनके ही ज़मानेमें छपा था। वर्त्तमान वर्ष अर्थात् १९१५ ई० मेंके आरम्भमें आलोच्य पुस्तक 'गोधन' प्रकाशित हुआ है। बंगला भाषामें गोजातीय सम्बन्धी और भी कोई ग्रंथ प्रकाशित हुआ है या नहीं, यह

हमें नहीं मालूम। इसलिये हमारे मतानुसार, गणनामें प्रस्तुत ग्रंथ आठवें स्थानका अधिकारी होकर भी इसने सर्वोत्कृष्ट सम्पत्तियोंमें गोजाति सम्बन्धीय समस्त ग्रन्थोंमें सर्वोच्च स्थान पाया है। एवं यह वास्तवमें अतुलनीय हुआ है। हम बड़े आग्रहसे इस ग्रन्थको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। इसका आदिसे अन्त तक समस्त भाग ज्ञातव्य वृत्तान्तोंसे भरा हुआ है। गोसम्बन्धीय अवश्य ज्ञातव्य सारे तथ्य अर्थात् गोपालन और गोचिकित्सा विषयक एक उच्चश्रेणीके ग्रंथका हमारे यहां विशेष अभाव था ; उसे गिरीश बाबूके इस गोधनने बहुतसे अन्शोंमें पूरा कर दिया। यह बात अकुण्ठित चित्तसे ही कही जा सकती है।

गोजातिके सम्बन्धमें वंगभाषामें ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर और वृहद्ग्रन्थ इससे पहले कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। आलोच्य पुस्तक सर्वांशमें ही पढ़ने योग्य है। पढ़नेसे प्रसन्नता देनेवाला, विषयोंके लिहाज़से शिक्षा देनेवाला है। इसकी भाषा सरल और मधुर है, यह हम हृदयसे स्वीकार करते हैं। गोधन, एक तरफ जिस तरह भाषा सम्पत्ति और विषयमें गौरवान्वित है, दूसरी तरफ संग्रह किये गये तत्वोंमें भी यह वास्तवमें महिमामय है। इस ग्रंथको रचकर गिरीश बाबूने, यह मुक्त कण्ठसे कहा जा सकता है, कि कृषि साहित्यका एक भाग अलंकृत किया है, जातीय साहित्यका वैभव बढ़ाया है।

गिरीश बाबू बङ्गला-हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेज़ी भाषासे सुशिक्षित हैं एवं कानून-विषयके भी पण्डित हैं: यही अबतक हमारी धारणा थी ; किन्तु गोधनको रचकर उन्होंने अपनी जिस बहुदर्शिता, श्रम शीलता, निपुणता, अनुसन्धान-प्रियता एवं गोपालन और गोचिकित्सा शिक्षाके उपयोगी विषय-विन्यासकी परिपाटी और पाण्डित्यका जो परिचय दिया है, वह वास्तवमें प्रशंसा करने योग्य है।

विषयोंको सूत्रवद्ध प्रणालीसे विन्यस्तकर ग्रंथको यथेष्ठ सुख पाठ्य

किया गया है। आलोच्य विषय खूब सरल भाषामें लिखे गये हैं एवं प्रत्येक विषय ही ज्ञातव्य बातोंसे पूरा पढ़ने योग्य हैं।

बङ्गला भाषामें गो-सम्बन्धी जो चार पांच ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, उनमेंसे कोई भी सचित्र नहीं हैं, किन्तु गोधनमें कितने एक चित्र भी दिये गये हैं, इनसे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है एवं आलोच्य विषय और भी साफ़ हो गये हैं। ग्रंथके प्रारम्भमें ही गोदोहन सम्बन्धी एक तिरंगा हाफ़टोन चित्र दिया गया है। चित्र सहृदय दर्शकोंकी दृष्टि और हृदय आकर्षण करने योग्य तथा ग्रंथकारकी आशा और आंकाक्षाका भले प्रकारसे परिचायक है। चित्रमें चित्रका भाव विशेष रूपसे परिस्फुट हुआ है।

बहुत दिनोंकी बात नहीं है, ; आधी शताब्दिसे पहले भी हिन्दू मात्रका ही जब गोपालन और गोसेवा एक विशेष व्रत था। उस समय हिन्दुओंके घरमें कैसी हृष्ट-पुष्ट दुग्धवती गायें, कैसे मोटे ताजे देहवाले बैल तथा कैसे सुस्थ और सबल मनुष्य वर्त्तमान थे।। इस बातकी सत्यता गोधनके उक्त आरम्भिक चित्रको देखकर ही सिद्ध हो सकती है। गोदोहन हिन्दू गृहका एक अविकल चित्र है। अतीत-कालका चित्र दिखाकर, ग्रंथकारने वर्त्तमानके हिन्दू गृह कैसे होने चाहिये, उसका भी आभास दिया है। हिन्दू गृहका एकांश यदि इस चित्रके अनुसार हो जाये, तो फिर भी प्रत्येक घरमें लक्ष्मीदेवीका आविर्भाव हो सकता है, फिर धन-धान्य, स्वास्थ्य और शक्ति लौट आ सकती है, एवं फिर हिन्दू सन्तान सच्चा मनुष्यत्व प्राप्त कर सकेंगे। इसके अलावा हिन्दू सन्तान सदा-सर्वदा, मिष्टान्न, खीर, दूध, मलाई, माखन, दही, घी और दूधसे बनने वाली और और भी अनेक सामग्रियोंसे अपने परिवारके लोगोंको परम तृप्तिके साथ अन्न भोजन दे सकती है। कंकण खँडुए आदि हाथोंमें पहनकर उस समय गायोंके लिये गौंत काटना या गाय दूहना अच्छा नहीं लगेगा। केवल

चूड़ियोंसे शोभित हाथोंसे गोसेवा करते देखना मा यशोदाकी भाँति, बड़ा सुन्दर मालूम होता है। इसीसे गोदोहनका चित्र वैसा बनाया गया है। सारांश, कि चित्रका उद्देश्य सर्वांशमें सार्थक हुआ है।

गोधनमें एक रंगे चित्र प्रायः २२ हैं। इन चित्रोंमें भिन्न भिन्न देशोंके गाय-बैलोंकी आकृतियां दिखायी गयी हैं। भारतमें हिन्दुओंकी अन्यान्य जातियोंसे बङ्गाली ही सबसे अधिक गो-सेवासे विमुख हैं। इसीसे बङ्गालमें गायोंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। अन्यान्य समस्त स्थानोंकी गायोंके साथ बङ्गाली गायोंके चित्रोंकी तुलना करनेपर हमारी बातकी सत्यता सहज हीमें पायी जा सकती है। बङ्गाली बच्चोंके भाग्यका दूध-भात खाना मानों संसारसे उठ गया, इसीसे बाबा परदादोंके बच्चोंका स्वास्थ्य बल आजकलके शरीरोंमें नहीं पाया जाता, स्वास्थ्य हानि होनेसे प्रायः समस्त देशोंमें रौलासा मच गया है, किन्तु स्वास्थ्य वृद्धिके लिये कार्य्य रूपमें कहीं भी कुछ होता नहीं देख पड़ता। बालकोंको खाद्य अथवा पुष्टिकारक तथा जिह्वाको तृप्ति देनेवाले खाद्योंकी अवस्थाका सवाल मनमें उठते ही हमारा ध्यान सबसे पहले गोजातिकी उपकारिताकी ओर जाता है। किन्तु ध्यान जानेपर भी गोपालनके प्रति इस देशवासियोंकी दृष्टि वैसी ही उदासीन बनी हुई है। हमलोग मसूरकी दालके पानीमें कच्ची मिरचें मिलाकर अपना शरीर फुलायेंगे और तिस पर भी कहते हैं कि हम शक्तिशाली बनें। किन्तु जबतक बङ्गाली गायोंके अस्थि कंकाल और चर्ममें मांसका समावेश न होगा, तबतक असंख्य प्रकारकी धातुपुष्ट करनेवाली औषधियां सेवन करने पर भी हम झूठे अकड़नेवाले सिपाही बने रहेंगे। इस देशकी अमित दुग्धा गायोंकी सन्तानोंकी अवस्था कितनी शोचनीय है, बङ्गालकी गायोंके चित्र ही उसके प्रमाण हैं।

गोधनकी छपाई और बाहरी आवरण अति सुन्दर हुआ है। ग्रंथका सप्तमखण्ड और परिशिष्ट अर्थात् गोचिकित्साका विषय विस्तृत भावसे

लिखा गया है। लोग अकसर कहा करते हैं, कि जिसके जहां पीड़ा होती है उसका हाथ उसी स्थान पर रहता है। गोधनमें गोचिकित्सावाला प्रकरण पढ़ते समय यही उक्ति बारम्बार हमें याद आती थी, लेखकको एकबार, चिकित्सकका अभाव होनेके कारण अपनी अति प्रिय गायकी अकाल मृत्युसे बड़ा हृदयभेदी कष्ट सहना पड़ा था एवं गोचिकित्सकका अभाव दूर करनेकी बलवती इच्छा हृदयमें पुष्टकर उन्होंने गोधनमें गोचिकित्सा लिखी। जहांपर व्यथा थी, वहींपर हाथ पड़नेसे वे जैसा कृतित्व दिखा सके, वह वास्तवमें उल्लेख योग्य है। विशेषकर प्रत्येक रोगकी चिकित्सामें होमियो पैथिक औषधियोंका समावेश कर देनेसे ग्रंथका गौरव और भी बढ़ गया। इससे पहले गोचिकित्सामें, और किसी भी लेखकने होमियोपैथिक विषय सन्निविष्ट नहीं किया था। इसलिये आलोच्यकी यह अपूर्व नूतनता और विशेषता है।

गो-धन शिक्षित मनुष्यको अवश्य पढ़ना चाहिये। हमलोग इसे ग्रन्थके खूब प्रचारकी आशा करते हैं।

जो लोग अपने यहां गायोंको पालते हैं, वे इस गोधनको पढ़कर विशेष उपकृत और हृदयमें शान्ति लाभ करेंगे। और जो धनंच गोधनं धान्यं स्वर्णादयो वृथैवहि इस उक्तिको हृदयमें रखे गोपालन करनेकी इच्छा रखते हैं, वे भी इसे पढ़कर गो-पालन और गो-चिकित्सा सम्बन्धमें यथेष्ट शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। ग्रन्थ, सम्प्रदायस्थ पण्डित और अपण्डित दोनों प्रकारके लोगोंके लिये ही एक दुर्लभ सामग्रीके रूपमें आदर पाने योग्य है। ग्रन्थकारने अपने इस ग्रन्थको समस्त श्रेणियोंके पाठकोंके लिये ही सुख बोध्य बनानेमें कोई त्रुटि नहीं की है। फलतः साधारण अशिक्षित व्यक्ति भी इसे अनायास और बिना दूसरेकी सहायताके अच्छी तरहसे समझ लेंगे एवं इसका प्रत्येक परिच्छेद और प्रत्येक पृष्ठ ही उनका उपकार करेगा।

इस ग्रंथके बहुतसे उपादान प्रधानतः कितनी एक अङ्गरेजी पुस्तकों

चूड़ियोंसे शोभित हाथोंसे गोसेवा करते देखना मा यशोदाकी भांति, बड़ा सुन्दर मालूम होता है। इसीसे गोदोहनका चित्र वैसा बनाया गया है। सारांश, कि चित्रका उद्देश्य सर्वांशमें सार्थक हुआ है।

गोधनमें एक रंगे चित्र प्रायः २२ हैं। इन चित्रोंमें भिन्न भिन्न देशोंके गाय-बैलोंकी आकृतियां दिखायी गयी हैं। भारतमें हिन्दुओंकी अन्यान्य जातियोंसे बङ्गाली ही सबसे अधिक गो-सेवासे विमुख हैं। इसीसे बङ्गालमें गायोंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। अन्यान्य समस्त स्थानोंकी गायोंके साथ बङ्गाली गायोंके चित्रोंकी तुलना करनेपर हमारी बातकी सत्यता सहज हीमें पायी जा सकती है। बङ्गाली बच्चोंके भाग्यका दूध-भात खाना मानों संसारसे उठ गया, इसीसे बाबा परदादोंके बच्चोंका स्वास्थ्य बल आजकलके शरीरोंमें नहीं पाया जाता, स्वास्थ्य हानि होनेसे प्रायः समस्त देशोंमें रौलासा मच गया है, किन्तु स्वास्थ्य वृद्धिके लिये कार्य्य रूपमें कहीं भी कुछ होता नहीं देख पड़ता। बालकोंको खाद्य अथवा पुष्टिकारक तथा जिह्वाको तृप्ति देनेवाले खाद्योंकी अवस्थाका सवाल मनमें उठते ही हमारा ध्यान सबसे पहले गोजातिकी उपकारिताकी ओर जाता है। किन्तु ध्यान जानेपर भी गोपालनके प्रति इस देशवासियोंकी दृष्टि वैसी ही उदासीन बनी हुई है। हमलोग मसूरकी दालके पानीमें कच्ची मिरचें मिलाकर अपना शरीर फुलायेंगे और तिस पर भी कहते हैं कि हम शक्तिशाली बनें। किन्तु जबतक बङ्गाली गायोंके अस्थि कंकाल और चर्ममें मांसका समावेश न होगा, तबतक असंख्य प्रकारकी धातुपुष्ट करनेवाली औषधियां सेवन करने पर भी हम झूठे अकड़नेवाले सिपाही बने रहेंगे। इस देशकी अमित दुग्धा गायोंकी सन्तानोंकी अवस्था कितनी शोचनीय है, बङ्गालकी गायोंके चित्र ही उसके प्रमाण हैं।

गोधनकी छपाई और बाहरी आवरण अति सुन्दर हुआ है। ग्रंथका सप्तमखण्ड और परिशिष्ट अर्थात् गोचिकित्साका विषय विस्तृत भावसे

लिखा गया है। लोग अकसर कहा करते हैं, कि जिसके जहां पीड़ा होती है उसका हाथ उसी स्थान पर रहता है। गोधनमें गोचिकित्सावाला प्रकरण पढ़ते समय यही उक्ति बारम्बार हमें याद आती थी, लेखकको एकबार, चिकित्सकका अभाव होनेके कारण अपनी अति प्रिय गायकी अकाल मृत्युसे बड़ा हृदयभेदी कष्ट सहना पड़ा था एवं गोचिकित्सकका अभाव दूर करनेकी बलवती इच्छा हृदयमें पुष्टकर उन्होंने गोधनमें गोचिकित्सा लिखी। जहांपर व्यथा थी, वहींपर हाथ पड़नेसे वे जैसा कृतित्व दिखा सके, वह वास्तवमें उल्लेख योग्य हैं। विशेषकर प्रत्येक रोगकी चिकित्सामें होमियो पैथिक औषधियोंका समावेश कर देनेसे ग्रंथका गौरव और भी बढ़ गया। इससे पहले गोचिकित्सामें, और किसी भी लेखकने होमियोपैथिक विषय सन्निविष्ट नहीं किया था। इसलिये आलोच्यकी यह अपूर्व नूतनता और विशेषता है।

गो-धन शिक्षित मनुष्यको अवश्य पढ़ना चाहिये। हमलोग इसे ग्रन्थके खूब प्रचारकी आशा करते हैं।

जो लोग अपने यहां गायोंको पालते हैं, वे इस गोधनको पढ़कर विशेष उपकृत और हृदयमें शान्ति लाभ करेंगे। और जो धनंच गोधनं धान्यं स्वर्णादयो वृथैवहि इस उक्तिको हृदयमें रखे गोपालन करनेकी इच्छा रखते हैं, वे भी इसे पढ़कर गो-पालन और गो-चिकित्सा सम्बन्धमें यथेष्ट शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। ग्रन्थ, सम्प्रदायस्थ पण्डित और अपण्डित दोनों प्रकारके लोगोंके लिये ही एक दुर्लभ सामग्रीके रूपमें आदर पाने योग्य हैं। ग्रन्थकारने अपने इस ग्रन्थको समस्त श्रेणियोंके पाठकोंके लिये ही सुख बोध्य बनानेमें कोई त्रुटि नहीं की है। फलतः साधारण अशिक्षित व्यक्ति भी इसे अनायास और बिना दूसरेकी सहायताके अच्छी तरहसे समझ लेंगे एवँ इसका प्रत्येक परिच्छेद और प्रत्येक पृष्ठ ही उनका उपकार करेगा।

इस ग्रंथके बहुतसे उपादान प्रधानतः कितनी एक अङ्ग्रेजी पुस्तकों

और संस्कृतके पुराणादिके अवलम्बनसे ही तयार किये गये हैं। ग्रन्स-कारने अनेक ग्रन्थोंसे नाना तथ्योंका संग्रहकर जैसा कृतित्व दिखाया, वह वास्तवमें निःसन्देह प्रशंसाके योग्य है,।

इस प्रसंगमें हमें बहुत कुछ लिखना था, किन्तु इस पत्रके कलेवरमें उतना स्थान नहीं है,। उपसंहारमें हम केवल इतना ही कहते हैं, कि समालोच्य पुस्तकको पढ़कर हमने काफ़ी प्रसन्नता प्राप्त की है और विशेष उपकृत हुए हैं। गोधन अपने पाठकोंके घर घरमें तिथि पत्र और डाइरियोंकी भांति नित्य आवश्यकीय समझा जाकर आदर पाये, एवं इस देशकी ध्वंस प्राय गोजातिकी रक्षा करे और पालनमें सहायता करे, यही हमारी आन्तरिक कामना है।

गोधन जैसी अतुल्य पुस्तकने क्यों इस देशके विद्यालयोंमें उपहार या प्राइज लिस्टमें स्थान नहीं पाया, यह बात हमारी क्षुद्र बुद्धिसे बाहर हैं। यदि स्कूलोंके कर्णधार कमसे कम एक प्रति भी खरीदकर एक छात्रको उपहार स्वरूपदान दें, तो भी प्रत्यक्ष भावसे कृषि साहित्य और परोक्ष भावसे इस देशके निर्धन और निरक्षर ग्वालोंका थोड़ा बहुत उपकार हो सकता है।

गोधन जैसे ग्रंथ-रत्नकी रचनाकर गिरीश बाबूने मयमनसिंहका मुखोज्ज्वल किया है। मैमनसिंहकी धनी-सन्तान ऐसे साधुचरण काव्य सुपण्डित व्यक्तिकी संवर्द्धनाके लिये क्यों नहीं अग्रसर होते? मैमनसिंहके ज़मीदारोंमेंसे यदि प्रत्येक व्यक्ति कमसे कम, गोधनकी सौ-सौ प्रतियां खरीदकर अपनी अपनी ज़मीदारीके ग्रामोंके पढ़े लिखे किसानोंमें बिना मूल्य वितरण करें, तो वास्तवमें यह एक उचित काम कहा जायेगा। जमीदारोंका धन भी ऐसे अनुष्ठानोंमें देशके कल्याण साधनमें सार्थकता लाभ करेगा।

भारतीय हिन्दू-समाज विशेषकर मैमनसिंहके निवासी यदि गिरीश बाबूको कृतज्ञतादानमें कुण्ठित हुए, तो हम समझेंगे, कि

कृतज्ञता और स्वदेशवात्सल्य ये दोनों शब्द ही इस देशके लिये अर्थ शून्य हैं।

इस छोटीसी आलोचनामें ग्रंथके समस्त विषयोंकी चर्चा करना साध्य नहीं है। गोजातिकी उपयोगिताके सम्बन्धमें गोधनमें जो कुछ लिखा है, उसे हम इस पत्रमें उद्धृत करते हैं और सच तो यह है, कि जो भी पत्र सम्पादक इस ग्रंथको पढ़ेगा, वह इस ग्रथके किसी न किसी परिच्छेदको उद्धृत करनेका प्रलोभन न रोक सकेगा।

(भारतवर्षकी सम्मति; श्रावण १३२२ बङ्गला सन्)

गोधन, वास्तवमें परम धन है। इस गोधन रक्षाके लिये, वर्त्तमान समयमें हमारे देशके जो लोग समुचित चेष्टा करेंगे, वे केवल प्रशंसाभाजन ही नहीं वरन् हमारे नमस्करणीय हैं। गोजातिके सम्बन्धमें ऐसी सर्वाङ्ग सुन्दर पुस्तक बङ्गभाषामें अबतक प्रकाशित नहीं हुई। गोधन बङ्ग साहित्य भाण्डारमें एक अमूल्य रत्न समझा जाकर सम्मानित होना चाहिये। इस पुस्तकमें ग्रंथकारके अध्यवसायका यथेष्ट परिचय पाया जाता है! इसमें गोचिकित्सा विषयक अध्याय बड़े कामका है। गोजातिकी वर्त्तमान अवनतिके दिनोंमें देशके समस्त व्यक्तियोंको इस पुस्तकमें निर्दिष्ट व्यवस्थाके अनुसार काम करनेके लिये, हम विशेष अनुरोध करते हैं।

(मानसीकी सम्मति ; भाद्र सन् १३२२ बङ्गला)

इस उपन्यास प्लावित देशमें चक्रवर्त्ती महाशयने गोधनको प्रकाशित कर युगान्तर ला दिया है। पुस्तक गिरीश बाबूके अनेक अनुसन्धान, गवेषणा और अध्यवसायका फल है। गोजातिके सम्बन्धमें इसमें प्रायः समस्त ज्ञातव्य बातोंका समावेश कर दिया गया है। पुस्तकको आद्योपान्त पढ़कर चक्रवर्त्ती महाशयकी मौलिकता और ग्रंथकी विशेष उपकारिता पायी जाती है।

हमारा विश्वास है, ग्राम कसबोंके स्कूलोंमे, जहां कृषक सन्तान अपने

प्रथम जीवनमें कुछ विद्या पढ़ लिया करते हैं, उनमें यह पुस्तक पाठ्य पुस्तकोंकी सूचीमें चुनी जानी चाहिये।

चक्रवर्त्ती महाशयने जैसे काम लायक विषय इस पुस्तकमें सन्नि-विष्ट किये हैं, उनमेंसे विशेष विशेष परिच्छेद, विशेष विशेष कक्षाओंके लिये निर्द्धारित करना अति सहज है।

हम स्कूल विभागके निरीक्षक और प्रबन्धकोंकी दृष्टि इस ओर आकर्षित करते हैं। साथ ही यही पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके यहां रखी जानी चाहिये। इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि गृहस्थोंकी कुल वधुएँ तक इस ग्रंथको पढ़कर विशेष उपकृत होंगी। पुस्तककी उपकारि-ताके हिसाबसे मूल्य बहुत ही थोड़ा है। आशा है इस ग्रंथका सर्वत्र यथेष्ट आदर होगा।

(प्रवाहिनीकी सम्मति ज्येष्ठ १३२२ बङ्गला सन्)

लेखक 'निवेदनमें' लिखते हैं, कि मैंने देखा, देशमें गोचिकित्सक नहीं हैं, गो-चिकित्सा विषयक ग्रन्थ भी नहीं हैं। ऐसी कुचिकित्सा और अचिकित्सासे देशमें हज़ारों गायें प्राण त्याग करती हैं। देशके इस अभावको दूर करनेके लिये ही उद्यम स्वरूप यह ग्रंथ लिखा गया है।'

पुस्तकको आद्योपान्त पढ़कर हम समझ गये, कि ग्रन्थकारका श्रम सफल हुआ है। उपक्रमणिकामें, गोहितेच्छुकोंके जानने योग्य बहुतसी बातें हैं। दूसरे खण्डमें गोजातीय पशुओंकी श्रेणीके विभाग तृतीय खण्ड "बैल आदिका विशेष विवरण" चौथे खण्डमें 'गोपालन' पांचवें खण्डमें 'गव्य' छठे खण्डमें 'गव्यत्रयी' और सातवें खण्डमें 'गोजातिके रोग और चिकित्सा आदि सर्व साधारणके जानने योग्य बहुतसे विष-योंका समावेश किया गया है।

लेखककी भाषा अच्छी है। सहज और सरल लिखन शैलीके गुणसे पुस्तकको अल्प शिक्षित बालक भी अच्छी तरहसे समझ लेंगे। बङ्ग भाषाके प्रायः समस्त विभाग लेखकके देखे पड़े हैं, इस बातका

प्रमाण उनकी यह पुस्तक ही हैं। हमारा एक बड़ा भारी अभाव लेखकने पूर्ण कर दिया, इसलिये हम उन्हें अपना आन्तरिक धन्यवाद जताते हैं। आशा है, इस पुस्तकके एक सालमें प्रायः तोन संस्करण हो जायेंगे। क्योंकि यह हीरेका टुकड़ा है।

(दर्शककी सम्मति ; ज्येष्ठ सन् १३२२ बङ्गला)

उपन्यास बहुल बङ्ग साहित्यमें गवादि पशु विषयक पुस्तकोंकी संख्या नितान्त बिरल है। इससे पहले जो इस विषयमें दो चार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे विषयको प्रयोजनीयताके लिहाजसे यथेष्ट नहीं है। कृषक कुलके परम बन्धु, हिन्दू धर्म-कर्मके नित्य सहचर, भारतवासियोंके स्वास्थ्य सुखके प्रधानतम अवलम्बन, गोधनकी भांति महोपकारी जीव संसारमें दूसरा कोई जीव नहीं देखा जाता। ऐसी गोजातिके इतिवृत्त युक्त पुस्तकों द्वारा बहुलतासे बङ्ग साहित्यका कलेवर बढ़ना अतीव वाञ्छनीय है। गृहस्थ और दुग्ध व्यवसायियोंके लिये नित्य प्रयोजनीय है ऐसी सारगर्भ पुस्तकोंको संख्या जितनी बढ़े उतना ही देशका मंगल होगा। इसी लिये गोधनको प्रकाशित करनेके उपलक्ष्यमें हम गिरीश बाबूका अभिनन्दन करते हैं। पुस्तकको पढ़नेसे पहले; उसकी सुन्दर जिल्द, मनोहर छपाई और बढ़िया चित्र देखकर ही चित्त चमत्कृत हो उठता है ऐसी पुस्तकोंको पढ़ना आरम्भ करते ही लेखकके स्वभावगुण वैचित्र और गम्भीर गवेषणामय प्राणीतत्व विषयक पुस्तक, नीरस वैज्ञानिक शब्दोंसे अत्यधिक पूर्ण होनेसे, दुर्बोधतावश साधारण पाठकोंका मन आकर्षित करनेमें समर्थ नहीं होतीं। किन्तु गिरीश बाबूके गोधनमें यह दोष नहीं है। भाषाकी सरलता और लेखकी रचना नैपुण्यसे, दुरुह विषय भी यथेष्ट सुख बोध्य हो गये हैं। लेखकने, ग्रन्थको सर्वांग सुन्दर बनानेके लिये यथेष्ट परिश्रम स्वीकार कर एतद्देशीय और विदेशीय, प्राचीन और आधुनिक साहित्य भाण्डारसे गोविद्या विषयक रत्नोंको परम यत्नसे चुना है। इस पुस्तकमें गोजा-

तिको महोपकारितासे आरम्भकर गायोंकी सेवा, रोग निर्णय, चिकित्सा आदि समस्त अवश्य ज्ञातव्य विषय विस्तारके साथ लिखे गये हैं। गायोंका निवास स्थान, विचरण स्थान, खाद्य- अखाद्य, स्नान व्यायाम निद्रा, गर्भ धारण, वत्स पालन. मृत वत्सा, दोष निवारण, दुग्ध दोहन, दुग्ध वृद्धिकरण, आदि समस्त प्रयोजनीय विषयोंका उल्लेख और क्रमशः पुङ्खानुपुंज आलोचना रहनेसे गोधन, व्यवसायी और अव्यवसायी गोपालक मात्रके लिये ही विशेष लाभप्रद सिद्ध होगा। ग्रन्थकारने दही दुग्धादि गव्य द्रव्योंकी आलोचना करके ही ग्रंथको समाप्ति नहीं कर दी, वरन् उन्होंने गोजातिके मूत्र, पुरीष और मृत गायका चमड़ा, सींग, हड्डी आदि मनुष्योंके किन किन उपकारोंमें काम आ सकती है और किस प्रकारसे उन्हें व्यवहारोपयोगी बनाया जाता है, यहां तक लिख दिया है। इस ग्रन्थमें भारतवर्ष और यूरोपीय अनेक स्थानोंकी नाना जातीय गायों और बैलोंकी अवस्था तथा विशेषता, चित्रोंकी सहायतासे वर्णित होनेसे, यह विशेष हृदय ग्राहीत हो गया है। गिरीश बाबूने प्रमाण और युक्ति द्वारा भारतमें गोजातिकी अवनतिके कारण और उनके दूर करनेके जो उपाय दिखाये हैं, उन्हें देशके प्रत्येक हितेच्छुकको पढ़ना, सोचना और देखना चाहिये। आज कल भारतमें, विशेषकर बङ्ग देशमें गोजातिकी जैसी हीनावस्था है, और दिन दिन अवनतिकी मात्रा बढ़ती जाती है, उससे देशमें गोधन जैसे महोपकारी ग्रन्थका बहुल प्रचार होना नितान्त आवश्यक है। किन्तु दुःखका विषय है, कि आजकल देशकी जैसी दीन दशा है, और प्राणीतत्व विषयक पुस्तकोंको पढ़नेमें सर्व साधारणमें जैसी शिथिलता है, उसे देखते कितने आदमी हैं, जो दो रुपया खर्चकर गोधन खरीद कर पढ़ेंगे?

अन्तमें कहना यह है, कि गिरीश बाबूने, बहुतसे दायित्व पूर्ण विषयोंमें लगे रहकर भी ऐसी महत्व पूर्ण पुस्तककी रचनाकी, इससे

आपकी दी हुई गो-धन नामक पुस्तकको सादर ग्रहण किया, एवं धन्यवादके साथ उसकी प्राप्ति स्वीकार करता हूं।

आपने बहुत कुछ यत्न और अनुसन्धान द्वारा गो-जातिके सम्बन्धमें समस्त तत्वोंका संग्रह किया है एवं गो-रक्षा, गो चिकित्सा और गव्य द्रव्य तैयार करने आदि कामोंमें जो जो नितान्त प्रयोजनीय हैं, उन सब तत्वोंको इस पुस्तकमें अति सरल और सुन्दर भाषामें लिखा है। उक्त तत्व सबके लिये, विशेषकर इस देशके लिये अति मूल्यवान हैं, क्योंकि हमलोग गोधनको ही परमधन समझते हैं। इस देशमें गोजाति कृषि कार्य्यकी एक प्रधान कारण स्वरूपा समझी जाती हैं गव्यद्रव्य इस देशके लिये प्रधान भोज्य द्रव्य हैं, अतः आपकी यह पुस्तक इस देशके समस्त अधिवासियोंके लिये पढ़नेकी चीज़ है। पुस्तकको लिखकर आप देश भरके धन्य-भाजन हुए हैं।

शुभानुध्यायी

नारकुल डांगा
१० चैत्र १३२१

कलकत्ता हाईकोर्टके जज,
सर गुरुदास बनर्जी।

श्रीयुक्त गिरीशचन्द्र चक्रवर्ती प्रणीत गोधन नामकी पुस्तक पढ़कर परम प्रसन्नता प्राप्त की। यह पुस्तक साहित्य भण्डारमें एक उज्ज्वल रत्न समझी जायेगी। ग्रन्थकी भाषा अति प्राञ्जल है। ग्रन्थकी प्रत्येक लाइनमें ग्रन्थकारके अनुपम अध्यवसाय और गम्भीर गवेषणाका परिचय पाया जाता है। संसारमें जितने प्रकारकी गायें होती हैं, इस ग्रन्थमें उन सबका वर्णन किया गया है। गायोंकी किस ढंगसे रक्षा की जाती है, इसके लिये भी यथोचित उपाय दिखाये गये हैं। दही, दूध आदि गव्य पदार्थ और गोचर्म, गायकी अस्थि द्वारा देशका कितना उपकार होता है, उसकी भी इस ग्रन्थमें व्याख्या की गई है। गो-चिकित्साके सम्बन्धमें भी सारी व्यवस्थायें दी गयी हैं। इस बीसवीं शताब्दिमें ग्रन्थ रचनाकर मौलिकता दिखाना बड़ा ही दुरुह व्यापार है! किन्तु जिन्होंने गरीश बाबूके इस ग्रन्थको पढ़ा है, वे इस बातको मुक्त कण्ठसे स्वीकार करेंगे, इसमें अनुसन्धान और लौकिकताका पूर्ण प्रकाश है। ग्रन्थकार लोकरक्षाके लिये इस अमूल्य ग्रन्थकी रचना कर भारतवासी मात्रके ही धन्यभाजन हुए हैं।

महामहोपध्याय श्रीसतीशचन्द्र.

आपकी लिखी गोधन नामकी पुस्तकको पढ़कर मैंने कितना और कैसा आनन्द प्राप्त किया, इसका लेखनीसे प्रकट करना कठिन कार्य्य है। इसमें गोजाति सम्बन्धी समस्त विषयोंका समावेश हैं। इसलिये यह कहना व्यर्थ है, कि पुस्तक सर्वसाधारण द्वारा एक अति उपादेय ग्रन्थके रूपमें सम्मानित होगा। गो-सेवा हिन्दू जातिके धर्मकार्य्योंमें अन्तर्युक्त है। गोजातिके द्वारा सर्वसाधारणका सब प्रकारसे उपकार होता है—यह कहना ही फजूल है। संसारमें मनुष्यके लिये गायकी बराबर दूसरा उपकारी जानवर नहीं है। दुर्भाग्यवश आजकल हम पुरातन आदर्शको भूलकर गोसेवा और गोरक्षा जैसे उपयोगी विषयसे उदासीन हो गये। इसीसे देशमें नित्य नये अमङ्गल देख पड़ते हैं। ऐसी अवस्थामें जिन लोगोंने गो-पालन की उपकारिताको समझ लिया है, और उसे समाजको समझानेका प्रयत्न करते हैं, वे निःसन्देह धन्य-वादके अधिकारी समाजके उपकारी हैं। श्रद्धेय मित्र श्री गिरीशचन्द्र चक्रवर्त्ती महाशय गोजाति सम्बन्धी समस्त तत्वोंसे पूर्ण एवं समयोप-योगी इस गोधन नामक पुस्तकको लिखकर हम सबकी प्रशंसा और धन्यवादके भाजन हुए हैं। यह ग्रन्थ गृहस्थ मात्रके ही घरमें मौजूद और नित्य पढ़ा जाना चाहिये क्योंकि इसमें लिखे उपायोंके सहारे गोपालनमें विशेष सहायता पहुंचेगी। एवं जो इस पुस्तकको पढ़ेंगे वे हमारी इस सिफारिशको बहुत ठीक समझेंगे। विश्वास है कि इस ग्रन्थरत्नका आदर देशमें दिन दूना बढेगा। दोबारा हमारे समाजमें प्राचीन आदर्शसे गोजातिकी रक्षा और गोपालनकी व्यवस्था करनेके सम्बन्धमें वर्त्तमान पुस्तकके द्वारा यदि किसी प्रकारकी अनुकू-लता प्राप्त होगी, तो हमारा विश्वास है, ग्रन्थकार अपना परिश्रम सार्थक हुआ समझेंगे। हमने ग्रन्थकार महाशयसे अनुरोध किये हैं, कि वे इस ग्रन्थकी रचना समाप्ति करके ही शान्त न हों, वरन् जिससे उनके ग्रन्थ रचनाका उद्देश्य भी सफल हो, इसके लिये वे ही अग्रणी बनें। एवं हमारा यह अनुरोध उन पाठकोंसे भी है, जो इस ग्रन्थको पढ़ेंगे।

बराद नगर

श्रीराय यतीन्द्रनाथ।
चौधरी एम० ए० बी० एल।

OPINIONS

The Herald, Tuesday, April 27, 1915.

"GODHAN" or BOVINE WEALTH.

BY BABU GIRISH CHANDRA CHAKRAVARTY.

Bengali literature, or for the matter of that, the whole of this country as circumstances are at present, is distinctly richer by the publication of the above book. The writer is Babu Girish Chandra Chakravarty pleader and Municipal chairman of Kishoreganj. We heartily congratulate the author on his unique production.

There is no other question in which the people of this country are more vitally interested than that of agriculture, over 70 p.c. of the total population living on that profession. But we seem to be oblivious of the fact that agriculture is dependent in more ways than one on the well-being of the cattle. Cows are also of benefit to us in many other vital ways than simply bringing help to our agriculture. In fact, the well-being, the progress, and to some extent the culture of the people of this country, as has most conclusively been shown by Babu Girish Chandra Chakravarty, depended on the cattle. No wonder therefore that the bovine kind was the object of worship in this country from a long time. A very high importance was also attatched to this class of animals by other ancient peoples of the earth. The English word "pecuniary" relating to money is derived from Latin Pecus meaning cattle. The Celts, the Egyptians, and almost all other ancient nations used to pay the same tribute to the cows. All these are ancient history now. In modern times, as the author has very elaborately shown, all that for which the world take the most scrupulous care about the improvement and well-being of cattle. In India however the stock is daily dwindling. An idea of the extreme rapidity of this falling down may be obtained from the fact that recently in two years no less than 3 crores and 20 lakhs of cowhide were exported from this country. It is therefore not in the least surprising that good cows and abundant and cheap milk are growing rare commodities in this land which has from time immemorial been devoted worshippers of the bovine species.

The author in a successful and able treatment of the matter which is truly encyclopædic has explained what this deterioration is due to. Every information, even the minute detail regarding the cow is to be had from the book. In fact we have no hesitation in saying that the book Babu Girish Chandra Chakravarty has placed before the public is a very useful

products of cow milk are incorporated in the book. In fact there is ample information which is most authoritative on everything connected which the bovine species.

We heartily congatulate the author on his production of this excellent work. On the regeneration of the people of this country, the signs of which we see all around us, the value of the work is bound to be recognised in due time. And that time is happily not far distant.

Bengalee, Sunday, December 19, 1915.

"GODHAN"

We have just in our hands a copy of "Godhan" by Babu Girish Chandra Chakavarty, pleader, Kishoreganj.

"Godhan" as the name implies deals exhaustively with the subject of cow in all its aspects and bearings.

The author in the preface says that the book is the product of his discussions with his illustrious brother, Babu Dwarkanath Chakravarty, M.A., B.L. Vakil, High Court. It is a happy thing that the eyes of the educated and of those in the highest ladder of the society have been attracted to the usefulness of cow and how best to breed it.

The cows are a dying race of animal to day in India. The causes are carefully explained in the book and the remedies suggested are practical. The author presses most emphatically the necessity of careful breeding and good pasture. He enumerates after a careful scrutiny 23 causes which have led to the deterioration of this race and suggests remedy for each.

Mere prayers to the Government wont do. Government will come to our help only when we will show ourselves worthy of the encouragement.

While we neglect cows and do nothing in the way of their welfare, thousands are slaughtered daily and one is struck with horror to find that 5 crores and 30 lakhs rupees worth of cowhides were exported from India in one year only.

The statistical accounts collected by the author are very interesting. In the time of Akbar pure Ghee sold at one anna a seer and pure milk at ten annas a maund. (Aini-Akbari). Bengal is now almost destitute of milk and its preparations, and condensed milk is imported in crores of tins ! This leads to our physical and hence every sort of degeneration.

Another account shows that in Great Britain out of about 7 crore acres of lands about two and a half crore are reserved for pasturage and the remaining four and a half is used as tillage And this in Britain where agricultural produce is not at all sufficient ; and in India, the land of cows, the land of 'Krishna' and the 'Rakhals', there has been a total absence of real pasture lands !

illustrated, are very interesting. Nellore cows (in the Madras Presidency) are the best in the world.

The description, manufacture and uses of the various milk preparations are also very interesting. The description of the diseases and various modes of treatment quite practical in their nature, are the most valuable part of the book which no householder should do without.

Babu Girish Chandra Chakravarty has shown me his book on cow. I understand that the book is uniqe of its kind in Bengali and the information it supplies, should be of the greatest value to owners of cattle. Any undertaking such as this which enables the cultivator to make a more scientific and profitable use of his stock, deserves encouragement. I hope the book will be successful by being widely known.

Kishoreganj } M. H. B. Lethbridge. I. C. S.
4-7-14. } S. D. O. Kishoreganj.

Babu Girish Chandra Chakravarty, pleader Kishoreganj, who is well-known to me from before my incumbency at Kishoreganj, has given me the privilage of going through some parts of his comprehensive treatise on "Cow" in its present manuscript from I have really felt a great pleasure in going through most part of it. His book I believe will be unique of its kind in this country and undoubtedly of the gratest utility to all Indians from the highest to the lowest class. In this treatise he has collected and lucidly laid down all necessary informations regarding breed, preservation, treatment of diseases, cause of present degeneration, posible means of deliverance etc. of this dumb species so useful and helping to mankind. The book will clearly show how Girish Babu has studied the subject and taken pains to support his observation from the old Sastras and up to date practical illustrations of foreign countries. Indeed I heartily thank him for his labour in a subject which really deserves improvement and attention for the welfare of humanity. I hope the book after its publication will be found in every household.

Mymensing } Baidya Nath Ghatak.
5-7-14 } Subjudge.

CHINSURA.

3rd. June 1915.

I have gone through the important portion of the book on "Cattle" so nicely and systematically written by Babu Girish Chandra Chackravorty of Kishorganj, I have seen many other books, compiled by many on the same subject. but this book seems to be unique of its kind in Bengali language. We can call it to some extent "The Encyclopædia" on this special subject.

The book is very interesting and full of valuable information, and at the same time it is written in easy language. It will undoubtedly help

the people taking interest in agriculture and cow-breeding in ameliorating the condition of their cattle.

Those, who have seen cows in other provinces of India, will admit without hesitation that Bengal cows are the poorest animals of their kind in this country. Milk is becoming very rare, and scientific implements have not yet been introduced sufficiently for agricultural operations. But still our people are not so keen in adopting the methods to improve their animals. I hope this book will help them to a considerable extent in this direction,

The Agricultural Department, District Boards and Municipalities, in consideration of the merit of this book, can patronise this gentleman by its distribution among the public.

(Sd.) J. N. SIRCAR, M. A. S. (Japan),
M. R. A. S. (England),
Superintendent of Agriculture,
Burdwan Division.

RUNGPUR DAIRY FARM,
Alamnagar P. O.
20th July 1915.

Dear Sir,

Kindly accept my thanks for the book which you have so kindly presented to me, I am sorry I could not write to you earlier.

I have gone through the book carefully and found it very interesting. It is a great pity that we have become so apathetic to our cattle which is of prime importance to agriculture. Without good cattle we can expect to make very little progress in agricultural improvements, and your book, I think, will give food for serious thought to all those who are interested in the welfare of the country.

With thanks,
Yours sincerely,
(Sd.) J. N. CHAKRAVORTY.

ZOOLOGICAL GARDEN,
Alipur,
18th March, 1915.

I have glanced through Babu Giris Chandra Chakravarti's book on cows, and have read some portions of it. I think it is most ably written, No trouble has been spared to achieve a fairly exhaustive treatment of the subject; and at the same time, the author has remembered the great value of a clear and interesting style. I believe the book will long retain an important position among works of its kind in the Indian vernaculars In the Marwari community to which I belong, there is a remarkable desire for the well-being of cows and I strongly recommend them to take a keen interest in this volume. A Hindi edition would have better enabled them to do so, but even the Bengalee edition will, I am sure be understood by many of them.

CALCUTTA, KALIPRASAD KHAITAN. M. A.
125, Harrison Road. Bar-at-law.